महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या
001-100
तक

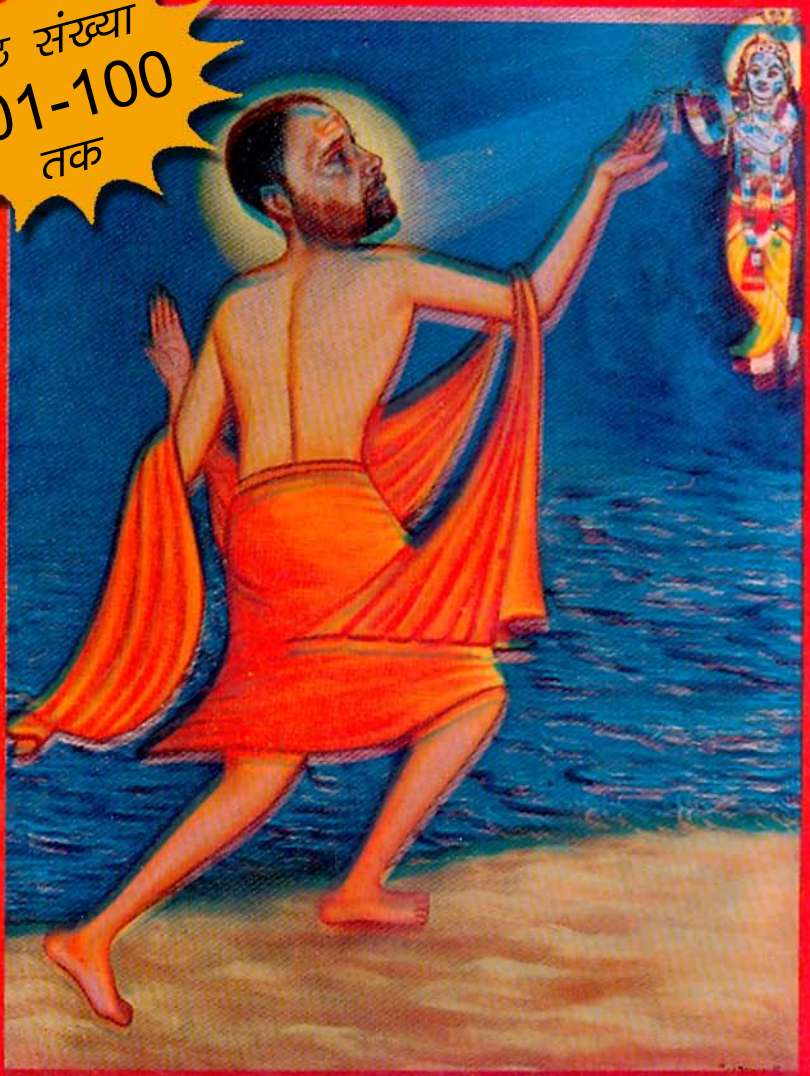

साधु कृष्णप्रेम

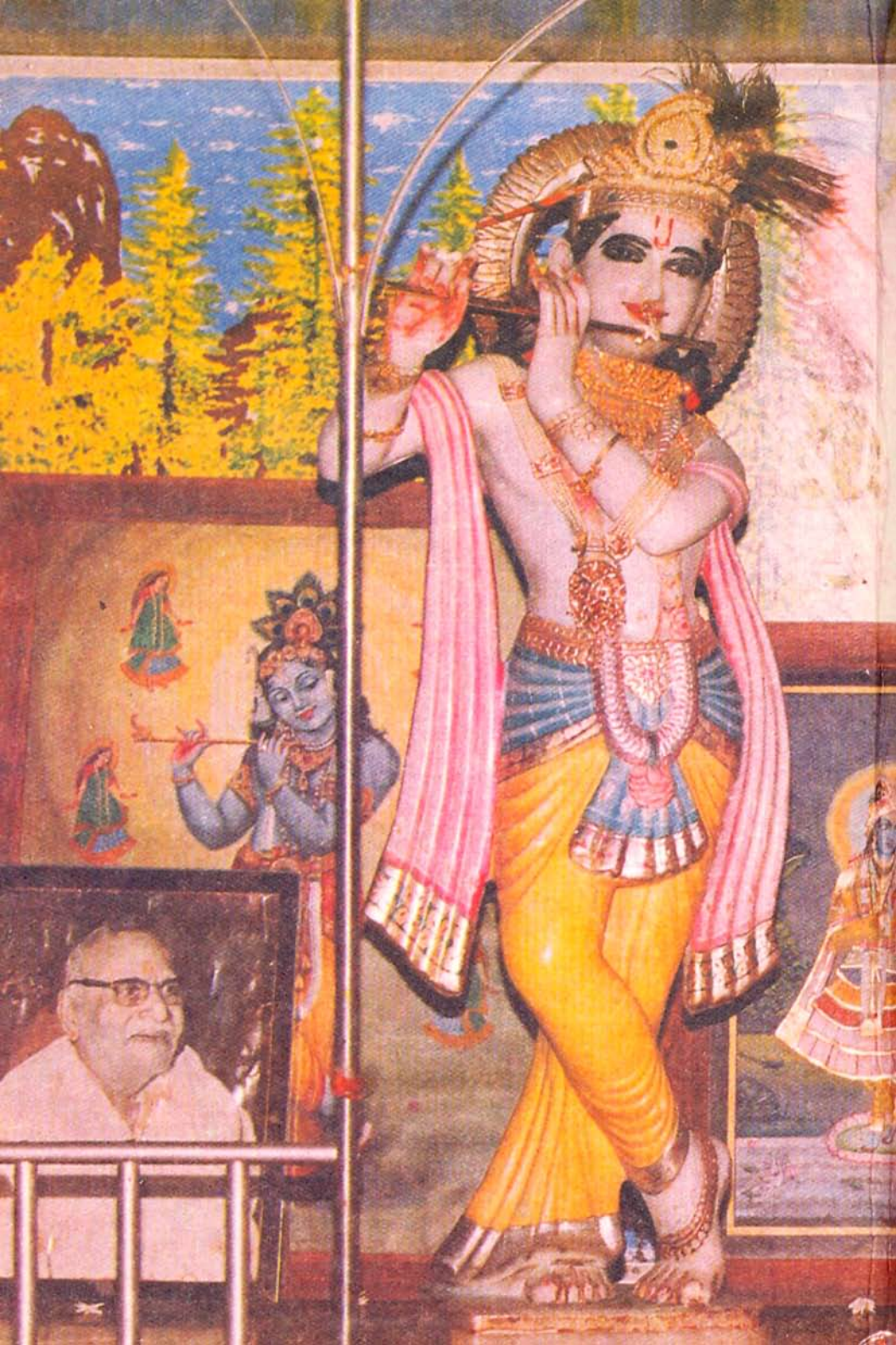

महाभाव-दिनमणि

श्रीराधाबाबा

चतुर्थ खण्ड

सन्त–समर्पणतत्व, रासलीलादर्शन
एवं
तीर्थयात्राट्रेनमें दिव्यानुभूतियाँ
तथा
काष्ठमौनतकके जीवनप्रसंग

लेखक :
साधु कृष्णप्रेम

प्रकाशक
साधु कृष्णप्रेम
अध्यक्ष, श्रीमती विमलाबाई चैरिटी ट्रस्ट,
षोडश गीत मन्दिर, अनाथालयके पीछे, बीकानेर-३३४ ००१ (राजस्थान)

राधामाधव प्रकाशन, षोडश गीत मन्दिर,
अनाथालयके पीछे,
बीकानेर
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्रीराधाष्टमी, श्रीकृष्ण सं. ५२२३
(१० सितम्बर, १९९७)

प्रथम प्रकाशन १००० प्रतियाँ
न्यौछावर रु. १५०/-

मुद्रक
जनसेवी प्रिण्टर्स
दाऊजी मंदिर भवन
बीकानेर - ३३४ ००३
फोन नं. ५२२४६९

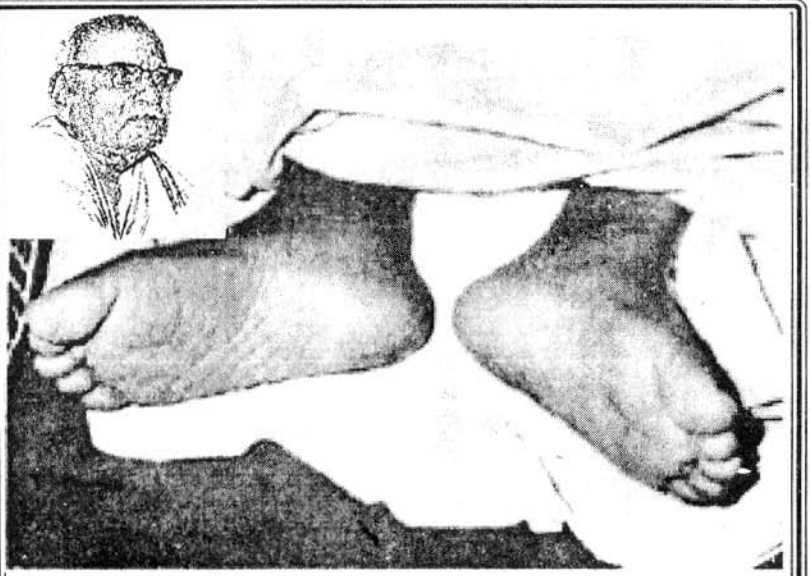

श्रीपोद्दार महाराजके श्रीचरणोंमें

प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप ।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप ॥
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भण्डार ।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्हीं उसे फिर कर मनुहार ॥
विमल भाव-मुखं निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण ।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण ॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य ।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य ॥

साधु कृष्णप्रेम

(पुस्तकका सार-संक्षेप)

इस रस-क़ालिन्दीके तटके नौ सोपान

प्रथम अध्यायमें

अनुशीलन करें – *महासिद्ध सन्तोंकी कृपाको अपने भीतर अवतरित करानेका अमोघ साधन जान लें। बस, अपना 'आत्म समर्पण' किसी भी सच्चे सिद्ध सन्तको करें और पलक झपकते,अविलम्ब विलक्षण रसके सम्प्लावनमें डूबकर उस सिद्ध सन्तसे एक हो जावें।*

द्वितीय अध्यायमें

अवगाहन करें -- उस दुर्दान्त पुलिस-इन्सपेक्टरके अश्वकी लगाम पू. गुरुदेवने उछलकर पकड़ ली। उनके नेत्रोंमें सात्विक शौर्यकी जैसे ज्वाला फूट रही थी। पू.गुरुदेवने घोड़ेको इतने जोरसे धक्का दिया कि वह आठ-दस कदम पीछे हटनेको बाध्य हो गया। मैं चीत्कारकर पू.गुरुदेवकी रक्षार्थ आगे बढ़ूँ इससे पहले तो पुलिस अफसर घोड़ेसे उतर गया था। उसने टोपी उतारकर वर्दीके बटन उन्मुक्त किये और पू.गुरुदेवके चरणोंमें झुक गया।

तीसरे अध्यायमें

देखें -- संसारसागरमें असंख्य विपदायें जीवको घेरे रखती हैं। उन विपत्तियोंसे जीव घबड़ा जाता है। कोई ओर-छोर नहीं, सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार, सहयोग और प्रकाशकी दूर-दूरतक कहीं कोई क्षीण-सी रेखा भी नहीं। जीव उसका निस्तार चाहता है। क्या कोई उसका अमोघ उपाय सम्भव है ? भगवन्नाम-संकीर्त्तन अथवा जपका आश्रय लो, सम्पूर्ण विपत्तियोंका सदाके लिये समूल विनाश हो जायेगा।

चतुर्थ अध्यायमें

अवगाहन करें -- श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि आज मेरी दीक्षा हो गयी। सन्त कबीरदासजीकी दीक्षा भी तो इसी प्रकार हुई थी।श्रीकृष्णचन्द्रजीके पोद्दार महाराजके धर्मपुत्र होनेके एवं श्वेतवस्त्रोंमें संन्यासीवत् जीवन व्यतीत करनेके कुछ विलक्षण कृपाप्रसंग।

पाँचवें अध्यायमें

देखिये -- रासलीलाकी महाभावमयी सत्य अनुभूतियाँ जिनमें पोद्दार महाराज एवं प.गुरुदेव श्रीराधाबाबा अनवरत अनेक दिनोंतक आपाततः निमज्जन करते रहे।

छठे अध्यायमें

अवलोकन करें -- उस अनुष्ठानका जीवन्त वर्णन जिसके द्वारा पू. पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि हुई ।

सातवें अध्यायमें

देखें ---प्रयागकुम्भमें नावमें मात्र एक गीतपंक्तिके गुनगुनानेसे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको हुआ विलक्षण उद्दीपन, सिद्धजगत्का सन्देश।

आठवें अध्यायमें

अनुशीलन करें --पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके सम्मुख तीर्थयात्रामें साक्षात् भगवद्विग्रहोंके प्राकट्यके प्रसंग, काशीमें बिन्दु-माधवतीर्थ, गोपालमन्दिर एवं भगवती विशालाक्षी मन्दिरमें चमत्कार, अन्नपूर्णामन्दिरमें साक्षात् भगवतीके दर्शन। चित्रकूटमें मन्दाकिनी घाट एवं कामदगिरिपर चिन्मय चित्रकूटका प्राकट्य। अयोध्यामें सीताजी एवं उर्मिलाजीके दर्शन। हरद्वारमें गंगाजीका प्रत्यक्ष दर्शन। मथुरा एवं ब्रजयात्रामें दिव्यानुभव। महासिद्धसन्त मोहिनीश्यामजीके विवरण। उज्जैनमें पूर्वजन्मोंकी स्मृति। चित्तौड़में श्रीकृष्णसे हठ । कृपावतार श्रीनाथजीकी झाँकी। काँकरोलीमें भक्तराज अम्बरीषके दर्शन। सिद्धपुरमें भगवान् कपिल एवं माता देवहूतिकी झाँकी, कर्दमऋषिका विन्दुसरोवरमें साक्षात्कार । द्वारका, जूनागढ़, डाकोर, पञ्चवटी, पंढ़रपुर, तिरुपति, जम्बुकेश्वर, श्रीविल्लीपुत्तूर आदि सभी तीर्थोंमें जीवन्त चमत्कारिक अनुभवों के विवरण।

नौवें अध्यायमें

पू.गुरुदेव राधाबाबाके काष्ठमौनका हृदयद्रावक प्रसंग ।

श्रीराधा

आत्मकथ्य

नृसिंह जयन्ती, वि.सं.२०५४
तदनुसार मंगलवार,दिनांक २०।५।१९९७ ई०

प्राणवल्लभ परमप्रेष्ठ प्रियतम रससागर ब्रजेन्द्रनन्दनके चरणोंमें कृतज्ञताके अश्रु ढलकाता यह **महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा** – नामक पू.गुरुदेवकी जीवनीका **चतुर्थ खण्ड** समर्पित कर रहा हूँ। चिन्मय सरस कालिन्दीके श्यामल जलसे भरा – **महाभाव–दिनमणि श्रीराधाबाबा** –जीवनीका **प्रथम खण्ड,** गंगाकी मुक्तिदायिनी पुण्यधाराके तुल्य पू.गुरुदेवकी ज्ञानोत्तर विशुद्ध भक्तिमें सराबोर उनके सैकड़ों अलभ्य पत्रोंका संग्रह – **महाभाव दिनमणि श्रीराधाबाबा** – उनकी जीवनीका **दूसरा खण्ड** और यह सरस्वतीके समान पूर्णतया गोपन रस–रहस्योंका प्रकाश करता –**महाभाव दिनमणि श्रीराधा बाबा** – पू.गुरुदेवकी जीवनीका **तीसरा खण्ड** जिस समय सन् १९४९ ई. से लेकर १९५६ ई.तकके उनके सात वर्षोंके रस–साधनाकालकी विलक्षण पारमार्थिक उपलब्धियोंका जीवन्त चित्रण है। इस त्रिवेणीकी पथयात्राके लक्ष्य तो हे प्राणाधिक ! आपके रस–सिन्धु चरण ही हैं, अतः इसे आपके चरणोंमें ही स्वीकार करलें।

वल्लभ ! इस पुण्यक्षेत्र भारतमें सप्त गंगायें भी तो प्रसिद्ध हैं। अभी तो गंगा–यमुना–सरस्वती इस त्रिवेणी तक ही पहुँच पाया हूँ। सरयू, नर्मदा, गोमती एवं गोदावरी – इन चारों पुण्यसलिलाओंमें अवगाहन तो अभी शेष ही है। ऐसा लगता है पू.गुरुदेवके भी जीवनचरित्रके सप्त मुख्य खण्ड एवं अनेकों उपखण्ड लिखे जावें, ऐसा भगवद्विधान है। यह प्रयास चाहे इस नश्वर शरीरके द्वारा करानेका प्रभु सौभाग्य दें अथवा वे अपना अन्य कोई यन्त्र चयनित करें – सब उनकी अनन्त कृपायोजनाके अन्तर्गत है। पू. गुरुदेवके स्वरचित एक सौ आठ चौपदोंपर तो कार्य प्रारम्भ हो गया है। विचार तो इस सामग्रीको इसी खण्डके साथमें जोड़कर इस खण्डका कलेवर लगभग हजार पृष्ठोंका करनेका था परन्तु जीवनका कोई भरोसा नहीं, शीघ्रतामें जो पुण्यकार्य सम्पन्न हो जाय उसे पूरा कर दूँ , ऐसा मानकर लगभग पाँच सौ पृष्ठोंकी यह सामग्री तो पाठकवर्गके सम्मुख है ही,

अवशिष्ट कार्यमें जुट गया हूँ।

दूषित कर्मोंको क्षय करने इस वर्ष प्रभु भीषण रोग बनकर दर्शन देने पधारे । मेरे कष्टोंपर तनिक ध्यान नहीं देते हुए उन्होंने अपना निरंकुश स्वच्छता—कृपाभियान चलाये रखा । कभी—कभी तो ऐसा लगता था कि वे कलेवर ही बदलनेका मानस बना लिये हैं । जीवका दूषित कर्मोंसे गन्दा होते रहना तो हस्तिस्नानवत् स्वभाव ही है। हाथी नदीमें खूब मनोयोगपूर्वक स्नान करता है, उसका घण्टों जलविहार चलता है, किन्तु जैसे ही विहारोपरान्त वह बाहर आता है, उसका पुनः अपने ऊपर कीचड़ और रज डालनेका तामस कर्म प्रारम्भ हो जाता है। मेरी भी ऐसी ही दशा है। पू. गुरुदेवके पावन चरित्रोंमें अनेकों घण्टों रमण करता हूँ, किन्तु पुनः जगत्पंकमें लिप्त हो ही जाता हूँ। अतः कृपाविधान करने हेतु प्रभु पीड़ारूप धारणकर पधारे । निरन्तर पिलाये जाने वाले द्रवसे मांसपेशियोंके जलाशय सराबोर किये रखना, मात्र जल पीनेसे ही अल्सरकी पीड़ा, रात्रिभर श्वासावरोधसे निद्रा नहीं लेने देना, बैठे—बैठे रात्रि व्यतीत कराना, फेफड़ोंमें से श्वासमार्गमें रक्तके थक्के जमाना – ऐसे कष्टोंमें पूर्ववर्ती चार माहका कालक्षेप हुआ । यह पवित्र कार्य बार—बार प्रारम्भ करनेका साहस जुटाता पर असफल ही रहता। ऐसे कष्टोंमें मनुष्य स्नेही आत्मीयजनोंके सेवा—सहयोगकी अपेक्षा करता ही है परन्तु अपने—से—अपने जनोंका भी किनारा कर लेना, सभी कोनोंसे प्रभुने ऐसा व्यवहार दिखाया कि जगत्का पूरा स्वरूप ही उजागर हो गया। विश्वमें क्या सभी पराये हैं ? सभी क्या दिखावेके मुखौटा लगाये हैं ? इस कठोर सत्यके थपेड़े खाता प्रवाह—पतितकी तरह जहाँ सींग समाये, भटकता रहा। अन्ततः प्रभुसे दयाकी याचना की । "इन विलक्षण प्रेमीयुगल – श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके जीवन—चरित्र लिखनेकी इस मेरी वासनाके पूरी होने तकी अवधिके लिये श्वास—कष्ट निवारण कर दीजिये न !" श्रीकबीरदासजीकी उक्ति तो हम सभीको स्मरण है ही –**'चींटीके पग नेवर बाजै , ताकौ साईं सुनता है।"** प्रभुके द्वारा प्रार्थना सुन ली गयी। प्रभु एक डाक्टरका रूप लेकर इलाजको तत्पर हो गये। क्या ही लीला है –स्वयं ही रोग बनें और स्वयं ही उसे दूर करनेका संकल्प करें ! एक अकिंचन भिक्षुके इलाजके लिये, जिससे एक फूटी कौड़ी प्राप्त करनेकी आशा नहीं, इतना आदरसहित उत्साह और वह भी एक ऐसे डाक्टरका जिससे पूर्वमें पहले कभी सम्पर्क नहीं हो, और जिसकी मात्र एक

घण्टेकी आय हजारों रुपयोंमें हो, एक चमत्कार ही था। जहाँ अपने लोग मुख मोड़ लें, पराये–अनजाने कण्ठ लगावें – कैसा विलक्षण विधान प्रभुने बनाया था ? सारे रोगोंकी – मधुमेहसे लेकर फेफडोंकी आन्तरिक क्रिया, किडनी, लीवर एवं हृदयकी धड़कनतककी सूक्ष्मतम जाँच, हृदयके आकार–वृद्धिकी एवं उसके द्वारा फेफडोंपर पड़नेवाले दबावकी सभी जाँचें डाक्टर–प्रभुने अपनी निगरानीमें अपने अति विश्वस्त लोगोंसे करायी। रिपोर्टें लेकर डाक्टर महोदय स्वयं अपने विश्वस्त मित्र कार्डियोलोजिस्टके पास अहमदाबाद गये और तब पता चला कि हृदयका बायाँ वर्टिकल वाल्व खराब हो गया है, उसे बदलना आवश्यक है। अब डाक्टर महोदय बाल्व बदले जानेके समय स्वयं उपस्थित रहनेका आश्वासन दें, व्यय निःशुल्क करवा देनेका उत्साह प्रदर्शित करें – यह सब बात प्रभु–कृपाके अतिरिक्त कुछ भी समझमें नहीं आई । प्रभु–कृपाके सहित विरुद्धगुणधर्माश्रयी स्वभावको देख–देखकर मैं चकित था।

इतना सब देखते हुए भी आपरेशन नहीं कराया। इस नश्वर शरीरके लिये किसी अनजान व्यक्तिका इतना सेवा–ऋणबोझ लेनेका मन ही नहीं हुआ। अपने पास तो ऐसी पुण्यराशि भी नहीं जिससे उस अनजान डाक्टरका सेवा–ऋण उतार पाता । अतः बस, बिना आपरेशन, मात्र दवाका सहारा लिया और प्रभु–कृपासे दवा द्वारा ही श्वासावरोध मिटता गया। और अब तो केवल अल्सर एवं पित्तरसका उद्रिक्त हो उठना ही अवश्य कष्ट देता है, शेष, हृदय सम्बन्धी सभी कष्ट–धड़कन अत्यधिक हो उठना , रक्तचाप बढ़ जाना, नाकसे रक्तके कण निकलना – स्वतः सब सामान्य हैं।

इस सब कष्टमें चार माह व्यय हो जानेसे जितनी सामग्री लिखी जानी चाहिये थी लिखी नहीं जा सकी है। वैसे अभी दो माह शेष हैं। यदि स्वास्थ्य सामान्य रहा और प्रभुने लेखनीमें गति दे दी तो पू.गुरुदेव रचित चौपदोंकी विस्तृत भावानुवाद सहित व्याख्या पाँचवें खण्डके रूपमें प्रकाशित कर देनेका पूरा मन है।

इस ग्रन्थमें सामग्री चालीससे पचास वर्ष पुरानी है। उन दिनोंके विवरणोंका मेरे पास कोई लिखित संकलन तो था ही नहीं, फिर भी प्रभुकृपाका आश्रय लेकर लिखनेका साहस कर बैठा। रासलीलाके सब प्रसंग सन् १९४९ ई.के हैं। किन्तु प्रभु अक्षरशः एक–एक घटनाका जीवन्त चित्र वर्तमानके तुल्य नेत्रोंके समक्ष प्रत्यक्ष करते चले गये। अनेक विस्मृत घटनाएँ

तो प्रभुने स्वप्नमें स्मृति करायीं । भाषा–संरचनामें भी मैं तो पूर्णतया अनभ्यस्त हूँ। किन्तु लीला एवं घटनाचक्रके यथानुरूप प्रभुकी कृपा भाषारूपमें ढलती गयी और यन्त्रावत् मेरी कलम चलती गयी।

प्रभुनें सब प्रकारसे हीन, असमर्थ, रोगी व्यक्तिको इस अपने स्वरूपगत पावन चरित्रको लिखनेका यह सौभाग्य दिया, इसके लिये प्रभुका रोम–रोमसे कृतज्ञ हूँ।

मैं श्रीराजेन्द्रप्रसादजी स्वामी, स्वामी कम्प्यूटर्स, बीकानेरका बहुत आभारी हूँ जिन्होंने प्रभुकृपासे हमें कम्प्यूटरमुद्रणमें मार्गदर्शन एवं सहयोग किया जिनसे यह सामग्री समयबद्धरीतिसे मुद्रण हो सकी।

जिन लोगोंने भी इस कार्यमें सहयोग दिया है वे सभी प्रभुकार्यमें यंत्र हुए हैं। उनका यह सहयोगकार्य परममंगलकारी होगा इसमें तो कोई संशय है ही नहीं। मैं तो उनके इस सहयोगको अपने ऊपर हुआ परम अनुग्रह ही मानता हूँ।

पर्याप्त सावधानी रखने के उपरान्त भी भूलें रह जाना अवश्य संभाव्य है। सुधी पाठकोंसे निवेदन है कि वे इनका हमें इंगित करें जिससे उनका परिष्कार किया जा सके। स्खलन तो जीवगत दौर्बल्य है ही, किन्तु रसिकजन उसे उपेक्षणीय ही गिनते हैं। आस्वादनीय तो भगवदीयजनका रसमय चरित्र ही है जिसमें मात्र रस–ही–रस है, छिलका, गुठली आदि निःसार वस्तु है ही नहीं।

किमधिकम् सुविज्ञेषु,

भक्तोंकी चरणरेणु,
साधु कृष्णप्रेम

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

चतुर्थ खण्ड

(रासलीला-दर्शन तथा तीर्थयात्राके अनुभव एवं काष्ठमौन)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं.
प्रथम अध्यायः	
सन्तसमर्पणतत्व एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयनकाकी महिमा	१
दूसरा अध्याय	
सात्त्विक शौर्य	२१
तीसरा अध्याय	
भगवन्नाम–संकीर्त्तनसे समग्र विपत्तियोंका निरसन	२४
चौथा अध्याय	
श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको पू.गुरुदेव द्वारा आत्म-प्रतिनिधित्वका दान	३४
पाँचवाँ अध्याय	
रासलीलाओंमें अनुभूतियाँः	
१. गोचारणलीलाका उन्मेष और भगवदादेश	४५
२. भगवदादेशका अभिव्यक्तीकरण	४७
३. अनवरत कृपावर्षण	५४
४. पू.गुरुदेवकी शय्यापर अपूर्व चिन्मय सज्जा	५८
५. सबसे पहले आप मेरे कपोलपर चपत लगावें	६५
६. वनचारणलीला और अधरामृतरसका वितरण	७२
७. श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकासे मतवैभिन्य	८९
८. रासमण्डलीका पुनः आगमन	१०१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं.
	९. गुणीजन लीला	१०३
	१०. वेणीगूँथन लीला	१२६
छठा अध्याय	देवाराधना द्वारा पू.पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि	१४६
सातवाँ अध्याय	प्रयागमें कुम्भमेला, पू.गुरुदेवको नावमें उद्दीपन, सिद्धजगत्का सन्देश	१५६
आठवाँ अध्याय	१. तीर्थयात्रा प्रस्थान	१६५
	२. पू.गुरुदेव द्वारा काशीका महिमावर्णन	१६७
	३. बिन्दुमाधवतीर्थके पुजारीको उपदेश	१७४
	४. गोपालमन्दिरमें चमत्कारिक बालगोपालके दर्शन	१७६
	५. भगवती विशालाक्षीमन्दिरमें कृपा चमत्कार	१८०
	६. अन्नपूर्णा मन्दिरमें भगवतीके साक्षात् दर्शन	१८४
	७. चित्रकूटमें विचित्र अनुभव	१९०
	८. प्रयागमें तीर्थयात्राट्रेन	१९७
	९. अयोध्यामें जगज्जननी माँ सीताजीकी कृपा	२०६
	१०. अयोध्यासे नैमिषारण्य	२१४
	११. हरिद्वारमें भगवती गंगाजीके दर्शन	२१६
	१२. कुरुक्षेत्रकी महिमा	२२६
	१३. दिल्लीमें सन्त सरमदकी मजारपर	२२८
	१४. मथुरा तथा ब्रजयात्राके दिव्यानुभव	२३१
	१५. महासिद्धसन्त मोहिनीश्यामजी	२३८
	१६.उज्जैनमें महाकालके दर्शन एवं पूर्वजन्मकीस्मृति	२४९
	१७.ॐकारेश्वरमें सीतारामदास ॐकारनाथजीसे मिलन	२५४
	१८.उदयपुर एवं चित्तोड़में पू.गुरुदेव	२५७
	१९.कृपावतार श्रीनाथजी	२६३
	२०.काँकरोलीके द्वारकाधीश	२७०
	२१.श्रीनाथजीके मंगलादर्शन	२७३
	२२.पुष्करतीर्थमें	२७४
	२३. आदितीर्थ धर्मारण्य सिद्धपुरमें भगवान् कपिलके दर्शन	२७८
	२४.द्वारकाधाममें	२८१
	२५.बेटद्वारकामें पू.गुरुदेव	२८३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं.
२६.	जूनागढ गिरनार पर्वतमें	२८६
२७.	डाकोरके रणछोड़राय	२९०
२८.	बम्बईमें तीर्थयात्राट्रेन	२९३
२९	बम्बई से नासिक (पञ्चवटी)	३०५
३०	पण्ढ़रपुर	३०८
३१.	किष्किन्धामें	३१२
३२.	कालहस्ती	३१३
३३.	तिरुपतिबालाजी	३१८
३४.	रमणाश्रममें	३२५
३५.	श्रीरंगक्षेत्रमें	३३१
३६.	जम्बुकेश्वरमें तेजोदीप्त भगवती जगदम्बाका दर्शन	३३७
३७.	श्रीविल्लीपुत्तूरमें भगवती गोदासे तादात्म्य	३३९
३८	श्रीआद्यशंकराचार्यकी जन्मस्थली कालड़ीमें	३४५
३९.	कन्याकुमारीमें रसोद्दीपन	३४६
४०.	भगवती मीनाक्षीकी साक्षीमें सभी यात्रियोंका आध्यात्मिक संशुद्धीकरण	३५३
४१.	भगवती सीताजीकी अग्निपरीक्षाके दर्शनः रामेश्वरमें	३६०
४२.	वेदारण्यकी प्रलयमें पू.गुरुदेवको भावोल्लास	३६३
४३.	चिदम्बरम्में भगवान् शिवके साक्षात् दर्शन	३६५
४४.	पाण्डिचेरीमें 'माताजी'से वार्त्तालाप	३६८
४५.	मद्रासमें श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका अर्चन	३७०
४६.	भक्तिमती चिन्मयीदेवीके वृत्तान्तसे भावावेश	३७१
४७.	नीलाचलमें महाभावावेश	३७५
४८.	तीर्थयात्राका प्रयोजन–साफल्य	३८७

नवम अध्याय

१.	पू.गुरुदेवका काष्ठमौन	३९३
२.	पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके काष्ठमौनका प्रयोजन	३९९
३.	पूजा–विसर्जन	४०४
४.	उन्मुक्तहस्त श्रीकृष्णवितरण	४२९
५.	कृपासिन्धुकी उर्मियोंमें उद्दाम नर्त्तन–	४४५
६.	सम्प्लावन ही सम्प्लावन	४५४

———

प्रकाशकीय वक्तव्य

भगवान श्रीराधा-माधवकी असीम कृपाका यह प्रत्यक्ष चमत्कार हैं कि ***महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा*** नामक पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी जीवनीका यह **चतुर्थ खण्ड** प्रकाशित होकर राधा-परिवारके सम्मुख है। यद्यपि हमारा इसी ग्रन्थमें पू. गुरुदेवके अप्रकाशित काव्य-संग्रह-चौपदोंको विस्तृत भावार्थ सहित देनेका मन था, किन्तु भावार्थ-लेखनके मध्य ही लेखकका शरीर हृदयाघातकी बीमारीसे आक्रान्त हो गया। स्वास्थ्यजनित अवशतासे इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यसे मध्यमें ही निवृत्त होना पड़ा और तबसे अनवरत पुनः-पुनः कार्य-प्रारम्भ करनेकी इच्छा रखनेपर भी हाथोंके कम्पन और मस्तिष्ककी बेचैनीसे यह कार्य आजतक तो प्रारम्भ नहीं हो पाया। सन्तोष इसी बातका है कि इस रुग्णताके पूर्व ही चतुर्थ खण्डकी ५०० पृष्ठकी सामग्री प्रेसमें देने लायक हो गई थी। यह सामग्री स्वयंमें भी इतनी महत्वपूर्ण है और इसमें पू.गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराजके प्राथमिक रासलीलादर्शन और तीर्थयात्रा-प्रसंगोंका ऐसा रहस्योद्घाटक और रोचक वर्णन है कि पाठक इन्हें पढ़कर अवश्यमेव कृतकृत्य हो उठेंगे । उन्हें पू. श्रीपोद्दार महाराज एवं पू. श्रीगुरुदेवके अति गरिमामय आध्यात्मिक जीवनके मौलिक रहस्योंका परिचय प्राप्त होगा। यदि प्रभुने कृपावश स्वास्थ्य प्रदान किया तो आगामी **पाँचवें खण्डमें** पू. गुरुदेवका उपलब्ध काव्य एवं नाटक-संग्रह एक साथ प्रकाशित करनेका मन है ।

यह अप्रकाशित दुर्लभ काव्य एवं नाटक-संग्रह इतना भाव-शब्द-दुरूह और रस साहित्यगुणोंसे भरपूर है कि इसकी गरिमाका आकलन हिन्दी साहित्यके मूर्धन्य विद्वज्जन ही कर पावेंगे । निश्चय ही वे इसमें महाकवि सूरदासादिकी कोटिका एवं कहीं-कहीं उससे भी उत्तम रस पाकर चमत्कृत हो उठेंगे । इस ग्रन्थको जिसमें कुछ रसमय नाटक भी हैं संभव है दो खण्डोंमें प्रकाशित किया जा सके । इसमें सुबोध भावार्थ भी देने की

योजना है । यह सम्पूर्ण ग्रन्थ बहुमूल्य आर्ट पेपरपर छपानेका प्रयास होगा और इसकी छपाई उत्तम कोटिकी होगी । इसमें राधाकृष्णकी लीलाओंके पू. राधाबाबाके यथा-भाव चित्र भी संयुक्त करनेका मन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सज्जाकी दृष्टिसे बहुत ही आकर्षक, उपादेय तथा संग्रहणीय होगा । वर्तमानमें इस खण्डमें इन पदोंमें से दो पद अर्थ सहित नमूनेके रूपमें दिये जा रहे हैं। इन पदोंको पढ़कर पू. गुरुदेवके काव्यसाहित्यकी झाँकी पाकर निश्चय ही पाठक कृतकृत्य हो उठेंगे । आगामी प्रकाशनमें तीन-चार लाख रुपयों तक का व्यय होनेकी संभावना है। अनेक चित्र तो पदोंके भावानुसार बनवाने भी पड़ सकते हैं । आजकल चित्रों को बनवानेके लिए जयपुरसे कलाकारों को बुलवाकर प्रति चित्र ५,०००/- रु. तक देना पड़ जाता है । इस मंहगाईका कारण विदेशी यात्रियोंकी पुरातन दुर्लभ चित्रोंकी प्रतिलिपि करानेकी अत्यधिक माँग होना है । जो हो, ग्राहकोंसे निवेदन है कि इस ग्रन्थकी अग्रिम बुकिंग करानेके लिए कृपया अपना नाम एवं पता संलग्न कार्डमें लिख भेजें जिससे हम माँगके अनुसारही इस ग्रंथका प्रकाशन कर सकें। हमारे पते सहित छपा कार्ड इस चतुर्थखण्डमें संलग्न मिल जायेगा । आशा है ग्राहकोंका सहयोग पाकर हम उनकी सेवासे निश्चित ही कृतार्थता प्राप्त करेंगे, ऐसी प्रभुसे प्रार्थना है।

विनीत -

साधुकृष्णप्रेम

झूलन के पद

॥१॥

झूलत लालबिहारी, प्यारी ।
द्रुम कदंब कन-कन भासित छबि
पीत अतुल हरियारी ॥१॥
फूल-फूल, तरु पात-पात ज्यौं
द्वै दरपन दुतिधारी ।
झोंटा देत परस्पर इंगित
करत आपु मतिहारी ॥२॥
ऐसिय अरुन अंचुकी देखिय,
ऐसिय लहरत सारी ।
ऐसिय उपरैना पियरौ उड़ि
उरझि न जात निवारी ॥३॥
हम साँचे, के वे जो झूलहिं,
कोउ न निरनयकारी ।
'तुम, तुम' बोलि बतापन हारे
धन्य सुआ री । सारी ॥४॥

राधा

पद संख्या १

पू गुरुदेव श्रीराधाबाबाका जन्मनक्षत्रके अनुसार 'लालमणि' नामकरण हुआ था। प्रस्तुत पदोंमें प्रियतम श्रीकृष्णको कहीं-कहीं 'लाल' अथवा 'लालबिहारी' आदि नामोंसे वर्णित किया गया है जिससे कविके नामकी भी ध्वनि प्रकट होती है।

अहा ! कैसे अनुपम दृश्य हैं ! कैसी अनुपम शोभा है! नित्य बिहार ही जिनका जीवन है, जीवन-चर्या है वे लालबिहारी प्रियतम श्यामसुन्दर एवं नित्यबिहारिणी किशोरी प्यारी श्रीराधा कदम्बवृक्षकी डालीपर पड़े झूलेपर झूल रहे हैं। श्रीवृन्दावनके उस दिव्य कदम्ब वृक्षकी शाखा-शाखा, टहनी-टहनी तथा पत्र-पत्र, यहाँ तक कि वृक्षके कण-कणमें प्रिया श्रीराधाके अंगोंकी पीली झाँई तथा प्रियतम श्रीकृष्णके अंगोंकी नीलद्युति तथा इन प्रेमीयुगलोंकी पीत एवं नील अंगोंकी द्युतिकी समन्वित छटा हरित आभाके रूपमें द्युतिमान हो रही है ॥१॥

यह दिव्य कदम्ब वृक्ष भी अलौकिक है। इसका प्रत्येक पुष्प एवं पत्ता-पत्ता उज्ज्वल दर्पणके समान चमकीली आभा धारण किये है, जिससे प्रिया-प्रियतमकी शोभा कण-कणमें प्रतिबिम्बित हो रही है। दोनों ही प्रिया-प्रियतममें स्वयं न झूलकर एक-दूसरेको झुलानेकी होड़-सी लगी है। वे इंगित करके एक-दूसरेको झोंटा देनेकी मनाही करते हैं तथा झूलेसे स्वयं उतरकर झोंटा देकर झुलाना चाह रहे हैं ॥२॥

लाल रंगकी चोली जो प्रियाने धारण की है अनुपम

शोभायमान है। इसी भाँति प्रियाजीकी (नील) साड़ी जो झूलते-झुलाते समय लहरा रही है उसकी भी चमक अद्वितीय है। ऐसा ही प्यारे श्यामसुन्दरके अंगोंपर पीले रंगका अंग-वस्त्र उपरैना(पीताम्बर) है जो उड़-उड़कर प्रियाजीके अंगोंसे लिपट जा रहा है तथा छुड़ानेपर भी नहीं छूट पाता ॥३॥

श्रीवृन्दावनके निभृत निकुंजधामकी यह झूलन-लीला यहाँ स्थित परम सौभाग्यभरे दो प्राणी निरख रहे हैं -वे हैं निकुंजधामके बड़भागी शुक एवं सारिका। वे भी इस अनुपम लीलाछविको निहारकर अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं कर पा रहे हैं। वे सोचते हैं कि सचमुच ही प्रियाप्रियतम झूला झूल रहे हैं कि यह हमारे नेत्रोंका भ्रममात्र ही है। यहाँ कोई तीसरा है भी नहीं जो इस बात का निर्णय करे कि कदम्बके वृक्षके कण-कणमें सचमुच ही अगणित राधाकृष्ण झूला झूल रहे हैं— यह बात सत्य है कि हमारी यह धारणा सत्य है कि प्रियाप्रियतम तो दो ही हैं, कदम्बवृक्षके कण-सरीखे कलेवरमें उनके अगणित प्रतिबिम्ब ही हमें दिखाई दे रहे हैं।

अचानक दिव्य शुक एवं दिव्य सारिका बोल पड़ते हैं कि हे प्रिया-प्रियतम! तुम दो ही झूला झूल रहे हो तथा कदम्बवृक्षके कण-कणमें प्रतिभासित हमारे नेत्रोंके विषय तुम्हारी अगणित छवियाँ तुम्हारी प्रतिच्छायायें हैं, यही सत्य है। इस सनातन दिव्य शाश्वत सत्यकी 'तुम-तुम' शब्दोंसे घोषणा करने वाले शुक एवं सारिकाकी बलिहारी है। धन्य है वह महाभाग्यवान् शुक एवं महाभाग्यवती सारिका !॥४॥

राधा

॥२॥

झूलत लाल निकुंज-बिहारी ।
प्रान-अधीसुरि सुंदरि राधा
निज कर रुचिर सिँगारी ॥१॥
नित्य बिहारिनि नील डोर गहि
पिंगल उत बनवारी ।
मंद-मंद मुसकाइ मनोहर,
रीति बिलास बिसारी ॥२॥
निभृत बनस्थल, रजनिंदिनि जहँ
उमगत देत दुहारी ।
पौन छुवत चल चंचल धाँघर
पीत दुकूल किनारी ॥३॥
बंकिम नैन हेरि दयिता-तन
तान समय-अनुहारी ।
साँवर भरत जात, 'जय-जय' कहि
कीर-सारि बलिहारी ॥४॥

श्रीपोद्दार महाराज

पता नहीं कुछ रात-दिवसका, पता नहीं कब संध्या-भोर

महाभाव—दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ—खण्ड)

प्रथम अध्याय

सन्त-समर्पण-तत्त्व एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयनकाकी महिमा

उस दिवस राधाष्टमी महोत्सव था। बात सन् १९४९ई०की है। पू० श्रीराधाबाबा इस निशामें नियमतः जागरण किया करते थे। उन दिनों जन्माष्टमी-राधाष्टमी महोत्सव इतने बृहद् रूपमें तो नहीं होते थे, जैसे आज होते हैं, किन्तु पद-गायनादिमें ज्यों-की-त्यों आजकी ही परिपाटीका वर्त्तन होता था। बाह्यावेशी जनसमुदायके न होनेसे वातावरण अतिशय सात्विक रहता था। इन सभी उत्सवोंमें कीर्त्तन-बधाई, पद-गायनादिका उत्तरदायित्व मेरे पूर्वाश्रमके मातुल श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी निर्वाह करते थे और उद्दाम नाम-संकीर्त्तन, जो उन दिनोंके उत्सवोंका प्राण कहा जाता था – का नेतृत्व एवं संचालन पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं किया करते थे। वह संकीर्त्तन इतना अधिक रसोच्छलन करता था कि उसे शब्दोंमें व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। संकीर्त्तनमें सम्मिलित होनेवाले प्रायः अधिकांश लोगोंको न तो कालज्ञान रहता था और न ही देह-सुधि। यह उद्दाम नाम-वारिधि गरजता-उछलता तीन-साढ़े तीन घंटेके पूर्व विरमित नहीं होता था और इसके रसमें निपतित लोगोंको इसका विराम होना इतना कटु लगता था, जैसे उनको अपने जीवनरससे ही वंचित कर दिया गया हो। प्रायः स्वयं पोद्दार महाराज अपने सम्पादन-कक्षसे उत्सव-स्थलमें आकर ही, अतिकाल हुआ मान इसे विराम दिलाया करते थे। उनकी वह आशीर्वादसे भरी, अनुग्रह प्रवाहित करती छवि, उनके वे बिशुद्ध सत्वकी वर्षा करते नेत्र, जब संकीर्त्तन करते लोगोंको संकीर्त्तन-विरामका संकेत देते थे, उस समय अनेक बार तो रसोर्मियाँ इतनी उमड़ उठती थीं कि घण्टे-पौन घण्टेतक तो उस रस-स्रोतका रुकना असंभव ही लगता था। फिर जब स्वयं पू०गुरुदेव ही संकीर्त्तन-निवृत्त हो जाते और

विराम कर देते तब सहयोगी अनुसरणकर्त्ताओंको रुकना ही पड़ता था।

मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीका कण्ठ इतना सुरीला था कि उनके द्वारा गाये गये बधाई और श्रीराधामहिमाके पदोंकी बन्दिश एवं स्वरमाधुरी सारे वातावरणको किसी अपूर्व रसमय लोकमें पहुँचा देती थी। मुझे हारमोनियम वाद्यमें साथ देकर मेरे मामाजीके अनुगत हो पदगायन भी करना होता था एवं पू०गुरुदेवके साथ भी ढोलक अथवा बंगाली मृदंग (खोल) बजाकर संकीर्त्तनमें सम्मिलित होना होता था । दिनभरका उपवास, फिर संकीर्त्तनमें निरन्तर अथक परिश्रम – सायंकाल पू०गुरुदेवकी भिक्षा(शाकाहार)में प्रसाद लेकर मैं इतना अधिक श्रान्त होगया था कि सोच रहा था, जाकर गहरी निद्रामें डूब जाऊँ। आगामी दूसरे दिवस भी तो दधिकर्दमोत्सव सम्पन्न करना था, और उसमें आजकी अपेक्षा भी अधिक उत्साह और श्रमपूर्वक योगदान करना था ही। कल भी इसी प्रकार पुनः उद्दाम संकीर्त्तन भी होना था और पदगायनादि भी सभी पूर्वक्रमसे ही होने थे । ऐसी ही प्रतिवर्षकी परम्परा थी, अस्तु।

मैं शयन करनेका उपक्रम कर ही रहा था कि पू०गुरुदेवका बुलावा आगया। पू०गुरुदेवका आदेश था कि आज निशापर्यन्त उनके साथ मुझे भी जागरण करना है । उनकी ऐसी रोमाञ्चकारी उत्प्रेरणा थी कि जहाँ-जहाँ भी राधाष्टमी महोत्सव मनाया जाता है, इस निशाकालमें प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव स्वयं उस उत्सव-स्थलीका निरीक्षण करने पधारते हैं और जिन्हें इस निशामें भी जाग्रत्, सत्वपरायण एवं भजनरत पाते हैं, उनपर अपनी कृपादृष्टि एवं अनुग्रहकी वर्षा कर जाते हैं ।

पू०गुरुदेवके इस कथनके पश्चात् फिर शयनका तो प्रश्न ही नहीं था, फिर भी अतिशय श्रमसे हुई शारीरिक थकानसे नयनोंमें खुमारी आरही थी । पू०गुरुदेवने मुझे सर्वथा तमोगुणमुक्त रखनेके लिये ऐसा रोचक प्रसंग छेड़ दिया कि मैं पूर्ण समुत्सुक हो उठा । वे मौनव्रती थे, अतः अपनी स्लेटपट्टी पर लिखकर ही सभी वार्त्ता किया करते थे । वे लिखकर कहने लगे–"भैया ! आजकी इस परम पुनीत निशामें मैं तुम्हें महासिद्ध सन्तोंकी कृपाको अपने भीतर अवतरित करनेके ऐसे अतिशय सरल साधन बतलाऊँगा कि यदि तू इन साधनोंको अपनाकर सर्वोच्च कोटिके सन्तोंको अपना आत्म-समर्पण कर दे तो इसी क्षण तेरी पारमार्थिक स्थिति श्रीपोद्दार महाराजके समकक्ष होजाय।"

पू०गुरुदेवकी कहनेकी शैलीने मुझे इतना समुत्सुक कर दिया था कि मैं अतिशय जागरूक हुआ, दत्तचित्त होकर उनकी बात सुनने लगा ।

वे कहने लगे—"देख भैया ! चाहे कितना ही घना अन्धकार हो, घनघोर तमसाच्छन्न निशा हो, किन्तु रविकी प्रथम किरणके संस्पर्श होते ही क्षण भी नहीं लगता, पलक झपकते ही समग्र अन्धकार विनष्ट हो जाता है । अतः बस, तू अपना पूर्ण आत्मसमर्पण किसी भी सच्चे सिद्ध सन्तको कर दे, इसी क्षण तेरे जीवनमें ऐसा रस-संप्लावन होगा कि उस महासिद्ध सन्तसे तेरा एकात्म मिलन हो जायगा और जो वे हैं, जैसे वे हैं, इसी पल तू भी वही और वैसा ही हो जायगा । तुझमें और उन महासिद्ध सन्तमें कहीं, कोई, किसी भी प्रकारका लेश मात्र भी अन्तर नहीं रह पावेगा । "

पू०गुरुदेव कह रहे थे—" भैया ! देवमणि पारसका एक लघु-सा खण्ड मात्र यदि लोहेके विराट-से-विराट आगारसे संस्पर्शित करा दिया जाय, लोहेकी सर्वदेशमें विस्तृत रेललाइनसे भी उसका संस्पर्श हो जाय तो समग्र लोहा एक क्षणमें मूल्यवान् स्वर्णमें परिवर्तित हो सकता है ; उस देवमणि पारसमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि संस्पर्शित होने वाले लोहखण्डको वह अपने समान पारस बना सके । किन्तु सन्त अपनेसे जुड़े पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारीको भी त्रिजगन्मंगलकारी संत बनानेमें पल भर भी विलम्ब नहीं करते और इस प्रकार वे सन्तत्वकी परम्परा निर्माणकर, अनादि, अनन्तकाल तक भगवत्प्रीति की गंगा प्रवाहित करते रहते हैं। इस प्रकार यह सन्तत्वकी धारा इस त्रिलोकीमें अक्षुण्ण, निर्बाध, सतत प्रवाहित रहती है, कभी भी सूख नहीं पाती । "

"भैया ! सच मान लेना, लोक-परलोकके कल्याणके लिये ऐसे सन्तोंके समान परोपकारी कोई नहीं है। जीवके लिये सन्त-मिलन जन्म-जन्मान्तरोंका शुभ फलोदय है । ऐसे महासिद्ध सन्तोंका सेवन, आज्ञापालन ही जीवका सबसे बड़ा सदाचार है । इन सन्तोंकी रुचिपर अपना सर्वस्व बलिदान करना ही जीवकी सबसे बड़ी महत् धर्म-साधना है। इन सन्तोंकी कृपा ही ज्ञान, भक्ति एवं प्रेमानुराग प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है । "

पू० गुरुदेवका वक्तव्य चल ही रहा था कि इतनेमें मैंने देखा कि मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी मन्द-मन्थर गतिसे चलते हुए हमारी ही ओर आ रहे हैं । उनके आगमनसे तो पू०गुरुदेवके रस एवं उत्साहमें

जैसे उच्छलन आ गया ।

श्रीगोस्वामीजी भी निशा-जागरणार्थ ही पू०गुरुदेवके पार्श्वमें आये थे। अब तो पू०गुरुदेवके सम्बोधनका लक्ष्य मैं न होकर मेरे मामाजी श्रीगोस्वामीजी ही हो गये थे ।

पू० गुरुदेवका वक्तव्य अग्रसर हो उठा –"गोस्वामीजी ! अभी मैं महासिद्ध सन्तोंकी महिमा इस बालकको श्रवणगोचर करवा रहा था कि आपका आगमन हो गया। आज इस परम पावन निशा-जागरणके क्षणोंमें मैं आपको सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका महाप्रभुके अमोघ कृपावात्सल्य-प्रवाहके कुछ प्रसंग सुनाऊँगा। ऐसे अनेक अनुभव मुझे हुए हैं, जहाँ इनमें अकर्त्तुम्-सामर्थ्यका प्रकाश हुआ है। श्रीपोद्दार महाराज अब तो महाभाव-सिन्धुमें लहरा रहे हैं, परन्तु जिन दिनों श्रीपोद्दार महाराज विशुद्ध जीव-लीला कर रहे थे, उन दिनों उन्हें किस प्रकार अपनी अमोघ कृपाशक्तिसे सेठजी गोयन्दकाजीने घेरकर परमार्थ-तटपर खड़ा किया और हरहराते ज्ञानरस और भक्तिरसके संप्लावनसे आप्यायित किया, ये सत्य तथ्य आज आपके सम्मुख इसीलिये प्रकाशित कर दे रहा हूँ कि कहीं मेरे अतिरिक्त इनको जाननेवाला एक साक्षी व्यक्ति तो और हो जावे। '

"गोस्वामीजी ! आपको मेरी बात सुनकर समाश्चर्य होगा, किन्तु मेरी बात सौ-टंच खरी है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका प्रभु ज्ञानी संत हैं, किन्तु इनकी ब्रह्मसे एकात्मता जीव-ब्रह्मके अभेदज्ञानके समान अद्वैतपरक नहीं है । यद्यपि मैं इन्हें ज्ञानकी चतुर्थ भूमिकामें प्रतिष्ठित एवं पाँचवीं भूमिकाको संस्पर्श करनेवाला दुर्लभ महात्मा मानता हूँ, परन्तु ये ऐसे प्रेमी सन्त हैं, जो भगवान्‌से लेशात्मक पृथक्‌ता रखते हुए भी उनसे नित्य एकात्म भी हैं। श्रीसेठजीके द्वारा भगवान् नारायणके रसास्वादन और चिन्मय विलासमें क्योंकि स्वसुख भावका लेश भी नहीं है, अतः ये अपने इष्ट भगवान्‌के हाथोंके पूर्णतया खिलौना बने हैं । इसीलिये इनकी भगवान्‌से तात्विक एकात्मता अक्षुण्ण बनी रहती है। भगवान् और सेठजीमें परस्पर एक दूसरेके सुखमें सुखी होनेकी समचित्त सत्ता है, अतः कोई पृथ्‌कता है भी नहीं । इस प्रकार ये भगवान् नारायणमें सने-पगे रहते हैं ।"

"ये महाप्रभु सेठजी शान्तरसके अगाध वारिधि हैं, जैसे ही कोई अधिकारी-अनधिकारी जीव इनके सम्पर्कमें आता है, दृष्टिपात मात्रसे ये अपने

शान्तरस भावके बीज उसमें वपन कर देते हैं । इन सन्तोंमें त्रिगुणात्मक शरीरधारी होनेसे भले ही हमें रक्त प्रवाहित होता दीखे, किन्तु इनके आन्तरिक जीवनमें परमात्मा ही परमात्मा प्रवाहित होता रहता है, इनका किसी भी जीवकी ओर देखना, उसे संस्पर्श करना, उससे बोलना, सम्पूर्ण व्यवहार ही भगवन्मय, भगवन्नियन्त्रित होता है । अतः इनको स्पर्शकर बहनेवाली वायु भी भगवद्बीज-वितरणकारिणी होती है ।"

"हाँ, उस बीजका पल्लवन, उसका कुसुमित होना, साथ ही फलान्वित होना तभी संभव होता है, जब कोई महाभाग्यवान् संबीजित व्यक्ति ऐसे महापुरुषोंको अपना सर्वात्मसमर्पण कर देता है । इस पूर्ण समर्पणमें जितनी भी न्यूनता रहती है, उसके फलस्वरूप ही जीवका प्रथक् व्यक्तित्व उसे माया-जंजालमें उलझाये-फँसाये रखता है ।"

"गोस्वामीजी ! सच्ची बात यही है कि प्रथक् व्यक्तित्वका यह तट-बन्ध ही महासिद्ध सन्तोंके द्वारा निर्बाध, सतत प्रवाहित, चिन्मय रस-सम्प्लावनसे हमें शुष्क, अछूता एवं अस्पृश्य रखे है । यह तटबन्ध ऐसा अभेद्य अवरोधक है, जिसे जीव स्वयं ही मात्र अपनी स्वेच्छा, चाहसे तोड़ सकता है। क्योंकि यह अहम्मूलक तटबन्ध जीवको जैविक स्वाधीनताके रूपमें भगवत्प्रदत्त है। यह अहं जब एवं जिसका, जितना समर्पित होता है, उतनी ही इन सन्तोंकी कृपा-धारा उसे संप्लावित कर पाती है। "

" ऐसा नियम तो हम प्रकृतिमें भी सर्वत्र देखते हैं । हिमालयसे प्रवाहित अनन्त जलधाराएँ उसी भूमिकी ओर प्रवाहित होती हैं, जो नमित है। ऊँची भूमिके एक कणको तो वे संसिक्त भी नहीं कर पातीं । अतः इसे अटल अमोघ नियम ही मान लेना चाहिये कि भगवान्के पथमें अग्रसर होनेवाले साधकके लिये बढ़े हुए अहंकारसे बढ़कर दूसरा कोई प्रबल अवरोध नहीं है। इस भगवत्प्राप्तिरूप साधनामें सिद्ध सन्तोंको आत्मसमर्पण अवश्यंभावी है इसके सिवा इस साधनामें प्रवेशका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। "

"गोस्वामीजी ! मेरी इस बातको निश्चय ही गाँठकी तरह बाँध लीजिये कि भगवत्प्राप्तिकी साधनाका प्रथम सोपान ही यह है कि महासिद्ध सन्तोंका दर्शन प्राप्त हो जाय, फिर किसी भी हेतुसे उनकी कृपा-निलय आत्मीयताके घेरेमें हमारा प्रवेश हो जाय, और तब उनके प्रति सर्वात्मसमर्पणकी प्रेरणा और योग्यता प्राप्त हो जाय। "

"गोस्वामीजी ! आज इस परम पवित्र निशाजागरणमें जब आप मेरे संग हो ही गये हैं, तो आपको मैं पोद्दार महाराजके जीवलीलाके उन प्रारंभिक साधनामय क्षणोंका चिन्तन-मनन कराता हूँ , जब श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका-रूपधारी साक्षात् भगवान् नारायणको उन्होंने अपना आत्मसमर्पण किया था। उस आत्मसमर्पणके कारण श्रीजयदयालजी महाप्रभुमें कृपा-वात्सल्यका ऐसा अथाह प्रवाह उमड़ उठा, जो श्रीपोद्दारजीके अभ्युदयका हेतु हो गया।

"गोस्वामीजी ! सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका-रूप महाप्रभु एक ऐसे मारवाड़ी बनिया संत हैं कि जिन्हें लोग सम्पर्कमें आकर भी ठीक प्रकारसे नहीं पहचान पाते । उनका रहन-सहन, वेषभूषा, मारवाड़ी-मिश्रित ठेठ ग्राम्य बोली – सब कुछ इतना साधारण गृहस्थोचित है कि लोग उन्हें निकटसे देख कर भी मात्र कुशल व्यापारी ही परिलक्षित कर पाते हैं, इन्हें सन्तके रूपमें मान्यता नहीं दे पाते । किन्तु वस्तुतः ये भक्तिमिश्रित ज्ञानके सूर्य हैं । इनपर ऐसी अद्‌भुत भगवत्कृपा है कि यदा-कदा सहज स्वाभाविक ही इनमें अकर्त्तुम् आध्यात्मिक सामर्थ्यका प्रकाश हो जाता है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये जितने त्यागकी आवश्यकता होती है, उससे भी अधिक त्याग इनमें सहज है । "त्यागसे भगवत्प्राप्ति " नामक पुस्तिका इनके आन्तरिक त्यागकी ही प्रकाशिका समझनी चाहिये। इनका अपना न तो कोई काम है, न ही काम्य पद । ये केवल भगवान् नारायणको ही जानते हैं और अपने सहज समर्पण द्वारा सदैव उनके यंत्र बने उनसे ही संचालित होते रहते हैं । यही इनका आन्तरिक जीवन है। इनकी कृपा-सिन्धुके उद्वेलनका मैंने स्वयं अपने जीवनमें अनुभव किया है। इन्होंने अपने प्रथम परिचय और सत्संगमें ही मेरे माया-आवरणका समूल नाश कर दिया था। "

"कोई यह प्रश्न कर सकता है कि श्रीसेठजीके सम्पर्कमें तो सैकड़ों साधक आये हैं और घनश्यामदासजी जालान आदि अनेकों लोगोंने उन्हें पूर्ण जीवन ही सौंप दिया है, फिर वे सभी क्यों नहीं पूर्ण ज्ञानी हो गये, मात्र आप और श्रीपोद्दार महाराज आदि एक-दो व्यक्ति ही क्यों उनकी कृपा-वारिधिमें डूबे, तो इसका यही उत्तर है कि आत्मसमर्पणकी तरतमता ही इसमें मात्र हेतु है । शरीर-समर्पण कर देना एक बात है और आत्मसमर्पण भिन्न बात है । आत्मसमर्पणमें अहं पूर्णतया विगलित होकर जहाँ सन्तमें मिल जाता है , वहाँ मात्र शरीर और जीवन-समर्पणमें अहं ज्यों-का-त्यों बना रहता है । अध्यात्म

वस्तुका संप्रवाह मात्र आत्मसमर्पणमें ही संभव है। इसे पूरी तरह जान लेना चाहिये।"

"श्रीपोद्दार महाराजको अध्यात्म पथप्रदर्शकके रूपमें ये श्रीसेठजी सन् १९१०–१९११ ई०में ही मिल गये थे। वस्तुतः भगवत्कृपा ही सन्तमिलनका प्रारब्ध संरचना करती है। जैसा मैंने श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे सुना है श्रीसेठजीका इन्हीं दिनों कलकत्ते आगमन हुआ था और उनके सत्संगका आयोजन पगैयापट्टीमें पोद्दार महाराजकी दुकानके ठीक सामने ही श्रीहरिबक्शजी साँवलकाकी दुकानपर हुआ था। मात्र उत्सुकतावश पोद्दार महाराज इनके सत्संगमें गये थे। किन्तु प्रथम मिलनमें ही श्रीसेठजीके प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन, दम्भहीन अन्तःकरणने इन्हें बहुत ही प्रभावित कर लिया और इन्होंने उन्हें एक सच्चे सन्तके रूपमें मान्यता दे दी।"

"उन दिनों श्रीपोद्दार महाराजकी भगवान्‌की माँग ही नहीं थी, उनकी रुचि ही सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधियोंमें पूरी उलझी थी। उनका कार्यक्षेत्र ही वैश्य-सभा, हिन्दू-क्लब, हिन्दी-साहित्य-परिषद, कन्या-पाठशालाएँ, मारवाड़ी-रिलीफ-सोसाइटी, कलकत्ता-हिन्दू-महासभा आदि संस्थाएँ थीं। उन दिनों स्वतंत्रता आन्दोलन चल रहा था, और बंगालके उग्रवादी वातावरणमें नवयुवक पोद्दार महाराज-जैसे संवेदनशील व्यक्तिके लिये उससे अपनेको असंपृक्त रखना असंभव था। उस समय उन्हें भगवान्‌की प्राप्तिके स्थानपर यह कार्यशीलता ही समयोचित प्रतीत हो रही थी। अतः ये इसमें पूरे रत थे।"

श्रीसेठजीने श्रीपोद्दार महाराजकी पारमार्थिक मूल भूमिकी उर्वरकताको पहचान लिया, और इनकी पूर्वजन्मकी परिपक्व साधन-सम्पन्नता भी परिलक्षित कर ली। किन्तु फिर भी उन-जैसे अतिशय शक्तिशाली संतको भी इस प्रापंचिक आवरणके कारण श्रीपोद्दार महाराजको पूर्णतया आत्मसात् कर लेनेमें पाँच-छः वर्ष लग गये। सच्चे महासिद्ध सन्तसे मिलन और उनसे हुई आत्मीयताका वस्तुगुण यद्यपि श्रीपोद्दार महाराजको बार-बार भगवद्‌भजनकी प्रेरणा देता था, किन्तु राजनीतिक और सामाजिक कार्योंकी रुचि उधर भटका ही देती थी। अन्ततः भगवत्कृपा और महासिद्ध सन्तका अनुग्रह उनपर क्रियाशील हो उठा। और भगवान् घोर विपत्तिके रूपमें श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख प्रकट हो गये। भगवान् श्रीमद्‌भागवतमें अपने श्रीमुखसे कहते हैं:—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ।।
स यदा वितथोद्योगा निर्विण्णः स्याद्धनेहया
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्।।
तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।।
१०/८८/८–१०।।

"जिस जीवपर मैं कृपा करता हूँ , उसका सब धन धीरे-धीरे हर लेता हूँ । तब उसके बन्धुगण उसे निर्धन और दुःख-पर-दुःख उठाते देख छोड़ देते हैं । फिर जब बार-बार उद्योग करनेपर भी वह धन-संग्रह करनेमें समर्थ नहीं होता, तब धनकी चेष्टासे विरक्त होकर वह मेरे भक्तोंसे मेल करता है। उस समय मैं उसपर कृपा करता हूँ और तब उसे परम सूक्ष्म चिन्मात्र, सत्यस्वरूप, अनन्त ब्रह्मकी प्राप्ति होती है । "

"ठीक, इसी भगवद्वाक्यानुसार श्रीपोद्दार महाराज चतुर्दिक् विपत्तिरूप भगवदनुग्रहसे घिर गये। इनकी पैतृक सम्पत्ति तो शिलांगके भूकम्पमें १८९६ई. में ही नष्ट हो गयी थी। कलकत्तेके व्यापारसे जो कुछ प्राप्त होता था, वह राजनीति, समाजसेवा और सन्त महात्माओंकी सेवामें समर्पित हो जाता था। फिर घरखर्चमें भी दादीजीका उदारस्वभाव, उनकी ब्राह्मणोंकी भक्ति बढ़ोतरी ही करती थी, अतः'दुकानमें निजकी पूँजी थी ही नहीं, मात्र कर्ज था। सन्तोषकी इतनी ही बात थी कि पत्नी परम अनुकूल थी और दादीजी भी सहिष्णु थीं । "

"अब घोर विपत्तिरूप प्रभुकृपाका जब इन्हें साक्षात्कार हुआ तो सरकारने इन्हें राजद्रोहके मुकदमेमें फँसा लिया । क्रान्तिकारी गुप्त समितियोंमें सक्रिय भाग लेनेके कारण पुलिसकी डायरीमें तो इनका नाम था ही , ये क्रान्तिकारियोंके मुकदमोंमें सहयोग करते ही थे, अतः एक दिवस सदल-बल पुलिस इनकी दुकानपर पहुँच गयी और २० जुलाई १९१६ई०को इन्हें राजद्रोहके अपराधमें बन्दी बना लिया गया । अभी इनका विवाह हुए तीन मास भी नहीं हुए थे, घरमें अकेली स्त्रियाँ थीं , कारावासमें कितने दिन रहना होगा, पता नहीं था, घरमें अन्नवस्त्र भी कहाँसे कैसे आवेगा, कर्जदार यदि अपने कर्जकी माँग कर बैठे तो स्त्रियाँ कैसे व्यवस्था करेंगी,आदि चिन्ताओंने इन्हें पूरा आवृत कर लिया। इनका हृदय तड़फड़ाने लगा। चारों ओर अन्धकार ही दिखाई पड़ने

लगा। जब कोई कहीं सहारा नहीं दिखा तो श्री सेठजीका सत्संग याद आया। प्रथम मिलनसे ही श्रीसेठजीके प्रति आत्मीयता तो हो ही गयी थी, उनके सत्संगमें नियमित जाना होता ही था । श्रीसेठजी नाम-माहात्म्यपर अनेकों बार सत्संग करा चुके थे , अतः अशरणशरण भगवान्‌के नामका ही अवलम्ब ग्रहण करना उन्हें अन्तिम उपाय समझमें आया। श्रीपोद्दार महाराजने भगवन्नामकी रट लगा दी। भजन करनेकी देर थी कि शान्तिका आविर्भाव होने लगा। शनैः-शनैः व्याकुलता दूर हो गयी। उनकी पारमार्थिक उन्नतिका सूत्रपात प्रारंभ हो गया।'

श्रीपोद्दार महाराजकी जागतिक मित्रमंडली तो बहुत बड़ी थी । श्रीअरविन्द, श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीविपिनचन्द्र पाल, श्रीचित्तरंजनदास, श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती, श्रीसखाराम गणेश देउस्कर, सभीके साथ तो पोद्दार महाराजका अन्तरंग सम्पर्क था। ये सभी कलकत्तेके उस समयके धुरीण नेता, धनीमानी और समाजमें पूरी प्रतिष्ठा पाये महानुभाव थे। परन्तु विपत्ति पड़नेपर इनमेंसे किसी एकने भी इनके परिवारकी ओर या इनकी ओर झाँका भी नहीं। मानव सोचता है – प्रभावशाली लोगोंकी मिताई मेरे किसी विपत्तिके निवारणमें हेतु होगी, धनी-मानी परिचित मित्र-समुदाय मेरी संपत्तिमें हेतु होगा, परन्तु होता है सर्वथा ही विपरीत। जब घोर विपत्ति आती है तो प्रभावशाली लोग देखते ही नहीं, परिवारके निकटसे निकट, रक्तके सम्बन्धी निकम्मा समझ त्याग देते हैं, लोभनीय वस्तुओंके छिनते ही मनुष्य सभीकी दृष्टिमें हेय, उपेक्षणीय और घृण्य हो जाता है। हाँ ! उस समय उसे सच्ची आत्मीयता ,मिताई, अपनत्व एकमात्र सच्चे सन्त-जगत्‌से ही मिलती है। इस घोर विपत्तिके समय भी श्रीसेठजी जयदयालजी ही ऐसे थे जो अंग्रेज सरकारके भयसे सर्वथा न घबड़ाते हुए श्रीपोद्दार महाराजकी पारिवारिक स्त्रियोंकी सक्रिय एवं सब प्रकारकी सहायता करते रहे। बराबर वे जब-जब कलकत्ते आते उनसे मिलते, उन्हें आत्मीयता, सांत्वना, और यथावश्यक सहयोग देते। श्रीपोद्दार महाराजको श्रीसेठजीने लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकारसे सम्हाला । ''

''श्रीपोद्दार महाराजको सेठजीकी यही अनुपम अनमोल पारलौकिक सहायता मिली कि उनका उस समयका घोर मानसिक विपत्तिपूर्ण जीवन एक कठोर साधनाका उपक्रम हो गया। भगवन्नामकी कृपासे सरकारके द्वारा पूरी

चेष्टा करनेपर भी, ठोस आधार नहीं मिलनेसे राजद्रोहका मुकदमा चलाना संभव नहीं हो पाया। सन्देहके आधारपर सरकार लम्बे समयतक जेलमें भी नहीं रख सकी । अतः भारत-रक्षा-कानूनका सहारा लेकर इन्हें अनिश्चित कालके लिये नजरबन्द करनेका आदेश दे दिया गया। इनको बाँकुड़ासे २४ मील दूर शिमलापाल नामक ग्राममें जानेका आदेश मिला। "

" शिमलापालका जीवन एक कठोर साधनाका सोपान होगया। थोड़े ही दिवसोंमें उनकी वृत्ति ध्येयाकार होने लगी। भगवान्‌के ध्यानमें श्रीपोद्दार महाराजको इतना रस आने लगा कि प्रातः, दुपहरी एवं संध्या, तीन-तीन घण्टे ध्यानमें व्यतीत होने लगे। मात्र जो भी अल्प समय शारीरिक आवश्यक कार्यों – शौच, स्नान, भोजनादिमें लगता, उसे छोड़कर शेष सभी समय नामजप एवं स्वाध्यायमें लगने लगा। इसका फल यह हुआ कि इन्हें आँखें खुली रहते विष्णु भगवान्‌की मूर्तिका ध्यान होने लगा। नामजपमें इतना रस आने लगा कि नामजप छूटना असह्य हो जाता। जीभ सतत बिना प्रयास नामजपमें लगी रहती। आध्यात्म-साधनाको जहाँ इतना दुरूह कहा जाता है कि

जनम जनम मुनि जतन कराहीं ।
अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

वहाँ श्रीपोद्दार महाराज मात्र एक-डेढ़ वर्षके अत्यल्प साधन कालमें ही सन्तप्रवर श्रीसेठजीकी कृपासे उस उत्तम स्थितिमें पहुँच गये कि इन्होंने इस शिमलापालकी नजरबन्दीके कालमें "प्रेम-दर्शन" नामसे देवर्षि नारद-प्रणीत भक्तिसूत्रोंकी अत्युत्कृष्ट टीका लिख ली । इसका प्रकाशन कुछ संशोधनों सहित आगे जाकर गीताप्रेससे हुआ। इस ग्रन्थमें प्रेमरूपा भक्तिकी इनके द्वारा की गयी ऐसी सरल एवं गंभीर व्याख्या है जो कि चिरकालके लिये विश्वके भक्तिमार्गी जीवोंके मननमें पथ-प्रदर्शकका कार्य करेगी । यह टीका इतनी अनमोल भक्तिग्रन्थ हो गयी कि स्वयं श्रीनारदजीने जब श्रीपोद्दार महाराजको सन् १९३६ ई०में दर्शन दिये तो इस पुस्तककी सराहना की। "

"इस नजरबन्दीकी अवधि मात्र इक्कीस मास चली। इस अवधिके पश्चात् इन्हें बंगालसे निष्कासित कर दिया गया। बंगाल त्यागकर ये अपने ग्राम रतनगढ आ गये और कुछ दिन पश्चात् श्रीजमनालालजी बजाजने इन्हें कोई काम-काज करानेके निमित्तसे बम्बई बुला लिया। "

"श्रीपोद्दार महाराजके देश–सेवा और समाज–सेवाके संस्कार अब भी पूरी तरहसे निर्मूल नहीं हुए थे। श्रीजमनालालजी बजाजके बम्बईके संगने इन्हें पुनः उभार दिये। श्रीबजाज उस समय राष्ट्रनेताओंके एक प्रकारसे आश्रयदाता ही थे। अतः श्रीपोद्दार महाराजका इन नेताओंसे सम्बन्ध घनिष्ठतर, घनिष्ठतम होता गया। श्रीगाँधीजीसे तो इनकी आत्मीयता इतनी बढ गयी कि वे जब भी बम्बई आते, पोद्दार महाराजके घर उनकी दादी रामकौरसे मिलने अवश्य आते। श्रीबालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, श्रीविनायक दामोदर सावरकर, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीअब्दुलगफ्फार खॉ, श्रीमुहम्मदअली जिन्ना आदि सभी नेता श्रीपोद्दार महाराजकी सेवासे प्रभावित थे। ये सन् १९१९के कांग्रेस–अधिवेशनमें अमृतसर, सन् १९२० के अधिवेशनमें कलकत्ता, सन् १९२१ ई० के अधिवेशनमें अहमदाबादमें सम्मिलित हुए।"

"गोस्वामीजी ! यह परम सत्य है कि सच्चे महासिद्ध सन्त एवं स्वयं भगवान् यदि किसी जीवको एक बार अपना लेते हैं तो फिर कभी त्यागते नहीं। ऐसा ही संयोग श्रीपोद्दार महाराजके जीवनमें भी घटित हुआ। श्रीपोद्दार महाराज नेताओंकी राजनीतिमें उलझ गये थे , सन्तकृपा तो उनकी प्रतीक्षा कर ही रही थी । इधर जुलाई–अगस्त सन् १९२०में श्रीजमुनालालजी बजाज किसी कार्यवश सेठजीसे मिलने चक्रधरपुर गये तो इन्हें भी उनके साथ जाना पड़ा। इस समय इन्हें उनकी एक सेवा भी करनेका सुअवसर प्राप्त हो गया। जैसा कि पूर्वतः उल्लेख हो चुका है श्रीसेठजी का हिन्दी भाषाज्ञान सर्वथा नगण्य था। वे मारवाड़ी–मिश्रित साधारण हिन्दीमें ही बोलते थे और उनका वैसा ही लेखन भी था । उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजको चक्रधरपुरमें अपनी दो लघु पुस्तकें 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेम भक्तिप्रकाश' भाषासुधार एवं संशोधनके लिये दीं । श्रीसेठजी अपने मूल भावोंको अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रभावशाली शैलीमें अभिव्यक्त देखकर गद्‌गद् हो गये। भगवान् एवं सन्त तो भावके भूखे होते हैं , वे अपनी तनिक–सी सेवाको बहुत करके मानते हैं । गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे अनेक बार कहा है कि इस प्रथम अति अल्प एवं नगण्य–सी सेवासे ही महासिद्ध सन्त सेठजीने मेरी परमार्थ–उन्नतिके भीषण अवरोधात्मक कपाट उन्मुक्त कर दिये। ' "गोस्वामीजी ! यह केवल श्रीपोद्दार महाराजके साथ हुई घटना ही नहीं है, मेरे साथ भी ठीक ऐसी ही घटना घटित हुई। श्रीस्वामी रामसुखदासजी द्वारा प्रेरित मैं श्रीसेठजीसे मिलने सर्वप्रथम बाँकुड़ा

गया था। हम लोगोंके मध्य लगभग चौदह–पन्द्रह दिवसोंतक सत्संग–चर्चा हुई। उस सत्संगके आधारपर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि श्रीमद्भगवद्गीता–सम्बन्धी सेठजीके जो भाव हैं, वैसे अन्यत्र देखनेमें नहीं आते । श्रीसेठजीका यह गहन चिन्तन यदि लिपिबद्ध नहीं हुआ तो जगत् एक दिव्य एवं दुर्लभ निधिसे वंचित रह जायगा। मैंने उस समय श्रीसेठजीसे कहा – "आप गीता–सम्बन्धी अपने विचारोंको लिपिबद्ध करा दें।" अपनी विवशता व्यक्त करते हुए श्रीसेठजीने मुझसे कहा–"कौन करे, और कैसे होगा, मैं तो शुद्ध हिन्दी भी बोल नहीं पाता।"मेरे मनमें भगवत्कृपाप्रेरित अचानक सेवाभाव उदय हो उठा। मैंने इस कार्यके लिये अपनेको प्रस्तुत करते हुए कह दिया –"आप अपने विचार मुझे बतलायें। उनको लिखकर मैं आपको दिखलाता हूँ। यदि आपको ऐसा प्रतीत हो कि मेरे द्वारा ठीक लिखा गया है, तो फिर लेखनकार्य हो । मैंने श्रीसेठजीके एक प्रवचनको शुद्ध हिन्दी भाषामें लिपिबद्ध करके श्रीसेठजीके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। मेरी अभिव्यक्ति, भाषा और विषय–प्रस्तुतिसे श्रीसेठजी बहुत ही प्रसन्न हुए । गोस्वामीजी ! मात्र मेरी इतनी–सी सेवाके फलस्वरूप श्रीसेठजीने मुझे अद्वैत साधनाके अनुसार पूर्ण ब्राह्मी–स्थितिमें प्रतिष्ठित कर दिया। वैसे मेरी साधन–स्थिति पहलेसे ही पूर्ण थी परन्तु मेरी एक ऐसी गुत्थी थी, जो सुलझ नहीं रही थी। श्रीसेठजीने मेरी इस गुत्थीको कुछ–एक क्षणोंमें ही हल कर दिया और मुझे उनका महापुरुषत्व स्वीकार करना पड़ा।"

"गोस्वामीजी ! सच्चे सन्त जिस किसी भी प्राणीको जब स्वीकार कर लेते हैं, तो उसके हृदय और अन्तरात्मामेंसे वे स्फुटित होते हैं । वे अपनी आत्मीयता और स्नेह–स्मृतिकी ऐसी बाढ़ छोड़ते हैं कि ग्रहीत व्यक्ति उनके बिना रह नहीं पाता। वह उनके संगके लिये विवश हो जाता है। "

"श्रीपोद्दार महाराजकी भी यही स्थिति हुई। श्रीसेठजीसे सत्संग सुननेकी अचानक ही उनकी इतनी तीव्र रुचि हो उठी कि उनसे रहा ही नहीं गया और वे सेठजीको बम्बई बुलाकर सत्संग आयोजन करनेकी बात सोचने लगे। उन्होंने अपने सभी मित्रोंसे श्रीसेठजीको पत्र एवं तार दिलाये एवं श्रीसेठजीको बम्बई आनेका निमंत्रण दिया । अन्ततः सत्संग कराये जानेकी योजना सफल हो ही गयी। सन् १९२२ की शरद ऋतुमें श्रीसेठजी अपने बीस–पच्चीस साथियों सहित बम्बई पधारे। श्रीपोद्दार महाराजकी प्रेरणासे सैकड़ों प्रतिष्ठित व्यक्ति स्टेशन आये एवं श्रीसेठजीका भव्य स्वागत हुआ। श्रीसेठजीका लगातार

दस दिनोंतक श्रीसुखानन्दजीकी धर्मशाला और नरनारायणके मन्दिरमें सत्संग हुआ। दस दिनोंतक सत्संगकी धारामें कितने ही व्यक्तियोंने निमज्जन किया। अनवरत इन दस दिवसोंमें श्रीसेठजीकी सारी सार–सँभाल, व्यक्तिशः सभी सेवा श्रीपोद्दार महाराजने स्वयं की। श्रीसेठजीने विदा होते समय प्रतिदिन सत्संग होता रहे, इसका दायित्व श्रीपोद्दार महाराजपर ही डाल दिया।

गोस्वामीजी ! श्रीसेठजीकी इन दस दिनोंकी सेवाका फल श्रीपोद्दार महाराजको श्रीसेठजीने इतना अनमोल दिया कि उनकी साधनामें अतिशय तीव्रता आ गयी। क्योंकि स्वयं श्रीसेठजी प्रधानतया निर्विशेष ब्रह्मवादी थे अतः श्रीपोद्दार महाराजकी भी प्रवृत्ति प्रथमतः निर्विशेष ब्रह्ममें ही रही। श्रीसेठजीको श्रीपोद्दार महाराज द्वारा लिखे पत्र ही इस विषयके प्रमाण हैं।। श्रीपोद्दार महाराजने मुझसे एकान्त सत्संगमें अनेकों बार यह भी कहा है कि श्रीसेठजीकी आज्ञानुकारिता और उनके संकल्पसे ही उनमें सफल सम्पादनकला एवं आध्यात्मिक वक्तृत्वका प्रकाश हुआ ।''

श्रीशिवनारायणजीकी बाड़ीमें श्रीपोद्दार महाराज सत्संग कराने लगे। श्रीपोद्दार महाराज सदैवसे ही आत्मगोपन प्रवृत्तिके थे । उनकी वाणी भी बोलते समय हकलाती थी। परन्तु अपने आध्यात्मिक गुरुके संकेतका उल्लंघन वे कैसे करते। इस सन्त–आज्ञापालनरूप सेवाने श्रीपोद्दार महाराजको भविष्यमें आध्यात्म जगत्का अतिशय गंभीर, सारगर्भित प्रवक्ता बना दिया। वे अति सरल भाषामें कूट–से–कूट आध्यात्मिक गुत्थियोंको सुलझा देते थे। बम्बईमें मात्र मारवाड़ी ही नहीं, मराठी एवं गुजराती भाषाभाषी लोग भी उन्हें सुनने आते। श्रीपोद्दार महाराज बादमें श्रीरामचरितमानस पर भी प्रवचन करने लगे। उनके सत्संगमें प्रतिदिवस ही, यदि वे बम्बई होते, श्रीजमुनालालजी बजाज, श्रीकृष्णदास जाजू आदि भी अवश्य आते थे। उनका सत्संग अतिशय भावपूर्ण होता और सभी श्रोता प्रवचन सुनते समय मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे। अनेक बार देशके सर्वप्रतिष्ठित उच्चकोटिके महात्माओंके सम्मुख भी श्रीपोद्दार महाराजने अपने विचार रखे हैं, इनमें स्वामी अच्युतमुनिजी,श्रीभोलेबाबाजी, श्रीउडियाबाबाजी, श्रीहरिबाबाजी, माँ आनन्दमयी ,श्रीशिवानन्दजी, स्वामी एकरसानन्दजी, रामानुज–सम्प्रदायके परमाचार्य श्रीअनन्ताचार्यजी, वल्लभसम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी, श्रीदीक्षितजी महाराज आदि प्रमुख हैं । श्रीपोद्दार महाराजके आध्यात्मिक विचार सदैव उनके सच्चे आन्तरिक विश्वाससे ओतप्रोत होनेके

कारण सदा सभीके लिये श्रोतव्य और आत्मप्रेरक होते थे।''

''गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजकी श्रीसेठजीके प्रति सदा नारायण–भावमयी ही दृष्टि रही। यद्यपि श्रीसेठजी प्राकृत–शरीरधारी एक मारवाड़ी व्यक्ति ही थे, परन्तु श्रीपोद्दार महाराज इन्हें कृमि, विष्ठा, मल–मूत्रका आगार सर्वथा नहीं देखते थे। श्रीपोद्दार महाराजकी इस विशुद्ध भगवन्मयी दृष्टिका प्रमाण उनका यह पद है जो उन्होंने सन् १९२२ ई.में श्रीसेठजीकी वन्दनाके रूपमें लिखा था :–

जयति देव,जयति देव, जयदयालु देवा ।
परम गुरू, परमपूज्य, परम देव,देवा ।।
सब विधि तव चरन–सरन आइ पर्यौ दासा ।
दीनहीन, अति मलीन तदपि सरन आसा ।।
पातक अपार किन्तु दया को भिखारी ।
दुखित जान राखु सरन पापपुंजहारी ।।
अबलौं के सकल दोष छमा करहु स्वामी।
ऐसौ करु जाते पुनि हौं न कुपथगामी ।।
पात्र हौं, कुपात्र हौं , भले अनधिकारी ।
तदपि हौं तुम्हारौ अब लेहु मोहि उबारी ।।
लेाग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई ।
करिय सत्य सोइ नाथ भव–भ्रम सब खोई ।
मोरि ओर जनि निहारि , देखिय निज तनही ।
हठ करि मोहि राखिअ हरि ! संतत निज पनही ।।
कहौं कहा बार–बार जानहु सब भेवा ।
जयति जयति जयदयालु जयदयालु देवा ।।

यहाँ श्रीपोद्दार महाराजने जो 'हरि' शब्दका प्रयेाग किया है, यह स्पष्ट उनकी अपने गुरु–सन्तके प्रति भगवन्मयी निष्ठाका ही द्योतक है।''

उत्कृष्ट साधककी दृष्टि तो जड़–चेतन समग्र जगतके प्रति भी भगवन्मयी 'वासुदेवःसर्वम्' की होती है, फिर अपने गुरु एवं संतके प्रति कृमि, विष्ठाभाण्डकी दृष्टि रखना तो पूर्ण अधर्म एवं पाप ही है। श्रीपोद्दार महाराजकी इस विशुद्ध, परम पूत दृष्टिका ही परिणाम था कि उनकी इतनी शीघ्र उन्नति हुई। उन्हें पहले नित्य, अखण्ड, निरवयव, निर्विशेष ब्रह्मकी अपरोक्ष अनुभूति होने लगी

पहले नित्य, अखण्ड, निरवयव, निर्विशेष ब्रह्मकी अपरोक्ष अनुभूति होने लगी और साथ-ही-साथ बम्बईके अपने व्यापारी जीवनमें ही उन्हें वनवासी वेषमें श्रीलक्ष्मणजी एवं सीताजी सहित भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराज द्वारा ये सभी बातें मुझे अपने मुखसे कही गयी हैं । उनकी सन् १९२२ ई० में ही ऐसी सहज स्थिति थी कि चलते-चलते हठात् उनका बाह्य-ज्ञान जाता रहता था । नेत्र खुले रहते थे और वे स्थिरदृष्टि रात्रिमें नौ-नौ घण्टे अधिकांशतः समाधिस्थ रहते थे ।"

"सन् १९२१ ई० में भिवानीके भक्त श्रीलक्ष्मीनारायणजी हरिनामप्रचारके लिये बम्बई आये थे । ये नवद्वीपवासी गौड़ीय सन्त श्रीरामकरणजीके अनुगत थे। भगवन्नाम-संकीर्त्तनके प्रचारमें ये मस्त होकर घूम-घूमकर नृत्य करते और अनेकों बार मूर्च्छित हो जाते थे। श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें गौडीय राधा-माधवकी दिव्य महाभावधाराका उन्मेष बीजरूपमें इनके द्वारा ही हुआ, यह एक प्रकारसे कहा जा सकता है। इनके संगसे श्रीपोद्दार महाराजके मन, प्राण, वाणी और शरीर सभी कुछ पूर्ण रूपसे भगवद्रसमें डूब गये । "

"गोस्वामीजी ! मैं आपको अत्यन्त मित्रोचित यही राय दे सकता हूँ कि आपको प्रेमाभक्तिकी उपलब्धि यदि अपेक्षित है, तो श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिद्ध सन्तकी यावज्जीवन सेवा और उन्हें अपना पूर्ण आत्मसमर्पण ही मात्र इसका उपाय है। "

" गोस्वामीजी ! जसीडीहमें श्रीपोद्दार महाराजको भगवान विष्णु अथवा नारायणदेवके जो दर्शन हुए, उसके विषयमें उन्होंने मुझे जो कुछ कहा वह शब्दशः मुझे याद है । उन्होंने मुझे जो कहा था, उसे सुनिये –" जिस जगह श्रीसेठजी विद्यमान थे, उस जगह मुझे खुली आँखों भगवान्‌की चतुर्भुज मूर्त्तिके – जैसे दो व्यक्ति आमने-सामने बैठे हों, उस प्रकार दर्शन होने लगे । मेरे आनन्दका पार नहीं रहा। मैंने थोड़ी देर भगवान्‌के रूपका वर्णन किया। वृत्तियाँ फिर बाहरसे सर्वथा हट गयीं। मैंने भगवान्‌के चरणोंको स्पर्श करनेकी चेष्टा की। किन्तु पहले तो हाथ आगे बढ़े नहीं । जब हाथ आगे बढ़े, और मैं चरणस्पर्शको उद्यत हुआ तो भगवान् अन्तर्धान हो गये और जहाँ साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हो रहे थे , उस जगह श्रीसेठजी दिखने लगे। तब मैंने श्रीसेठजीसे प्रार्थना की कि चरणोंका स्पर्श होना चाहिये। श्रीसेठजीने उत्तर दिया कि ध्यान होना तो तुझे सहज है, पर चरणोंका स्पर्श होना अगलेकी

मर्जीपर है । इतना कहनेके साथ ही अकस्मात् अनन्त प्रकाश हो गया। फिर मुझे उसी तरह दर्शन होने लगे । मैंने आनन्दसे विह्वल होकर भगवान्‌के दाहिने चरणको पकड़ लिया और चरणोंमें बलात्कारसे जा पड़ा । भगवानने मेरे मस्तकपर हाथ रख दिया। तब पीछेसे लोगोंने कहा कि तुम तो श्रीजयदयालजीके चरणोंमें पड़े थे। मेरी दृष्टिमें तो उस जगह भगवान् नारायणके सिवाय और कोई भी नहीं था । श्रीजयदयालजी मेरी दृष्टिमें सर्वथा नहीं थे । केवल नारायणदेव ही थे । इस स्थितिमें मैं बहुत देरतक पड़ा रहा। भगवान् मेरे मस्तकपर हाथ रखे हँसते रहे । फिर भगवानके अन्तर्धान होते ही मेरे चित्तमें व्याकुलता होकर मेरी आँखें खुल गयीं । मैंने देखा – मेरा मस्तक श्रीज्वालाप्रसादजीकी गोदमें था। मेरे अन्दर आनन्दकी इतनी बाढ़ थी कि मेरा बाह्य ज्ञान बार-बार जाता रहा। मैं बड़े आनन्दके साथ चलता तो मुझे प्रत्यक्ष दिखता भगवान् मेरे साथ चल रहे हैं । फिर मुझे भवनमें लाकर बिठा दिया गया। वहाँ भी मुझे भगवानके दर्शन होते रहे। फिर मुझे सेठजीके पास लोग ले गये, वहाँ भी मुझे उन्हींके रूपमें भगवान्‌के दर्शन होते रहे । तब मैंने दण्डवत् की । उसके पश्चात् मुझे बाहरी ज्ञान हुआ।"

"इस वर्णनको श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे सुननेके पश्चात् मेरे चित्तमें यह बात पूर्णतया सुदृढ़ हो गयी कि भगवान् चाहे निर्गुण हों अथवा सगुण, वे महापुरुषोंके स्वयंके ही मात्र निज स्वरूप हैं और महापुरुष एवं भगवान्‌में स्वरूपतः किंचित् भी भेद हो ही नहीं सकता। महापुरुषका देह ही प्राकृत भले दीखे, शेष उसके अन्तःकरणका पूर्ण विलय भगवानमें हो जाता है । और ऐसा भी संभव है कि कुछ महात्मा मात्र हमारी चर्मचक्षुओंसे प्राकृत दीखते रहे हों, वस्तुतः उनका शरीर भी चिन्मय हो । मेरी तो यह निर्विवाद मान्यता है कि तत्व चाहे निर्गुण, निराकार, निर्विशेष हो, चाहे सगुण, साकार, सविशेष, यदि किसीको भी वितरित होता है, तो महापुरुषोंके द्वारा ही। उसको पानेका अन्य कोई उपाय ही नहीं है । इसमें प्राथमिक आवश्यकता इतनी ही है कि बस, एक बार साधक आत्मसमर्पित हो जाय । उसका अहं विगलित होकर महापुरुषके चरणोंमें विलीन होनेको उत्सुक हो उठे , इतना होते ही महासिद्ध सन्तोंका निज स्वरूप – वह चिन्मय परम सरस रसप्रवाह – साधकके कठोर प्राकृत अहंको प्रथमतः चतुर्दिक् घेर लेता है, फिर शनैः-शनैः उसे मसृण करता है, उसमें प्रवेशके लिये छिद्र संघटित करता है और तब उसे ध्वंसकर अपनेमें

लीन कर लेता है। महापुरुषोंके निज स्वरूपसे एक होना ही भगवत्साक्षात्कार है,क्योंकि भगवान् और महापुरुष दो होने संभव ही नहीं हैं। "

"गोस्वामीजी ! सेठजी जयदयालजी गोयन्दका ऐसे ही सन्त हैं, जिनमें त्याग एवं समर्पणकी पूर्णता है । कोई लौकिक भाव उनकी आन्तरिक प्रीतिधाराको अवरुद्ध कर ही नहीं सकता। श्रीपोद्दार महाराजको जब उन्होंने भगवद्दर्शन कराये, उस समय वे रुग्ण थे। उनके चारों ओर जो वैश्य-समुदाय है, वह भी बहुत ही धन एवं विषयलुब्ध है। परन्तु उनमें भगवद्रुचिरूप गीताके प्रचारकार्यकी ऐसी अदम्य तेजस्वी वृत्ति है , जिसे तनके रोग-शोक, अभाव-व्याधि, बहु भोगजनित सुख-दुखोंका प्राबल्य लेशमात्र भी प्रभावित नहीं कर पाता। उनका चित्त भगवत्प्रेमका पारावार है। उनमें भगवत्प्रेम एवं त्यागकी अनुपम लहरें अविराम उच्छलित होती रहती हैं । "

"श्री सेठजीका मत है कि सगुण-साकार भगवानके दर्शनके पश्चात् तत्वज्ञान तत्क्षण ही होना चाहिये। वे तत्वज्ञानको साध्य एवं भगवद्दर्शनको साधन मानते हैं, परन्तु श्रीपोद्दार महाराजको ठीक इसके विपरीत प्रथमतः तत्वज्ञान और तब भगवद्दर्शन हुए। उन्हें ऐसे ही भगवानकी कृपा तथा अनुभूति हुई जो ब्रह्मतत्वकी प्रतिष्ठा हैं। अतः चाहे उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए हों, चाहे विष्णु अथवा नारायणदेवके और आगे जाकर चाहे भगवान् राधा-कृष्णके परम चिन्मय लीला-विहारके, किन्तु उन्हें भगवान्ने अपने उस सगुण साकार परमतत्वका अनुभव कराया, जो ज्ञानोत्तर है । ब्रह्मज्ञानके पश्चात् महाराज जनक कहते हैं – **"बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा"**– श्रीपोद्दार महाराज उस अप्राकृत सगुण-साकार भगवत्तत्वके कृपाभाजन रहे । "

"इसे पुनः ठीकसे समझ लें – सगुण-साकार भगवत्तत्व भी अधिकारी-भेदसे दो प्रकारके साधकोंके सम्मुख प्रत्यक्ष होता है । एक मुक्तिकामी भक्त साधक होते हैं और दूसरे प्रीतिरसके लोलुप भक्त साधक भी होते हैं। मुक्तिकामी भक्त साधकोंको क्योंकि प्रकृतिके बन्धनसे मुक्ति चाहिये, अतः उन्हें उन्हीं भगवान्के दर्शन होते हैं, जिनके अवतारी त्रिदेवोंमेंसे एक भगवान् नारायणदेव हैं । जैसे पृथ्वी जब आसुरी भावोंके भारसे मुक्तिकामिनी हुई तो वह त्रिदेवोंमेंसे एक, श्रीब्रह्मदेवके पास गयी और तब श्रीब्रह्माजी उसे लेकर त्रिदेवोंमेंसे ही एक – भगवान् नारायणदेवके पास पहुँचे। ये विराट पुरुष नारायणदेव शेषशायी भगवान हैं । अनेक कल्पोंमें ये शेषशायी नारायणदेव ही

अपने अंशसे श्रीराम एवं कृष्णका भी अवतार ले लेते हैं। उस समय ये रामकृष्णादि अवतार भी मात्र असुरसंहारका कार्य कर विदा हो जाते हैं। परन्तु कभी-कभी ऐसे साधक भी इस विश्वसृष्टिमें भगवानकी कृपासे जन्म ले लेते हैं, जो मुक्तिकामी न होकर विशुद्धतम भगवत्प्रीतिरसके पिपासु होते हैं । इन विशुद्ध अप्राकृत चिन्मय भगवत्प्रीतिरसके पिपासु साधकोंके लिये उन अप्राकृत गुण और अप्राकृत चिन्मय आकारधारी विशुद्ध प्रीतिरसके उत्स एकमात्र भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनको ही अवतरित होना पड़ता है । ये ब्रजेन्द्रनन्दन पूर्ण, पूर्णतम , अखिल रसामृतमूर्ति हैं। यह प्रेमरस इन ब्रजेन्द्रनन्दन और उनकी प्राणप्रिया भानुराजदुहिता श्रीराधाका ही निजस्व है। यह विलक्षण प्रेमरस स्वरूपगत तात्विक भेद नहीं होनेपर भी निर्विशेष परब्रह्म परमात्मामें अनभिव्यक्त है। अन्तर्यामी परमात्मामें यद्यपि इसका आंशिक विकास है, फिर भी साक्षीरूपमें उदासीनताकी लीलामें प्रवृत्त रहनेके कारण वे भी इस रसके रसिक नहीं ही कहे जा सकते। इसी प्रकार श्रीराम, नृसिंहादि अन्यान्य भगवद्रूपोंमें भी इसकी अनभिव्यक्ति है । एकमात्र प्रेमविलासरूप श्रीराधाकृष्णकी लीला ही इस विशुद्ध प्रेमरसकी स्वरूपभूता है । यह प्रेमरस परस्पर इन दोनों प्रिया-प्रियतम दम्पतीमें ही अभिव्यक्त होता है। यह मात्र उनका ही स्वरूप विलास है, निज स्वरूप है।''

''गोस्वामीजी ! मैं यद्यपि पूर्ण ,परिपूर्णतम ब्रह्मतत्वके ज्ञानी होनेके कारण श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका रूप महाप्रभु नारायणदेवकी अनन्त वन्दना करता हूँ , फिर भी यह सत्य है कि यह विशुद्ध मधुर प्रेमरस उनमें स्वयंमें भी अनभिव्यक्त है। वे अपनेको पूर्ण समझते हैं, अतः कभी-कभी गोपीप्रेमपर लिख-बोल भी जाते हैं परन्तु उनका इस प्रेमतत्वपर लिखना-बोलना उसी प्रकार है जैसे कोई राजनेता, सरकारी मंत्री श्रीमद्भगवद्गीता या ब्रह्मज्ञान पर प्रवचन करे। यह विशुद्ध मधुर प्रेमरस तो, सच्ची बात यह है कि व्रजभूमिमें भी गोपराज नन्दबाबा, यशोदा मैया, श्रीवृषभानुजी एवं कीर्तिदा मैया, साथ ही सखावर्गके अनेक पात्रोंसे भी अज्ञात है। यह विशुद्ध प्रीतिरस तो भगवान् श्रीराधाकृष्ण और भगवती श्रीराधाजीकी कायव्यूहरूपा कुछ सखी-मंजरियों तक ही सीमित है, मात्र उनमें ही अभिव्यक्त है । सनकादि ऋषि भी इससे अछूते हैं। उनका भी इस रसमें प्रवेश नहीं , स्वयं श्रीराम, नृसिंहादि भगवत्तत्व भी इसे संस्पर्श नहीं कर पाते ।''

"क्योंकि श्रीपोद्दार महाराज इस विशुद्ध प्रीति समुद्रमें विहरें – यह पूर्व निर्धारित नियति थी, अतः वे अपने साधनकालके प्रारम्भमें ही इन्हीं ज्ञानोत्तर अप्राकृत विशुद्ध ब्रह्म-विमोहन सगुण साकार प्रेमविग्रह श्रीराधामाधवके कृपाभाजन हुए। श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख तो प्रेमविग्रह श्रीकृष्ण ही सन्धिनी शक्तिके विलासरूपमें परतत्व ब्रह्म बनकर आये । यह ब्रह्म परतत्व इन श्रीकृष्णचन्द्रकी नखचन्द्रोंकी चिज्ज्योति मात्र ही तो है। इसी प्रकार ये सर्वभवनसमर्थ श्रीकृष्ण ही इनके सम्मुख त्रिदेवोंमेंसे एक, श्रीनारायणदेव बन गये थे। ये ही कौशल्यानन्दन राम बनकर इनको अपनी दर्शनकृपासे परिस्नात करने प्रकट हो गये। क्योंकि इन सभी रूपोंमें प्रेमरसरसिक भगवान् श्रीकृष्ण ही इनके सम्मुख अभिव्यक्त हुए थे अतः इस प्राकट्यकी क्रमशः यही परिपाटी रही कि पहले भगवान्‌के चरणनखकी चिज्ज्योति परब्रह्म परमात्मा श्रीपोद्दार महाराजके हृदयधामको आलोकित करे, और तब इन सभी अंशावतारोंके द्वारा इनका हृदय भक्तिभूमि बने और तब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण इनके हृदय-वृन्दावनमें विहरें। "

"गोस्वामीजी ! कोई यह पूछ सकता है श्रीपोद्दार महाराजमें ऐसी क्या विशेषता थी जिससे उनमें इन सर्वोच्च प्रेमधाम भगवान् श्रीराधामाधवका अवतरण एवं कृपा-प्रकाश हुआ। इसका उत्तर वैसे तो कुछ भी नहीं हो सकता, क्योंकि भगवत्कृपा साधन-साध्य अथवा योग्यता-सापेक्ष नहीं है, हेतुरहित है, किन्तु यदि पात्रताकी बातका अन्वेषण किया ही जाय तो इस मार्गमें यही कहा जा सकता है कि श्रीपोद्दार महाराजमें भगवदिच्छाकी पूर्ति एवं तत्सुखसुखियाभावका प्राधान्य एवं प्रबल वेग इतना अधिक था कि भगवल्लीला महासिन्धुने उन्हें पूर्णतया रसाप्लावित कर दिया। उनके मनका निर्माण ही ऐसा था कि उसमें भगवद्रुचिके अतिरिक्त अपनी कोई भी स्वतंत्र रुचि , स्वतंत्र इच्छा साधन-कालमें भी नहीं रही थी । वे जब भी साधनामें प्रवृत्त हुए तो वे भगवान्‌की महदिच्छासे एकमेक हो गये। उनका भगवान्‌की रुचिसे प्रथक् कोई अपना स्वयंका व्यक्तित्वमूलक तटबन्ध था ही नहीं। अतः भगवान् श्रीराधा-माधवका अप्राकृत सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य एवं लीला-महासिन्धु उनके चित्तमें जैसे ही संस्पर्शित हुआ, होते ही ऐसा उमड़ा कि उसने उन्हें पूरा रस-आप्यायित कर दिया। "

"पू. पोद्दार महाराजका हृदय स्वभावतः ही ऐसा था कि वे सेवाको ही साधनरूपा और उसे ही सिद्धिरूपा मानते थे । श्रीसेठजी जयदयालजी

उसकी गूँज नहींके बराबर थी। हारमोनियमकी भी धौंकनी फट गयी थी, वह भी पूरी मरम्मत माँग रहा था। झाँझोंमें भी न तो गद्दे थे और उनकी डोरी भी बदलनी आवश्यक थी । कांस्य झालरका हत्था लापता था। उसे लटकानेका तार भी खण्डित था। मैंने तत्क्षण ही साइकलके कैयियरमें हारमोनियम बाँधा, उसके हैण्डिलमें ढोलक लटकायी, झोलेमें झालर, झाँझें भरीं और सभीकी मरम्मत कराने बाजारकी ओर चल पड़ा। समयके पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न करके ही मुझे लौटना था!

भगवत्कृपावश सभी निर्माणकार्य समयपर हो गये। हारमोनियम एवं ढोलक कुछ समय माँग रहे थे, अतः मैंने इनकी एवजमें मरम्मत करनेवालेकी दुकानसे दूसरा अच्छा हारमोनियम और ढोलक ले लिये। इस प्रकार संकीर्त्तनकी पूरी तैयारी करके मैं समयसे पाँच–दस मिनट पूर्व ही गीतावाटिका पहुँच पाया।

मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जबकि मैंने देखा कि वहाँ संकीर्त्तन समारंभ करनेकी सभी तैयारी पूरी हो गयी है । लोग मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। भगवान्‌की पूजाके लिये मेरे मामाजी श्रीचिम्मनलालजी भी उपस्थित हैं। चन्दन, केसर आदि घिसे हुए तथा सभी पदार्थ यथास्थान पात्रोंमें रखे हैं । दीपक भी प्रज्वलित है। निर्मल धूपकी सुगन्ध सर्वत्र परिव्याप्त है। गीताप्रेससे पहलवान दरबान ढोलक बजानेके लिये फोन करके बुलाया जा चुका है। संकीर्त्तनकी सभी तैयारी भगवत्कृपासे मेरे आगमनके पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी।

भगवद्विग्रहका यथासमय पंचोपचार विधिसे मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीने पूजन किया और "अच्युतं केशवं रामनारायणं,कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् " श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित नामावलिसे यथासमय संकीर्त्तन प्रारंभ होगया।

विद्युत्‌की भाँति यह समाचार वाटिका एवं आसपासके सभी परिजनोंके घरोंतक पहुँच गया था कि उन सबके प्राणप्यारे जीवनसर्वस्व भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये संकीर्त्तन प्रारंभ होगया है। यह समय गृहस्थ स्त्रियोंके लिये भोजन–निर्माणका रहता था, परन्तु सभी स्वजन लोग सुविधा–असुविधाका बिना ध्यान किये एकत्र होते गये। थोड़े ही समयमें मैंने देखा, संकीर्त्तन करनेवालोंकी संख्या शताधिक हो चुकी थी।

मैं आश्चर्य कर रहा था कि वाटिका–निवासियोंमें इतना उत्साह कैसे समाया हुआ है। सभी संकीर्त्तन करनेवाले ठीक ताल–सुरमें लय बाँधकर

है, उससे इन सन्तोंकी सेवा करके इन्हें अपने अन्तःकरणमें पूरा भरें । यदि यह हमने कर लिया तो हमारा जीवन स्वतः ही इनके वस्तुगुणसे जुड़ जायगा। और इन संतोंका जो वस्तुगुण है वह हमें आप्यायित करनेमें फिर एक क्षणका भी विलम्ब नहीं करेगा।"

"गोस्वामीजी। जब नदीमें बाढ़ आती है तो मात्र तटवर्ती ग्राम ही डूबते हैं, परन्तु यदि समुद्र उफन उठे तो फिर क्या बचेगा, कुछ भी नहीं । हम सभी राधामाधव-प्रीतिरस-समुद्रसे अभी इसी एक क्षणमें ही एकमेक हो सकते हैं, यदि हम अपना पूर्ण आत्मसमर्पण किसी भी सिद्ध सन्तको करदें।"

सात्विक शौर्य

दूसरा अध्याय

बात सन् १९४८ ई० की है। महात्मा गाँधीकी हत्या हो चुकी थी। भारत सरकारने निर्दोष हिन्दू-मतावलम्बी नेताओंको भी इस हत्याकाण्डमें फाँसनेकी कुत्सित नीति अपना ली थी। गोरखनाथ-पीठके महन्त श्रीदिग्विजयनाथजी गिरफ्तार कर लिये गये थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, हिन्दू महासभा आदि संस्थाओंपर निषेधाज्ञा लग गयी थी। गीताप्रेस, 'कल्याण' पत्रका प्रकाशन भी रोक दिया जाय, इसके राजनैतिक प्रयास चल रहे थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सरसंघचालक गोलवलकरजी गिरफ्तार थे ही। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघने अपनेको निर्दोष स्थापित करने एवं अपनी संस्थापर निषेधाज्ञा हटानेके लिये सत्याग्रह-आन्दोलन छेड़ रखा था। प्रतिदिन हजारों स्वयंसेवक जेल भर रहे थे । जेलोंमें इतने व्यक्ति गये थे कि स्थानका अभाव हो गया था। सभी जेलें पूरी भरी थीं। जगह-जगह संघके अल्पवयस्क किशोर स्वयंसेवक संघका भगवाध्वज लगाकर शाखायें लगाते थे और राष्ट्रभक्तिके भावपूर्ण गीत गाते थे। घुड़सवार पुलिस आती थी और निहत्थे बालकोंपर घोड़े चढा देती थी । अनेक स्थानोंपर बेतोंसे बच्चोंको पीटा जाता था।

उस दिवस श्रीपोद्दार महाराजसे आशीर्वाद लेकर स्वयंसेवकोंका एक विशाल जत्था सत्याग्रह करने जा रहा था। इस सर्वदेशव्यापी सत्याग्रहमें सभी प्रमुख संचालक श्रीपोद्दार महाराजके प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते थे। स्वयं श्रीगोलवलकरजी भी इनसे प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषयोंमें परामर्श लेते थे।

संघके प्रान्तीय एकत्रीकरणों, सम्मेलनों और वार्षिक उत्सवोंमें श्रीपोद्दार महाराजको अध्यक्ष नियुक्त किया जाता था। क्योंकि श्रीपोद्दार महाराजका स्वास्थ्य इन दिनों इस योग्य नहीं था कि वे सत्याग्रही स्वयंसेवकोंकी इस विराट् त्रिवेणीको स्वयं जाकर आशीर्वाद देते, सत्याग्रही उनके द्वारपर चले आये थे। पूर्ण अनुशासित स्वयंसेवक अपने गणवेशमें खड़े प्रार्थना गा रहे थे। किसी अप्रिय घटनासे पोद्दार महाराजको बचानेके लिये पू. गुरुदेवने उस दिवस आशीर्वाद देने जानेसे उन्हें रोककर उनसे यह अनुमति ले ली थी कि उनके स्थानपर स्वयंसेवकोंको सत्याग्रहकी विदाई वे एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी स्वयं दे देंगे। गीतावाटिकाका फाटक भीतरसे बन्द था, स्वयंसेवक बाहर सड़कपर शाखा लगा रहे थे। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी बाहर आकर सभी स्वयंसेवकोंको रोलीका तिलक लगा चुके थे। स्वयंसेवक अपने गैरिकध्वजको प्रणाम करते हुए प्रार्थना गा रहे थेः—

"नमस्ते सदावत्सले मातृभूमे"

प्रार्थना प्रारंभ हुई ही थी कि पुलिस घोड़ोंमें चढी आ गयी। छोटे-छोटे किशोर एवं बाल स्वयंसेवकोंकी पंक्तिबद्ध टुकड़ीको यह पुलिसदल निर्ममतापूर्वक कुचलने लगा। मैं पू.गुरुदेवके पास हीं खड़ा था। पुलिसदल स्वयंसेवकोंको छिन्न-भिन्न करनेपर उतारू था। उन्होंने उन्हें भगा देनेके लिये बेंत चलाना भी प्रारंभ कर दिया था। जैसे ही एक बाल स्वयंसेवककी पीठपर बेंतका प्रहार बरसा कि सभी स्वयंसेवक जोरसे **'भारतमाताकी जय'** का नारा लगा उठे। मैंने अचानक देखा कि पू.गुरुदेव दौड़कर पुलिसके अफसरके घोड़ेकी लगाम पकड़ चुके थे। उनके नेत्रोंमें सात्विक शौर्यकी जैसे ज्वाला फूट रही थी। उन्होंने उस पुलिस अफसरके घोड़ेको इतना जोरसे पकड़कर धक्का दिया कि वह घोड़ा आठ-दस पैर पीछे हट गया। पू. गुरुदेवने अचानक अपने वस्त्रोंको अनावृत करके नंगी पीठ करके उस अफसरसे जोरसे कहा – "जितने हण्टर बरसाना चाहो, बरसाओ मेरी पीठपर। तुम इस वर्दीके मोहमें कितने निरंकुश और निर्मम हो सकते हो, मैं देखता हूँ। करो अत्याचार मुझपर। इन भोलेभाले, देशभक्तिसे भरे गीत गाते हुए, निहत्थे छोटे-छोटे शिशुओंपर अपना शौर्य दिखा रहे हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती ? " इधर तो उस पुलिस अफसरसे पू. गुरुदेव उलझे थे, उधर मैंने देखा गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी भी सभी स्वयंसेवकोंके आगे खड़े हैं और घोड़ोंकी टापोंको अपनी छातीपर झेलनेको आतुर हैं।

मैं सचकित देख रहा था। क्या अभिनव चैतन्य पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा काजी-उद्धारलीलाकी पुनरावृत्ति करने जा रहे हैं ? ठीक वही सात्विक शौर्य तो उनके नेत्रोंसे प्रज्ज्वलित तेजपुञ्जके रूपमें व्यक्त हो रहा था, जो महाप्रभु चैतन्यदेवमें आजके पाँच सौ वर्ष पूर्व व्यक्त हुआ था। उस दिवस यवन हरिदास हरिनाम-संकीर्तन करते हुए काजीके एवं उसके सहयोगियोंके हाथों बेंतप्रहार सह रहे थे, और आज ये बाल स्वयंसेवक काली टोपी, खाकी निकर और श्वेत कमीज पहने **'भारत माताकी जय'** एवं **'वन्दे मातरम् '** का उद्घोष करते भारतीय पुलिससे निर्मम बेंतप्रहार सहन कर रहे थे। भारत देशमें स्वतंत्र भारतकी पुलिसद्वारा **'भारत माताकी जय'** का उद्घोष करनेवाले और **'वन्दे मातरम्'** का नारा लगानेवाले राष्ट्रभक्त निर्दोष बालकोंपर जिनकी सुदृढ भुजायें राष्ट्रके पुरातन अदम्य शौर्यकी प्रतीक गैरिक ध्वजा धारण किये थीं – यह निर्मम बेंतप्रहार एक गैरिकवस्त्रधारी सदय सन्यासी भला कैसे सह पाता? पू. गुरुदेवने उस घुड़सवार पुलिस अफसरके घोड़ेकी रास पकड़ली थी। पू. गुरुदेव कहीं घुड़सवारद्वारा आहत नहीं कर दिये जावें , इस आशंकासे ग्रस्त मैं गुरुदेवकी ओर चीत्कार करता दौड़ पड़ा था। किन्तु मैं पू. गुरुदेवतक पहुँचूँ तबतक तो घुड़सवार पुलिस अफसर घोड़ेसे उतर गया था। उसने अपने सिर पर धारण की हुई पुलिस टोपी उतारकर अपनी वरदीके बटन उन्मुक्त कर दिये थे और क्षीणकाय सन्यासीके तेजस्वी शौर्य-प्रदर्शनसे हतप्रभ हुआ उनके चरणस्पर्श करनेको झुक गया था। बलिष्ठ घोड़ा कोई पशु-आचरण न कर बैठे, पुलिस अफसरके सहयोगीने उस घोड़ेकी रास पकड़ ली थी। अफसरने पू. गुरुदेवके चरण छूकर अति विनम्रतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार की। थोड़ी ही देरमें एक पुलिस वान (छोटी बस) आयी और अधिकांश स्वयंसेवकोंको उसमें भरकर जेलकी ओर ले गयी। मैं सचकित देख रहा था – पशुबलपर पू. गुरुदेवका सात्विक आत्मबल किस प्रकार क्षणोंमें ही विजयी हो उठा था।

———————

भगवन्नाम-संकीर्तनसे समग्र विपत्तियोंका निरसन

तीसरा अध्याय

सन् १९४८ ई.के फरवरी मासकी बात है। मैं गीतावाटिकामें वैसे ही इधर-उधर टहल रहा था। अचानक मैंने देखा एक मोटरगाड़ी बगीचेमें (श्रीपोद्दार महाराजके निवासमें) प्रवेश कर रही है। गाड़ीमें लाल पट्टीपर उत्तरप्रदेश सरकारका राज्यचिह्न अंकित था। इसका स्पष्ट अर्थ था कि गाड़ी किसी राज्य सरकारके मंत्री महोदयकी है।

स्वाभाविक उन सम्मान्य अतिथिका स्वागत करना मेरा धर्म ही था। अतः मैंने उस गाड़ीके दरवाजेकी ओर कदम बढ़ाये। उस राज्य सरकारकी गाड़ीमें किसी मंत्री महोदयके व्यक्तिगत-सचिव थे और उन्होंने मुझसे श्रीपोद्दार महाराजके सम्बन्धमें पूछा। मैं उन सचिव महोदयको सीधे पोद्दार महाराजके सम्पादकीय कक्षमें लेगया। श्रीपोद्दार महाराज नयन-मूँदे मानो किसी दूसरे ही लोकमें चले गये हों, शान्त बैठे थे। उनकी लेखन-चौकीमें एक लेख पड़ा था जिसकी अग्रिम पंक्तिपर उनकी कलम स्थिर थी। उस लेखपर स्थिर कलम लिये उनके हाथकी मुद्रा यह स्पष्ट प्रकट कर रही थी कि उन्होंने उस लेखकी मात्र ऊपरी पंक्ति पढी है और वे उस पंक्तिके पढने मात्रसे उसे संशोधित करना तो सर्वथा विस्मृत कर गये हैं एवं उद्दीपित हुए किसी अन्य अलौकिक देशमें ध्यानावस्थामें पहुँच गये हैं। मैंने उन सज्जनको पूर्ण आदरसहित उस कक्षमें बैठाया और उनके लिये जल एवं कुछ जलपानकी व्यवस्था करने चला गया।

वे सज्जन तबतक श्रीपोद्दार महाराजकी वह ध्यानावस्थित सहज आनन्दमयी मुखमुद्रा देखते रहे। मैं जब उनके पास जलपान एवं जलकी ग्लास लेकर पहुँचा तबतक तो उन सज्जनने उस श्लोकको पढ़ लिया था, जिसे संशुद्ध करनेके लिये पोद्दार महाराज प्रयत्नरत थे, किन्तु उस श्लोकके प्रथम अक्षरके पढते ही वे किसी अलौकिक भावदेशकी यात्रापर निकल चले थे। उनके नयन मुँद गये थे, उनके नयनोंने इस प्राकृत जगत्के अति मलिन स्वरूपसे विरक्ति ले ली थी और वे अपने इष्ट प्राणपति प्रियतमकी रूपसुधाका

पान करनेमें तन्मय हो गये थे ।

समागत अतिथि स्वयं संस्कृतके एवं साथ ही श्रीमद्भागवतके भी अवश्यमेव पण्डित थे, अतः उन्हें वह श्लोक जो उस लेखमें लिखा था , पूरा याद था। वे मेरे द्वारा प्रदत्त जलपान करते-करते उसे ही उच्चारण कर रहे थे। लेखमें ये ही तीन पंक्तियाँ सर्वोपरि लिखी थीं :–

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन्
अप्यासीद् विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ।।
अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः ।
जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतंगवत् ।।
अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।
गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ।।

श्रीमद्भा०१०।११।५५–५७।।

" अहो ! कितने समाश्चर्यकी बात है ! अबतक इस बालकके लिये मृत्युके कारण तो बहुतसे उपस्थित हुए, परन्तु हुआ यह कि जो भी इसका अनिष्ट करने आये, उन्हींका अनिष्ट होगया। "– श्रीपोद्दार महाराजने इतनी पंक्ति ही पढ़ी थी, और उनके हाथकी प्रूफ देखनेके उद्देश्यसे उठायी कलम यहीं आकर ज्यों-की-त्यों स्थिर हो गयी थी, उनके नयन मुँद गये थे, वे तन्मयताकी इस गंभीर दशामें प्रविष्ट हो गये थे ।

वे सचिव जो आये थे, श्रीपोद्दारजीकी दशा देख-देखकर आश्चर्यमें स्तब्ध थे। उन्होंने मुझसे धीरेसे पूछा – क्या भला ऐसे भी सन्त संसारमें हैं ? मैं उन्हें क्या उत्तर देता। धीरेसे इतना ही कह पाया, आप परम भाग्यवान हैं जो आज इन्हें इस दशामें देख सके, अन्यथा इनके बाह्य प्रकट गृहस्थरूपको देखकर तो आप इन्हें मात्र साधारण अच्छा लोकोपकारी मानव ही मानते।

हम लोगोंद्वारा मन्द-मन्द स्वरसे की जानेवाली वार्त्तासे कुछ ही काल पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजका ध्यान किंचित् खण्डित हुआ। ज्योंही उनके नेत्र उन्मीलित हुए, उन समागत सचिव महोदयने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। अभी भी उनकी ध्यान-दशा पूरी निवृत्त नहीं हो पायी थी। उन्हें वे सन्देशवाहक सचिव एवं स्वयं मैं भी उनके आराध्य श्रीकृष्णके रूपमें ही दीख रहे थे। अतः उन्होंने अतिशय विनम्रतापूर्वक हम दोनोंको ही भूमिपर सिर टेककर नमन किया। वे सन्देशवाहक तो उनकी इस क्रियापर गदगदा गये थे,

परन्तु मैंने उन्हें समझाया कि अभी पोद्दार महाराज पूरे होशमें नहीं हैं, उन्हें अभी हम सभीमें अपने इष्टकी ही स्फूर्ति हो रही है। अतः चुपचाप शान्त रहिये। श्रीपोद्दार महाराजके नेत्र पुनः निमीलित हो गये थे । शनैः-शनैः उन्हें होश आया। इसबार पूरे नेत्र खोलकर वे हमें देखकर मुसकाये। वे समागत सन्देशवाहकको पहचान गये थे। उन्होंने उन मंत्री महोदयकी कुशल-क्षेम पूछी और सन्देशवाहक महोदयसे उनका पत्र लेकर पढ़ने लगे। ज्योंही पत्रकी दो-चार पंक्ति ही वे पढ़ पाये कि उनके नेत्रोंमें एक साथ भीति, ग्लानि, उत्कण्ठा एवं अनिष्टाशंकाकी छाया झलमल कर उठी थी। उन्होंने एक बार पुनः पूरा पत्र पढ़ा और थोड़े संवरित होकर मंत्री महोदयके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उन सचिव महोदयको भोजनादि करनेका आग्रह किया। सचिव महोदय जलपान तो कर ही चुके थे, उन्हें अन्यत्र कहीं और कार्य भी करने थे, अतः वे शीघ्र विदा लेना चाहते थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पोद्दार महाराज भी उन महोदयको अब विदा ही देना चाह रहे हैं । अतः उन्होंने मुझसे उन्हें गाड़ीतक छोड़ आनेका आग्रह कर दिया। मैं उन्हें गाड़ीतक छोड़ आया। उनके गमनका समाचार देते ही उन्होंने मुझसे पू.राधाबाबा एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको बुला लानेकी बात कही। मैं इन दोनोंको सूचना देने चला गया। मैं समझ गया था कि अब कोई गोपनीय मंत्रणा होनी संभव है , अतः मुझे पुनः उनके कक्षमें नहीं ही जाना चाहिये।

श्रीगोस्वामीजी द्वारा बादमें मुझे पता चला कि "भारत सरकार महात्मा गाँधी-हत्याकाण्डमें श्रीपोद्दारजी एवं श्रीबजरंगलालजीको षड़यन्त्रकारी मानकर गिरफ्तार करना चाह रही है। श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठिया,जो गीताप्रेसके मैनेजर थे, उन दिनों हिन्दू महासभाके भी उच्च पदाधिकारी थे। गीताप्रेसको भी जब्त करके धार्मिक 'कल्याण' मासिक पत्रको श्रीविनोबाजी भावेके विचारोंका प्रतिनिधि पत्र बना दिया जाय – ऐसी सरकारकी भीतरी इच्छा है । यह सब कार्यवाही सीधे प्रधानमंत्री कार्यालयसे संचालित हो रही है एवं तत्कालीन गोरखपुर-कलक्टर जो अन्य धर्मावलम्बी है, इस प्रकारके आदेश सीधे दिल्लीसे प्राप्त कर रहा है। इस सब कार्य-योजनामें उत्तरप्रदेश सरकारसे भी गोपनीयता बरती जा रही है" – इसी आशयका परमं गोपनीय पत्र लेकर उत्तरप्रदेश सरकारके किसी प्रमुख मंत्रीने श्रीपोद्दार महाराजको गोरखपुरसे तत्क्षण ही कहीं अन्यत्र चले जानेकी आत्मीयतापूर्ण व्यक्तिगत राय दी है। और

वे शीघ्र ही गोरखपुरसे किसी अज्ञात स्थानको जा रहे हैं । ''

मेरे पूर्वाश्रमके मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी अत्यन्त दुखी होकर कह रहे थे – ''जिन श्रीगाँधीजीका श्रीपोद्दार महाराजके प्रति पुत्रवत् परम आत्मीय प्रेम था और जो उन्हें अतिशय अपने-से-अपना पारिवारिक स्वजन मानते थे , वर्षों श्रीजमनालालजी बजाजकी कोठीमें बम्बईमें श्रीपोद्दारजीने उनकी सेवा की है, उन पोद्दारजी पर अपने पितातुल्य गाँधीजीकी हत्याका लाञ्छन श्रीजवाहरलालजी लगावें, – इस बातसे श्रीपोद्दार महाराज बहुत ही व्यथित हैं। वे तो गिरफ्तार होना भी चाह रहे हैं, परन्तु पू.राधाबाबाकी ऐसी राय है कि उन्हें उन परमात्मीय मंत्री महोदयकी रायकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और एक बार किसी अनुकूल स्थानमें चले जाना चाहिये, जहाँ उनके हितू एवं अनुकूल राज्याधिकारी हों। मंत्री महोदयके पत्रमें स्पष्ट आदेश है कि आज रात्रिमें ही संभवतः कलक्टर उन्हें गोरखपुर रहनेपर गिरफ्तार करले, अतः उन्हें तत्क्षण ही गोरखपुरसे हट जाना है।''

अति शीघ्र श्रीपोद्दार महाराज अपनी धर्मपत्नी, परम सेवक श्रीराम-सनेहीजी एवं पू गुरुदेव श्रीराधाबाबाको अपने साथ लेकर परमावश्यक वस्त्रोपकरण सहित श्रीबजरंगलालजी चाँदगोठियाके साथ अपनी मोटरकारमें किसी गोपनीय अज्ञात स्थानको चले गये। 'कल्याण' मासिक पत्रके सम्पादनका कार्य उन्होंने अपने धर्मभ्राता एवं अनन्य सहयोगी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके कंधोंपर डाल दिया। बिदाईके समय मैं साश्रुनयन खड़ा एकटक पू. गुरुदेवकी ओर देख रहा था। प्रेमजनित अनिष्टाशंकासे सभी सम्पादकीय विभागके लोग और वाटिकाके अन्तेवासी अश्रु टपका रहे थे।

विदा होते समय अचानक पू.गुरुदेवने मुझे अपने निकट बुलाया। अतिशय प्यारसे उन्होंने मेरे कन्धेपर अपना हाथ रखा और कहने लगे – ''भैया ! विदा होते समय तुमपर मैं एक गुरुतर दायित्व दे जा रहा हूँ। इस आसन्न विपद्कालमें यदि श्रीपोद्दारजी गिरफ्तार कर लिये जाते हैं, तब तो मैं खुली राजनीतिमें उतर आऊँगा और तू मेरे पास चले आना। और यदि वे गिरफ्तार नहीं किये जावें तो इस आसन्न विपत्तिका निराकरण व्यावहारिकरूपसे उनके अनेक प्रभावशाली सहयोगी मित्रगण करेंगे ही । फिर भी उनके प्रयास सफल होंगे ही, यह इस समय कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, तू मेरा प्रतिनिधि होकर यदि प्रतिदिन आजसे ही दो घण्टे सायंकाल निश्चित् ठीक

पाँच बजेसे सात बजेतक समयपर भगवन्नाम-संकीर्त्तन प्रारंभ कर देगा और जबतक हम सुरक्षित नहीं लौट आवें, तबतक विना व्यवधान संकीर्त्तन करता रहेगा, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि अमोघ भगवत्कृपा तेरी भावनाकी रक्षार्थ क्रियाशील हो उठेगी, और हममेंसे किसीका बाल भी बाँका नहीं होगा। 'कल्याण', गीताप्रेस, सब सुरक्षित रह जावेंगे।''

पू. गुरुदेवके मेरे प्रति वात्सल्यपूर्ण विश्वासको देखकर मैं पुलकित हो उठा। मैंने उसी समय उनके चरण छूकर प्रतिज्ञा की कि जबतक वे सकुशल नहीं लौटेंगे, मैं उनके द्वारा निर्धारित समयपर बिना व्यवधान नियमित संकीर्त्तन प्रारंभ कर दूँगा। मेरा आश्वासन पाकर पू. गुरुदेव प्यारसे मेरा सिर सहलाते हुए पू. पोद्दार महाराजके साथ प्रस्थान कर गये।

पू.गुरुदेवके प्रस्थानके उपरान्त मैं विचारोंमें खो गया – ''श्रीपोद्दार महाराज तो भक्ति एवं भगवत्प्रेमकी जीवन्त प्रतिमा हैं। जिनके अन्तःकरण एवं बहिःकरण दोनों सदैव नराकृति परब्रह्मको अपने भीतर-बाहर सर्वत्र अपरोक्ष प्रत्यक्ष निरखते रहते हैं ,जो एक अभिनव चिन्मय रससे सदैव प्लावित रहते हैं, जिनकी निद्रा एवं स्वप्न भी उस चिन्मय रसमें सदा निमग्न रहते हैं, उन विशुद्ध चिदानन्द-रस-सुधा-सरोवर श्रीपोद्दार महाराजके रोमका भी भला कौन अनिष्ट कर पावेगा ? जिनके प्राकृत त्रिगुणात्मक हृदयरूप मायिक कीचमें भी अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूप पद्म विकसित रहता है, उस कृष्णपद्मका माधुर्य इतना असमोर्ध्व है कि जिसे उनके पूर्ववर्त्ती सन्त अनुभव कर पाये या नहीं, कहना संदिग्ध है । सच्चिदानन्दकन्द नवनीरदवपु श्रीकृष्णचन्द्रकी अनुपम रूपमाधुरीका विस्तार जैसा श्रीपोद्दार महाराजके हृदयमें सदैव निर्बाध झलमलाता रहता है, वैसा मधुर मनोहर रूप धारण करके वे प्रापञ्चिक जगत्में आजके पाँच हजार वर्ष पूर्व भी गोकुल-वृन्दावनमें प्रकटे थे या नहीं, द्रष्टा, साक्षीके अभावमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता, ऐसे राधा-भाव-भावित-मति सन्तका ये आसुरी प्रापंचिक राजनेता क्या कुछ भी अनिष्ट कर पायेंगे ? कदापि नहीं, कदापि नही।''– इस प्रकार सोचता हुआ मैं अपने निवासकी ओर बढ़ गया । इस समय मध्याहके दो ही बजे थे।

मुझे सायंकालीन संकीर्त्तनकी तैयारी करनी थी। संकीर्त्तनमें प्रयोगमें आनेवाली ढोलक अनेक दिवसोंसे कसी नहीं गयी थी, उसकी रज्जु भी अनेक स्थानोंसे विच्छिन्न थी । ढोलककी स्याही भी पुरानी पड़ गयी थी जिससे

उसकी गूँज नहींके बराबर थी। हारमोनियमकी भी धौंकनी फट गयी थी, वह भी पूरी मरम्मत माँग रहा था। झाँझोंमें भी न तो गद्दे थे और उनकी डोरी भी बदलनी आवश्यक थी । कांस्य झालरका हत्था लापता था। उसे लटकानेका तार भी खण्डित था। मैंने तत्क्षण ही साइकलके कैयियरमें हारमोनियम बाँधा, उसके हैण्डिलमें ढोलक लटकायी, झोलेमें झालर, झाँझें भरीं और सभीकी मरम्मत कराने बाजारकी ओर चल पड़ा। समयके पूर्व ही यह कार्य सम्पन्न करके ही मुझे लौटना था।

भगवत्कृपावश सभी निर्माणकार्य समयपर हो गये। हारमोनियम एवं ढोलक कुछ समय माँग रहे थे, अतः मैंने इनकी एवजमें मरम्मत करनेवालेकी दुकानसे दूसरा अच्छा हारमोनियम और ढोलक ले लिये। इस प्रकार संकीर्त्तनकी पूरी तैयारी करके मैं समयसे पाँच–दस मिनट पूर्व ही गीतावाटिका पहुँच पाया।

मेरे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जबकि मैंने देखा कि वहाँ संकीर्त्तन समारंभ करनेकी सभी तैयारी पूरी हो गयी है । लोग मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। भगवान्‌की पूजाके लिये मेरे मामाजी श्रीचिम्मनलालजी भी उपस्थित हैं। चन्दन, केसर आदि घिसे हुए तथा सभी पदार्थ यथास्थान पात्रोंमें रखे हैं । दीपक भी प्रज्वलित है। निर्मल धूपकी सुगन्ध सर्वत्र परिव्याप्त है। गीताप्रेससे पहलवान दरबान ढोलक बजानेके लिये फोन करके बुलाया जा चुका है। संकीर्त्तनकी सभी तैयारी भगवत्कृपासे मेरे आगमनके पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी।

भगवद्विग्रहका यथासमय पंचोपचार विधिसे मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीने पूजन किया और "अच्युतं केशवं रामनारायणं,कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् " श्रीमदादिशंकरस्वामि–विरचित नामावलिसे यथासमय संकीर्त्तन प्रारंभ होगया।

विद्युत्‌की भाँति यह समाचार वाटिका एवं आसपासके सभी परिजनोंके घरोंतक पहुँच गया था कि उन सबके प्राणप्यारे जीवनसर्वस्व भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये संकीर्त्तन प्रारंभ होगया है। यह समय गृहस्थ स्त्रियोंके लिये भोजन–निर्माणका रहता था, परन्तु सभी स्वजन लोग सुविधा–असुविधाका बिना ध्यान किये एकत्र होते गये। थोड़े ही समयमें मैंने देखा, संकीर्त्तन करनेवालोंकी संख्या शताधिक हो चुकी थी।

मैं आश्चर्य कर रहा था कि वाटिका–निवासियोंमें इतना उत्साह कैसे समाया हुआ है। सभी संकीर्त्तन करनेवाले ठीक ताल–सुरमें लय बाँधकर

संकीर्त्तन कर रहे थे। कहीं कुछ भी असंबद्ध नहीं, असंगत नहीं, आज तो प्रत्येक व्यक्ति पूरा नाम–रसमें डूबा दत्तचित्त हो, संकीर्त्तन कर रहा था। किसीका उत्साह शिथिल नहीं था। मैं अनेकों बार गीतावाटिकामें नाम–संकीर्त्तन संचालित कर चुका था, परन्तु मैं देख रहा था कि आज प्रथम अवसर है कि प्रत्येक वाटिकावासीके नेत्र नामानन्दातिरेकसे रह–रहकर छलक रहे हैं। सभी अपने भीतरी मनसे अपने आराध्य नन्दनन्दनके सम्मुख अपने मनकी मंगलकामना निवेदन कर रहे हैं और सभीके दृगोंसे अश्रुका निर्झर झर रहा है। मैं एक–एक प्राणीके मुखोंको निहार रहा था, इधर केदारनाथजी कानोड़ियाके नेत्रोंसे अश्रुकी लोर प्रवाहित है, तो पासमें ही बैठी उनकी धर्मपत्नी 'पानकी मैया' भी सुबुक रही है । इधर पूरण महाराज, रसोइया सिसकते हैं तो उधर बर्तन मलनेवाला, गब्बू कहार ताली बजा–बजाकर नृत्योत्सुक है । श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' अपनी मौजमें ताली बजा रहे हैं तो श्रीशिवनाथजी दुबे भी नयन मूँदे स्थिर, शान्त, प्रार्थनारत हैं।

श्रीगोस्वामीजीकी मधुरतम परम सुरीली स्वरलहरी संकीर्त्तनका अन्तरा गा रही थी –"श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं , राधिकानायकं कृष्णचन्द्रं भजे। जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।" श्रीगोस्वामीजीका करुणारसपूरित स्वर–स्पर्श सभी वाटिकावासियोंको रक्षोघ्न मंत्रवत् प्रतीत हो रहा था। सभी वाटिकावासी जो इस संकीर्त्तनमें बैठे थे, मानों मन–ही–मन श्रीपोद्दार महाराजके सकुशल लौट आनेके लिये अपने–अपने इष्टसे करुण, मूक, क्रन्दन–भाषामें निवेदन कर रहे थे – हे अच्युत ! हे केशव ! हे नारायण ! हे राम ! त्राहि, त्राहि प्रभो ! हे दयासिन्धो ! करुणामय ! जगत्पते ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! हे श्रीधर ! हे माधव ! रक्षा करो ! अभयदान करो !

उस दिवस संकीर्त्तन करते–करते श्रीगोस्वामीजीको प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि एक बालक जिसका समुदित चन्द्रके समान तो मुख है, विद्युत्रेखा–सी जिसके नेत्रोंकी शोभा है, दुष्प्रधर्ष तेज जिसके रोम–रोमसे छिटक रहा है, जिसके सिर पर घनकृष्ण केश हैं, समस्त अंगोंकी आभा शारदीय मेघके समान है, उस कीर्तनमण्डपमें विराजित चतुर्दिक् इतस्ततः सभीकी मुखमुद्रायें देखता, मुसका रहा है। श्रीगोस्वामीजी उसे देखकर विस्मित हो रहे थे, क्योंकि उन्हें वह गौरवर्ण बालक अस्थिमज्जा–मेदमांस–निर्मित प्राकृत प्रतीत नहीं हो रहा था। उन्हें यह भी विस्मय हो रहा था कि संकीर्त्तन करनेवाले लोग

यदाकदा नृत्य करते उस बालकके भीतर भी प्रवेश कर जाते हैं और तब उसके आरपार निकल जाते हैं । जो ऐसा करते हैं उनपर वह बालक और अधिक प्रेमिल हो उठता है । गोस्वामीजीने मन-ही-मन उस बालकको भगवान् हलधर या बलदेवजीके रूपमें पहचान लिया एवं उसे प्रणाम किया। वह कथन मात्रका ही बालक था। सहसा वह संकीर्त्तनध्वनिमें स्वयं भी नृत्य करता उनके पास आया और उनके कानोंमें अतिशय मधुर स्वरमें यह सन्देश देने लगा कि 'भक्तराज पोद्दार महाराजका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा, निश्चिन्त रहें। गीताप्रेस एवं कल्याणका कार्य भी यथावत् ज्यों-का-त्यों चलता रहेगा।''

यह आश्वासन पाकर श्रीगोस्वामी महाराज तो आनन्दसे खड़े हो गये। मैं उनका भाव-परिवर्तन देख रहा था। उनके खड़े होते ही मैंने भी हारमोनियम-वादन स्थगित कर झालर बजानी प्रारंभ कर दी । श्रीगोस्वामी महाराजने **''अच्युतं केशवं''** संकीर्त्तन स्थगित कर **'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द''** नामध्वनि प्रारंभ कर दी थी। अब तो संकीर्त्तनमें ऐसा रंग जमा कि सभी देह-विस्मृत हो गये।

बाबू गंगासिंहजीका अति भावपूर्ण कबूतरीनृत्य कुछ भाव-विक्षेप अवश्य कर रहा था, परन्तु उन्हें निवृत्त करना किसीके भी वशकी बात नहीं थी। श्रीरघुवरदयालजी, श्रीमुरलीधरजी, श्रीरामदासजी जालान, श्रीसुखदेवबाबू आदि सभी व्यक्ति जो गीताप्रेससे पू. पोद्दार महाराजको विदा देने आये थे इतने भाव-विभोर हो रहे थे कि सब कुछ अनिर्वचनीय लग रहा था।

यह संकीर्त्तन कुछ कालतक तो **'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द'** होता रहा पश्चात् **'राधे-राधे'**की नामध्वनिमें पर्यवसित हो गया। उस संकीर्त्तनको हुए आज लगभग ४८ वर्ष हो गये हैं परन्तु उसकी स्मृति अबतक ज्यों-की-त्यों बनी है । दिवसका पर्यवसान समीप था। परन्तु वाटिकावासियोंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ था, संकीर्त्तनानन्द एकरस चल रहा था। मैं तो आज भी जब अपनी किशोरावस्थाके अति सुभग दिवसोंकी स्मृति करता हूँ तो गीतावाटिकाको अणु-अणुसे उसी विशुद्ध सत्वमयी आनन्दधारामें झूमती, मुखरित देखने लगता हूँ । आज तो वह निष्प्राण, मृतप्राय है, क्योंकि उसकी आत्मा श्रीपोद्दार महाराज और उसके प्राण पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही अपनी इहलीला समाप्त कर गये हैं ।

यह संकीर्त्तन अनवरत तबतक होता रहा, जबतक पू.गुरुदेव एवं

पोद्दार महाराज लौटकर गोरखपुर नहीं आ गये। जैसी कि आशंका थी विपत्तियाँ तो आनी ही थीं । वाटिकाके लिये पुलिसने तलाशी वारंट जारी कर दिया। श्रीपोद्दार महाराज एवं चाँदगोठियाजीकी अनुपस्थितिमें सारे गीताप्रेसका चप्पा-चप्पा पुलिसद्वारा तलाशा गया। वाटिका और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके घरतककी तलाशी ली गई । वाटिकामें श्रीपोद्दार महाराजके पुस्तकालयकी प्रत्येक पुस्तकतक पुलिसने छान मारी किन्तु उसे कोई भी वस्तु सन्देहप्रद नहीं मिली। मिलती तो तभी, जब कुछ सन्देहास्पद कार्य होता।

जो गीताप्रेस अपनी अपरिसीम भक्तिभावमयी सुख-शान्ति और कल्याण-भावनासे विश्वको आप्यायित कर रहा था, उसके पास कल्याण, शिव, आनन्द, मंगल एवं शुभके सिवा हो भी क्या सकता था ? श्रीपोद्दार महाराजके पास तो पोत(खजाना) ही भगवान्‌के पावनतम नामका था, वे तो इसी पवित्रतम शिव-साधनसे जीवमात्रको परमानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका संकल्प लिये थे, उनके पास ऐहिक-आमुष्मिक(लोक-परलोक सम्बन्धी) मंगल, परम मंगलमयी सम्पादन-सामग्रीके सिवाय हो भी क्या सकता था ? दैत्यविदलित इस भारतको जो भगवद्‌बलसे बलान्वित होकर दैवी सम्पदासे आपूरित करनेका व्रत लिये थे, उन श्रीपोद्दार महाराजके पास विशुद्ध सेवाभाव, परोपकार, सर्वहित, निर्मल चरित्र, कारुण्य, अनन्त भक्तिभाव-परिभावित मसृण हृदय, भगवदैश्वर्य-संकीर्त्तन, आत्मभाव, विशुद्ध प्रेम आदि अलौकिक दैवी भावोंके अतिरिक्त होगा भी क्या ? जो भी पुलिस अधिकारी तलाशी लेने आये थे, सभी भक्ति-साहित्यको पढ-पढकर सुख-सागरमें निमग्न हुए, वाटिकाके परिजनोंके निर्मल सेवा-व्यवहारसे आप्यायित हो, विदा हुए।

वस्तुतः उन दिनों जैसी विशुद्ध प्रीनि, निष्कपट सेवाभाव, अगाध शान्ति गीतावाटिकामें प्रवाहित थी, वह सर्वथा स्वसंवेद्य एवं अत्यन्त अनोखी ही थी। श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीको जो प्रथम दिवसके संकीर्तनमें अनुभूति हुई थी, वह उन्हींने जब पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराजके सहित पुनः गीतावाटिकामें लौटे थे , तब सुनाई थी। श्रीपोद्दार महाराजने लौटकर जब दूसरे दिवस सत्संग कराया था, तब मुझसे एक पद गाकर सुनानेको कहा था और मैंने उस दिवस गाया था–

जो सुख ब्रजमें एक घरी ।
सो सुख तीन लोकमें नाहीं, धनि यह घोषपुरी।।

अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरे, द्वारैं रहति खरी ।
शिव. सनकादि शुकादि अगोचर,जहँ अवतरे हरी ।।
धन्यधन्य बड़भागी गोपी निगमनि सही परी ।
ऐसे सूरदासके प्रभुकौं लीन्हौ अंक भरी ।।

{श्रीसूरदासजीके इस पदको मेरे द्वारा सुनाये जानेका भीतरी भाव जो था उसे परम चतुर श्रीपोद्दार महाराजने पहचान लिया था अतः श्लेषात्मक अर्थ एवं भावार्थ दोनों नीचे दिये जा रहे हैं}

जो सुख (अभूतपूर्व आत्मीयताभरी शान्ति) इस व्रजमें(गीतावाटिकामें)इन दिनों एक घड़ी(मात्र२४मिनट)निवास करनेमें है, वह त्रिलोकी(स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल)में कहीं नहीं है। यह भगवान् श्रीकृष्णके परमात्मीय प्रेमी जन – नन्दादि गोपोंकी पुरी ब्रजभूमि(श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा-जैसे ब्रजभावभावित सन्तोंकी निवासभूमि, गीतावाटिका)सचमुच धन्य है, धन्यातिधन्य है। यहाँ इस ब्रजभूमि(गीतावाटिका) में आठों सिद्धियाँ, एवं नवों निधियाँ हाथ जोड़े सेवार्थ खड़ी रहती हैं। {परन्तु भगवत्प्रेमरूपी परम दुर्लभ सम्पदाको प्राप्त कर श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा निरन्तर भगवानके निर्मल ध्यान और भगवद्यशगानमें ही मस्त रहनेके कारण इनकी ओर ताकते भी नहीं हैं} सत्य है जहाँ शिव-सनकादि एवं शुकदेवादिको भी दुर्लभ, अप्राप्त, अगोचर भगवान् श्रीकृष्ण नराकृतिरूपमें अवतरित हुए हों, वहाँ दृष्टि भगवान्पर केन्द्रित रहेगी न कि इस नाशमान् क्षणभंगुर दुःखयोनि अष्टसिद्धियों एवं नवनिधियों(सम्पदाओं) पर। वेदोंने जिसके महासौभाग्यकी साक्षी दी है, ऐसी गोपी (गोपीभावापन्न – ये दोनों महाप्रेमावतार सिद्ध सन्तद्वय)धन्य है, धन्यातिधन्य है। श्रीसूरदासजी कहते हैं कि इस गोपी(गोपी-भावसम्पन्न इन सन्तों)ने मेरे प्रभु श्रीकृष्णको अपने अंकमें(हृदय, मन आदि अन्तःकरण-चतुष्टय एवं बहिःकरणों – नेत्र, कान, रसना, त्वचादिमें)धारण किया हुआ है।

———

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको पू.गुरुदेव द्वारा आत्म-प्रतिनिधित्वका दान

चौथा अध्याय

पूर्व प्रसंगमें मैं उन हेतुओंपर प्रकाश डाल चुका हूँ, जिन हेतुओंसे श्रीपोद्दार महाराजको पू. गुरुदेवको साथ लेकर अज्ञातवासकी तरह ही अनेक स्थानोंमें जाना पड़ा। इस अवसरपर वे कभी बाबा राघवदासजीके पास बरहज, कभी उत्तर प्रदेशके तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीगोविन्दवल्लभजी पंतके पास लखनऊ, कभी दिल्ली, अयोध्या एवं डालमिया दादरी गये।

एक दिवस जब वे मोटरगाड़ीमें बैठे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके साथ यात्रा कर रहे थे, तो अचानक ही उनसे बोल उठे –"बाबा ! यदि कहीं मेरी मृत्यु हो गयी तो आप तो तुरन्त ही अवधूतव्रत लेकर वृन्दावनकी ओर चल पड़ेंगे और वहाँ रूप-सनातन गोस्वामी-बन्धुओंकी जीवनशैली अपनाते हुए एक दिवस एक वृक्षके नीचे, तो दूसरे दिवस, दूसरे वृक्षके तले रहकर शेष जीवन व्यतीत करेंगे। किन्तु मेरी तो ऐसी रुचि है कि मेरा देहावसान होनेके पश्चात् आप सावित्रीकी माँ, (मेरी धर्मपत्नी)की जब तक वह जीवित रहे सम्हाल करें।"

श्रीपोद्दार महाराजने उस समय पू.गुरुदेवसे यह बात इस गम्भीरता और अवसादसे भरकर कही थी कि पू. गुरुदेव उसे हलकी-फुलकी विनोदकी बात न मान, सत्य ही उनकी रुचि मान बैठे। फिर भी उन्होंने उसकी गंभीरताको ठोक-बजाकर जान लेनेके उद्देश्यसे श्रीपोद्दार महाराजके मुखकी ओर अपनी दृष्टि उठायी।

जैसे ही पू.गुरुदेवकी दृष्टि श्रीपोद्दार महाराजके आननपर पहुँची, वे चकित, हतप्रभ हो उठे। पू.गुरुदेवकी सतत यही प्रगाढ़ आस्था थी कि उनके दृश्यमात्रको धारण किये, उनके प्रियतम श्रीकृष्ण ही सर्वत्र लीलायमान हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण इन पोद्दार महाराजके कलेवरमें और अधिक सुस्पष्ट, सुव्यक्त हो उठते हैं। किन्तु आज उनकी दृष्टि जैसे ही श्रीपोद्दार महाराजके आननपर ठहरी, उन्हें कुछ और ही चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहा था।

पू. गुरुदेव यह देखकर दंग थे कि श्रीपोद्दार महाराजका समग्र प्राकृत पृथ्वीतत्व जलतत्वमें, जलतत्व तेजतत्वमें, तेजतत्व वायुतत्वमें, और वायुतत्व

आकाशतत्वमें सुविलीन होकर, उनका आकाशतत्व उस क्षण महासत्वसिन्धुमें संसिक्त, आप्यायित, पूर्णतया विलीन ही हो चुका है। श्रीपोद्दार महाराज कोई प्राकृत पिण्ड, कलेवर रहे ही नहीं हैं, बस, महारससिन्धु होकर लहरा रहे हैं।

पू.गुरुदेव विचार कर रहे थे कि यह तो महाप्रलयमें भी नहीं होता। किसी ऋषि-महर्षिकी भी अव्याकृत प्रकृति अपनी सत्ता ही महासत्व-रससिन्धुमें विलीन कर दे, यह तो किसी शास्त्रमें उदाहरण रूपमें भी आजतक मेरे द्वारा पढ़ने-सुननेमें नहीं आया। फिर मेरे प्रियतम नन्दनन्दन मुझे यह दर्शन कैसे करवा रहे हैं ?

पू.गुरुदेव इस प्रकार चकित हो ही रहे थे कि श्रीपोद्दार महाराज- रूप लहराता महारससिन्धु पुनः गर्जन कर बैठा –"बाबा ! आप तो मेरे देहावसानके पश्चात् तत्क्षण ही अपनी दृष्टि झुका लेंगे और अवधूतवृत्ति लेकर वृन्दावनकी ओर प्रस्थान कर जावेंगे, किन्तु मैं तो यही चाहता हूँ कि आप मेरी मृत्युके पश्चात् सावित्रीकी माँकी सम्हाल करें। "

पू.गुरुदेव साश्चर्य देख रहे थे उनके सम्मुख मोटर, पथ, ड्राइवर –सभीकी सत्ता विलीन है और पोद्दार महाराज-रूप प्राकृत कलेवर जहाँ उनके समीप आसीन था, वहाँ सम्पूर्ण माधुर्यरसके आधार उनके प्रियतम श्रीकृष्ण, उनकी प्रिया, साथ ही समग्र वृन्दावनधाम पूर्णतया व्यक्त है। वे मुग्ध थे, सत्य तो सत्य ही है, वह किसी मान्यता अथवा ज्ञानकी अपेक्षा थोड़े ही रखता है ?

फिर भी पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराज-रूप उमड़ते लीला-महाभावसिन्धुसे तीन बार लगातार प्रश्न किये – "प्रभो ! आप सत्य-सत्य अपने अन्तर्की रुचि बताइये, क्या आप मुझसे ऐसा ही चाहतें ? तीनों ही बार वह महाभावसिन्धु पू.गुरुदेवके सम्मुख इसी प्रकार गर्जन कर उठा – " मेरी तो ऐसी ही रुचि है कि आप मेरे स्थूल कलेवरके अवसानके पश्चात् सावित्रीकी माँकी सम्हाल करें।"

अब तो पू.गुरुदेवके सम्मुख केवल अपना निर्णय परिवर्तन कर लेना ही एकमात्र अवलम्ब रहा था। तीनों बार इस स्पष्ट आदेशको सुननेके पश्चात् पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजका रूप धरे अपने आराध्य-देवको तथास्तु कह दिया।

पू.गुरुदेवके मुखसे जैसे ही यह 'तथास्तु' उच्चारण हुआ, उसी समय उनके सम्मुख श्रीपोद्दार महाराज, मोटरगाड़ी, और सभी जागतिक, प्राकृत देश

एवं काल व्यक्त होगये। पू. गुरुदेवने इसी क्षण संकल्प कर लिया कि अब वे श्रीपोद्दार महाराजके देहावसानके पश्चात् वृन्दावन नहीं जावेंगे और जहाँ भी इनके प्राकृत पंचभूतोंकी चिता जलायी जायेगी, वे उसी चितास्थलीको वृन्दावन मान, वहीं रह जावेंगे। साथ ही यदि श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी उस समयतक दिवंगत नहीं हुईं तो वे उनकी पुत्रवत् उसी सम्मानसे सँभाल करेंगे, जैसी सँभाल श्रीपोद्दार महाराज करते थे।

श्रीपोद्दार महाराज द्वारा सौंपे गये इस दायित्वको पूरी शक्तिसे वहन करनेको पू.गुरुदेव तत्पर तो हो गये, किन्तु जैसे ही उनका यह संकल्प हुआ, उसकी पूर्त्ति एवं अपने भावानुसार उसे निर्वाह करनेमें उन्हें अनेक कठिनाइयाँ भी मुख-बाये खड़ी दृष्टिगोचर होने लगीं।

प्रारंभिक कठिनाई तो श्री माताजी(श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी)का स्वभाव ही था। श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी साधु-ब्राह्मणोंके प्रति अतीव श्रद्धा रखनेवाली, धर्मभीरु, आस्तिक महिला थीं। उन्हें पुराणों, स्मृतियों और साधु-महात्माओंके उपदेशोंपर शब्द-शब्दशः अगाध श्रद्धा थी। अतः यह उनके लिये संभव ही नहीं था कि वे पू.गुरुदेव-जैसे ब्राह्मणवंशोत्पन्न चतुर्थाश्रमी संन्यासीसे मरणान्तक कष्ट-पीड़ामें भी शरीरसेवा स्वीकार करलें। उन्होंने जिस संन्यासीको यावज्जीवन पुत्रवत् भिक्षा करायी है, वह ब्राह्मण विद्वान् संन्यासी उनकी सेवा करे, उन्हें यह स्वीकार होना कदापि संभव नहीं था।

दूसरे पू.गुरुदेव संन्यास-मर्यादाके कट्टर समर्थक थे और किसी भी स्त्रीदेहके संस्पर्शसे यावज्जीवन विवर्जित रहे थे। वे किसी आसन्न भीषण रोगके समय, अपने दायित्वके निर्वाह करनेमें, माँकी सेवार्थ उन्हें अपने हाथोंसे कैसे संस्पर्श कर पावेंगे, यह हिमालयके समान दूसरी कठिनाई उनके पथको रोके खड़ी थी।

अपनी इन गंभीर विवशताओंका हल अन्ततः क्या हो ? पू.गुरुदेवने इन सभी दुरूह प्रश्नोंको अपने आराध्य श्रीकृष्णके सम्मुख रख देना ही उचित माना ।

पू.गुरुदेवके आराध्य श्रीकृष्णने उनका यही कहकर समाधान कर दिया कि " तुम अपना कोई प्रतिनिधि इन सेवाओंके लिये नियुक्त कर दो । उस तुम्हारे प्रतिनिधि द्वारा की जाने वाली सेवाका अर्थ यही होगा कि वह सेवा कृत, कारित एवं अनुमोदित-न्यायसे, प्रच्छन्नरूपसे तुम्हारे द्वारा ही हो रही है,

यही माना जायगा। प्रथमतः वह व्यक्ति वैश्य होना चाहिये क्योंकि किसी भी वैश्येतर उत्तम कुलके व्यक्तिसे श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी सेवा कदापि स्वीकार नहीं करेंगी।"

"अभी तो श्रीपोद्दार महाराज गृहस्थ होनेके नाते अपनी धर्मपत्नीका समग्र आर्थिक दायित्व निर्वाह कर रहे हैं, किन्तु जब वे नहीं रहेंगे, उस समय माताजीका आर्थिक दायित्व कौन निर्वाह करेगा ? माताजी स्वभावसे उदार और अपने परिजनोंके प्रति पर्याप्त मोही हैं। जिस सम्मान और सम्पन्नतासे वर्तमानमें उन्हें श्रीपोद्दार महाराज रख रहे हैं, उसी सम्मान और सम्पन्नताके सहित तुम उनका दायित्व निर्वाह कर पाओ, तभी उनकी सँभाल कोई अर्थ रखेगी। अतः जिसे तुम अपने दायित्वका प्रतिनिधित्व देना चाहो, वह व्यक्ति सभी प्रकारसे कर्मठ एवं विविध रजोगुणी प्रवृत्तियोंमें कुशल अवश्य हो।"

पू.गुरुदेव अपने आराध्य श्रीकृष्णसे यह समाधान पाकर कुछ आश्वस्त तो हुए, परन्तु ऐसा त्यागी तथा कुशल व्यक्ति कौन संभव है, जो उन्हें अपने–आपको पूर्णतया समर्पित कर दे । यह समर्पण भी कोई एक-दो दिवसका भावुक प्रयास तो था नहीं, अतः उनकी यह समस्या ज्यों-की-त्यों सम्मुख खड़ी ही थी।

एक दिवस उन्होंने इस विषयमें अपने सर्वाधिक विश्वस्त गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे राय की । श्रीचिम्मनलालजीके मतमें इस कार्यके लिये सर्वाधिक उपयुक्त दो ही व्यक्ति थे– प्रथम, श्रीपोद्दार महाराजके जामाता श्रीपरमेश्वरप्रसाद फोगला, तथा दूसरे, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल । श्रीपरमेश्वर प्रसाद फोगला पू.गुरुदेवको पूर्णतया समर्पित थे और पू.गुरुदेवकी इच्छापर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देनेको सदैव समुत्सुक भी थे, किन्तु जामाता होनेके नाते न तो पुत्रीसे अर्थसेवा लेना माताजीको स्वीकृत हो सकता था, न उनसे शरीरसेवा ग्रहण करनेकी भी मानसिकता उनमें थी। फिर पोद्दार महाराजको भी यह दायित्व अपने जामातापर ही डालना रुचिकर होता तो वे पू.गुरुदेवको यह दायित्व सौंपते ही क्यों ? इन विचारोंके कारण श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगलाका नाम तो पूर्णतया निरस्त ही होगया।

अब अन्य विकल्प मात्र श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालका ही बचा था। इसी विकल्पको पू.गुरुदेवने शत-प्रतिशत स्वीकार भी कर लिया।

पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालकी रुचि भी जाननी चाही और उन्हें पूरा सन्तोष तब हुआ, जब श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालने इस दायित्वको वहन करनेकी अपनी पूरी समुत्सुकता प्रकट करदी।

यहाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालके जीवनके सम्बन्धमें मैं दो शब्द लिखना उपयुक्त समझ रहा हूँ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालका जन्म राजगढ़, जिला चूरू (राजस्थान)में हुआ था। राजगढ़ तत्कालीन बीकानेर स्टेटकी, रतनगढकी तरह ही एक तहसील थी तथा चूरू जिलाके अन्तर्गत थी। राजस्थानमें वैश्य परिवारके अग्रवाल लोग अधिकांशमें व्यापार ही करते हैं, परन्तु श्रीकृष्णचन्द्रजीके परिवारके लोग सुशिक्षित, सुसंस्कृत तथा ऊँचे पदोंपर आसीन थे। इनके एक अग्रज बीकानेरमें वकील थे तथा एक अग्रज चूरूमें प्रोफेसर थे। इनके दो छोटे भ्राताओंने आगरा विश्वविद्यालयसे सवोच्च अंकोंसे प्रथम श्रेणीमें डिग्री ली थी तथा इनका सभी परिवार गाँधीजीका अनुयायी होनेके कारण सच्चाई, ईमानदारी, सादगी एवं परिश्रमशीलताका ही आदर्श अपनाये हुए था। यद्यपि ये सभी ही आस्तिक थे किन्तु कर्मको ही भगवान्‌की पूजा मानकर अपने कर्तव्यकर्ममें पूर्णतया संलग्न रहते थे।

गोसेवाके कार्यसे सन् १९३९ई.में श्रीपोद्दार महाराज जब रतनगढसे राजगढ पहुँचे तो श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिता एवं अग्रज उनसे मिलने आये थे। उस वर्ष राजस्थानमें भीषण अकाल पड़ा था और गीताप्रेसकी ओरसे अनेक नगरों एवं स्थानोंमें सहायता-कार्य चल रहा था। श्रीपोद्दार महाराज स्थान-स्थानपर घूम-घूमकर गोसेवाके कार्यकी सँभाल कर रहे थे। इस निमित्त ही वे राजगढ आये थे। इस यात्रामें पू.श्रीराधाबाबा भी श्रीपोद्दार महाराजके साथ थे। इस अवसरपर श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिता एवं भाईको राजगढ़में श्रीराधाबाबाके भी दर्शनोंका सौभाग्य मिला। दोनों पिता-पुत्र पू. श्रीराधाबाबाके दर्शनोंसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने घर आकर श्रीकृष्णचन्द्रके सामने श्रीराधाबाबाके गौरवर्ण, लघु वयसमें भी अति उत्कट वैराग्य, संन्यासी वेष, आकर्षक व्यक्तित्व, सौम्य स्वभाव, प्रसन्न मुद्रा और अति सुमधुर कण्ठसे 'राधा-राधा' उच्चारण आदि सभी बातोंका उन्मुक्त कण्ठसे बखान किया। भाई कृष्णचन्द्रजीके मनमें यह सब सुनकर अत्यधिक विषाद यह हुआ कि ऐसे तेजस्वी और सच्चे संन्यासी महात्माके दर्शनोंसे वे वंचित रह गये।

जब किसीके भी मनमें सच्ची चाह जगती है तो आगे-पीछे उसकी पूर्त्ति होती ही है। श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिताका शिक्षाविभाग चूरूमें सन् १९४२में स्थानान्तरण हो गया और श्रीपोद्दार महाराजको भी सन् १९४२में ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमके वार्षिकोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये चूरू जाना पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रजीके पिताजीको जैसे ही इन दोनों महापुरुषोंके चूरू आगमनकी सूचना मिली , उन्होने राजगढ़ पत्र भेजकर श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवालको चूरू बुलवा लिया।

श्रीकृष्णचन्द्रजी जिस समय चूरू-ब्रह्मचर्याश्रममें पहुँचे, तबतक अपराह हो चुका था। ऋषिकुलके प्रांगणमें वार्षिकोत्सवके कार्यक्रम चल रहे थे। भाई श्रीकृष्णजी दर्शनार्थियोंके मध्य बैठ गये। मंचपर श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके दर्शनसे वे अत्यधिक विभोर हो रहे थे।

उत्सवका कार्यक्रम लगभग साढे-चार बजे पूर्ण हुआ। पू.गुरुदेव तो हाथमें कमण्डलु लिये उसी समय नगरके बाहर बालूके टीलोंकी ओर शौचसे निवृत्त होनेके लिये चल दिये। पू.गुरुदेवकी सदासे ही यह प्रकृति थी कि जबतक उन्हें सर्वथा निर्जन स्थान नहीं मिलता था वे शौच निवृत्त नहीं हो पाते थे। अतः वे पीछे अनुगमन करने वाले श्रीकृष्णचन्द्रजीसे अपना पीछा छुड़ाना चाह रहे थे। और इधर श्रीकृष्णचन्द्र उनका पीछा छोड़ ही नहीं रहे थे। दोनों ओर होने वाली इस प्रतिद्वंद्वितासे पू.गुरुदेवको धोरोंमें नगरसे बहुत दूर चला आना पड़ा। बालूमें पू.गुरुदेवको खड़ाऊ पहने रहनेके कारण चलनेमें बहुत ही असुविधा थी। श्रीकृष्णचन्द्र तो जूता पहने थे अतः उन्होंने सुविधासे दौड़कर पू.गुरुदेवको पकड़ ही लिया। वे सीधे काष्ठवत् पू.गुरुदेवके चरणोंमें गिर पड़े और उनके चरण पकड़कर जोरसे रोने लगे। पू. गुरुदेवके लिये यह एक अप्रत्याशित घटना थी। वे मौन थे अतः कुछ बोल तो पाते नहीं थे, मात्र 'राधा-राधा', 'राधा-राधा' कहकर श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपने चरणोंसे हटनेका आग्रह कर रहे थे, किन्तु श्रीकृष्णजी हटनेका नाम ही नहीं ले रहे थे। वे अतिशय विह्वल हुए रोते ही जा रहे थे। अन्तमें पू.गुरुदेवने अपने हाथों उन्हें पकड़कर उठाया और उन्हें स्पर्श करते हुए कहा—'राधा-राधा', 'राधा-राधा' ।

श्रीकृष्णजीको यही तो अभीष्ट था। पू.गुरुदेवका स्पर्श पाते ही श्रीकृष्णजीने उन्हें छोड़ दिया और स्वयं भी उठ बैठे। पू.गुरुदेव शौच जानेके लिये आगे बढ गये और श्रीकृष्णजी वहीं बैठ गये। उनका अंग-अंग काँप रहा

था। सम्पूर्ण शरीर ही स्वेदसे लथपथ हो रहा था। वे प्रेमकी अधिकतासे काँप रहे थे। उनके मनमें कृतकृत्यता इसी बातकी थी कि आज परम विरक्त श्रेष्ठ सन्त पू.गुरुदेवसे उन्हें गुरुदीक्षा-मंत्र 'राधा-राधा' प्राप्त हो गया है।

श्रीकृष्णचन्द्रजी मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि आज मेरी दीक्षा हो गयी। संत कबीरदासजीकी दीक्षा भी तो इसी विधिसे हुई थी। कबीरदासजी ब्राह्म मुहूर्त्तके अन्धकारमें गंगाजीके घाटकी सीढ़ियोंपर चुपचाप लेट गये थे। वैष्णवाचार्य स्वामी श्रीरामानन्दजी महाराज अँधेरेमें ही गंगास्नान करनेके लिये आये। घाटकी सीढियोंसे उतरते समय उनका एक चरण श्रीकबीरदासजीकी छातीपर पड़ गया। चरण पड़ते ही श्रीरामानन्दजीका चौंकना स्वाभाविक था। चौंकते समय 'राम-राम'उच्च स्वरमें जो श्रीरामानन्दजीके मुखसे नाम-ध्वनि हुई, श्रीकबीरदासजीने उसे गुरुमंत्र मानकर उनके चरण पकड़ लिये।

इस घटनासे भाई श्रीकृष्णजीके मनमें यह बात बैठ गयी कि भव-सागरसे पार उतारने वाले गुरुजी मुझे मिल गये एवं मुझे अब सदा-सर्वदा राधा-नामका ही जप-संकीर्त्तन करना है।

सन् १९४५ई.में बी.ए. की परीक्षा देनेके पश्चात् भाई श्रीकृष्णजी पू. पोद्दार महाराजके पास ही रहनेको गोरखपुर आगये। यहाँ वे पू.गुरुदेवकी सेवामें ही संलग्न रहने लगे। पू.गुरुदेवको भिक्षा करवाना, उनकी कुटियाकी सफाई कर उसे स्वच्छ रखना, और उनके ही आदेशानुसार साधन-भजन करना, यही उनका उस समयका दैनिक कार्यक्रम रहा करता था।

इन्हीं दिनों उन्हें पू.गुरुदेवके अधिक निकट आनेका अवसर मिला और पू.गुरुदेव इन्हें श्रीपोद्दार महाराजके आन्तरिक आध्यात्मिक स्वरूपकी बातें बताया करते थे। वैसे श्रीकृष्णचन्द्रजी जब बीकानेरमें पढते थे, तब भी श्रीगंभीरचन्दजी दुजारीसे उन्हें श्रीपोद्दार महाराजको भगवान्के साक्षात् दर्शनकी बातें सुननेको मिलती थीं। श्रीकृष्णचन्द्रजीके मनमें श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेवके प्रति श्रद्धा पनपनेकी यह संक्षिप्त भूमिका ही यहाँ पाठकोंकी जानकारीके लिये दी गयी है।

श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा गीतावाटिकामें वर्ष भर प्रायः सभी उत्सव मनाये जाते थे। नवरात्रके समय ब्राह्मणोंके द्वारा शतचण्डीका आयोजन होता था। इसी प्रकार जन्माष्टमी, राधाष्टमी, रामनवमी, नृसिंहजयन्ती, महाशिवरात्रि, रासपूर्णिमा, वामनद्वादशी आदि वर्ष भरके सभी उत्सव गृहस्थोचित मर्यादासे

श्रीपोद्दार महाराजके घरमें सम्पन्न होते थे। इन उत्सवोंमें सम्पादकीय विभागके लोग तो सम्मिलित होते ही थे, गीताप्रेससे भी लोग आते थे; साहबगंज मोहल्लेके मारवाड़ी भावुक सज्जन भी सम्मिलित हुआ करते थे। इन उत्सवोंकी सभी व्यवस्थाका भार पू.गुरुदेवने भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीको ही सौंप रखा था। वे ही इस दायित्वका पूरी तरह निर्वाह करते थे। इसके अतिरिक्त बाहरसे जो भी अतिथि श्रीपोद्दार महाराजसे मिलने गीतावाटिका आया करते थे, उनके आवास, जलपान, भोजनादिकी व्यवस्था भी श्रीकृष्णचन्द्र ही सम्हालते थे।

सच्ची सेवा सेव्यके हृदयको आकृष्ट कर ही लेती है। स्वार्थभावसे सर्वथा शून्य होकर की जानेवाली सेवा सचमुच ही एक चमत्कार उपस्थित कर देती है। अतः पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपना प्रतिनिधित्व देनेका निश्चय कर ही लिया। यह ध्यान रखते हुए कि अवश्य ही वह व्यक्ति सही-सही रीतिसे प्रतिनिधि हो, पू.गुरुदेवने उन्हें सफेद वस्त्रोंमें ही संन्यासीवत् रखनेकी योजना बना ली। श्री चिम्मनलालजी गोस्वामीकी साक्षीमें मंत्र देकर पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको श्रीपोद्दार महाराजका धर्मपुत्र निर्णय कर दिया। अवश्य ही वह मंत्र संन्यासमंत्र नहीं था। धर्मपुत्र बनाकर श्रीकृष्णचन्द्रजीको पू.गुरुदेवने सावधान किया कि आजके पश्चात् तुम्हें अपने जन्मदान देनेवाले माता-पिताकी अपेक्षा इन धर्मके माता-पिताको अधिक महत्व देना चाहिये, एवं सदा मन-ही-मन यही आवृत्ति करनी चाहिये कि वस्तुतः तुम इनके ही पुत्र थे, परन्तु मायाशक्तिने तुम्हारा गर्भस्थापन तुम्हारी माताकी कोखमें भूलसे कर दिया था।

अपने प्रतिनिधिके रूपमें जब पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रजीको श्रीपोद्दार महाराज एवं उनकी धर्मपत्नीकी सेवामें नियुक्त कर दिया एवं जन्म देनेवाले माता-पितासे उनका मानसिक रूपसे सम्बन्ध-विच्छेद भी कर दिया, तो श्रीकृष्णचन्द्रजीके जन्मदाता माता-पिताकी सद्गतिका उत्तरदायित्व उन्होंने अपने कन्धोंपर उठा लिया। उन्होंने उसी दिवस श्रीकृष्णचन्द्रजीको आश्वासन दे दिया कि तुम्हारे माता-पिताकी सद्गतिका समस्त उत्तरदायित्व मेरा है। मेरे स्वयंके माता-पिताकी सुगति होनेके पहले तुम्हारे माता-पिताकी सुगति निश्चय ही होगी।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालकी माताजीकी मृत्यु पहले हुई, एवं तत्पश्चात् कुछ वर्षमें उनके पिताजीकी भी मृत्यु होगयी। उनकी माँकी मृत्युके समय तो पू.गुरुदेवने उन्हें व्रती बनाया नहीं था, अतः वे उनकी रुग्णताका समाचार

पाकर ही राजगढ़ चले गये थे और उनकी सारी क्रिया करके गोरखपुर लौट आये थे। हाँ ! उनके पिताकी अतिशय रुग्णावस्थाके समय श्रीपोद्दार महाराजने उन्हें उनकी सेवाके लिये उनके पास राजगढ़ जानेका बहुत आग्रह किया। क्योंकि उस समय श्रीपोद्दार महाराज स्वयं भी रुग्ण थे और पू.गुरुदेवकी इच्छा थी कि वे अपने धर्मपिता श्रीपोद्दार महाराजकी रुग्णताको अधिक महत्व देते हुए अपने जन्मदाता पिताकी सेवाको गौणता दें, अतः श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीपोद्दार महाराजकी राजगढ जानेकी आज्ञाको न मानकर, गोरखपुर ही रहकर पोद्दार महाराजकी सेवाका व्रत निभाया। कुछ दिनों पश्चात् श्रीकृष्णजीके पिताका देहान्त हो गया। उनके पिताके देहान्तका समाचार जैसे ही श्रीपोद्दार महाराजको मिला वे इतने व्यथित हुए कि श्रीकृष्णचन्द्रजीको सम्बोधित करके उनके मुखसे निकल पड़ा–'जा, तुझे इस जन्ममें मनोवाञ्छित सिद्धि नहीं मिलेगी।"

यह बात जब पू.गुरुदेवके कानोंमें पहुँची तो उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपने पास बुलाकर यही कहा–"भैया कृष्ण ! तुम भी जन्म लेनेको तैयार हो जाओ एवं मैं भी एक जन्म तुम्हारे साथ ही ले लेता हूँ । तुमको तुम्हारे धर्म-पिता श्रीपोद्दार महाराजका श्राप मिला है, तुम इसे सहर्ष स्वीकार करलो । मैं भी अपने जन्मदाता पिताका श्राप स्वीकार कर लेता हूँ। मुझे भी संन्यास लेते समय मेरे पिताने यही श्राप दिया था कि 'जा, तुझे इस जन्ममें ध्येय-प्राप्तिरूप सिद्धि नहीं मिलेगी।' यद्यपि मेरे आराध्य श्रीकृष्णने मुझे ऐसी शक्ति दी है कि मैं मेरे पिता द्वारा दिया श्राप व्यर्थ कर सकता हूँ, परन्तु तुझे जो श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिद्ध सन्तका अमोघ श्राप है, वह तो तुम्हें भोगना ही होगा। तुम्हारे जन्म लेनेके किसी विधानको मैं तभी स्वीकार करूँगा, जब मेरा भी जन्म हो। अतः चलो, हम दोनों ही पुनः जन्म लेनेका विधान स्वीकार कर लेते हैं।"

'पू.गुरुदेव श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ जन्म लेनेवाले हैं'– यह बात हवाकी तरह जब गीतावाटिकामें फैली तो पू.गुरुदेवके साथ ही गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी तथा अनेक उच्चकोटिके साधकोंने भी अपनी यही इच्छा पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रकट कर दी कि हम सभीको भी आपके साथ ही जन्म लेनेका विधान आप दया करके भगवान्‌से स्वीकृत करा दीजिये।

ये सब बातें श्रीपोद्दार महाराजके पास भी पहुँच ही गयीं कि उनके

श्रापको पू.गुरुदेवने अपने ऊपर स्वीकार कर लिया है। श्रीपोद्दार महाराज यह सुनकर भी कुछ दिवस तो वैसे ही गंभीर बने रहे। एकदिन स्वयं अ.सौ. माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी)ने उन्हें कह दिया "राधाबाबाके साथ मैं भी एक जन्म और लेने जा रही हूँ; लोगोंको आप भगवान्‌के दर्शन तो करानेसे रहे, अप्रने सेवकोंको श्राप देते रहिये।" इसके बाद एक दिन पू. पोद्दार महाराज हँसते-हँसते पू.गुरुदेवकी कुटियामें आये तथा आकर बोले " बाबा ! श्रीकृष्णचन्द्रका पुनर्जन्म तो नहीं होगा "

यह सुनते ही पू.गुरुदेवने श्रीकृष्णचन्द्रको बुलवाया और श्रीपोद्दार महाराजके चरणोंमें प्रणत करवाया। इस भाँति यह श्रापलीला श्रीकृष्णचन्द्रके लिये इस वरदानके रूपमें परिणत होगयी कि अब उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

१९५६ ई.की शरद पूर्णिमाके दिन मध्य रात्रिके समय गोरखपुरमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने काष्ठमौन ले लिया था एवं कुछ सप्ताह पश्चात् वे श्री पोद्दार महाराजके साथ रतनगढ़ चले आये थे। सन् १९५७की मकरसंक्रान्तिके दिन पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी जन्मदात्री माताजीका देहावसान हो गया। यह समाचार पू.गुरुदेवके पूर्वाश्रमके परिवारवालोंने तार द्वारा पू.पोद्दार महाराजके पास भिजवाया था। यह तार तो अतिशय विलम्बसे पू.पोद्दार महाराजके पास पहुँचा। इधर पू.गुरुदेवकी माताजी मृत्युके दूसरे दिन ही, रातके नौ-दस बजेके आसपास अतिशय चिन्मय दिव्य रमणीके वेषमे पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रकट होगयीं। कुछ कालतक तो पू.गुरुदेव अपनी माताको पहचान ही नहीं सके और आश्चर्य करते रहे कि यह दिव्य युवती स्त्री मेरे एकान्त कक्षमें कैसे प्रवेश पा गयी। किन्तु पश्चात् जब माताजीने अपना परिचय दिया तो तत्क्षण ही पू. गुरुदेवको ज्ञान हो गया कि माँ तो अपने स्थूल देहका परित्याग करके यहाँ मेरे सम्मुख सूक्ष्मदेहसे खड़ी है।

जब पू.गुरुदेवकी जन्मदात्री माता अपने सूक्ष्मदेहसे पू.गुरुदेवके सम्मुख उपस्थित हो गयी तो अब पू.गुरुदेवको उनकी उत्तम गतिको निर्धारित करना विचारणीय हो गया । पू.गुरुदेव विचार करने लगे कि मेरी माताकी भावी स्पृहणीय परिणति क्या हो ? उसी समय पू..गुरुदेवको अपने द्वारा प्रदत्त आश्वासनकी भी स्मृति हो आयी और उनमें यह जिज्ञासा भी उदित हुई कि भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीके माता-पिता ब्रजराज्यमें पहुँच गये कि नहीं। भाई

श्रीकृष्णचन्द्रजीकी माताजी एवं पिताजीका देहान्त तो अनेक वर्षों पूर्व ही हो चुका था। आज जब पू.गुरुदेवने अपने आराध्य श्रीकृष्णसे उनकी वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें जिज्ञासा की तो पू.गुरुदेवको बतलाया गया कि अभी वे अपने गन्तव्य ब्रजराज्यमें नहीं पहुँचे हैं। पू. गुरुदेवको यह स्वीकार ही नहीं था कि उनकी जन्मदात्री माता तो पहले भगवान्‌के धाम चली जाय और श्रीकृष्णके माता-पिता भगवान् श्रीकृष्णके नित्य पार्षद पदमें पहुँचें ही नहीं । पू. गुरुदेवने उसी समय अपने माता-पिताकी होनेवाली परिणितियोंको तबतकके लिये स्थगित कर दिया, जबतक उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण भाई श्रीकृष्णचन्द्रके माता-पिताकी पूर्ण सद्गति नहीं कर दें। जब भाई श्रीकृष्णचन्द्रके माता-पिता ब्रजराज्यमें पहुँच गये, तभी पू.गुरुदेवके माता-पिता अपनी विशिष्ट परिणितियोंको प्राप्त हो सके।

जैसा कि पू. गुरुदेवने बतलाया था कि उनकी माताजीकी प्रथम परिणति भगवती पार्वतीके रूपमें हुई, जबकि उनके पू. पिता भगवान् शंकरके कैलासमें उत्तम गतिमें निहित रहे। दूसरी परिणतिमें पू.गुरुदेवके पिता महर्षि भागुरिके रूपमें हुए और उनकी माता उनकी पत्नी के रूपमें हुईं। इसके पश्चात् उनकी माताजीकी तृतीय परिणति माता कीर्तिदाके रूपमें हुई और अन्तिम एवं चतुर्थ परिणति बृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकिशोरीके शीशपर विराजित एक सौदामिनी आभूषणके रूपमें हुई।

उक्त प्रसंगसे प्रकट होता है कि पू.गुरुदेव अपने आश्रितोंके लोक-परलोक और अन्तिम शाश्वत गतिके सम्बन्धमें कितने सावधान, सचिन्त्य और सक्रिय रहते थे। पू.गुरुदेवके परमोदार व्यक्तित्वमें अचिन्त्य सुहृद-भावनाके साथ ही उनकी अपरिमित शक्ति-सामर्थ्यका आकलन हम सभीके अनुमान एवं कल्पनासे सर्वथा परेकी वस्तु है। हम सभीके प्रति पू.गुरुदेवके अपरिसीम वात्सल्यका पावन स्मरण करते हुए मैं इस प्रसंगको विराम देता हूँ।

H. Srvas

रासलीलाओंमें अनुभूतियाँ

गोचारणलीलाका उन्मेष और भगवदादेश

(पाँचवाँ अध्याय)

प्रतिदिन ही जब भुवनभास्कर प्राचीको रञ्जित करने लगते, पू.गुरुदेव ध्यानमें बैठ जाते थे। पू.गुरुदेव कहा करते थे कि आजके सोलह सौ वर्ष पूर्व ही उन्होंने अपने चित्तको संकल्पशून्य कर लिया था। उसी समय उन्हें ज्ञानका आलोक प्राप्त हो गया था। और आज तो महज्जन श्रीपोद्दार महाराज (भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)की कृपासे उनकी विलक्षण दशा है। उनके सम्मुख विलक्षण ध्यान-दृश्य है:—

नीलसुन्दर – उनके प्राणाराध्य वंशीके छिद्रोंमें स्वर भरते हुए गोचारणके लिये वनमें पधार रहे हैं। वे अपने भाव-शरीरसे दुर्मद गोपकी वधू मञ्जुश्यामा बने अपनी बड़ी बहिन श्रीराधारानी (रायण गोपवधू)के सहित निर्निमेष दृष्टिसे अपने वृन्दावन-स्थित भवनकी अटारीसे उन्हें निहार रहे हैं । ब्रजराजतनयकी इस समयकी शोभा कैसी निराली है ! घुँघराली अलकें कपोलोंपर, ललाटके कुछ अंशपर झूल रही हैं । गोखुरोंके बिखरे हुए धूलिकण उड़-उड़कर उनकी अलकोंपर गिर रहे हैं। कुन्तलमण्डित मस्तकपर मयूरपिच्छका मुकुट सुशोभित है और केशोंमें वन्य-प्रसून ग्रथित हैं। नेत्रोंकी मनोहर चितवन और अधरोंपर व्यक्त हुए मृदुस्मितकी शोभा देखते ही बन रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो खञ्जन-मिथुन अपनी नैसर्गिक भावनामें तन्मय हुआ नृत्यपरायण हो, और सद्यः प्रस्फुटित नीलसरोरुहसे सुधा-विनिन्दित मधुधारा क्षरित हो रही हो। वेणुके छिद्रोंमें वे स्वर भरते हैं और उनके असंख्य गोपशिशु अपने-अपने मधुमय कण्ठसे उनके ललित लीला-विहारका गान करते उनके आर्श्व-पार्श्व, आगे-पीछे चल रहे हैं।''

अहा ! इस अप्रतिम सौन्दर्यको निहारते पू.गुरुदेवकी कैसी दशा हो रही है ! उनकी उस स्वसंवेद्य अवस्थाका कोई भी जीवनी-लेखक कैसे चित्रण कर पाये ! इस ध्यानके समय इन्हें कैसा ब्रह्मानन्द-तिरस्कारी आह्लाद हो रहा है, उनके हृदयमें कैसे-कैसे प्रीतिके अनुभाव व्यक्त होरहे हैं, इसे वाग्वादिनी

तो कह ही नहीं सकती, मेरे-जैसा अल्पज्ञ लेखक क्या कहे ?

हाँ, अपनी कल्पनाके पंखोंपर उड़ता हुआ इतना मात्र लिखनेका दुस्साहसभर कर रहा हूँ – अपनी असंख्य गोपवधूसखियों और अपनी बड़ी बहन रानीके सहित वे लोक-लज्जाके सभी दुर्लंघ्य कपाट उन्मुक्त कर दौड़कर अपने गृहसे बाहर आगयी हैं । वहाँ उनके प्राणवल्लभ प्रियतमके मुखारविन्दसे राशि-राशि मधुकी धारा प्रवाहित हो रही है और नेत्र-भ्रमर उसी मकरन्दरसमें डूब रहे हैं, पग गये हैं । इन नेत्र-भ्रमरोंसे पू.गुरुदेवके भावशरीर मञ्जुश्यामा-रूपा गोपीके हृदय एवं प्राण तो सन्नद्ध थे ही । अतः यह प्रीतिरसरूपा मधुधारा इसी तन्तुके सहारे झर रही थी,उनके विरहतप्त हृदयमें, प्राणोंमें भी विरहाग्नि जो अन्तस्तलके प्रत्येक अंशमें अलक्षित रूपसे पलकान्तर-वियोगसे भी धक्-धक् जलने लगती है, प्रशमित हो गयी थी ।

देखो, देखो ! मधुकर मानो अत्यधिक मधुपानसे मत्त होकर तन्द्रित हो उठा हो, इस प्रकार उनके भावशरीरके नेत्र मुँदने लगे। अहा ! रसपूरित हृदयमें प्रीतिकी तत्क्षण ही एक उत्तुंग लहर उठी, परन्तु लज्जाने प्रायः सम्पूर्ण द्वार रुद्ध कर दिये थे । लज्जा मानो प्रीति-रंगमंचकी पूरी सूत्रधार ही बन बैठी थी। इसीलिये उनके मुखारविन्दपर बस लाजभरी पवित्र हँसी ही व्यक्त हो सकी। विनम्र भावमुद्रामें नेत्रोंको अतिशय स्निग्ध करते हुए वे बंकिम चितवनसे ही उनकी ओर मात्र देख सके। किन्तु करुणावरुणालय, गुणनिधान, परम रसमय ब्रजेन्द्रनन्दनने इसे ही बहुत-बहुत माना; इस सत्कारके उपहारको समग्र उल्लाससे स्वीकार करते हुए वे ब्रजके देवता, भावग्राही रसिक, रस-निधान प्रियतम वनमें प्रवेश करनेके पूर्व किञ्चित् काल उनके सम्मुख स्थित हो गये । देखो ! वे अपनी प्राणप्रिया मञ्जुश्यामासे कुछ निवेदन कर रहे हैं। अपने प्रियतमकी मेघगंभीर मधुरातिमधुर स्वरलहरी पू. गुरुदेवके मानसमें गूँज उठी – " प्राणेश्वरी ! मैं लगभग दो वर्ष पश्चात् तुम्हारे प्राकृत शरीरके पास ब्रजवासी रासमण्डलीके ठाकुरके रूपमें उन्मिषित होकर आऊँगा, मेरा यह सन्देश विस्मृत मत करना ! "यह सन्देश सुनते ही पू. गुरुदेव अपने ध्यानसे विचलित हुए बाह्याविष्ट हो उठे। उन्होंने ध्यान-निमीलित नेत्र खोल दिये। वे विचारमें पड़ गये –

"लीलामयकी इच्छा ! वे कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्-समर्थ हैं। उनके स्वरूपतत्वको, श्रीविग्रह-रहस्यको कौन समझ सकता है ? वे सर्वभवनसमर्थ

हैं। अनेक आचार्योंके सम्मुख वे मूर्त्तियोंके रूपमें प्रत्यक्ष थे। आज भी श्रीनाथजी, वृन्दावनके बिहारीजी, मदनमोहनजी आदि चिन्मय विग्रह त्रिजगन्मंगलकारी वर्षा कर ही रहे हैं। मेरे सम्मुख भी पोद्दार महाराजके रूपमें पांचभौतिक शरीरसे ही उन्होंने कितनी कृपा-वर्षा की है।"– उल्लासमें भरे पू.गुरुदेव भगवान्‌की महिमाके विचारोंमें डूबगये –" मेरी बुद्धि मात्र एक इन्द्रिय भर ही तो है। बुद्धिकी कहाँ सामर्थ्य है कि वह अधोक्षज प्रभुको जान सके । मेरी प्रत्येक स्फुरणाके नियंत्रक जब मेरे प्रभु हैं, तब तत्वका, सत्य-असत्यका निर्णय बुद्धिके द्वारा कैसे संभव है ? वे सर्वभवनसमर्थ जो-जो रूप रचा कर जैसी लीला करें, उनकी मात्र बलिहारी है।"– विचार करते-करते पू.गुरुदेवको पता ही नहीं चला कि कब प्रभातसे मध्याह्न हो गया है। अपने प्रथम प्रहरके पूजाकालमें अतिरेक होता देख वे अपने आसनसे उठ खड़े हुए। पुनः शौच-स्नानसे निवृत्त हो वे अपने पूजा-अर्चनमें लग गये । ध्यानकालमें हुआ प्रभुका आदेश उनकी अन्तश्चेतनाके गर्भमें समा गया ।

भगवदादेशका अभिव्यक्तीकरण

" यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, यह सब-का-सब परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं, भूत और भविष्यकाल भी श्रीकृष्ण ही हैं। ये श्रीकृष्ण ही अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, और इन सब जीवोंके शासक भी वे ही हैं। "पू.गुरुदेव प्रातः शौचक्रियाको जानेसे पहले उषःपानके रूपमें जल पीते-पीते मुझे उद्‌बोधन कर रहे थे। मैं उन दिनों योग-वाशिष्ठ पढकर उनके सम्मुख कभी-कभी तर्क कर बैठता था। वे मुझे यही समझा रहे थे कि "भगवान्‌का असमोर्ध्व ऐश्वर्य तर्कातीत है। प्राकृत पदार्थ ही तर्कगोचर होते हैं, हो सकते हैं, परन्तु भगवान् नन्दनन्दन तो प्रकृतिसे परेकी वस्तु हैं। वे स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप हैं । उन्हें इन्द्रियाँ भला प्रकाशित ही कैसे कर सकती हैं ! कृपा-परवश हुए वे अपनी स्वप्रकाशिका शक्तिसे भले ही किसीकी मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके गोचर हो जावें, और उन्हें भले ही कोई कृपा-प्राप्त महापुरुष जान ले, समझ ले, उनके अपरिसीम ऐश्वर्य-समन्वित रूपको देख ले। परन्तु फिर वह स्थिर, विकृतिशून्य रह सके, यह संभव ही नहीं है।" पू. गुरुदेव जल बहुत ही धीरे-धीरे स्वाद ले-लेकर पीते थे। मैं उनके पास खड़ा

निर्निमेष उन्हें देख-सुन रहा था। अचानक मैंने देखा अत्यन्त मन्द-मंथर गतिसे श्रीपोद्दार महाराज निम्न मुख किये उनकी कुटियाकी ओर आ रहे हैं । मैंने तुरन्त ही पू.गुरुदेवको उनके इधर आनेकी सूचना दी। पू.गुरुदेव एक काष्ठकी चौकीपर बैठे थे, अतः मैंने श्रीपोद्दार महाराजको आसन देनेकी दृष्टिसे दूर रखी एक कुर्सी उठायी और पू. गुरुदेवकी चौकीके निकट रख दी ।

पू. पोद्दार महाराज कोई गोपनीय मंत्रणा करें, यह विचारता हुआ मैं वहाँसे उठकर दूर चला गया। श्रीपोद्दार महाराज मेरा मन्तव्य समझकर मुझे अपने पास बुलाकर उसी कुर्सी पर बैठ गये जिसे मैंने उनके लिये रखी थी। वे पू. गुरुदेवको सूचना भर देने आये थे। वे कह रहे थे कि " श्रीमोहनलालजी झुनझुनूवालाकी प्रेरणासे कोई रासमण्डली वृन्दावनसे गोरखपुर आयी है। वह अपने कार्यक्रमानुसार तो समस्तीपुर(बिहार) जा रही थी, परन्तु यात्रा बहुत दूरकी देख मध्यमार्ग गोरखपुरमें श्रीठकुरीबाबू जालानके यहाँ ठहरी है। श्रीमोहनलालजीने ही वृन्दावनसे ठकुरीबाबूको पत्र लिखकर उनकी ठहरनेकी व्यवस्था करायी है। उस मण्डलीका रास आज रामदास जालान अपने घर कराने जा रहा है। उसने मुझे, आपको और गोस्वामीजीको बुलानेका बहुत-बहुत आग्रह किया है। श्रीसेठजी रासके बहुत विरोधी हैं, मैंने यह बात उसे बतला भी दी, परन्तु फिर भी वह बालहठी है, उसके हठके कारण सायंकाल उसके वहाँ जाना ही पड़ेगा। आप अपनी साधनाका कार्यक्रम तदनुरूप कर लीजियेगा, यही सूचना देने मैं चला आया था।"

पू.राधाबाबा शौचक्रियाको जानेवाले हैं, यह सोचकर पू. पोद्दार महाराज तुरन्त ही वापस चले गये।

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि श्रीवृन्दावनवासी मोहनलालजी झुनझुनवाला श्रीराधाबाबाके ऐसे ब्रजभाव-भावी अनुयायी रहे हैं, जो जबसे पू. राधाबाबाका श्रीपोद्दार महाराजके पास आगमन हुआ, तभीसे उन्हें ब्रजभावकी रस-साधनामें सहयोग देते रहे हैं । श्रीराधाबाबाको जब-जब पुरातन रसिकाचार्योंकी ब्रजरस-सम्बन्धी वाणियाँ देखनेकी जिज्ञासा हुई है, तभी-तभी उनके द्वारा स्वतः ही अपने-आप बिना कोई सूचना पाने पर भी वे वाणियाँ भेजी जाती रही हैं । बिना मँगाये ही अपने मनोवाञ्छित ग्रन्थ उनके द्वारा यथासमय भेजे जानेसे पू. गुरुदेव अनेकों बार चमत्कृत होते रहे हैं । इस बार भी उनके द्वारा भेजी गयी

रासलीलामंडलीके गोरखपुर-आगमनका समाचार पू. पोद्दार महाराज द्वारा पाकर पू. गुरुदेव किंचित् विचारमें पड़ गये । मैं उन्हें विचारोंमें निमग्न देख, उनके पाससे उठ आया और वे विचारोंमें खोये-खोये ही शौचालयके पथकी ओर बढ़ गये।

यह धटना सन् १९४९ ई० तदनुसार वि.सं २००६के ग्रीष्मकालकी है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दका प्रारम्भसे ही रासादि-अभिनयके घोर विरोधी रहे हैं । उन्हें अपनी युवावस्थामें किसी नाट्यमण्डली द्वारा अभिनीत रासलीला-दर्शनसे काम-विकारका आभास हो गया था, अतः तबसे ही वे अपने अनुयायीवर्ग एवं मित्रमण्डलीको ऐसे अभिनय देखनेसे वर्जित करते रहे हैं । उनका रासविरोध अति कट्टर है, इस मान्यताके कारण ही गोरखपुरमें यह पहली रासमण्डली ही साहबगंज मोहल्लेमें इस बार आयी है । इसके पूर्व वल्लभसम्प्रदायके वैष्णवों द्वारा ही रासमण्डलियोंको गोरखपुरके उर्दू बाजार अथवा अलीनगरमें आमंत्रित किया जाता रहा है ।

श्रीसेठजीकी ऐसी मान्यता भी थी कि रासमण्डलीके स्वामी लोग चरित्रगत दोषोंसे युक्त होते हैं और उनका उद्देश्य इन अभिनयों द्वारा भावुकता उत्पन्नकर मात्र अर्थोपार्जन करना ही होता है । वे स्वरूपधारी बालकोंका भी पूरा शोषण करते हैं और उनके चरित्रनिर्माण अथवा शिक्षाकी किञ्चित् भी परवाह नहीं करते । श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाकी भावना वस्तुतः युक्तिसंगत और तथ्यपरक थी । एक-दोको अपवाद करके इन रासमण्डलियोंके स्वामी प्रायः इन दोषोंसे युक्त थे ।

क्योंकि श्रीसेठजीकी दृष्टि व्यापक लोक-संग्रहकी परिचायक और लोकमंगलसे ओतप्रोत थी, उनमें जगत्को सत्य मार्गदर्शन करनेकी प्रवृत्ति काम कर रही थी, अतः श्रीपोद्दार महाराज और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही उनका पूर्ण समादर करते थे। उनका भी अक्षरशः वही मत था, जो श्रीसेठजीका था। परन्तु जहाँ वे **वासुदेवः सर्वमिति**की सर्वोच्च तत्वपरक अनुभूतिमें प्रतिष्ठित होते, वहाँ उनके सम्मुख लोकशिक्षाका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता था । वहाँ तो उन्हें सर्वत्र जड़चेतनमें समरूपसे उनके प्राणाराध्य जीवनसर्वस्व श्रीयुगल निकुञ्जदम्पती ही विराजित प्रत्यक्ष होते थे। जगत् कहीं दीखे, तब न जगत्को शिक्षा देनेकी बात विचारी जाय। जब वे **''यहाँ जगत आवन नहिं पावत निरतत नन्दकुमार''**की सर्वोच्च स्थितिमें प्रतिष्ठित होते, वहाँ उनका

आचरण श्रीकृष्ण-रसास्वादनपरक ही हे जाता था। संयोगवश इन दिनों श्रीसेठजी और उनके प्रमुख अनुयायीगण श्रीघनश्यामदासजी जालान, श्रीमोतीलाल जालान आदि सभी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश)के सत्संगमें निरत थे । श्रीघनश्यामदासजीका एकमात्र पुत्र रामदास भगवत्प्रेरणावश रास-दर्शन और उसके संयोजनके पक्षमें हो गया था । प्रथम रासदर्शनसे ही उसे न जाने क्या आकर्षण हो गया था, जिससे प्रेरित हुआ वह अपने निजके घरमें अपने पिता, ताऊ सभीका विरोध समझता हुआ भी रासलीला-संयोजन कर रहा था; और अपने पक्षमें अपने ताऊ, श्रीपोद्दार महाराजको करके, संभवतः वह अपने पिताके सम्मुख अपना पक्ष निर्दोष करनेकी चेष्टामें संलग्न था।

पू. पोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको रासमण्डलीमें ले जानेकी बात प्रभातमें ही कह तो आये, परन्तु फिर वे न जाने किस कारणसे प्रथम दिन उन्हें नहीं ले गये। उस दिन वे अकेले ही श्रीगोस्वामीजीके साथ श्रीरामदासजीके घर गये। उनके परिवारसे अ.सौ.माताजी और अ.सौ. सावित्रीबाई आदि अवश्य उनके साथ थीं । मैं भी साथ ही था।

रासमण्डली नयी-नयी बनायी गयी थी । रासके स्वामी श्रीरामजी अतिशय गरीब परिवारसे थे। वे स्वयं पहले रासके ठाकुर बनते थे, और उन्होंने वल्लभसम्प्रदायके कीर्त्तनिया श्रीहरिवल्लभजीके सहयोगसे मण्डली गठित की थी। श्रीहरिवल्लभजी एक उत्कृष्ट सारंगीवादक भी थे और रासलीलाके सभी पदोंके गायनका उनका कुशल अभ्यास था ।

मण्डलीके पास साज-सज्जा और श्रृंगारादिका सामान सर्वथा नगण्यके समान ही था। वृन्दावनसे जो थोड़ी-बहुत साज-सज्जा लेकर ये लोग चले थे, वह भी रास्तेमें एक गठरी चोरी हो जानेसे, खो गया था। पहननेवाली साधारण धोतीको ही पीले रंगमें रँगकर उसमें साधारण-सा नकली गोटा लगाकर ठाकुरके परिधानका निर्माण किया गया था। रासेश्वरी और रासेश्वरके मुकुट तो इतने साधारण थे कि उन्हें देखकर हँसी छूटती थी । श्रीरामदासजीकी हथकरघेकी दुकानकी साधारण-सी-साधारण चादरोंको बिछाकर मंच-सज्जा की गयी थी और परदे एवं पिछवाइयाँ भी अति साधारण ही थीं। उस साधारण साज-सज्जासे समायुक्त मंचपरसे जैसे ही परदा हटा रासेश्वर ठाकुरके सुन्दर स्वरूप और उसकी मन्द मुसकानने सभी दर्शकोंका चित्त आकर्षित कर लिया। मैंने देखा – "श्रीपोद्दार महाराज एकटक निर्निमेष दृष्टिसे स्वरूपको निहार रहे

हैं और मुग्ध हैं।" रासनृत्य प्रारम्भ हुआ और पोद्दार महाराज उस अपूर्व लीलाझाँकीका दर्शन करते-करते अपनी सुध-बुध खो बैठे । वैसे अभूतपूर्व कुछ भी नहीं था। एक साधारण ब्रजवासी बालक कोई बहुत कुशल नृत्यकार भी नहीं था। परन्तु श्रीपोद्दार महाराजके नेत्रोंमें उस नृत्य करते साधारण ब्रजबासी बालकने, न जाने कैसे, भगवान्‌के अपरिसीम सौन्दर्य-माधुर्यशाली रूपको व्यक्त कर दिया। वे उस अभिव्यक्त चिन्मय सौन्दर्यमें ऐसे मोहित हुए कि अपनी प्रज्ञा खोकर उस चिन्मय दिव्यातिदिव्य झाँकीमें डूब गये। सहसा रासेश्वर बने ब्रजवासी बालकने लावनी रागमें गाना प्रारंभ कर दिया था।

धर-धरके अवतार भूमिको भार हरैया मैं ही तो हूँ ।
नँदकौ लाला, मात जसुदाकौ कन्हैया मैं ही तो हूँ।।
मथुरामें लियौ जनम, बिरजमंडलकौ बसैया मैं ही तो हूँ।।

श्रीपोद्दार महाराज तो दूसरे ही किसी लोकमें थे। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी झड़ी लग गयी थी, उनका कुर्त्ता आँसुओंसे सिक्त हो उठा था। श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी उनके पार्श्वमें ही बैठे थे। वे भी अपने प्राणोपम धर्मभ्राताको अनन्त अपरिसीम चिन्मय सुख-समुद्रमें डूबते-उछलते देखकर उनके सुखसे सुखी हुए स्वयं भी आनन्दोर्मियोंमें लहराने लगे।

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी दूसरे दिवस प्रातः ही पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको पिछली रातकी अपनी अनुभूति सुनाते कह रहे थे – "बाबा ! कल रात्रि भाईजीकी रासदर्शन करते-करते विलक्षण दशा हो गयी थी। किंचित् बाह्य जागृति होते ही वे वे देखते कि उनका कुर्त्ता अश्रुओंसे आर्द्र है, अश्रु पौंछकर अपनेको संवरित करनेकी चेष्टा करते, परन्तु कुछ ही क्षणोंमें उनको पुनः होश नहीं रहता था। बाबा ! ब्रजवासी ठाकुरबना बालक भी स्वयं स्नेहार्द्र एवं चकित था। पहले तो वह हम दोनोंको गोरखपुरके कोई प्रतिष्ठित सेठ मान रहा था, क्योंकि व्यवस्थापकगण हमें ही विशेष महत्व दे रहे थे । परन्तु बादमें भाईजीकी वैसी प्रेमदशा देखकर उस बालकके हृदयमें भी श्रीभाईजीके प्रति विशेष श्रद्धाके भाव जग गये थे । "

जिस समय श्रीगोस्वामीजी पू.राधाबाबाको यह प्रतिवेदन सुना रहे थे, मैं उस समय उनके पास ही खड़ा व्यजन करता उनके अंगोंसे मच्छर उड़ा रहा था । वे स्नानके लिये कपड़े उतार, एक कौपीनमें ही खड़े थे।

कुछ ही दिनोंके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराज एक दिन श्रीराधाबाबाको

भी रासलीला-दर्शनार्थ ले गये। श्रीपोद्दार महाराजके बगलमें ही श्रीराधाबाबाका आसन था।

ज्योंही मंचका पर्दा हटा पू.गुरुदेवने सिंहासनासीन ठाकुरस्वरूपके दर्शन किये। पू. गुरुदेव प्रथम दर्शनमें ही चकित थे। उनके सामनेसे श्रीरामदासजी जालानका मकान, गोरखपुरके जनपदकी भीड़ सभी विलुप्त हो गयी थी। उन्हें यही प्रतीत होरहा था, मानो वहाँका कण-कण नीली-नीली प्रकाशधारासे परिवेष्टित होरहा है। रासमण्डलके स्थानपर उन्हें मनोरम पद्मपर्यंक और निकुञ्जके दर्शन हो रहे थे। स्थान-स्थानपर लटकती मणिमुक्ताओंकी झालरें, रत्नजटित मनोहर आसन-चौकियाँ मानों अति समृद्ध कुञ्जस्थलमें मनोवाञ्छित श्रृंगारकी सब वस्तुएँ यथायोग्य स्थानपर सजाकर रखी हों । पू. गुरुदेवके अपने भावविग्रह प्रियतम नीलमणि अपनी प्राणप्रिया रानीको हृदयसे सटाये निकुञ्जके पद्मपर्यंकमें विराजित थे। श्रीगुरुदेवने मन-ही-मन सोचा –"हो सकता है ये सभी मेरे मनोभाव ही किसी उद्दीपनवश मेरे बाह्य दृश्यवत् मुझे दृष्टिगोचर हो रहे हों, परन्तु सम्मुख ठाकुर और श्रीजीके स्वरूपमें अपने प्राणाराध्य और प्राणसंजीवनी अपनी बड़ी बहन राधारानीकी हू-ब-हू अतिशय प्यारी रत्नजटित सिंहासनासीन छवि देखकर तो वे विस्मित हुए बिना रह ही नहीं सके ।

पू.राधाबाबाने उसी समय मन-ही-मन संकल्प किया –"मुझे जिस चिन्मय स्वरूपका दर्शन हो रहा है, इसे मैं सत्य तभी मानूँगा जब ठाकुर बना ब्रजवासी बालक रासके आरंभमें **"बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु "** – यह पद गावे।

आश्चर्य था, वही हुआ। जैसा पू.गुरुदेवका संकल्प था, वैसा ही ठाकुरने पूर्व-नियंत्रितके समान गायन प्रारंभ किया। अब तो ब्रह्मवित्-शिरोमणि साधु हृदय पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके सभी सन्देह धराशायी होगये। उनकी अन्तरात्मामें एक अभिनव प्रकाश झलमला उठा। उस प्रकाशसे आलोकित पू. गुरुदेवका मन उद्भावना करने लगा–

"ओह ! मैं यह क्या देख रहा हूँ, अबतक तो मैंने मात्र श्रीपोद्दार महाराज रूप संतमें ही निविड़ आनन्द-सुधासागरका उद्गमस्थल मूर्त्त हुआ अनेक बार देखा था । ऐसा लगता था मानो ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंका प्रामाण्य ही शरीर ग्रहणकर श्रीहनुमानप्रसाद नाम-रूपमें मूर्त्त

हो गया है, परन्तु आज यह नवीन क्या अनुभव हो रहा है ? क्या सचमुच ही जिसे कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं, कुंछ मनीषी जगत्कर्त्ता कहकर परिचय देते हैं, जिसे कुछ परमात्मा बताते हैं , और कुछ श्रेष्ठ पुरुष भगवान् कहकर प्रतिपादन करते हैं, जिसका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है, देशकालकी सीमामें जो न कभी बद्ध हुआ था एवं न ही कदापि हो सकता है, वही परमतत्व क्या एक ब्रजवासी बालकके रूपमें सीमाबद्ध मेरे साथ खेल कर रहा है ! ओह ! यह कैसा आश्चर्य है !

पू. गुरुदेवके हृदयमें कभी तो भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनका महान् ऐश्वर्य उदय होता है और कभी उनके रूपमाधुर्यकी शत-सहस्र सुधाधारायें प्रवाहित होने लगती हैं । ऐश्वर्योन्मेषके समय पू. गुरुदेव बालक ठाकुरके चरणोंमें लुट पड़ना चाहते हैं और जिस क्षण माधुर्यका विकास होता है, उस समय उस महामरकतद्युति कलेवरको हृदयसे लगानेका मनोरथ करने लगते हैं परन्तु लीलामहाशक्ति दोनों ही क्रियाओंको करनेसे उन्हें रोक देती है। उसे लोक-मर्यादाकी रक्षा जो करनी है । वे सोचने लगते हैं – " यदि मैं इस ब्रजवासी बालकके चरणयुगल धारण करता हूँ, तो यहाँ आसीन सभी लोग मुझे उन्मत्त उन्मादग्रस्त बतावेंगे और यदि इस बालकको मैंने हृदयसे लगा लिया तो यह मेरी व्यावहारिक एक चंचल क्रिया ही सिद्ध होगी । अतः मुझे अति धैर्यपूर्वक बस, मन-ही-मन अपनेको निहाल अनुभव करना चाहिये।

इधर वह बालक भी श्रीकृष्णवेषमें सज्जित पू. गुरुदेवकी ओर एकटक निहारता मुसका रहा था।. यद्यपि मण्डलीके स्वामी श्रीरामने दूसरी ही बंदिश प्रारंभ की थी, परन्तु ठाकुर-स्वरूपने उस बंदिशको अस्वीकार कर पू.राधा बाबाके संकल्पका गीत ही गाना प्रारंभ कर दिया था। ठीक पू.राधाबाबाका मनमें विचार किया हुआ पद, उनकी ही धुन, राग एवं बंदिशमें गाता हुआ ठाकुर अपनी मनोहर मुसकानसे सम्पूर्ण वातावरणको परम रसमय बना रहा था। उसके मुखसे गीतके बोल फूट रहे थे :–

पीत वसन मोतीमाल हिये पदिक कंठमाल,
हसन बोलन गावन गंडन श्रवण कुंडल झलकैं ।
बन्यौ मोर मुकुट नटवर वपु कमलनयन श्यामसुंदर,
बाँकी भौंह टेढ़ी पाग घुँघरवारि अलकैं।।
करपद भूषण अनूप कोटि मदनमोहन रूप

अद्‌भुत बदनचन्द्र देख गोपी भूली पलकैं।।

पू.राधाबाबा विमुग्ध थे। उनके शरीरका रोम-रोम पुलकित था। ऊर्ध्व-रोम हुए उनकी विलक्षण दशा देख श्रीपोद्दार महाराजने धीरेसे उनके कानमें कहा–"बाबा ! बाह्य वातावरणकी ओर देखिये । यहाँ बहुत छिद्रान्वेषी हैं, तनिक संवरित होइये !" श्रीपोद्दार महाराज द्वारा सचेत किये जानेपर पू.गुरुदेव किंचित् संवरित हुए। उस दिनकी रासलीला इसी प्रकार सम्पन्न हुई।

अनवरत कृपावर्षण

अब नियमानुसार श्रीराधाबाबा रासलीला-दर्शनार्थ पहुँचने लगे। जबतक रासलीला हुई यह क्रम बराबर चलता ही रहा। श्रीपोद्दार महाराज किसी दिन सम्पादनकार्यकी अधिकतावश नहीं भी जाते, तब भी पू. गुरुदेव नियमानुसार रासलीला देखने पहुँचते ही ।

दूसरे दिनकी ही बात है। पू.गुरुदेवने रासप्रारंभके पूर्व ही संकल्प किया कि यह ठाकुर आज मेरे मनके अनुसार रासनृत्यका प्रारंभ शास्त्रीय पद्धतिसे करे, तो मैं इसमें अपने आराध्यका सत्य आवेश समझूँ ।

सचमुच कुछ ही क्षणोंमें ठाकुरने वही नृत्यपद्धति अपनायी जिसका पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाने संकल्प किया था। श्रीराधाबाबाने ऐसा विचार किया था कि नृत्यप्रारंभकी आदि शास्त्रीय प्रथाके अनुरूप प्रमुख नर्त्तक, ठाकुर नृत्यसे पूर्व नृत्यस्थलमें सुगन्धित वस्तु, चाहे इत्रसार वा पुष्पकी पंखुड़ियाँ, कर्पूर-केसर, कस्तूरीचूर्ण, और नहीं तो, विविध रंगोंमें रँगा चन्दनचूर्ण, गुलाबकी पत्तियोंका चूर्ण, कुछ भी बिखेरे। बात वही हुई । रासका पर्दा उठते ही ठाकुरने रासनृत्य प्रारंभ करनेके पूर्व सुगन्धित पुष्पपंखुड़ियोंकी माँग की। रासमंडलीके स्वामी श्रीरामजी एवं अन्य समाजी चकित थे कि ठाकुर यह स्वतंत्र आचरण क्यों कर रहा है ? परन्तु रासमण्डलमें ठाकुरकी इच्छाको सर्वोपरि समझा जाता है, अतः एक समाजीको पुष्पोंकी व्यवस्था करनेके लिये चेष्टारत होना पड़ा। जबतक समुचित पुष्प-व्यवस्था नहीं हुई , रासलीला-प्रारम्भमें विलम्ब हुआ । ज्योंही समाजी डलियाभर पुष्पराशि लाया, ठाकुरने चकित हो रहे संन्यासी श्रीराधा- बाबाके नेत्रोंसे नेत्र मिलाये। अतिशय मंद-मधुर मुसकान बिखेरते हुए अपनी सुकोमल बाल-हथेलियोंमें लघु-लघु वन्यकुसुमोंकी अञ्जलि बाँधे ठाकुर

अग्रसर हुआ और उसने अत्यन्त कलात्मक भंगिमाओंसे चतुर्दिक् निहारते हुए, अपनी पुष्पाञ्जलि सर्वप्रथम रासमण्डलमें प्रकीर्ण कर दी ।

ठीक अपने मनोनुरूप ठाकुर बने बालकका आचरण देख श्रीराधाबाबा हर्षोल्लाससे भर गये। वे अपनेको निहाल अनुभव करने लगे । कुछ ही क्षणोंमें उनके नेत्र मुँदने लगे और आसपासमें बैठे लोगोंको ठीक अनुभव होने लगा कि कुछ ही क्षणोंमें ये भावाविष्ट हो जावेंगे ।

न जाने क्यों, प्रारंभसे ही ऐसा देखनेमें आया है कि जब श्रीपोद्दार महाराज भावाविष्ट होते थे, तो श्रीराधाबाबाको हम लोग प्रायः प्रकृतिस्थ और सहज पाते थे एवं जब श्रीराधाबाबा भावदशामें देहज्ञानशून्य अवस्थाको पहुँचे होते तो श्रीपोद्दार महाराज प्रायः प्रकृतिस्थ एवं होशमें रहते। एकबार ऐसी घटना हुई कि श्रीपोद्दार महाराज लगातार पाँच दिनतक बाह्यज्ञानविरहित रहे। जब लगातार उनके द्वारा अन्न एवं जल भी नहीं ग्रहण हुआ, तो अ.सौ. माताजी(श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) को बहुत ही चिन्ता हुई । क्या पता उनकी भावसमाधि कहीं महासमाधिमें परिवर्त्तित नहीं हो जाय, इस चिन्ताको लेकर वे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके पास आयीं। पू.गुरुदेवने उनसे हँसते हुए कहा – "चल मैया ! अभी पोद्दार महाराजको उठा देता हूँ , परन्तु माँ ! कलसे तू मुझे समाधिस्थ पायेगी। हम दोनोंमेंसे एक क्रियाशील रहेगा, चाहे मैं रहूँ अथवा वे रहें।" इस समय भी यही स्थिति थी । श्रीपोद्दार महाराज पूर्ण प्रकृतिस्थ सबकुछ देखते-समझते हुए भी पूरे व्यावहारिक हो रहे थे और राधाबाबा भावसिन्धुके अतल सिन्धुमें हिलोरें ले रहे थे ।

श्रीराधाबाबाके सम्मुख चिन्मय जगत्का रासमण्डल पूर्णतया अवतरित था। मेरे पूर्वाश्रमके मामाके सम्मुख वे विगत दिवसका जो वर्णन कर रहे थे, वे ही शब्द यथास्मृति यहाँ दिये जा रहे हैं। पू. राधाबाबा कह रहे थे–

"गोस्वामीजी ! रासमण्डलका जो चिन्मय चित्र उस समय मेरे सम्मुख व्यक्त हो रहा था, उसे वाणीके द्वारा कहा जाना असंभव है। यह नियम है, नेत्र देखकर पहले अपनी अनुभूति मनतक पहुँचाते हैं, तब मन वाणीके द्वारा उस नेत्रोंकी बातको कहलाता है। प्रथमतया नेत्र ही यदि दृश्य-सुखमें रुद्ध हो जावें और उनकी बात मनतक पहुँच ही नहीं पावे, तो मन वाणीको कथनके लिये कैसे अनुप्रेरित करेगा ? और नेत्रोंके दृश्यकी सुखानुभूतिमें मन भी कहीं अवरुद्ध हो जाय तो भी वाणी कुछ कह नहीं सकती । फिर भी अब हो रही

स्मृतिके संस्कारानुसार इतना ही कह पा रहा हूँ कि चिन्मय जगत् ज्यों-का-त्यों हू-ब-हू व्यक्त हो उठा था। मेरे कथनसे उस दृश्यकी सांगोपांगता वर्णन हो नहीं सकती, अतः उसकी समग्र पवित्रता, उसका सौन्दर्य, और उसकी विभुता सब मेरे वर्णन करनेसे नष्ट हो रही है, ऐसा मानकर मात्र कथ्य सुनना चाहें तो भले ही सुन लीजिये । गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजमें अपूर्व सामर्थ्य है, वे चाहें तो किसी भी क्षण किसीको उन्मत्त भी कर सकते हैं और उन्मत्तको एक क्षणमें ही प्रकृतिस्थ कर सकते हैं। वे यदि मेरे पास बैठे नहीं होते, और मुझे संवरित रखनेके लिये मेरी गोदमें बारंबार थपकी नहीं देते होते तो मेरी दशा सबके सम्मुख अवश्य ही हास्यास्पद हो उठती। वे ही मुझे पूरे सम्हाले भी थे, और अपूर्व रसास्वादन करा भी रहे थे । रासमण्डलका समग्र संचालन तो कल मेरे ही द्वारा मेरे संकल्पानुसार हो रहा था। ''

''रासमण्डलमें मेरे संकल्पानुसार जैसे ही ठाकुरने प्रथमतया पुष्प प्रकीर्ण किये, मैंने संकल्प किया अब ठाकुर सिंहासनासीन श्रीजीके चरणोंमें पुष्पांजलि दे । बस, तत्क्षण ही ठाकुरने श्रीजीकी ओर अपना मुख कर लिया। मेरी ओर उसकी पीठ और लहराती चूड़ा नागिनकी तरह बल खा रही थी । एक ही क्षण पश्चात् ठाकुरने मेरी भावलीलाकी सांगोपांग अनुकृति करते हुए श्रीजीके चरणोंमें अपने मयूरमुकुटकी कोर छुवायी और तब भ्रूभंगिमाओंसे मधुरतम कटाक्षोंकी वर्षा करता हुआ उन्हें निहारने लगा। गोस्वामीजी ! भ्रूभंगिमाओंका ऐसा नर्त्तन कुशल-से-कुशल नृत्यकार भी नहीं कर सकता, यह कटाक्ष-वर्षा मात्र चिन्मय भाव-जगतमें ही संभव है, परन्तु मैं चकित था कि यह साधारण ब्रजवासी किशोर कैसे कटाक्ष-मालाका निर्माण अपने भ्रूसंचालन से कर पा रहा है।''

पू.गुरुदेवने तत्क्षण ही रासमण्डलके चारों ओर दृष्टिपात किया। श्रीघनश्यामदासजीकी छतके चतुर्दिक् तो दूसरे अन्य लोगोंके मकान थे। वहाँ सघन सुरम्य वन तो दिखना संभव ही नहीं था। परन्तु पू.गुरुदेवको चतुर्दिक् परम सुरम्य वन दृष्टिगोचर हो रहा था। निशा भी राकाशशिसे पूर्णतया उद्भासित हो रही थी। सुरम्य परम सुन्दर वन-वृक्षों पर कहीं अगणित शुक, कहीं पंक्तिबद्ध सारिकायें, कहीं कोकिलाएँ ही कोकिलाएँ , कहीं मयूर विराजित थे। सभी विहंगम शान्त उत्फुल्ल-पंख आनन्दविभोर थे। यह सब दृश्य-परिवर्त्तन पू.गुरुदेवको चकित कर रहा था।

सहसा उन्होंने संकल्प किया कि आज ठाकुरको पदकी तीसरी पंक्तिसे प्रारंभ कर **''बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु''** पदगायन करना चाहिये। ठाकुरने ठीक वही किया। अपनी सहज चंचलतासे आँखें नचाता हुआ पहले तो बालक घनश्याम जो ठाकुर वेषमें था, श्रीराधाबाबाकी ओर मंद मुसकान बिखेरता रहा, तत्पश्चात् अपने अग्रज श्रीरामजी, जो हारमोनियम लिये रास-संचालन कर रहे थे, और हरिवल्लभजी कीर्तनिया, जो मुख्य गायक थे और सारंगी लिये थे, दोनोंके पास पहुँचा और उनको दरबारी कानड़ाकी धुन बजानेको प्रेरित कर गा उठा –

कर-पद भूषण अनूप, कोटि मदनमोहन रूप,
अद्‌भुत वदन चन्द्र देख गोपी भूली पलकें... ...
बन्यौ मोरमुकुट नटवरवपु कमलनयन श्यामसुन्दर
बाँकी भौंह, टेढ़ी पाग, घुँघरवारी अलकैं ... ...

श्रीराधाबाबा पुनः किसी दूसरे लोकमें ही डूब गये थे। उनके नेत्रोंसे यह जगत सर्वथा तिरोहित हो चुका था। उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजकी ओर देखा – वहाँ उनके स्थानपर उनके इष्ट ही मयूरमुकुटी वंशीधारी वेषमें विराजित थे, जितने दर्शक थे, सभी श्यामसुन्दर रूपमें ही उन्हें दृष्टिगोचर हो रहे थे। चिन्मय जगतके रासमण्डलमें ललिता एवं मधुमती मञ्जरीकी सुकोमलतम अंगुलियाँ वीणाके तारोंको झंकृत कर रही थीं। श्री तुंगविद्याजीकी कमलदल-सी हथेलियाँ मृदंगमें थाप दे रही थीं, उसकी सुकोमलतम किसलयके समान अंगुलियाँ मृदंगवादनमें थिरक रही थीं । इन्दुलेखाके चरण घुँघुरुओंकी झंकार कर रहे थे । श्री राधाबाबाने संकल्प किया – आज तो इन्दुलेखाके नेतृत्वमें सखियोंका नृत्य प्रारंभ होना चाहिये ।

पू.गुरुदेवके संकल्प करते ही इन्दुलेखा बना एक शिशु बालक उठा और उसने सबके आगे आकर विलक्षण प्रीतिभंगिमाओं सहित थिरकना प्रारंभ कर दिया। पू.श्रीगुरुदेव तो नृत्यकलाके अति उत्कृष्ट कलाकार थे और अतिशय पारखी भी थे, इन ब्रजवासी बालकोंमें, जो शास्त्रीय नृत्यकलाकी शिक्षा भी ग्रहण नहीं किये थे, ऐसी उत्कृष्ट कलाकी अभिव्यक्ति देखकर मुग्ध हो उठे थे। वह इन्दुलेखा बना अतिशय छोटा बालक जिसे अभी नृत्यके अभ्यासके लिये भाव-प्रौढ़त्व भी प्राप्त नहीं हुआ था, ऐसी उत्कृष्ट कलाका प्रदर्शन कर रहा था कि सभी दर्शक वाह-वाह कर रहे थे।

अब श्रीराधाबाबाने संकल्प किया कि मेरे भावानुसार तो प्रिया-प्रियतम स्वरूपधारी दोनों बालकोंको चालक एवं चारी नृत्य प्रस्तुत करना चाहिये। पू. गुरुदेवके मनमें ऐसा विचार आते ही तुरन्त रास-समाजकी सखियोंने घेरा बना लिया और प्रिया-प्रियतम बने बालक चालक एवं चारी नृत्य प्रस्तुत करने लगे।

श्रीराधाबाबा चकित थे। सर्वेन्द्रिय मनोहारी श्रृंगारमयी कल्लोलिनीकी धारा सर्वत्र प्रवहमान थी।

इस प्रकार इन अनेक दिनोंमें पू.गुरुदेवने नौ-दस प्रकारसे मन-ही -मन परीक्षायें लीं और प्रत्येक बार श्रीगुरुदेवको अपने आनुगत्यसे चकित करता हुआ ठाकुर उनके मनोगत संकल्पानुसार सारी लीला सम्पादन करता रहा। इन दिनों तो लीलाके समस्त पात्र उनके संकल्पानुसार ही कार्य कर रहे थे। इन दिनों रासलीला सम्पूर्णकर जब श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराजके साथ अपने निवास लौटते, तो उनकी विलक्षण भाव-दशा रहती थी ।

———

पू.गुरुदेवकी शय्यापर अपूर्व चिन्मय सज्जा

श्रीराधाबाबा, श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी महाराजका प्रतिदिन रासदर्शन करने आना और इन सभी महापुरुषोंके मुखमण्डलोंपर प्रतिदिवस ही परम दिव्य सात्विक अष्ट-विकारोंका प्रादुर्भाव और विकास देख-देखकर समग्र रासमण्डलीवालोंका मन इन विभूतियोंपर श्रद्धान्वित हो उठा था। फिर रारामण्डलीवाले ऐसा भी अनुभव कर रहे थे कि अधिकांश दर्शक इन तीनोंके प्रति अतिशय आत्मीयतासे परिपूर्ण हैं एवं इनके प्रति सभी पर्याप्त श्रद्धा और आदर भी रखते हैं अतः एक दिवस बिना कोई निमंत्रण पाय सभी रासमण्डलीवालोंने इनके निवास गीतावाटिका जानेका निर्णय ले लिया। श्रीठकुरी बाबूका एतदर्थ गीतावाटिका फोन भी चला गया। भाई रामदासके द्वारा सादर निमंत्रण पानेसे श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी एवं उनकी पुत्री सावित्रीबाई भी प्रतिदिन ही रासदर्शन करने पहुँच ही रही थीं । श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी तो ब्राह्मणसेवी होनेसे मण्डलीको भोजन करानेकी भी रुचि रखती थीं, परन्तु क्योंकि गीतावाटिका, जहाँ पू.पोद्दार महाराज निवास करते थे, श्रीसेठजीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी और श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) रासलीलाके विरोधी थे, उन्होंने संकोचवश मण्डलीको भोजनार्थ

नहीं बुलाया था। जब श्रीठकुरीबाबूके यहाँसे रासमण्डलीका बिना निमन्त्रण दिये ही स्वतः आगमनका समाचार अ.सौ. माताजीको मिला तो घरमें सभीको उत्साह और आनन्द ही हुआ।

श्रीठकुरीबाबूके पा घोड़ेकी एक टमटम (बग्घी) थी। अतः उसी दिन मध्याहमें भोजनोपरान्त लगभग दो-तीन बजे सभी स्वरूपोंसहित मण्डली टमटमपर चढकर वाटिका पहुँची ।

श्रीपोद्दार महाराज गीतावाटिकामें बने उनके निवास(कोठी)के ऊपरी भागमें अपना कल्याण-पत्रिकाका सम्पादनकार्य करते थे। सभी मण्डलीके परिकर टमटम (बग्घी)से उतरकर श्रीपोद्दार महाराजके कमरेमें चले गये। ठाकुरस्वरूप बननेवाले बालक घनश्याम और श्रीजीका स्वरूप धारण करनेवाले बालक कुञ्जबिहारी – दोनोंके आकर्षणके मुख्य केन्द्र श्रीराधाबाबा थे, अतः ये दोनों बालक मण्डलीके सभी समाजियोंसे पृथक् होकर चुपचाप, किसीको भी बिना बताये, श्रीराधाबाबा कहाँ रहते हैं, यह पूछते हुए उनकी कुटियाकी ओर अग्रसर हो गये। श्रीराधाबाबाकी कुटिया श्रीपोद्दार महाराजकी कोठी(निवास)के पिछवाड़े बनक्षेत्रमें अति एकान्तमें थी ।

यह वही वनक्षेत्र था, जिसमें श्रीपोद्दार महाराज देवर्षि नारद एवं अंगिराऋषिसे वार्त्तालाप कर चुके थे। उन दिनो उस वनक्षेत्रका वातावरण इतना शान्त, सात्विक था कि उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाला कोई भी व्यक्ति उस देवोपम स्थानसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता था। फिर एकाकी, लीची एवं अमरूदादि घने वन-वृक्षोंसे घिरी, दीमकलगे किवाड़ोंसे युक्त, जर्जरित, राधाबाबाकी कुटिया तो पूर्णतया उनके आराध्य, विशुद्ध सत्वके सार श्रीराधा-माधवके प्यारका प्रासाद ही थी। प्यार तो टूटे-फूटे एकाकी वन-वृक्षोंके तले निर्मित भग्न गृहोंमें ही पलता है। वैकुण्ठ एवं ब्रह्मलोकका वैभव इन स्थानोंकी तुलनामें निर्मञ्छन कर फेंक देनेके तुल्य ही प्रतीत होता है। बालक घनश्याम और श्रीजी बननेवाले बालक, दोनोंने चुपचाप कुटियाके पिछवाड़ेमें बनी एक गवाक्षिकासे झाँककर देखा – पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा अपनी कुटियामें लेटे-लेटे ही जप कर रहे थे । उनके दक्षिण हाथमें तुलसीकी माला थी और वाम हस्तमें मालाओंकी गिनती करनेके लिये कमलाक्षकी माला थी । पू.गुरुदेवके नेत्रोंसे टप-टप स्नेहाश्रु झर रहे थे। नयनोंसे झरते अश्रुविन्दुओंने उनके मस्तकको आधार देनेवाले उपधान (तकिये) के अर्धभागको पूरा गीला कर दिया था।

ठाकुर घनश्याम, श्रीकिशोरी बननेवाले बालक – कुञ्जबिहारीको पू.राधा-बाबाकी वह अलौकिक प्रेमभरी छवि दिखाने लगा। कुछ क्षण तो दोनों ही बालक उस अति नेहिल छविको विस्मित हुए-से देखते रहे तत्पश्चात् दोनों ही उस कुटियाके मुख्यद्वारकी ओर चले आये ।

श्रीराधाबाबाकी यह एक विलक्षण सिद्धि ही थी कि वे परिचित-अपरिचित सभी व्यक्तियोंको अपने-से-अपने लगते थे। इस सिद्धिका कारण जीवमात्रके प्रति उनका अतिशय विकसित आत्मभाव ही था। ब्रजभूमिसे समागत बालकद्वय भी पू.राधाबाबाकी इस आत्मभावनाके वर्त्तुलमें निस्संकोच प्रविष्ट हो गये और अपनी बालसुलभ चपलताका अति निस्संकोचभावसे प्रदर्शन करते हुए उनका निरुद्ध द्वार खटखटाने लगे । किसी साधननिरत साधुको इस प्रकार विक्षेप नहीं करना चाहिये – इस शिष्टाचारकी भावनाको उनके भीतर उत्पन्न निस्संकोच प्रेम और आत्मभावने पूरा समावृत कर लिया था। उन्हें श्रीराधाबाबा श्रद्धाभाजन लग ही नहीं रहे थे । उनके लिये तो वे महात्मा थे ही नहीं, अपने-से-अपने आत्मीयजन बाबा थे, जिनसे वे निस्संकोच सहज चपल बाल-क्रीड़ा करनेका पूर्ण अधिकार रखते थे ।

पू. गुरुदेव उठे। उन्होंने हाथकी माला पूरी किये बिना ही तकियेके नीचे रखी। अश्रुसिक्त तकियेको एक लघु वस्त्रसे ढँका और अपने बहते अश्रु पौंछकर दरवाजा खोलनेको उद्यत हुए। पू.गुरुदेवने ज्योंही दरवाजा खोला बिना किसी पूर्व सूचनाके समागत दोनों बाल-अतिथि ठाकुर एवं ठकुरानीको सम्मुख पाकर चकित हो गये। कुटिया भी उनकी अति लघु ही थी। अतः दोनों बालकोंको अपने गेरुवे-वस्त्रावृत पट्टेपर ही उन्हें आसीन कराना पड़ा । वे स्वयं नीचे भूमिपर ही उनके चरणोंमें बैठ गये। युगल बाल-स्वरूपोंके मनमें तो किसी भी प्रकारके संकोचका कोई प्रश्न ही नहीं था, वे दोनों निस्संकोच पू. गुरुदेवके शय्या-पट्टपर बालचापल्य करने लगे ।

पू.श्रीगुरुदेवके पास सुगन्धित पुष्पोंके सुन्दर गुँथे हुए दो हार रखे थे । उन्होंने एक पुष्पहार ठाकुर बननेवाले बालकको एवं दूसरा पुष्पहार श्रीजी बननेवाले बालकको पहना दिया।

श्रीराधाबाबाकी दृष्टिमें तो दोनों बालक प्राकृत ब्रजभूमिके किसी ब्रजवासी ब्राह्मण गृहस्थकी कामज सन्तान थे नहीं, उन्हें तो वे उनके परमा-राध्य तत्वकी पूर्ण संग्राहक दो विभूतियाँ ही प्रतीत हो रहीं थीं।

कहते हैं कि सर्वप्रथम ब्राह्मण ब्रजवासी बालकोंद्वारा रासाभिनयका प्रारम्भ अनन्य-रसिकाचार्य स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज द्वारा कराया गया था। किंवदन्ती तो यही है कि स्वामीजी इन स्वरूपधारी ब्रजवासी बालकोंको अनादि, अनन्त, अजन्मा, साक्षात् कुञ्जबिहारी एवं निकुञ्जबिहारिन स्वामिनीजी ही समझा करते थे । वे इन्हें दिव्य चिन्मय प्रेम-पुत्तलिकायें मानकर स्वयं इनकी सहचरी होकर इनके नित्य विहारसुखसिन्धुमें डूबे रहते थे । हरिदास स्वामीजी श्रीललिता सखीके अंशरूपमें अवतरित माने जाते थे । उनकी निष्ठाको लेकर आज भी वृन्दावनमें निधिवनमें प्रतिदिन रास होता है ।

इसी परंपराका पालन करते हुए श्रीवीठलविपुलजी भी जो स्वामी श्रीहरिदासजीके प्रमुख शिष्य थे, इन ब्रजवासी रासाभिनय करनेवाले बालकोंमें चिन्मय भाव ही रखते थे। ये निधिवन(वृन्दावन) में रहते और श्यामाश्यामके नित्य विहारसुखमें ही तल्लीन रहते । अपने गुरु स्वामी श्रीहरिदासजीके नित्यलीलाप्रवेशपर इन्हें असह्य विरहवेदना हुई। इन्होंने अन्न-जल त्यागकर मौन धारण कर लिया और संसार-दर्शनका निषेध करते हुए अपनी आँखोंमें पट्टी बाँध ली। ये स्वामीजी श्रीहरिदासजीके पश्चात् सम्प्रदायके प्रथम आचार्य हुए हैं ।

इस सम्बन्धमें ब्रजवासी भक्तोंमें यह सवैया कहा जाता है:—

स्वामी हरिदास बिनु भयो है वियोग भारी
भूल गये खान-पान महा खेद पायो जू
बाँधि लईं आँखैं अभिलाषै कबै जाय मिलौं
छाय रह्यौ प्रेम उर बोलिबो गमायौ जू ।।
बिट्ठल बिपुल नाम तिनकी निहार गति
चकित चकोर चित सोचमें समायो जू।।

श्रीबीठलविपुलजीकी ऐसी दशा देख सन्त-समाजमें खलबली मच गयी। सबने मिलकर उनका यह मरणव्रत छुड़ानेकी योजना बनायी। रासानुकृति करनेवाली ब्रजवासीमण्डलीको आमंत्रित किया गया। श्रीवीठलविपुलजीको रासदर्शन करनेके लिये आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया गया। वे सभी सन्तोंका अतिशय आग्रह देख रास-दर्शनार्थ पधारे। रास प्रारंभ हुआ। पूर्व निर्धारित योजनानुसार रासलीलामें बनी स्वामिनीजी नृत्य करती-करती वीठलविपुलजीके पास पहुँची। सन्तोंकी सिखावनके अनुसार उन्होंने उनका हाथ पकडकर

कहा—"बाबाजी ! नेत्र खोलो, मेरे दर्शन करो !"

स्वामी वीठलविपुलजी स्वामिनीजीकी आज्ञाका उल्लंघन भला कैसे करते ? उनकी पट्टी जैसे ही खुली, उन्हें उसी रासधारी ब्रजवासी बालकमें साक्षात् स्वामिनीजीके दर्शन हुए, साथ ही सखी ललितावेषधारी स्वामी श्रीहरिदासजीके भी उन्हें वहीं दर्शन हुए जो स्वामिनीजीके पार्श्वमें ही उनकी सेवामें नियुक्त थे। साक्षात् स्वामिनीजी एवं गुरुदेव दोनोंको ही अपने सम्मुख पाकर उनके मुखसे इतना ही निकला :

करुणानिधि मम स्वामिनी तुम पकरयौ मम हाथ।
अब अतिशय करुणामयी राखौ अपने साथ।।

कहते हैं, तत्क्षण ही स्वामिनीजी उन्हें अपने साथ ही भावदेहसे निकुञ्जमें लिवा ले गयीं । वैष्णवोंको उनके निर्जीव शरीरकी ही प्राप्ति हुई ।

श्रीसन्तप्रवर रससागर प्रियादास महाराज कहते हैं—

स्वामी हरिदासजी को दास नाम वीठल है
गुरु सौं वियोग दाह उपज्यौ अपार है।
रासके समाजमें विराजे सब भक्तराज
बोलिकै पठाये, आये आज्ञा बड़े भार है।।
युगल स्वरूप अवलोकि नाना नृत्यभेद
गान-तान सुनि कान रही ना सँभार है।।
मिलि गये वाही ठौर पायौ भावतन और
कहै रस-सागर सो ताको यो विचार है।।

इसी प्रकार वृन्दावनके अन्य रसिक सम्प्रदायोंमें भी रासाभिनय करनेवाले बालकोंके प्रति साक्षात् प्रिया-प्रियतम भाव ही रहा है । श्रीहरिराम व्यासदेवजी श्रीहितहरिवंशजीके शिष्य थे। ये युगलकिशोर श्रीराधावल्लभजीकी सेवामें आठों प्रहर तल्लीन रहते और उन्हें अनेकों सात्विक श्रृंगारभावोंसे लाड़ लड़ाते। ये भी रासलीलाभिनयदर्शनके अनन्य रसिक थे। उनकी निम्न उक्ति इसका प्रमाण है:—

नैन न मूँदै ध्यानकौं करै न अंगन न्यास ।
नाच गाय रासहिं मिलैं बसि वृन्दावन बास ।।

एक बार व्यासदेवजी रासलीलादर्शन कर रहे थे। रासमें नृत्य करते-करते राधारानीके चरणोंका एक नूपुर निकल गया। श्रीव्यासदेवजी भावनिमग्न थे ।

उन्हें तो रासधारी बालकके रूपमें साक्षात् चिन्मय श्रीराधाकृष्ण ही दिख रहे थे। वे अतिशय भावावेशमें नूपुर बाँधनेको उठे। उन्हें डोरा कहाँसे मिलता। उन्होंने अपना यज्ञोपवीत तोड़ा और उससे वह नूपुर बाँध दिया। वैदिक धर्म और सामाजिक रीतिनीतिके प्रतीक उस यज्ञोपवीतको श्रीराधारानीके चरणोंमें समर्पित करनेकी निष्ठासे श्रीराधारानीने उन्हें रासेश्वरीके रूपमें तत्क्षण ही दर्शन दे दिये ।

पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन दोनों ठाकुर एवं श्रीजीका वेष धारण करनेवाले बालकोंको अपने शय्या-पट्ट पर बिठाकर और स्वयं उनके चरण प्रान्तमें बैठकर इन्हीं पुरातन वैष्णवाचार्योंकी रास-निष्ठाके गहन विचारोंमें डूबे थे। कितना समय व्यतीत हो गया, उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा। इधर मण्डलीके सभी समाजी पोद्दार महाराजके पास बैठे दोनों स्वरूपोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः उन्होंने पू. गुरुदेवको भी वहीं बुलानेके लिये सन्देश भेज दिया। पू.गुरुदेव सन्देश पाकर तुरन्त संवरित हो, खड़े हो गये और रासधारी दोनों बालकोंको लेकर पोद्दार महाराजके कमरेकी ओर चल पड़े। दोनों बालकोंमें स्वाभाविक चंचलता तो थी ही। वे अपनेको पहनाये गये गजरोंको वहीं पू.गुरुदेवके शय्या-पट्टपर छोड़ उनके साथ हो लिये। कुछ क्षण तो बालकोंने पू.गुरुदेवका अनुगमन किया तत्पश्चात् पुनः उन्हें छोड़कर उनकी कुटियामें अकेले ही चले गये। इन दोनों बालकोंने पुनः कुटियामें आकर उन दोनों गजरोंको श्रीराधा-बाबाके शय्यापट्टपर इस कलात्मक रीतिसे सजाया कि देखनेवाला आश्चर्यचकित हो उठे। इस प्रकार दोनों गजरोंसे श्रीगुरुदेवका शय्यापट्ट सजाकर कुटियाके पट यथावत् बन्दकर दोनों ही अपने संगी-साथियोंसे आ मिले।

श्रीपोद्दार महाराज तो रासधारियोंका सत्कार करनेके लिये ही पू.राधा बाबाको और दोनों स्वरूपोंको स्मरण कर रहे थे, अतः जैसे ही वे वहाँ उनके पास पहुँचे रासधारियोंका चरणपूजन एवं सत्कार प्रारंभ होगया। सभी स्वरूपोंको यथाशक्ति अधिक-से-अधिक सम्मान देकर उन्हें बिदाई दे दी गयी । बचे लोग अपनी बर्ध्धीपर बैठकर अपने डेरेपर वापस लौट गये।

स्वरूपोंके बिदा होते ही पू.गुरुदेव अपनी कुटियापर पहुँचे। उनकी दृष्टि अपने शय्यापट्टपर स्वाभाविक ही गयी। वे शय्यापट्टपर किया गया श्रृंगार देख आश्चर्यचकित थे।

पू.राधाबाबाने अपने भावराज्यमें आज निकुञ्जमें स्वयं अपने हाथों

श्रीयुगलसरकारका पुष्पाभरणोंसे जो श्रृंगार किया था, जिस भाँतिसे उनकी शय्या निर्माण की थी! उस भावशय्यामें प्रिया-प्रियतमको आसीनकर पुष्पमालाओंसे उनकी जैसी सज्जा की थी, हू-ब-हू वही छवि यहाँ उनके नेत्रोंका दृश्य बन रही थी। कहीं किसी भी अंशमें कोई त्रुटि नहीं रही थी। इन दोनों ब्रजवासी बालकोंको उनके भावजगत्का क्या पूरा-पूरा ज्ञान है ? क्या ये सचमुच ही अन्तर्यामी हैं ? क्या ये ब्रजवासी बालक न होकर सचमुच ही सर्वनियन्ता मेरे आराध्य श्रीकृष्णचन्द्र और श्रीराधा ही हैं ? क्या सचमुच ही मेरे आराध्यका आत्मप्रकाश इन बालकोंमें हो रहा है ? मेरा भावजगत तो परम चिन्मय है, मायिकसृष्टिमें उसकी अभिव्यक्ति तो असंभव है, फिर मेरी इस प्राकृत कुटिया और शय्यापट्टपर यह चिन्मय जगत्का उन्मेष कैसे मेरा दृश्य बन रहा है ? मैंने अपने भावजगतमें चिन्मय वृन्दावनके जिन पुष्पोंके सुगुम्फनसे जो अति रसमयी सुष्ठु आकृति बनायी थी, प्रथमतया तो उसकी प्राकृत अनुकृति ही संभव नहीं है, फिर इन दोनों ब्रजवासी बालकों द्वारा निर्मित इस कलाकृतिसे मेरे भावजगतकी मालाओंका सर्वांशतः साम्य कैसे संभव हुआ ? इन बालकोंको मेरे भावका ज्ञान ही कैसे हुआ ? और उन्होंने एक पंखुड़ीकी भी भूल न कर ठीक यह संरचना कैसे कर डाली ? मेरे भाव-वृन्दावनके पुष्प तो आनन्दात्मक, चिदात्मक हैं। वहाँका तो सबकुछ ही सर्वथा विशुद्ध, अपने कारणसे अभिन्न, अनिर्वचनीय है। फिर इन ब्रजवासी प्राकृत बालकोंने मेरे अप्राकृत भावसृजनका ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया और उसकी अनुकृति कैसे कर डाली ?

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन विचारोंमें बहते-बहते जड़वत् खड़े-के-खड़े रह गये। उन्हें दो वर्ष पूर्वकी स्मृति हो आयी। उनके आराध्य भगवान् श्रीकृष्णने आजके ठीक दो वर्ष पूर्व उन्हें प्रभातकालीन ध्यानमें कहा था —"**मैं लगभग दो वर्ष पश्चात् तेरे पास रासके ब्रजवासी ठाकुरमें उन्मिषित होकर आऊँगा।**" पू. गुरुदेवको उनके शय्यापट्टपर निर्माण की गयी पुष्पमालाओंकी सुसज्जा-शैली यही स्मृति करा रही थी ।

सबसे पहले आप मेरे कपोलपर चपत लगावें

रासका ठाकुर बालक घनश्याम श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको दादाजी कहता है। आज उसके दादाजीके यहाँ सभी मण्डलीका भोजन-निमन्त्रण है। सभी ब्रजवासी मण्डलीमें उत्साह है। इधर श्रीगोस्वामीजीकी पत्नीने रात्रिपर्यन्त जागकर पक्वान्न निर्माण किये हैं । गोस्वामीजीने भी उत्साहपूर्वक अपने घरको कदलीखम्भोंसे सज्जित किया है। आँगनमें बन्दनवारें बाँधी हैं । प्रातःसे ही गृहद्वारपर तोरण सजानेमें सभी इष्टमित्र संलग्न हैं। प्रातः होते ही स्वर्णिम रविरश्मियोंने श्रीगोस्वामीजीके घरको ज्योंही आलोकित किया, वे भी आनन्दोल्लासमें भर उठीं ।

कदली-स्तंभ, मंगलघट, बन्दनवारों एवं पल्लव-पुष्पोंसे ही सारे घरको मानो भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी पत्नीका मन रोम-रोमसे उल्लसित है। वह पाक-रचनामें रात्रिभरसे लगी है।

"आज मेरा जन्मधारण सफल हो गया। मेरे नेत्र भी सफल हैं। मेरा कुल, मेरी विद्या, मेरी सभी पुण्यराशिका फल मुझे प्राप्त हो गया। मेरा सारा परिवार कृतार्थ हो गया। अपने पुरुषार्थसे नहीं, मेरे अग्रज धर्मभ्राता भाईजी श्रीपोद्दार महाराजके संगने मुझे सर्वथा कृतार्थ बना डाला। मेरे घरपर आज वे बालक भोजन-प्रसाद ग्रहण करेंगे, जिन्होंने रासलीलानुकरण करके प.पू. श्रीराधाबाबा एवं स्वयं श्रीपोद्दार महाराज जैसे पुण्यपुरुष सन्तोंको भावविभोर कर दिया और मुझे भी अलौकिक चिज्ज्योतिके दर्शनसे कृतकृत्य कर दिया।"

"जिस बालकमें अनादि मोहान्धकारको सर्वथा नष्ट कर देनेवाले विशुद्ध ब्रह्मरूप अंकुरका उन्मेष होता है; जिसपर मेरे गुरुतुल्य पू.राधाबाबाके इष्ट मूर्त्त होजाते हैं; जो उनके इष्ट – साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके पूर्व निर्देशानुसार हम सबको दर्शन देकर कृतार्थ करने ब्रजप्रदेशसे यहाँ गोरखपुर आया है; जिसका मानस इतना पवित्र है कि संतोद्घोषित परम आनन्द सुधा-सागरका उद्गमस्थल जिसमें लीलायमान हो उठता है, जो बालक यंत्रवत् श्रीराधाबाबाके मानस-संकल्पोंको अपने लीला-आचरणोंमें अवतरित कर देता है

ओह ! वह आज मेरे घरपर अपना प्रसाद बिखेरेगा !"

परम श्रद्धापूत अन्तःकरणधारी श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी इन्हीं विचारोंमें डूबे, उन पावनतम क्षणोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब स्वरूपधारी सभी बालकोंके चरण-प्रक्षालनकर, चरणोदक ग्रहणकर, वे कृतकृत्य हो उठेंगे।

इधर तो श्रीगोस्वामीजी उत्सवावेशमें रात्रिभर विलक्षण भावदशामें स्थित रहे, उधर ठाकुर बननेवाला बालक घनश्याम भी निशापर्यन्त विलक्षण प्रेमदशामें विभोर रहा है । उसे रात्रिभर स्वप्न भी अपने 'दादाजी'के ही आते रहे हैं। अपने 'दादाजी'के पास पहुँचनेको बालक घनश्याम आतुर है। स्नेह चाहे सर्वथा ही निराविल, पूर्णतया निरपेक्ष ही क्यों न हो, स्नेहास्पदको आकर्षित तो करता ही है। बालक घनश्यामको दादाजीके स्नेहने मध्याह्नके पूर्व ही क्षुधातुर कर दिया है। मण्डलीवाले शीघ्र स्नान करें, अपने भालपर शीघ्र तिलक-छाप लगावें और ठकुरीबाबूके प्रांगणके कोनेपर पड़ी बग्घीपर शीघ्रातिशीघ्र सवार होकर गीतावाटिका प्रस्थान करें, उसे यही त्वरा है। वह बार-बार झुँझलाता है, बग्घीके अश्ववाहकको शीघ्र आनेका सन्देश भेजता है, परन्तु उसकी इस त्वराका दूसरे अन्य सदस्योंपर अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं देख, वह झुँझलाता है। अन्ततः उसकी मनोदशापर स्वयं भगवती लीलाशक्ति योगमायाको कान देने पड़ते हैं, ब्रजवासी रासधारियोंको शीघ्र भिजवाने संबंधी फोन गीतावाटिकासे आ जाता है ।

ठकुरीबाबूकी बग्घी तो जैसी है, वैसी ही है, परन्तु आज उनके पुत्रने उस बग्घीपर नवीन तूलपुष्ट आस्तरण(रूईभरा तोषक) लगा दिया है। तोषकके चारों ओर सेमररूईसे भराये हुए उपधान(तकिये) भी लगे हैं । श्वेत रेशमी चादर उस टमटमपर बिछायी गयी है, जो अतिशय सुन्दर फब रही है। घोड़ेकी लगाम भी रेशमकी लाल डोरीसे गूँथकर निर्मित करायी है। इसी बग्घीपर कौमारवयके मण्डलीके सभी परिकर बैठ जाते हैं, स्वामी और समाजी लोगोंके लिये बगीचेसे 'नैश' विदेशी मोटरगाड़ी भेजी गयी है। स्वामी श्रीरामजी सभी बालकोंको संयत रहने और शैशवजन्य उत्पात नहीं करनेका निर्देश देकर बग्घीको आगे बढाते हैं । सभी सोल्लास वायुकी लहरकी तरह शीघ्र ही बगीचे पहुँच जाते हैं और तब श्रीगोस्वामीजीके गृहप्रांगणकी ओर चल पड़ते हैं ।

गृहद्वारपर ही गोस्वामीजी ब्राह्मणोचित मर्यादाका पालन करते हुए

आम्रपल्लवयुक्त रजतघट लेकर सभी मण्डलीका वेदमन्त्रोंसे स्वस्त्ययन करते हैं और अपने पूजाके कमरेमें सभीको आसन देकर बैठाते हैं। क्रमशः सभीका पूजन होता है। वे अपने हाथों सभीके चरण प्रक्षालन करते हैं, और चरणोदकको सभी कुटुम्बीजनोंमें वितरण करते हैं ।

इस प्रकार भोजनोपरान्त वस्त्राभरण समर्पित कर गोस्वामीजीके घरसे स्वरूपोंको बिदा कर दिया जाता है। विदाई बेला भी अभूतपूर्व होती है। पू. राधाबाबाकी छोटी मैया(श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीकी धर्मपत्नी) दोनों स्वरूप श्रीराधा एवं श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बैठाकर आरती करवाती हैं। सभी मोहल्लेकी स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं। तुमुल जयध्वनि होती है। उस अपूर्व प्यारभरे सम्मेलनका दृश्य देखकर उस समय हम सभीके तो पलक पड़ने ही बन्द हो जाते हैं। हम सभी देखरहे थे –

"दोनों ही राधाकृष्ण बननेवाले बालक परस्पर नेत्र मिलाये अभूतपूर्व सुन्दर लग रहे थे। श्रीगोस्वामीजीकी धर्मपत्नीका कलेवर भी प्रेमावेशसे निस्पन्द था। उसके एवं गोस्वामीजीके नेत्रकोण अश्रुपूरित थे। वास्तवमें तो दोनों वात्सल्य-सघनमूर्ति दम्पतीका प्रेम-विगलित चित्त ही अश्रुमिषसे नेत्रोंके द्वारा प्रवाहित हो रहा था और बाह्यवक्षको भिगो रहा था। यों, होना तो चाहिये था श्रीकृष्ण स्वरूपको काला और राधास्वरूपको गोरा, परन्तु वस्तुतः श्रीकृष्ण बननेवाला बालक घनश्याम गोरा था और राधा बननेवाला बालक कुञ्जबिहारी किंचित् कृष्णवर्ण(साँवला) था। उस समय इन दोनों स्वरूपोंमें सभीको ऐसी प्रेमासक्ति और प्रेमावेश अनुभव हो रहा था कि यही लगता था मानों सबसे बड़ा निबन्धन यदि विश्वमें कुछ है तो वह प्रेमबन्धन ही है।"

इस नेहोत्सवका समापन होते-होते अपराह्न हो चला। ठाकुर रात्रिभरका जगा था, अतः उसे निद्रा सता रही थी। वह शीघ्र ही अपने निवास चला जाना चाहता था। अतः गीतावाटिका आकर वह तत्क्षण ही बग्घीपर आसीन हो गया। ठाकुरके बग्घीपर बैठते ही सभी स्वरूप बननेवाले बालक भी बग्घीपर बैठ गये। परन्तु अबतक श्रीजीके स्वरूप बग्घीपर नहीं आये थे। समाजी, स्वामी श्रीरामजी एवं अन्य कीर्तनिया मृदंगवादकादि तो मोटरसे पहले ही चले गये थे। ठाकुर और स्वरूपोंको सायं पुनः रास करना है, अतः उन्हें विश्रामकी भी आवश्यकता थी। परन्तु सभीके जा पानेमें श्रीजीके नहीं होने से विलम्ब हो रहा था। ढूँढ़नेपर पता चला कि श्रीजी-स्वरूप श्रीराधाबाबाके पास कुटियामें

आसीन है। वह पू. गुरुदेवसे प्रेमालाप कर रहा था। बालक घनश्यामको पहले तो यही अच्छा नहीं लगा कि श्रीजी अकेले ही राधाबाबाके पास क्यों चले गये ? दूसरे उसके बुलानेपर भी वे पुनः तुरन्त क्यों नहीं वापस आ रहे हैं। उसमें बालोचित अधिकारभावना बलवती हो उठी थी। उसने त्वरा करते हुए दो-तीन बार श्रीजी बननेवाले बालकको बुलाया। इसके उपरान्त भी जब वह बालक नहीं आया तो ठाकुर बननेवाले बालक घनश्याममें तमतमाहट आगयी ।

पू.गुरुदेवसे वार्ता करते हुए श्रीजी बननेवाले बालकमें इतनी नेह-रसतन्मयता थी कि पू. गुरुदेव उसे जाने नहीं दे रहे थे, और उसकी स्वयंकी उठनेकी इच्छा तनिक भी नहीं हो रही थी ।

इधर ठाकुरने रोषमें भरकर कहना प्रारंभ कर दिया कि 'क्या श्रीजी राधाबाबाके घरकी हैं सो वे मेरे बुलानेके उपरान्त भी उसे आने नहीं देते ?' उसमें ठाकुरपनेका गर्व छलक आया था और साथ ही श्रीजीपर अपने अधिकारकी भावना भी।

यह सब हो ही रहा था कि श्रीजी बाबाके पाससे आ गये और सभी स्वरूप बग्घीसे निवास चले गये। उन स्वरूपोंके विदा होनेपर किसीने बालक घनश्यामका तमतमाना और उपयुक्त उक्ति कहनेकी बात पू.गुरुदेवसे कही। यह सब सुनकर पू. गुरुदेव विलक्षण भावधारामें डूब गये।

वे इसी ऊहापोहमें थे कि जब मेरे भावजगतके आराध्य श्रीकृष्ण ही इस ब्रजवासी ठाकुर-वेषधारी बालकके देहको यन्त्र बनाकर क्रियाशील हो रहे हैं, फिर इस बालकने ऐसी उच्छृंखल उक्ति कही ही कैसे ?

उन दिनों पू.गुरुदेव, श्रीजीकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा (अनंगमञ्जरी)के भावमें रहते थे। कोई नहीं जानता था कि पू. राधाबाबाके चित्तके धरातलमें उफनती मधुरातिमधुरतम कैशोर चेष्टाओंसे इस गीतावाटिका रूप ब्रजधरामें कैसी उफनती आनन्द-मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही है। सम्पूर्ण बगीचेवासी, सम्पादकमण्डलमें कार्यरत व्यक्ति, दूर-दूरसे समागत श्रीपोद्दार महाराजके अतिथि, सभी तो उसमें अलक्षित रूपसे अवगाहन करके कृतार्थ होते रहे हैं। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं भी इस रसमन्दाकिनीके परमानन्द-वितरण-महोत्सवका अति रसभरा आस्वादन लेते हुए ईसवी सन् १९३९ तदनुसार वि.सं.१९९६से ही क्रमशः उत्तरोत्तर उल्लसित होते रहे हैं। अपने शिष्यके इस त्रिजगन्मंगलकारी परमानन्दवितरण-महोत्सवमें हाथ बँटानेके

लिये ही मानो पोद्दार महाराज स्वयं भी साथ हो लिये हैं । श्रीपोद्दार महाराज प्राकृत जगत्के सम्मुख भले ही थुल-थुल तोंदिल वैश्यजातिके महानुभाव हों, परन्तु वस्तुतः तो वे साक्षात् मन्मथ-मन्मथ-मानस-मन्थिनि श्रीराधारानी, श्रीजी ही हैं। इन साक्षात् श्रीजीके अष्टयाम छायावत् साथ रहनेवाली मञ्जुश्यामा – उनकी छोटी बहिन ही यदि श्रीजीके घरकी नहीं है तो फिर श्रीजीके घरका क्या ठाकुर ब्रजराजतनय है? श्रीजीपर जो उनकी अनुजाका अधिकार है, वह ब्रजराजतनयका कैसे हो सकता है ? आजतक तो यही हुआ है कि उनकी अग्रजा राधारानीकी कैशोर वयोचित भंगिमाओंको देखनेके लिये ठाकुर उनके चरणोंमें गिरकर सदा प्रार्थना करता आया है ! मेरी भगिनीके घरकी मैं नहीं हूँ तो फिर क्या ठाकुर उसके घरका है ? क्या मेरी अग्रजा बहिनसे मेरी साधिकार अन्तरंगता ब्रजराजतनयसे छिपी है ? इस ठाकुर-वेष धारण करनेवाले ब्रजवासी बालकने, यदि सत्यांशमें यह मेरे आराध्य निकुञ्जेश्वरकी छाया लिये है, तो ऐसा उच्छृंखल आचरण कैसे किया ? मैं क्या मेरी सहोदरा बहिनके भी घरकी नहीं हूँ ? क्या मैं बृषभानु एवं कीर्तिदाकी पुत्री नहीं हूँ ? क्या मैं श्रीदाम भैयाकी सर्वाधिक लाडिली मंजुरानी नहीं हूँ ? यदि इन सभी तथ्योंसे ठाकुर परिचित है,तो इस प्रकारकी उच्छृंखल वार्त्ता वह कैसे कर गया ?मेरे आराध्य श्रीकृष्ण तो कदापि ऐसा नहीं कह सकते ! वे तो मेरे प्राणपति हैं। उन्हें तो पूरा पता है कि मेरी सहोदरा रानीपर मेरा कितना आन्तरिक अधिकार है ? ठीक है, नन्दतनय हम सभीके नयनतारा हैं, परन्तु मेरे एवं मेरी अग्रजा रानीके प्राणोपम नैकट्यसे वे अनजान कैसे हो सकते हैं ?

पू. गुरुदेव बहुत कालतक तो इन्हीं विचारोंमें लहराते रहे, फिर उन्होंने निश्चय किया कि वे बालक घनश्यामसे मिलने जावेंगे और उसके सही आन्तरिक भावोंका स्वयं पता लगावेंगे। हो सकता है, दूसरोंके द्वारा कथनमें सत्य वस्तु नहीं उभर पायी हो। इसी ऊहापोहमें उस दिवस सायंकालको वे रासलीलादर्शन करने भी नहीं जा पाये। रातमें भी वे इन्हीं विचारोंमें डूबे रहे। स्वप्नमें भी उन्हें अपने आराध्य श्रीकृष्णके दर्शन होते रहे। वे स्वप्नमें निशापर्यन्त देख रहे थे कि उनके प्रियतमके लीलामाधुर्यकी इयत्ता ही नहीं है। वे तो एक अनन्त असीम पारावार-विहीन प्रेमसुधा-सिन्धुके समान हैं, जिसमें उत्ताल तरंगें उठ रही हैं । तरंगें नाचती हैं और रासधारी ठाकुर बने बालक घनश्यामको अपने अञ्चलमें छिपा लेती हैं । फिर वहाँसे उन्मादिनीकी तरह

हँस-हँस कर सभी दिशाओंमें फैल जाती हैं तथा तब सारे ब्रजपुरको, समस्त विश्वको प्लावित कर देती हैं ।

इन्हीं तरंगोंसे सिक्त अपने हृदयमें अपने प्रियतम श्रीकृष्ण और प्रियतमा सहोदरा रानीके प्रतिबिम्बित चन्द्रमुखको निभृत निकुञ्जमें युगनद्ध बाहुयुगल मञ्जुश्यामाभावमें श्रीराधाबाबा अनवरत देखते, सोये रहे । आज एक प्रहरसे अधिक रात्रि अवशिष्ट थी, तभी वे जाग गये थे। वे स्नानादिसे निवृत्त होकर अपनी कुटियाके एक कोनेमें लगे आसनपर बैठ गये और भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अर्चनामें संलग्न हो गये। आज एक प्रहर दिनतक वे पूजामें ही संलग्न रहे और उन्होंने अपनी प्रातः एवं मध्याह्न दोनों कालकी पूजा एक साथ ही सम्पन्न की ।

अब एक प्रहर दिन चढ़ आया था । अभी भी ब्रजवासी ठाकुरको अनुशासित करनेका भाव उनके मनसे नहीं हटा था। पू. गुरुदेवके मनमें बालक घनश्यामके सही अन्तरिक भावोंको अन्वेषण करनेकी जिज्ञासा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी । उन्होंने मोटरगाड़ी श्रीपोद्दार महाराजसे माँगी और जहाँ रासमण्डली ठहरी थी, वहीं ठकुरीबाबूके घरकी ओर मोटरगाड़ीमें बैठकर चल पड़े ।

जब पू. गुरुदेव स्वरूपोंके निवासकी ओर बढ़ रहे थे , तो उस समय उनके मनमें यही विचार उठ रहा था कि पहुँचते ही सबसे पहले ठाकुर घनश्यामको चपत लगाऊँगा और तब उससे इस अनर्गल वार्त्ताका हेतु जाननेकी चेष्टा करूँगा । मनोरथोंके प्रवाहमें बहते हुए ही पू.श्रीराधाबाबाने अपना कार्यक्रम भी निर्धारित कर लिया था ।

लगभग मध्याह्न हो चला था। उस समय सभी स्वरूप अपने निवासके ऊपरी कक्षमें भोजन कर रहे थे । एकमात्र ठाकुर-स्वरूप धारण करनेवाला बालक घनश्याम ही नीचे, घरके बाहरी चबूतरेपर चुपचाप टहल रहा था ।

जैसे ही पू. गुरुदेवकी मोटरगाड़ी चबूतरेके पार्श्वमें खड़ी हुई सभी मण्डलीवालोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अमृत पीकर आनन्दोन्मत्त हुए प्राणीकी तरह बालक घनश्याम तो दौड़ पड़ा । सभी मण्डलीवाले भोजन करते-करते ही अञ्जलि बाँधकर ऊपर दूसरे तल्लेकी गवाक्षिकासे ही प्रणाम करने लगे। भक्तिके प्रबल आवेगसे सभी चञ्चल हो रहे थे, उन्हें भोजन स्वादिष्ट ही नहीं लग रहा था। अत्यंत उल्लसित हुआ बालक घनश्याम लपक

कर पू. गुरुदेवकी मोटरतक आगे बढ़ा। पू. गुरुदेव कारमें ड्राइवरके पास अगली सीटपर बैठे थे। बालकने अगली सीटका दरवाजा खोला और पू. गुरुदेवको हाथ पकड़कर उतारा। किसी विद्युल्लहरीने पू. राधाबाबाको स्पर्श कर लिया हो, इस तरह वे आसनसे उठ पड़े । बस, मोटरके बाहर आकर खड़े ही हो सके कि घनश्याम बोल उठा –" सबसे पहले आप मेरे कपोलोंपर चपत तो लगाइये । "

पू.गुरुदेवने बालकके मुखसे जैसे ही अपने मनकी सोची हुई बात सुनी, वे भाव-विभोर हो उठे । इसके पश्चात् तो उनका शरीर जड़वत् हो गया। वे रासधारियोंके भोजनके बगलवाले कमरेमें जाकर ध्यानस्थ हो गये। मैं उनके साथ ही मोटरमें आया था। मैंने देखा– " उनके नेत्र स्थिर हैं, किन्तु अन्तरमें पूर्ण चेतना थी । पू. गुरुदेव स्पष्ट सब कुछ अनुभव कर रहे थे ।" पू.राधाबाबाके आगमनका समाचार सुनकर ठकुरीबाबू भी चले आये थे । पू. राधाबाबा उनसे बोलनेकी आन्तरिक चेष्टा रखते हुए, अवरुद्धकण्ठ बोल नहीं पा रहे थे । ठाकुर घनश्याम उनके पास ही खड़ा उनकी दशा देख रहा था । उसे देखते हुए पू. गुरुदेवका मन मूक भाषामें कह रहा था–
"गोलोकविहारिन् ! तुम्हारी जय हो ! जय हो !! तुम मेरे प्रेम-मसृण चित्तमें अपने ऐश्वर्यका एक सैकत-कण भी नहीं बिखेरते हुए एवं मेरे साथ अपने समग्र मधुर सम्बन्धोंके सत्यकी रक्षा करते हुए, मुझे अपनी जो रासलीला दिखा रहे हो और मुझसे, जैसी भी अल्पतम सेवा संभव है, उसे स्वीकार कर रहे हो, यह मात्र तुम्हारी मुझपर अपार अनुकम्पा ही है। अनन्त करुणार्णव !! अपनी अनन्त करुणाका एक विन्दु देकर मेरे लिये इतना ही
विधान कर देना – यह राधाबाबा नामक प्राकृत शरीर जबतक रहे और तुम भी घनश्याम नामसे इस शरीरमें रहो, मेरे संग इसी प्रकार क्रीड़ा करते रहना। मेरे साथ तुम्हारी गोपन एवं अवगुण्ठित, प्रकट अथवा मूक, सेवा-भावना सदैव पल्लवित होती रहे । उसके पश्चात् तो हम दोनोंको चिन्मय महारससमुद्रमें पूर्णतया निमज्जित हो जाना ही है । "

बालक घनश्याम जैसे अपने प्राणप्यारे राधाबाबाकी एक-एक मूक भावनाको सुन रहा हो, आनन्दातिरेकसे पुलकित हो रहा था। उसके नेत्र छल-छल कर रहे थे । बालक घनश्यामने अश्रुजलविन्दुओंसे एक माला बनायी और अपने राधाबाबाको भेंट देकर जैसे 'तथास्तु' कह दिया था ।

पू.राधाबाबा लगभग तीन घण्टेतक लगातार सुखसागरमें निमग्न रहे। सुखमय तरंगोंमें बहते हुए ही वे तत्पश्चात् मोटरमें अपने निवासतक आये। वाटिका पहुँचनेपर भी पू.गुरुदेवकी घण्टों यही दशा रही। वे उस दिन भी रासलीला-दर्शनमें सम्मिलित नहीं हो पाये । उस दिवस जब पू.गुरुदेव ठकुरीबाबूके घरसे भावनिमग्न लौटे और अपनी निवास-कुटियाका दरवाजा उढ़काकर भाव-भरे ही शयित हो गये तो मैंने बाहर ही बैठकर उन्हें निम्न पद सुनाया –

जो सुख ब्रजमें एक घरी।
सो सुख तीन लोकमें नाहीं , धनि यह घोषपुरी।।
अष्टसिद्धि नवनिधि कर जोरैं,द्वारें रहति खरी।
सिव सनकादि-सुकादि अगोचर ते अवतरे हरी।।
धन्य-धन्य बड़भागिनि राधा निगमनि सही परी।
ऐसे सूरदासके प्रभुकौं चाँपति अंक भरी।।

(पदकी अन्तिम दो पंक्तियाँ मैंने बदलकर गायी थीं। पू. गुरुदेव इस पद-गायनको सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए थे । परन्तु बादमें मेरे द्वारा मूलपद में हेरफेरके कारण मुझपर किंचित् बिगड़े भी थे । मैं बालकपनसे ही ऐसा नटखटपना प्रायः कर बैठता था।

वनचारणलीला और अधरामृतरसका वितरण

"ओह ! वह सघन कुन्तलराशि, मुखचन्द्रपर बिखरी अलकावलि, घुँघराली लहराती नागिन-जैसी काली लम्बे बालोंकी लटें, छोटे-छोटे चिकुरोंसे आच्छादित ललाट, मध्यमें सुन्दर वल्लभसम्प्रदायवालोंका तिलक, विशाल नेत्र, नाचती बंकिम भौहैं, वे मृदु-मृदु बोल, वे मधुस्रावी अधरयुग्म, ललित बदनारविन्द, वे चञ्चल चेष्टाएँ –

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा गीतावाटिकाके गिने-चुने लोगोंसहित लीला-दर्शनार्थ श्रीठकुरीबाबूके बगीचेमें अपराहमें पहुँच गये हैं । श्रीठकुरीबाबूके यहाँसे आज फोनपर गीतावाटिकामें निमन्त्रण आया था कि आज अपराहमें उनके बगीचेमें

रासमें गोचारण-लीला सम्पन्न होगी। लीला प्रारम्भ हो चुकी थी। पू.राधा-बाबाको पहुँचनेमें किञ्चित् विलम्ब हो गया था। अपने आसनमें बैठते-बैठते ही उनकी दृष्टि सर्वांगोंसे पूर्ण श्रृंगारित सम्मुख खड़े अपने साँवरे प्रियतमपर पड़ी थी। प्रथम दृष्टि पड़ते ही उनका तो जागतिक दृश्य ही बदलकर दूसरा हो गया । "अहा ! इस सौन्दर्यमें कितनी मादकता भरी है—ऐसी मादकता,जो मन-प्राण-इन्द्रियोंको विमोहित कर दे। पू.गुरुदेव स्तब्ध थे। वह प्राकृत रासधारी बालक तो हो ही नहीं सकता। इसकी शोभा तो सम्पूर्ण श्रृंगारोंको श्रृंगारित कर रही है। फिर ऐसा अनमोल चिन्मय मणि-प्रकाशोंसे झलमलाता श्रृंगार इस भूतलमें तो होना ही असंभव है। इन अर्थाभावी ब्रजवासियोंको ऐसा अनमोल शुद्ध माणक,मुक्ता और वज्रमणियोंसे जटित श्रृंगार कहाँसे प्राप्त होगा ? ठकुरीबाबूसे भी मैं तो पूर्णतया परिचित हूँ। उनकी तो आर्थिक स्थिति भी ऐसी नहीं कि इस मणिमय श्रृंगारकी व्यवस्था कर सकें ! पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा रासधारी ठाकुरपर प्रथम दृष्टि पड़ते ही गहन विचारोंमें डूब गये थे ।

"ओह, यह रूप ! ऐसी अतुलित शोभा !! अहा ! इसके अधरोंसे तो चिन्मय दिव्य सुधारसका निर्झरण हो रहा है ! " पू.गुरुदेव उस चिन्मय रस-निर्झरणको पीते हुए.मत्त होते जा रहे हैं । इस मत्तताके आवेशमें ही इनके अन्तस्तलमें आज सहसा एक वासना जाग उठी । "सत्यशः ही क्या यह चिन्मय राज्यका महामधुमय सुधारस है ? कहीं मेरी नित्यकी लीला-भावना ही तो यहाँ इसे यह रंगत नहीं दे रही है ? यदि सत्य-सत्य इस ब्रजवासी बालकके ही अधरोंसे यह अमृत निःसृत हो रहा है, तो यह ठाकुर मेरे संकल्पानुसार निम्न चेष्टाएँ करे। प्रथमतः यह ठाकुर अपने अधरोंसे वंशीनिनाद करे। सचमुच ही चिन्मय रसनिर्झरणसे सना वंशीनिनाद मेरे मनको सम्मोहित कर देगा, और मुझे कुछ अभूतपूर्व दर्शन होगा। फिर यह तरुपत्रोंको मोड़कर स्वनिर्मित वाद्ययंत्र(सीटी) बनावे और अपनी मधुरातिमधुर चिन्मय अधरसुधाको उस सीटीमें भरकर फूँक लगावे ! उससे जो परम चिन्मय रसीली ध्वनि निस्सृत होगी उससे यहाँ कुछ अलौकिक चमत्कार घटित होना चाहिये। वह चमत्कार मुझे स्पष्ट दृटिगोचर हो। तीसरे, यह श्रृंगीनाद करे और उससे मेघगंभीर ध्वनि निकले। उस ध्वनिसे यहाँ सांध्यगगनमें इन्द्रधनुषका निर्माण हो। फिर यह अपने कर-कमलोंको ही शंखाकृति देकर अपने हाथोंसे ही ऐसी ध्वनि निकाले कि ठकुरीबाबूका समग्र बगीचा गुञ्जायमान हो उठे ।

इतनी बातें यदि इसके द्वारा एकके पश्चात् एक सम्पादित हो उठेंगी तो मैं इसके द्वारा स्वतः प्रदत्त इसके अधरोंसे सना आधा खाया कोई फल चखूँगा और चिन्मय दिव्य सुधारसके निर्झरणकी सही पहचान करूँगा ।"

पू.राधाबाबा तो अपनी जानमें अपने मनमें मनोरथोंके चित्र अंकित कर ही रहे थे, परन्तु वे मनोरथ वस्तुतः अंकित हो रहे थे अनन्तैश्वर्यनिकेतन भक्तवाञ्छा-कल्पतरु, प्रेम-प्यारके भूखे, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनःपटल पर ।

श्रीराधाबाबा तो अपने विचारोंमें तल्लीन ही रहते, परन्तु उनके विचारोंका स्तंभन ठीक उस समय हुआ जब ठाकुरने अपने बिम्ब-विडम्बी अधरोंपर वंशी धारण कर ली।

इस ठाकुरने तो वंशीवादनकी शिक्षा ही नहीं ली है। इसे तो इस हरे बाँसकी बाँसुरीमें फूँक लगाना ही नहीं आता ! जबतक फूँक ही सम नहीं लगेगी , तबतक स्वरमें सुरीलापना आ ही नहीं सकता । परन्तु ठाकुर वंशीमें फूँक अवश्य दिये जा रहा था । और इन फूँकोंके लगते ही एक चमत्कार घटित हुआ। वह चमत्कार भी अन्य सभीको नहीं दिख पाया, उसे देख पाये अकेले श्रीराधाबाबा ही । श्रीराधाबाबाकी मन-इन्द्रियाँ एक अभिनव रसमाधुरीसे परिप्लुत हो उठीं। वे देख रहे थे—" नवकमल-जैसी शोभा इसके विशाल नेत्रोंकी है। बिम्बफलके सदृश इसके अधर हैं । उनपर मन्द मुसकान छायी है। सजल जलदकी-सी कान्ति अंगोंकी है। अत्यंत मनोहर बालवेष है। मधुर सुन्दर मन्दगतिसे यह चलता है । चरणोंमें मञ्जीर एवं नूपुर सुशोभित हैं । कटिदेशमें नवरत्न-काञ्ची विभूषित है। काञ्चीसे रुनझुन-रुनझुन शब्द हो रहा है । गलेमें सुन्दर हार है । हारमें व्याधिनिवारक यन्त्र-प्रतीक व्याघ्रनख पिरोये हुए हैं। जननीने दृष्टिदोषनिवारक एक काला बिन्दु मुखपर लगा दिया है । इससे इसकी शोभा और भी बढ गयी है । शशधर-जैसे सुन्दर मुखपर कुञ्चित केश-कलाप सुशोभित हैं। यह कुन्तलराशि ऐसी प्रतीत होती है, जैसे नवीन घनकी नीलिमा हो ।"

पू.गुरुदेवका दृश्य एक साथ परिवर्तित हो गया था। वे अपने ध्यान-मूर्ति इष्टको ठाकुरके अंग-अंगमें विजड़ित देख रहे थे । वे बार-बार ध्यान हटाकर पुनः ठाकुरकी ओर देखते, किन्तु उन्हें वही चमत्कारिकता ठाकुर -वेष धारी बालकमें पुनः-पुनः दिखने लगती। वे ठाकुरमें कभी तो अपने इष्ट

परमातिपरम मधुर श्रीकृष्णको परिलक्षित करते एवं फिर अनन्तैश्वर्यनिकेतन परमात्माको अंकित देखने लगते।

पू.गुरुदेव चकित हो ही रहे थे कि ठाकुरने उछलकर एक लीचीवृक्षकी झुकी डालको और झुका लिया । उसमेंसे उसने लीचीवृक्षके अनेक पत्रोंको तोड़ लिया। "अरे ! यह तो इन पत्रोंको मोड़कर उनसे सीटीकी तरहका एक ऐसा यंत्र बनानेमें सचमुच ही संलग्न हो गया है और अपने ही द्वारा निर्मित इस यंत्रमें अपनी सुरभित मुख–प्रश्वास भरकर उच्चस्वरमें रसीली ध्वनि निस्सृत कर रहा है ! "

परन्तु यह क्या ? जैसे ही ठाकुरने उस स्वनिर्मित नये वाद्ययंत्रमें फूँक लगायी, सभीने चमत्कारिकरूपसे देखा कि ठकुरीबाबूके बगीचेकी गायें बड़ी मस्त चालसे चलकर आयीं और ठाकुरके आसपास उसे घेरकर खड़ी होगयीं। वैसे, सभी लोगोंने तो यही समझा कि सचमुच ही गोचारणलीलाको व्यावहारिक रूप देनेके लिये ठकुरीबाबूने ही ग्वालोंसे गायें बन्धनमुक्त करवाके रासमंडलीके पास छुड़वायी हैं । परन्तु वस्तुतः यह बात थी नहीं ।

इसके साथ ही ठाकुरने अपने फैंटमें खौंसी श्रृंगी निकाली और वह उसे भी बजाने लगा। यह श्रृंगी गायोंके टूटे सींगसे बनाया एक वाद्य होता है, जिसे ग्रामीण एवं भोपा जातिके लोग बजाते हैं । कभी ठाकुर इस श्रृंगीको बजाता और कभी इसे अपने दूसरे कलाकार गोप बनेहुए साथीको देकर अपने हाथोंको ही शंखाकृति देकर उसमें फूँक लगाता। उससे वह ऐसी गंभीर ध्वनि निकालता कि सारा बगीचा ही गुञ्जायमान हो जाता ।

पू. गुरुदेव देखरहे थे कि उनके सभी पूर्वकृत संकल्पोंके अनुसार ही ठाकुर सांगोपांग लीला कर रहा है । उनका मानस पूर्णतया चमत्कृत था ।

सहसा उनकी दृष्टि अन्तरिक्षकी ओर उठ गयी। यह क्या ? अन्तरिक्षमें तो उन्हें स्वर्गकी अमरावती नगरी दृष्टिगोचर हो रही है । यह देवनगरी तो इस प्रमोदप्रवाहमें निमग्न होकर पूर्णतया मत्त हो उठी है । अमरावतीका यह आनन्दोच्छ्वास जनलोक, महर्लोक, तपोलोकको मुखरित करता हुआ सत्यलोकको स्पर्श कर रहा है। अरे ! अरे !! जगत्स्रष्टा पितामह चतुराननकी स्रजन–समाधि टूट गयी है ।

लो, देवराज इन्द्र अपने वाहन ऐरावतमें, भगवान् शिवपार्वती वृषभवाहनमें, चतुरानन अपने हंसवाहनमें, भगवान् सूर्यदेव अपने रथमें एवं चन्द्रदेव अपने

हरिणवाहनमें आसीन हुए कल्पप्रसूनोंकी वर्षा कर रहे हैं। परमाह्लादित विबुध–वृन्द स्तवपाठ, सुमनोहर वाद्यवादन कर रहे हैं । पू. गुरुदेवको स्पष्ट दिख रहा था – आकाशपथ अमर, किन्नर, विद्याधर एवं गन्धर्वोंसे भरा है ।

अब तो पू. गुरुदेवको ठाकुरके चिन्मयावेश पर किञ्चित् भी सन्देह नहीं रहा था । सहसा एक और विचित्र भगवत्प्रेरित घटना घटी । जब यह रासलीला हो ही रही थी, पूरी ग्रीष्म ऋतु थी । रवि सांध्य गगनकी ओर बढ़ रहा था । अचानक ही एक उमड़े मेघने रविको चतुर्दिक् आच्छादित कर लिया। और वह मेघ इस प्रकार बरसने लगा मानो ब्रजमें पावसका पदार्पण हो गया हो । वर्षाकी फुहारोंने ग्रीष्ममें तपते लीलादर्शन करते दर्शकोंको और मण्डलीके सभी पात्रोंको, साथ–ही–साथ सारे वातावरणको भी इस प्रकार भिगोया कि सभी आनन्दित हो उठे । वायुमें तप्तताके स्थान पर शीतलता संचारित हो उठी । इस प्रकार वातावरणको रमणीय बनाता मेघ कुछ ही क्षणोंमें गगनमें स्थित होगया और उसपर अतिशय सुन्दर इन्द्रचाप जगमगा उठा । वातावरण ऐसा शीतल एवं सौन्दर्यसम्पन्न बन गया कि ठाकुर दूसरे लीलाक्रमको छोड़कर अपने सखाओंको इन्द्रचापका सौन्दर्य वर्णन कर–करके सुनाने लगा। सखा बने ब्रजवासी बालक तो जहाँ अपने ठाकुरसे इन्द्रचापकी शोभाका वर्णन सुन रहे थे, वहीं पू.गुरुदेवकी दृष्टि ठाकुरके स्वयंके सौन्दर्यपर उलझी थी । उन्हें ऐसा ठीक अनुभव हो रहा था कि मेरे प्राणवल्लभके ही अंग–प्रत्यंगसे झरती अंगसौरभको लिये बयार चतुर्दिक् भ्रमण कर रही है। वह कभी तो चतुर्दिक् फैले कमलदलोंको प्रस्फुटित कर दे रही है, और कभी संकुचित। उनके अरुणवर्ण अधरोंसे झर रही है चिन्मय अधररस–सुधाधारा। दिव्य दंतपंक्ति ऐसी दीप्ति प्रकट कर रही है, मानो कुन्दपुष्पको उस दिव्य अधररस–सुधाधारामें सुस्नात कराके इन्द्रवज्रकी विद्युन्मयी किरणोंसे समलंकृत कर, दो बिम्ब फलोंके मध्य सुस्थापित कर दिया गया हो। मन्द मृदु हास–छटा तो मानो आनन्दसागर ही हो, जो चरम सीमातक उमड़ा प्रतीत हो रहा है। उन्नत विशाल कंधोंकी शोभापर तो सर्वस्व ही बलिहार है। विकसित कमल–जैसी हथेली, कमलदल–जैसी नखश्रेणी चित्तको चुरा रही है। नील कलेवरपर पीताभ अम्बर दामिनीसमन्वित सघन घटाकी शोभाको पराजित कर रहा है। पीत दुकूलके सम्मुख सुवर्ण तो सर्वथा रूपहीन है । अब पंकजकोशकी शोभाको पूर्णतया तिरस्कृत करनेवाले दुख–द्वन्द्वहरणशील ललित त्रिभंगी धारण किये

चरणोंकी ओर तो देखो ! जय हो !! इस मयूरमुकुटीके ध्वज, वज्र, गदा, यव, कमल आदि चिह्नोंसे चिह्नित चरणतलकी जय हो ! जिनसे स्वर्मन्दाकिनीकी त्रितापनाशिनी, शापविमोचिनी, पातकविदारिणी धारा निर्गत हुई, जिन चरणोंकी शेष-सनकादि वन्दना करते हैं, जो श्रुति-सरस्वती और देवर्षिके लिये घन आनन्दस्रोत हैं, जो अज-महेशके ध्यान-धन हैं, उन मेरे परम प्राणपतिके चरणोंकी जय हो !!

पूज्य गुरुदेव अपनी इष्टमूर्तिको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख देख पुलकित थे। वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि इस ठाकुरके सौन्दर्यमें कितनी मादकता भरी है । ऐसी मादकता जो मन, प्राण एवं इन्द्रियोंतकको विमोहित कर दे । अति आश्चर्य ही तो है कि मेरे प्राणपतिके मुझे प्रत्यक्ष दर्शन होते हुए भी, उनकी रूपसुधामें मेरे नेत्रोंके नित्य निमग्न रहनेपर भी मेरा चित्त न जाने क्यों हाहाकार कर उठता है कि 'हाय ! मेरे प्राणवल्लभके मुझे दर्शन कब होंगे ?'

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इन भावोंमें गहरे डूब रहे थे कि उनके ध्यानको अचानक ही हटाया एक दुष्ट कपिदलने जो अप्रत्याशित ही गोचारण-लीलाका उपकरण बनने आ धमका था इस बगीचेमें। अकस्मात् ही कूदते-फाँदते कपिदलने जो दर्शकगणों और रासलीलावाले ब्रजवासियोंकी उपस्थितिसे सर्वथा निर्भय और निश्शंक था, अपना आसन जमा लिया उन्हीं आम्र, लीची, एवं अमरूद वृक्षोंके ऊपर जिनके नीचे मैदानमें रासलीलावालोंके द्वारा वनचारणलीला सम्पन्न हो रही थी। इधर तो वातावरणको अस्त-व्यस्त करते बन्दर वृक्षोंकी डालोंपर कूद-फाँद रहे थे, उधर ब्रजवासी बालकोंको भी उत्पात सूझ गया। वन-चारण-लीला हो ही रही थी अतः धेनु-नियंत्रणके लिये यह श्रीकृष्णकी सखा-मण्डली अपने हाथोंमें मोटे-मोटे लकुट तो लिये ही थी। इसने बन्दरोंपर धावा बोल दिया। छोटे-छोटे अल्प वयके बालसखा तो इन कपियोंकी लम्बी पूँछें जो नीचे लटक रही थीं, अपने हाथोंसे पकड़कर खींचने लगे । कुछ-एक क्षण तो दोनों दलोंमें जमकर युद्धका-सा खेल हुआ। पूँछ पकड़कर लटकते छोटे बालकोंको काटने कपिदल जहाँ झपटा, वहीं बड़े-बड़े लकुट सम्हाले युवक ब्रजवासी समाजी उनपर लकुटोंसे प्रहार करते हुए पिल पड़े । इस कपिदलसे हुए युद्धके कारण एक बार तो वातावरण भयग्रस्त हो उठा, परन्तु कुछ ही क्षणोंमें कपिदलके पराजित होकर हट जाने एवं दूसरे वृक्षोंकी ऊँची डालोंमें आसीन होनेसे बनलीला परम सरस और स्वाभाविक हो

उठी । यह लीला चल ही रही थी कि ठाकुर बना घनश्याम उस अमरूद वृक्षपर चढ गया, जिसके ठीक नीचे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा समासीन हुए लीला देख रहे थे। ठाकुरको अमरूद वृक्षपर चढा पाकर ठाकुरकी बालसखामण्डली भी बन्दरोंके समान उछल-उछलकर उसके आसपासकी डालियोंपर समासीन होगयी।

पू.गुरुदेवका तो दृश्य ही दूसरा हो रहा था। वे तो ठाकुर-वेषधारी घनश्यामके स्थानपर अभिनव कान्ति प्रसरित करते अपने प्राण-प्रियतमको ही वृक्षपर आसीन पा रहे थे। उनके हृदय एवं मन तो यह देखकर परम शीतल हो रहे थे कि "अहा ! मेरे प्राणपतिके परम मनोहर दृगोंमें कैसी समाकर्षक दीर्घता है ! अरुण प्रभासे रंजित वे अपनी बंकिम रसीली चितवनसे कैसी प्रीतिवर्षा कर रहे हैं ! उनके वक्षस्थलका सुमधुर विस्तार कितना समाकर्षक है ! उनके मध्यदेशमें सिंहशावककी कृशता कितनी कमनीय लग रही है ! अहा ! एक अद्भुत अनिर्वचनीय सुधास्रावी सौन्दर्यराशिसे जगमगा रहा है मेरे प्राणपतिका अणु-अणु, रोम-रोम ! " पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके चित्तका अणु-अणु प्लावित हो रहा है, इस सौन्दर्यपूरमें । वे बह चलते हैं, इस प्रवाहमें और डूबने लगते हैं उन श्यामल लहरोंमें ।

इधर तो पू.श्रीराधाबाबा अपने प्रियतम प्राणवल्लभके रूपसागरके अतल-तलमें निमज्जन कर रहे थे, उधर लीला-महाशक्ति योगमाया-नियंत्रित बुद्धिवृत्तिने ठाकुर घनश्यामके मनमें एक अतिशय चंचल क्रिया करनेकी आतुरताका निर्माण कर दिया। उसकी बुद्धिवृत्ति बारबार उसे प्रेरित कर रही थी कि" रे ब्रजवासी ठाकुर ! तू तो सर्वथा अमर्यादित स्वरूपभूत परमानन्द रस-वितरणके लिये ही तो ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भटक रहा है। तू गोरखपुर आया ही है इस नीचे-बैठे सन्यासीको परमानन्द रसास्वादन करानेके लिये। यह मात्र ऊपरसे ही मायावादी अति मर्यादित संन्यासीका वेष ढो रहा है, भीतरसे तो यह लोक-वेदकी सभी श्रृंखलाओंको तोड़े तुम्हारे विशुद्ध प्रेम-रसका दान लेने प्रस्तुत बैठा है। देखो ! देखो !! इसके हृदयका चित्र तुम्हारे सम्मुख स्पष्ट खोलकर रख देती हूँ। अरे भाई ! ब्रजके अतिरिक्त अन्य सभी लीलाओंमें तो ऐश्वर्य ही तुम्हें आवृत किये रहता है और तुम्हारे भक्त भी उसीकी माँग लिये हाथ जोड़े तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, परन्तु यह राधाबाबा तो तुम्हारा अपना निजजन है। सम्भ्रमरहित विशुद्ध रसका आस्वादन इसे तुम्हारे अतिरिक्त

कौन करावेगा ? यहाँ तो तुम लीला कर रहे हो – गोपीहृदय इस साधुवेष–धारीके प्राणपति प्राणवल्लभकी। ऐसा बानक अन्यंत्र कहाँ ? वाञ्छाकल्पतरो ! इसके मनोरथको पूर्ण करो। रस देकर, रस आस्वादन कर इस राधाबाबा बनी गोपसुन्दरीको प्रीति–पयोनिधिमें पूर्णतया डुबादो ठाकुर !

ठाकुर–वेषधारी घनश्यामके अधरोंपर मन्द मुसकान छा गयी। उसने लीलाशक्तिकी इस प्रार्थनाका अनुमोदन ही किया।

मन में यहै विचार करत हरि, ब्रज घर–घर सब ठाऊँ ।
ब्रज में जनम लियौ सुख कारन, सब कहँ रस बरसाऊँ।।
प्रियतम रूप गोपि मोहि जानैं इनसौं मिलि सुखभोग।
मन ही मन प्रभु कहत प्रेमसौं ये मेरे ब्रजलोग।।

ठाकुर घनश्यामने एक विचित्र लीला की । ठीक अपनी अन्तर् – उद्भूत स्वतःप्रेरणासे उसने पू.गुरुदेवके मानस–संकल्पको पूर्ण करते हुए एक अमरूद(अमृतफल) उस महाभाग्यवान् वृक्षसे तोड़ा, उसे आधा खाया और शेष पू. राधाबाबाकी गोदमें फैंक दिया। उसने इतना ही नहीं किया,नीचे उतरकर अतिशय प्रार्थनाका नाटक करते हुए उसने उस अमरूद फलको श्रीगुरुदेवसे वापस माँगा और तब हँसते हुए उनके मुखमें उस उच्छिष्ट अमरूदको भर दिया। और तब श्रीराधाबाबाके मुखसे लगे उच्छिष्ट अमरूदको स्वयं खा गया।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो एकदम स्तंभित रह गये। उनके मुखमें जैसे ही वह अमरूद गया, उन्हें लगा जैसे संविन्मय महाभाव–रससागर उमड़कर उनके मुखद्वारसे प्रविष्ट हो उन्हें अपने अतलतलमें विलीन कर लेनेको उमड़ उठा हो। वे उस विचित्र स्वादकी अनुभूतिमें इतने भरे थे कि उन्हें बाह्य होश ही नहीं था। वे प्राकृत जगत्के ब्रजवासी बालकों द्वारा अभिनीत कोई रासमण्डली देख ही नहीं रहे थे । वे तो अनवरत दस वर्षोंसे अपने हृदयपटलपर विजड़ित अपनी इष्टमूर्तिको ही रासाभिनय करता देख रहे थे । सत्यतः स्थिति यही थी कि उनके सामनेसे तो दृश्यरूपा वह अविद्या माया जिससे सचराचर अखिल विश्व – एक कीटसे लेकर पितामह वेदगर्भ तक सब विमोहित हो रहे हैं, सर्वथा सर्वांशमें विलुप्त हो गयी थी। उस निस्तरण–असंभव मायाके स्थानपर उनके सामने तो स्वयं साक्षात् मायाधिपति मुसकान बिखेरते खड़े थे । जहाँ तक मायाराज्य है , वहीं तक उच्छिष्ट और शिष्टका भेद रहता है । जहाँ माया है ही नहीं ,वहाँ तो वही–वही है । कोई उच्छिष्ट है ही नहीं ।

पू.गुरुदेवने किसका उच्छिष्ट ग्रहण किया ? उन्होंने उसका उच्छिष्ट भक्षण किया जिसके प्रत्येक रोमकूपमें – जैसे आकाशमें वायुसंचरित क्षुद्र असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ घूमते रहते हैं; जिनका अन्त स्वर्गादि–लोकाधिपति ब्रह्मा, इन्द्र प्रभृति नहीं जानते, नहीं जान सकते; जो इतने अनन्त हैं कि अपना अन्त स्वयं ही नहीं जानते; जिनके स्वरूपका साक्षात् वर्णन श्रुतियाँ नहीं कर सकतीं; स्वरूपसे अतिरिक्त सब वस्तुओंका निषेध करते–करते कि वह न स्थूल है, न अणु है; न क्षुद्र है, न विशाल है; न अरुण है, न द्रव है; न छाया है, न तम है; न वायु है, न आकाश है; न संग है, न रस है; न गन्ध है, न नेत्र है, न कर्ण है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है; उसमें न अन्तर है, न बाहर है – इस प्रकार निरसन करते–करते श्रुतियाँ जिनमें जाकर समाप्त हो जाती हैं , अपनी सत्ता समाप्त कर सफल हो जाती हैं; (बृहदारण्यक३।८।८)जब धर्म–प्रतिपादक श्रुतियाँ ही जिसमें विलीन होजाती हैं, वहाँ मात्र वही धर्म रहता है । उससे पृथक् न धर्म रहता है न अधर्म ।

पू.गुरुदेवने उन परमपुरुष पुरुषोत्तमका उच्छिष्ट खाया, जो विश्वका संकल्प करते हैं ; जो विश्वके आदिमें, मध्यमें, अन्तमें स्थित हैं; जो प्रकृति पुरुषके स्वामी हैं; जो विश्वका सृजन करके जीवके साथ ही उसमें प्रविष्ट हो गये हैं; जिन्होंने जीव–भोगायतन शरीरसमूहोंकी रचना की है; जो इन शरीरोंका नियंत्रण करते हैं; जिन्हें प्राप्तकर जीव – जैसे सुषुप्तिमें निमग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसंधान छोड़ देता है, उसी प्रकार मायापाशसे मुक्त हो जाता है; जो नित्य अच्युत स्वरूपमें अवस्थित हैं; जिन्हें माया लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सकती; जो सर्वथा विशुद्ध हैं; जो अभयप्रद हैं; जिनका निरन्तर चिन्तन ही जीवका एकमात्र कर्तव्य है। श्रीमद्भा०(१०।८७।४१) फिर सर्वथा विशुद्धमें अशुद्ध प्रवेश ही कैसे करेगा ? उसका तो उच्छिष्ट भी वही, मात्र वही होगा! जिसमें भय है ही नहीं, हो ही नहीं सकता, वहाँ भला निषेध कैसे होगा ? पू. गुरुदेवने उनका उच्छिष्ट भक्षण किया जो नराकृति ब्रह्म, प्रकृति–पुरुषके स्वामी पुरुषोत्तम ही हैं । उनका सब कुछ उत्तम–ही–उत्तम है, गर्हित कहीं कुछ भी नहीं ।

वास्तवमें पू.गुरुदेवकी यह चेष्टा उच्छिष्ट–भक्षणरूप अपराधमें क्या परिगणित हो सकती है ? अपराध तो वहाँ हो, जहाँ उच्छिष्ट देनेवाला कोई

अल्प हो, शरीरधारी हो । जहाँ विशुद्ध चैतन्य परमात्मा ही दिख रहा हो, वहाँ परमात्माके प्रसाद-भक्षणमें कैसे निषेध संभव है ? जहाँ कोई स्वादवृत्ति, लोलुपता होती है, वहीं अधर्म, निषेध अथवा पाप होता है ।

नान्यद् भगवतः किंचिद् भाव्यं सदसदात्मकम्

।।श्रीमद्भा०२।६।३२।।

—भाव या अभाव, कार्य या कारणरूपमें जहाँ कोई भी वस्तु जिन्हें श्रीकृष्णसे भिन्न दिखती ही नहीं, उन पू.गुरुदेवके लिये कब, कहाँ, किसकी, कौनसी वस्तु भक्ष्य अथवा अभक्ष्य मानी जायगी ? तब फिर ये अधरामृतसना अमरूदका दान क्या था ? वह तो मधुर रसवितरणकी मात्र एक प्रकृष्ट प्रक्रिया थी ! वह थी मधुर रसास्वादनकी एक पवित्रतम प्रणाली, प्रेम मनोरथपूर्तिकी एक मधुर मनोहर सुन्दर योजना, किशोरलीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके किशोरावेशकी अप्रतिम रसदानमयी मात्र झाँकी ! इस झाँकी की जय हो ! जय हो !! नित्य निरन्तर जय हो !!!

हाँ, श्रीजयदयालजी गोयन्दका-जैसे लोक-संग्रही पुरुष यह कह सकते हैं कि पू. श्रीराधाबाबाको विधि-निषेधकी वेदशास्त्रसम्मत मर्यादाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये था। परन्तु विधि-निषेध तो उनके लिये है जिन्हें जगत्, देह, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म दीख रहा है । जहाँ जगत् दिखता ही नहीं, ब्रजवासी बालक दिखता ही नहीं, अमरूद दिखता ही नहीं, उच्छिष्ट वस्तुका मालिन्य अनुभव होता ही नहीं, मात्र छलकता चिन्मय सुधारस ही दिख रहा है, श्रीकृष्णका देह जिस चिन्मय वस्तुसे बना है, वह चिन्मयता ही जिसके लिये उनका अधरामृतरस है, वही तो उनका अंग-प्रत्यंग सब कुछ है, तब श्रीकृष्णका आस्वादन चाहे स्वादेन्द्रियसे हो, अथवा नेत्रेन्द्रियसे हो, वाणीरूप गुणगानसे हो, चाहे स्पर्शेन्द्रियसे हो, अथवा किसी कर्मेन्द्रियसे हो, भले ही किसी कामेन्द्रियसे भी क्यों न हो, है तो वह श्रीकृष्णका ही चिन्मय रसास्वादन मात्र। और श्रीकृष्ण जो सब शास्त्र, वेद, धर्म, तत्व यहाँतक कि ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठा हैं, किसी भी अवस्थामें, रूपमें, यदि ग्रहण किये जाते हैं, तो क्या कोई भी धर्म, वेद, शास्त्र उन्हें निषिद्ध कर सकता है ? कदापि नहीं ! हाँ, जो श्रीकृष्णको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा न मानकर मात्र मायोपाधिक अवतरण मानते हैं, उनकी ही कुबुद्धि ऐसे कुतर्क भले ही स्थापित करे ।

जब श्रीकृष्णमें जड़-अविद्यात्मक देह है ही नहीं, मांस, रक्त, थूक,

कफ, लार संभव ही नहीं, फिर विशुद्ध चिन्मयता चाहे अधर-जिह्वाके संस्पर्शसे प्रकट हो रही हो, निषिद्ध कैसे होगी ?

यहाँ यह कहनेमें मुझे सर्वथा संकोच नहीं है कि श्रीपोद्दार महाराज(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा भगवद्भक्तिरसके मूर्तिमान विग्रह थे। वे तुरीय प्रेमरसमें आपाततः पगे-डूबे थे। उनके दृश्य -पटलपर भगवान् श्रीकृष्णका मन्मथ-मन्मथ स्वरूप इतना घनरूपमें भरा था कि उन्हें उनके सिवा अन्य कुछ दिखता ही नहीं था। उन्हें न ही अन्य सुनाई पड़ता था, न ही उनकी मन-बुद्धिके द्वारा अन्य कुछ भी सत्यासत्य निर्णय ही होता था। जिसका अन्तःकरण इतना रससिक्त हो कि उसके हृदयसे समग्र प्रपंच ही शशकके श्रृंगकी तरह विलुप्त हो जाय, उसका श्रीकृष्णके सिवाय अन्य कौनसा धर्म, कौनसा मर्यादापालन और कौनसा विधि-निषेध अथवा पाप-पुण्य शेष रहता है ?

जिसको ज्ञान ही नहीं है कि कब रात होती है और कब दिवस, कब जाग्रति आती है और कब सुषुप्ति ; जिसके चित्तमेंसे श्रीकृष्ण स्वप्नकालमें भी नहीं हटते, जिसके अन्तःकरणमें जगत् प्रवेश ही नहीं कर पाता और निरन्तर अखण्ड प्रिया-प्रियतम राधाकृष्णका रासनृत्य होता रहता है, उनके सामने अब अन्य कैसा विधि-निषेध शेष रहा था ?

इतिहास है – वैष्णवाचार्य श्रीहरिरामव्यासदेव नियमतः प्रतिदिन ही गोविन्ददेवके दर्शनार्थ मन्दिर जाते थे । उनके गोविन्ददेव मात्र मन्दिरमें प्रतिष्ठित जड़ प्रस्तर-प्रतिमा नहीं थे। वे चिन्मय सजीव उनके प्राणपति थे। भावजगत्की परम चिन्मय भूमिको जब कोई महासिद्ध संत संस्पर्श कर लेता है तब प्रतिमा चाहे प्रस्तरखण्डसे निर्मित हो, अथवा काष्ठमें अंकित , वह जीवन्त होकर व्यवहार करने लगती है । वह हँसती है, खेलती है, बोलती है और खाती-पीती भी है । मीराके गिरिधरगोपाल मीरासे बोलते थे। वल्लभाचार्यके श्रीनाथजी खाते थे, खेलते थे, गोविन्दस्वामीको कंकड़ी मारकर भागकर मन्दिरमें छिप गये थे । हरिरामजीको उनके गोविन्द मूर्तिमें तो दिखते ही थे, सम्पूर्ण विश्वमें भी प्रत्यक्ष वे-ही-वे भरे दृष्टिगोचर होते थे । उनका अखण्ड नित्यका नियम था कि वे गोविन्दजीकी राजभोगकी आरतीके दर्शन करते और तब अपने आराध्यके महाप्रसादका कण लेकर घर लौटते । लीलामय गोविन्दकी बलिहारी है ! वे अपने भक्तकी सच्ची निष्ठा और उसकी चिन्मय अनुभूतिको

जाँचने-परखने और उसके रसका आस्वादन लेनेमें अतिशय पटु हैं ।

श्रीव्यासदेवजीको आज अपने नित्योपासनाके क्रममें इतना रस आया कि अतिकाल होगया। उपासनासे आँख खुली, बाह्यवृत्ति हुई तो पाया राजभोगका समय तो व्यतीत ही हो चुका है। दौड़े-दौड़े मन्दिर गये, तबतक मन्दिरके पट बन्द हो चुके थे। आज तो ऐसा व्यवधान हुआ कि न तो इष्टदेवके दर्शन ही हुए और न ही भगवत्प्रसादका कण ही प्राप्त हुआ। विरहमें ध्यानावेश तो बढ़ जाता ही है । विरहातिरेकमें पार्थिव वृन्दावन चिन्मय वृन्दाकानन हो गया। गोविन्ददेवके मन्दिरके पुजारीगण सब दिखने ही विलुप्त हो गये । उनके स्थानपर थीं यशोदामैया, और उनका दासीवर्ग– गोपीसमूह । उनकी भाव-धारामें चिन्मय ब्रजभूमिकी चिन्मय लीला प्रकट हो गयी । जड़-मायाजगत् पूर्णतया विलुप्त ही हो गया । लीलाविहारीकी जय हो ! वे स्वयं भी तो प्रेम-भाव देखकर शबरीके जूठे बेर खाते ही हैं और चाण्डालिनी फल-विक्रयिणीसे उसकी गोदमें आलिंगित हो, अपने कपोलोंपर उसका वात्सल्यभरा प्रीतिचिह्न –चुम्बन अंकित कराके अपनी लघु हथेलियोंमें उससे फल ले आते हैं। प्रेमको जाति-पाँति, वेद-शास्त्र, आचार-विचार, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्यसे सर्वोपरि सिद्ध करनेमें उन्हें परम आनन्द जो आता है ! तत्क्षण ही उन्होंने अपनी लीलासंघटनकर्त्री योगमायाको निर्देश दे दिया, और उसे भला लीला संघटित करनेमें कितने क्षण लगते हैं ! तत्क्षण ही रंगमंचका निर्माण होगया। योगमाया-महाशक्ति एक डोमिन बनकर हाथमें गोविन्दके राजभोगके प्रसादकणको अपनी टोकरीमें लिये श्रीहरिरामव्यासजीको सामने ही आती दिखाई पड़ी। श्रीहरिरामव्यासजीको वह प्राकृतलोककी मलिन मलमूत्र स्वच्छ करनेवाली डोमिन दिखी नहीं,उन्हें तो चिन्मय वृन्दावनधामकी नन्दसदनमें स्वच्छताकर्म करनेवाली गोपी ही वहाँ दिख रही थी। उनकी चिन्मय दृष्टिमें मलिन प्राकृत जगत् तो था ही नहीं । उन्होंने तत्क्षण ही उसकी टोकरीमेंसे सर्वथा श्रद्धाभावनासे भरकर एक पकौड़ी उठाई और उसे अपने मस्तकसे लगाली। आज ही तो वे धन्यभाग्य, कृतकृत्य हुए थे। उनके लिये वह पकौड़ी प्राकृत भोज्यपदार्थ थी ही नहीं, साथ ही जिसकी डलियासे वह उठायी गयी थी, वह नारी भी उन्हें प्राकृत मल-मूत्र स्वच्छ करनेवाली कोई मेहतरानी नहीं दृष्टिगोचर हुई थी । उनका दृश्य ही प्राकृत दृश्य नहीं था। उन्हें तो वृन्दावनकी, नन्दभवनकी किसी दासीसे चिन्मय भगवत्प्रसाद मिला था, जिसे उन्होंने अतिशय श्रद्धाभावसे सिरपर चढाकर

ग्रहण किया था और परम कृतकृत्यता अनुभव की थी।

इधर वृन्दावनके सम्पूर्ण वातावरणमें ही उनकी इस क्रियासे एक प्रकारका पूरा हड़कम्प ही मच गया था। हरिरामव्यासजी जैसे महापण्डित शास्त्रविद् ब्राह्मणने भंगिनकी छुई-हुई पकौड़ी खाई ! सारा समाज उनकी भर्त्सना करनेको उद्यत हो गया। परन्तु उन्हें उसकी कहाँ परवाह थी ? वे तो मुक्तण्ठसे उसका उद्घोष करते हुए कहने लगेः—

ब्यासहि ब्राह्मण मत कहौ, हरिदासनिकौ दास।
बृन्दाबनके डोमकी जूँठन खाई ब्यास।।
ब्यास मिठाई बिप्रकी तामैं लागौ आगि।
बृन्दाबनके स्वपचकी जूठन खावैं माँगि ।।

यहाँ यह ध्यानमें रखनेकी बात है — जिस वृन्दावन और उसके स्वपचकी बात व्यासजी कह रहे हैं, उस वृन्दावनधामका दर्शन तो किसी महापुण्यवान्को अतिशय महत्कृपासे दिव्यातिदिव्य सच्चिन्मय नेत्र पाकर ही होता है, और यदि वह महाभाग्यवान् उस दृश्यके अनुभवको वर्णन करनेकी भगवत्प्रदत्त शक्ति पा जावे तो वह यही कह सकता है कि वह कोई प्राकृत देश नहीं,सच्चिदानन्द -सुधारससरोवरका विलक्षण अरविन्द है, जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर आजतक किसी भी अनिलको नहीं मिल पाया है, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध किसी भी भ्रमरने आजतक नहीं किया है, किसी जलभरे सरोवरने आजतक जिसे प्रस्फुटित करनेकी सामर्थ्य नहीं पायी है, किसी प्राकृत अथवा दिव्य जलके वक्षस्थलमें खेलनेवाली चञ्चल तरंगें उस पद्मको प्रकम्पित करनेका कभी भी गर्व नहीं कर सकी हैं , ऐसी चमत्कारिक सुन्दरतासे युक्त वह सर्वातिशय सुन्दर चिन्मय प्रदेश है। उस वृन्दावनकी ऐश्वर्यराशि कल्पनातीत है। इस वृन्दावनके प्रत्येक श्वपचका प्रासाद इन्द्रनीलमणिनिर्मित है। यहाँ प्रत्येक ब्रजवासीका सदन मरकतमणिविरचित है। छतें सुवर्णमय हैं, स्तंभोंका निर्माण प्रवालसे हुआ है । द्वारसमूह पद्मरागमणिके हैं । यहाँकी भूमिका कण-कण मणिमय है। सर्वत्र चन्द्रकान्तमणियोंकी दीप-पंक्तियाँ निशामें यहाँ जगमग-जगमग प्रकाश करती हैं। कोटि-कोटि गोवत्स इस ब्रजदेशमें इधर-उधर आनन्दमें उछल रहे हैं ।

और यहाँकी श्वपच गोपी कैसी है जिसकी जूठन श्रीहरिव्यासजी खानेकी लालसा कर रहे हैं ! आइये, उस गोपीके स्वरूपसौन्दर्यका ध्याननेत्रोंसे

किञ्चित् अवलोकन करें। उस श्वपच गोपीके नेत्र ऐसे हैं, मानो दो मुकुलित उत्पल हों। कुन्तलराशि ऐसी लगती है, मानो भ्रमरोंका दल प्रचुर परिमाणमें नव मकरन्दराशिका पानकर, अतिशय मत्त होकर, उड़नेकी सामर्थ्य खोकर निश्चल अवस्थित हो। उस श्वपचकन्याके कपोल इतने सुन्दर हैं, मानो द्रवीभूत किसी मणिसे ही ढ़ले हों,नासापुट ऐसे हैं मानों कालिन्दीके नीरमें परमातिपरम दो सुन्दर बुद्‌बुद् उठे हों । उस श्वपच गोपीकी चाल इतनी मत्त है, मानो इन्द्रवाहन गजराज ऐरावत झूमकर चल रहा हो। शतकोटि महालक्ष्मी उसकी शोभाको देखकर मुग्ध-विभोर हो जाती हैं । उस वृन्दावनकी श्वपच गोपीके रोम-रोममें जो पावित्र्य भरा है उसके एक कणकी छाया भी न तो चतुरानन वेदगर्भ अपने ब्रह्मलोकमें निरन्तर वेदध्वनि करके ही प्रकट कर सके हैं, न भगवान् चन्द्रशेखर अनन्त कालकी समाधि लगाकर कैलासमें ।

परन्तु यह बात वैष्णवाचार्य हरिरामदासजी जगत्‌के धर्माभिमानी, दंभपूर्ण अशुचि मानसवाले ,पाण्डित्यके मिथ्या अहंकारसे भरे लोगोंके गले कैसे उतार पाते ? उन्हें तो अनेक जन्म लेनेपर भी वह कृपापूर्ण चिन्मय दृष्टि नहीं मिलनेवाली है , जिसे पाकर हरिरामव्यासाचार्य अपनेको कृतकृत्य एवं धन्य अनुभव कर रहे हैं ।

ऐसी क्रान्तिकारी घटनायें एक नहीं, अनेकों वैष्णवाचार्योंके जीवनमें घटी हैं , जिन्होंने चिन्मयी भगवद्‌भक्तिसे अपने हृदयको विभूषित किया है ।

महाप्रभु चैतन्यदेवके जीवनकी एक घटना पाठकवृन्द अपने ध्यानमें लायें । बादशाह हुसैनशाहने सुबुद्धिरायको मुसलमानी करुवेका अपना उच्छिष्ट जल पिलाकर उनकी जाति नष्ट कर दी थी । काशीके पण्डितोंसे सुबुद्धिरायने अपनी शुद्धिका उपाय पूछा। सभी पण्डितोंने एक मतसे उन्हें निर्णय दिया कि तप्त घृतपान कर प्राण देना ही इस पातकका प्रायश्चित्त है । श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवके सम्मुख यह बात किसीने कह दी। उन्होंने सुबुद्धिरायको बुलाया और मात्र भगवन्नाम लेनेका आदेश देते हुए कहाः—

एक नामाभासे तोमार पाप दोष जाबे ।
आर नाम लइते तुमि कृष्णचरण पाइबे।।
आर कृष्ण नाम लइते तोमार कृष्णधामे स्थिति।
महा पातकेर हय एइ प्रायश्चिति।।

एक नामाभास मात्रसे तुम्हारी समग्र पापराशि ही भस्म हो जायगी।

इसके उपरान्त यदि और अधिक नामजप करोगे तो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णके पावनतम चरणोंके दर्शन होंगे । इसके उपरान्त भी यदि तुम भगवन्नाम लेते रहे तो तुम्हें भगवत्सामीप्य प्राप्त होगा और भगवान् श्रीकृष्णके लीलापरिकर होकर तुम्हारी उनके पावन धाममें उनके समीप स्थिति होगी । कोई महापातकी हो तो भी उसके लिये इससे अच्छा दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

काशीके सर्वशास्त्रनिष्णात पण्डितों तथा महाप्रभु चैतन्यदेवके मतोंमें यह वैभिन्य मात्र इसीलिये है, क्योंकि पण्डित शास्त्रोंके गूढ मर्मको समझ ही नहीं पाये हैं। वे शास्त्रोंके ऊपरी कलेवरसे तो परिचित हैं , परन्तु उन भगवान्के सम्बन्धमें उनकी दृष्टि ही नहीं है , जो सर्वशास्त्रोंके सार-स्वरूप हैं। भगवान् और भगवन्नामकी महिमा उन्हें ज्ञात ही नहीं है ।

काशीके पण्डितोंको तो यह भगवद्भक्ति-परायण कर्म घोर पाप ही प्रतीत हुआ होगा, जब महाप्रभु चैतन्यदेवके अभिन्न-विग्रह श्रीअद्वैताचार्यजीने अपने पिताके श्राद्धके समय श्राद्धपात्र भगवन्नामपरायण भक्त यवन हरिदासको देनेका निश्चय किया था। काशीके पण्डितों और भक्तशिरोमणि अद्वैताचार्यजीका मतैक्य संभव ही नहीं है क्योंकि काशीके पण्डित यवनके घर जन्म लेने मात्रसे सन्त हरिदासजीको निकृष्ट अस्पृश्य मानते हैं और श्रीअद्वैताचार्यजीकी मान्यता यह है कि हरिदास-जैसे एक भगवद्भक्तको भोजन करानेसे कोटि-कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे भी अधिक पुण्यलाभ होता है ।

अद्वैतमतावलम्बी, महापण्डित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य एक नैष्ठिक ब्राह्मण थे। वे वैदिक रीति-नीतिके कट्टर समर्थक थे एवं शास्त्रोंमें उल्लिखित विधि -निषेधका अतिशय श्रद्धापूर्वक पालन करते थे। महाप्रभुकी कृपासे उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीति प्राप्त हुई ।

एक दिवस उनकी परीक्षा लेने महाप्रभु चैतन्यदेव अरुणोदयके पूर्व ही गत रात्रिका बासी, वैष्णवोंका उच्छिष्ट एवं मन्दिरके बाहर फेंका, श्वपचादिसे संस्पर्शित भगवत्प्रसादका भात लेकर पहुँचे। महाप्रभुको निरे प्रभात आया देख सार्वभौम तत्क्षण ही शय्या त्यागकर उठ बैठे। महाप्रभुके प्रसाद देते ही उन्होंने बिना शौच-स्नान किये ही बासी मुख उस प्रसादको ग्रहण कर लिया। वे पद्मपुराणके निम्न श्लोकोंका अतिशय भावपूर्वक उच्चारण कर रहे थेः—

शुष्कं पर्युषितं वापि नीतं वा दूर देशतः ।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं नात्र कालविचारणा।।

न देशनियमस्तत्र न काल नियमस्तथा ।
प्राप्तमन्नं द्रुतं शिष्टै भोक्तव्यं हरिरव्रती ।।

महाप्रसाद शुष्क हो चाहे बहुत दिन पूर्वका पकाया हुआ हो, चाहे वह दूर देशसे लाया हुआ हो, उसे बिना समय-असमयका विचार करते हुए, मिलते ही प्राप्त कर लेना चाहिये। वैष्णवजनोंको भगवान्‌का अन्नप्रसाद प्राप्त होते ही ग्रहण करनेकी भगवदाज्ञा है। इसमें देश-काल, पाप-पुण्यका कोई नियम नहीं।

यह देखकर महाप्रभु चैतन्यदेव अतिशय आनन्दित हुए। वे सर्वभौमको आलिंगनकर नृत्य करने लगे। वे बोले–

आजि कृष्ण प्राप्ति योग्य हैल तोमार मन।
वेद धर्म लाँघि कैले प्रसाद भक्षण।।

'तुमने वेद-धर्म लाँघकर प्रसाद भक्षण किया, तो समझो तुम्हारा मन अब कृष्णप्राप्तिके योग्य हुआ।' रसिकाचार्य श्रीहरिरामव्यासदेवाचार्यजीका एक पद यहाँ उल्लिखित कर इस प्रसंगको आगे बढ़ाता हूँ ।

रसिक अनन्य हमारी जाति ।
कुलदेवी राधा , बरसानौ खैरो, ब्रजवासिन सौं पाँति।
गोत गोपाल ,जनेऊ माला, शिखा शिखण्डि हरिमंदिर भाल।
हरिगुनगान बेदधुनि सुनियत, मूँज पखावज ,कुश करताल।।
साखा जमुना, हरिलीला षट्कर्म, प्रसाद प्राण, धन रास ।
सेवा विधि, निषेध जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन बास।।
सुमृति भागवत, कृष्णनाम संध्या-तर्पन गायत्रीजाप।
बंशी ऋषि,जजमान कल्पतरु, ब्यास न देत असीस-सराप।।

अर्थात् इन प्रेमी कृष्णभक्तोंकी जाति ही अनन्य रसिकता है ! इनकी कुलदेवी राधा है और इनका खैरो (मठ) बरसाना ग्राम है तथा ब्रजवासियोंकी पंगत ही इनकी भोजनोपलब्धिका साधन है। इनका गोत्र गोपाल है, और इनकी पहनी तुलसीकी कण्ठी ही इनका यज्ञोपवीत है। हरिगुणगान ही इनके लिये वेद-ध्वनिश्रवण है, इनके पास मूँज एवं कुशके स्थानपर पखावज और करताल हैं। इनकी शाखा यमुना है । इनके षट्कर्म हरिलीलादर्शन और भगवत्प्रसाद इनका प्राण है, इनका धन रासलीलादर्शन है । विधि इनके लिये भगवत्सेवा है और जड़ देहाध्यासी लोगोंकी संगति निषेध है। इनकी वृत्ति सदा वृन्दावनवास करना ही है । इनकी स्मृति भागवत है और भगवन्नामजप

ही इनका संध्यातर्पण-गायत्रीजप है । वंशी इनकी आदर्श ऋषि है और कल्पतरु यजमान है । व्यासजी कहते हैं कि ये वैष्णव न तो किसीको श्राप देते हैं और न ही वरदान देते हैं ।

श्रीहरिरामव्यासदेवजीका भगवत्प्रसादके सम्बन्धमें भी एक बड़ा ही मार्मिक पद है–

हमारो जीवन-मूरि प्रसाद।
अतुलित महिमा कहत भागवत मेटत सब प्रतिवाद।।
जो षट्मास व्रतनके कीन्हें, एक सीथके स्वाद ।
दर्शन पावत साथ खात मुख परसत हरत विषाद।।
लेत-देत जो करत अनादर सो नर अधम गवाद ।
श्रीगुरु सुकुल प्रसाद व्यास यह रस पायो अनहाद ।

श्रीगुरुसुकुलप्रसादके शिष्य व्यासदेवजी कहते हैं कि भगवत्प्रसाद ही हमारे जीवनका सार है। भगवत्प्रसादकी महिमा अतुलित है। श्रीमद्भागवत इस सम्बन्धमें प्रमाण है; वह सब कुतार्किकोंका प्रतिवाद करनेमें समर्थ है। छः-छः मासतक अनवरत भले ही व्रत करलो, परन्तु एक कण भगवत्प्रसादके प्राप्त करने मात्रसे ही भगवद्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। उसके स्पर्शमात्रसे सारे विषाद मिट जाते हैं । जो व्यक्ति भगवत्प्रसाद लेने-देनेमें अनादरका भाव रखते हैं, वे महा अधम और गँवार हैं । श्रीव्यासदेवजीने तो मात्र भगवत्प्रसादकी कृपासे ही असीम रस प्राप्त किया है ।

अन्तमें मुझे इतना ही कहना है – पू. श्रीराधाबाबा और श्रीपोद्दार महाराज दोनों ही उसी वैष्णवताके आदर्श थे, जो महाराजा अम्बरीषसे लेकर अबतक परम भागवतधर्मके रूपमें जानी जाती है एवं अब भी यत्र-तत्र विद्यमान है।

श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकासे मत-वैभिन्न्य

बक(दम्भ) एक वृत्ति होती है। परनिन्दा ही इसका उद्देश्य होता है, और इसके द्वारा यह वृत्ति अहंकार(कंस)को तुष्ट करती रहती है। एक बार तो अति उल्लासपूर्वक यह तीक्ष्णतुण्ड बक नन्दनन्दनको भी अपने चञ्चुपुटोंमें रख लेता है, फिर साधारण मानवकी तो बात ही क्या है ? इस दम्भरूप बकने अपने नीचेकी चौंचको तो पातालमें लगा रखी है और ऊपरकी चञ्चुसे समग्र आकाशको समावृत कर लिया है । देव, दनुज, मानव – समस्त जीवोंके प्राण इस निन्दास्तुतिरूप बक-कर्मसे प्रभावित होते ही रहते हैं। यह बक समस्त जीवोंके प्राण आकर्षण करनेके लिये विशाल संडासी-सरीखा अपना मुख फैलाये कालपुरुषके समान सर्वत्र ही अवस्थित रहता है।

गोरखपुरका साहिबगंज मोहल्ला भी फिर भला इस बकक्रिया – निन्दास्तुतिका अपवादरूप कैसे रह पाता ? श्रीराधाबाबाने रासलीलाके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया – यह बात निन्दारूप धारणकर एक-से-दूसरेके कानोंमें जाने लगी। लोग चाहे स्वयं धर्मका अंशमात्र भी पालन नहीं करते हों, वे दूसरेको तो पूर्ण धर्मावतारूपमेही देखना चाहते हैं। लोग एक-दूसरेसे कहने लगे कि चतुर्थाश्रमी संन्यासी होकर भी राधाबाबा एक ब्रजवासी रास-धारी बालकका उच्छिष्ट ग्रहण करते हैं, यह तो सर्वथा ही अनुचित बात है। ऋषिकेशमें यह बात कुछलोगोंनेश्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके कानोंमें भी डालनी प्रारम्भ कर दी। जो लोग छिद्रान्वेषी होते हैं उन्हें अपचर्चाके लिए कुछ-न-कुछ साधन तो चाहियें ही। यहाँ श्रीसेठजीके स्वभावके सम्बन्धमें भी दो बातें लिखना परमावश्यक समझ रहा हूँ । पू. गुरुदेव प्रथमतः जब श्रीसेठजीके पास बाँकुड़ा पहुँचे थे तब उनके गीताके विचारोंसे इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने उनके विचारोंकी श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके प्रकाशनमें लगातार ढाई-तीन वर्षतक अनवरत कार्य किया था। श्रीसेठजीके सम्बन्धमें पू.गुरुदेवकी अपनी उक्ति निम्न है–

वैकुण्ठ(बाँकुड़ा) नामकी नगरी थी, ज्ञानी थे एक वहाँ प्रियतम।
राजा विदेहके सदृश भला, प्रेमी रघुकुलमणिके प्रियतम ।।

आदर्श चरित्रोंके वे थे, जय सीताराम तथा प्रियतम ।
नारायण नाम अधिक उनको प्रिय था ऐसा लगता प्रियतम।।
जीवनमें उनके छाया थी उस तुलाधारकी भी प्रियतम ।
वे अतिशय सरल दक्ष पर थे जगके व्यवहारोंमें प्रियतम ।।
देखा था मैंने उनको जब आकाशचारिणी थी प्रियतम ।
होती थी सुनकर फुल्ल सदा प्रवचन पवित्र उनका प्रियतम।।

(पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा रचित चौपदोंसे)

श्रीसेठजी जयदयालजी सचमुच ही महान् विभूति थे। उनमें विश्वकल्याणकी अदम्य भावना थी, परन्तु उनका हृदय गोपीहृदय नहीं था। पू. गुरुदेव अनेक बार यह कहते थे कि महात्मा नन्दरायजी श्रीकृष्णके पिता थे, उनके चरणोंकी धूलि सदा-सर्वदा वन्दनीय है; परन्तु उन्हें श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ रासलीला कर सकते हैं, ऐसा अनुभव अपने जीवनमें कभी भी न हो पाया, न ही हो पायेगा। श्रीसेठजी ब्रह्मज्ञानी होनेके कारण अपनेको पूर्ण समझते थे, अतः अपनेको गोपीभाव एवं रासलीलाका भी मर्मज्ञ मानते थे। गोपीभावपर उनका एक लेख भी 'कल्याण'में प्रकाशित हुआ था जो पुस्तकाकार रूपमें भी छपा था, परन्तु वह गोपीभावका ज्ञानसम्मत आनुमानिक आकलन मात्र ही था। वस्तुतः महाभावराज्यकी गोपीका जो स्वभाव होता है, उसका प्रकाश होना उनके द्वारा संभव था ही नहीं ।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा द्वारा रासलीलाके ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण करना श्रीसेठजीको किसी भी प्रकारसे अनुकरणीय और उचित नहीं लगा। वस्तुतः वह सर्वजनके लिये अनुकरणीय था भी नहीं । परन्तु यह तथ्य तो सर्वत्र प्रसारित हो ही गया था कि श्रीराधाबाबा रासके ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करते हैं। रासलीला दर्शन करनेवालोंमें कुछ सच्चे भक्त भी थे। वे अपनी भावुकतावश रासके ठाकुरके प्रति भगवद्भाव रखते थे। उनकी यह भावुकता पूर्ण सच्ची तो नहीं थी, परन्तु वृन्दावनके रसिक वैष्णवोंकी साम्प्रदायिक परम्परा और अनुकृति—नकलके रूपमें ये सभी ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करनेकी चाह अवश्य रखते थे। ये सभी श्रीसेठजीकी अति मर्यादावादी विरोधी-भावना और उनके आक्षेपोंसे पू. राधाबाबाको अपना कवच बनाकर बचना चाहते थे ।

कुछ बकभाव रखनेवाले छिद्रान्वेषी पुरुष भी थे, इन्हें अपचर्चाके लिये

एक अच्छा विषय मिल गया था और ये श्रीसेठजी गोयन्दकाजीको गोरखपुरसे प्रतिदिन ही उलटे–सीधे पत्र लिखते थे और रासलीलाके प्रति बगींचेवालोंकी रुझानको सेठजीके सम्मुख विकृतरूपमें प्रस्तुत करते थे । इनका एक ही उद्देश्य था कि किसी–न–किसी प्रकारसे श्रीसेठजी और श्रीराधाबाबाके मध्य खाई खोदी जाय। श्रीसेठजीने इनलोगोंसे इस बीच पूछा कि क्या तुम्हारे सम्मुख श्रीराधाबाबाने ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण किया था ? इसका उत्तर उनके पास नहीं था। कारण, श्रीठकुरीबाबूके यहाँ दुपहरीमें हुई वनचारणलीलामें गिने–चुने मात्र भावुक लोग सम्मिलित थे। कामकाजी व्यापारी लोग दुपहरीमें अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानोंमें व्यस्त रहते हैं। अतः जो बहुत ही भावुक रास–रसिक लोग थे, वे ही लीलादर्शनार्थ जा पाये थे तथा ऐसे लोगोंको तो अपने रससे तात्पर्य था, इस व्यर्थकी निन्दा–स्तुतिसे वे सर्वथा दूर थे । सेठजीके सम्मुख मात्र अफवाह की ही बातें पहुँची थीं, कोई प्रत्यक्षदर्शी जिम्मेवार व्यक्ति साक्षीके रूपमें यह कहनेको तत्पर नहीं था कि उसके सम्मुख ऐसा हुआ है।

संयोगकी बात है, कि एक दिन कुछ लोगोंने रासके ठाकुरको इस बातके लिये पटा लिया कि वह रात्रिमें लीला सम्पन्न हो चुकनेके पश्चात् जब पू. राधा बाबा एवं बगीचेके लोग विदा हों , उस समय अपना उच्छिष्ट उन्हें प्रसादरूपमें दे। वे इस योजनाके द्वारा साहिबगंजके अनेक प्रतिष्ठित व्यापारियोंको सेठजीके सम्मुख इस उच्छिष्ट–ग्रहणके प्रत्यक्षदर्शी साक्षीके रूपमें प्रस्तुत करना चाहते थे । इन छिद्रान्वेषियोंकी इस दुरभिसन्धिमें कुछ ऐसे सच्चे भावुक व्यक्ति भी सम्मिलित हो गये, जिनका इस निन्दा–स्तुतिसे कुछ भी लेना–देना नहीं था, परन्तु जो इस तथ्यकी पुष्टि करना चाहते थे कि धर्मतः ठाकुरका उच्छिष्ट लेना शास्त्रसम्मत है या नहीं। उनके सामने धर्म एवं शास्त्रानुकूल आचरण करनेवाले मात्र दो ही आदर्श प्रतिमान थे, एक कट्टर वैरागी, पूर्ण त्यागी, संन्यासी श्रीराधा बाबा जो साथ–ही–साथ राधाकृष्णके परमोच्च उपासक भी थे, दूसरे , तैलंग–कुल–भूषण, पूर्ण आचारवान्, परमत्यागी, शास्त्रके मर्मको समझनेवाले, ब्राह्मणवर गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी । श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी प्रतिदिन रासलीलादर्शनार्थ गीतावाटिकासे साहिबगंज आया करते थे। ये संस्कृतके सुविज्ञ पण्डित होनेके साथ ही सर्वशास्त्रनिष्णात थे। अतः ये रासरसिक लोग

यही प्रत्यक्ष देखना चाहते थे कि इतने कट्टर–आचारी, उच्चकुल–शील–शास्त्रविधि के निष्णात समर्थक ही यदि ठाकुरका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करते हों, तो फिर अवश्य ही ऐसा करना वैष्णवशास्त्र एवं भागवतधर्म –सम्मत होगा ही, भले ही इसका विरोध सेठजी जयदयालजी करते रहें। इनकी मान्यता थी कि सेठजी आचार–मर्यादाके कठोर पक्षधर हैं, वे वैष्णवताके श्रद्धापक्षको आदृत एवं प्रतिपादित नहीं करते। गोस्वामीजी श्रीचिम्मनलालजी वल्लभकुलके वैष्णव हैं एवं पूर्ण कठोर आचारवान् भी हैं। अतः उन–जैसा आदर्श वैष्णव यदि ठाकुरवेषधारी ब्रजवासी बालकका उच्छिष्ट ग्रहण करता है, तो मर्यादाका पक्ष रखनेवाले सेठजीके विरोधको वे उनका व्यक्तिगत मताग्रह मानकर मात्र एकपक्षीय ही समझेंगे। अस्तु, छिद्रान्वेषी लोगोंकी इस दुरभिसन्धिमें ये भावुक लोग भी सम्मिलित हो गये ।

रासलीला प्रारम्भ हुई। पू.गुरुदेवकी दृष्टि ठाकुर पर पड़ी । पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा देख रहे थे, आज बकासुरके उद्धारकी लीला सम्पन्न होने जा रही है। श्रीकृष्णके साथ उनके अग्रज दाऊभैया भी हैं। पू.गुरुदेव देख रहे हैं कि आज ठाकुरकी लीलासे उनके हृदयका भावसंसार ठीक संयुक्त नहीं हो पा रहा है। आज ठाकुर उनके संकल्पानुसार आचरण नहीं कर रहा है, स्वतंत्र रीतिसे अपने मनकी कर रहा है। पू. गुरुदेवके अपने भावसंसारमें तो ठाकुरको इस समय वनस्थलीकी शोभा निहारतेहुए, हँसते–हँसाते, अपनी वंशीकी मधुर स्वर–लहरीसे वृन्दाकाननको आप्लावित करना चाहिये, परन्तु प्रकटमें रासलीलाका ठाकुर मात्र हियो–हियो करता हुआ अपने बछड़े बने पात्रोंको ही हाँक रहा है, वंशीवादन कर ही नहीं रहा। पू.गुरुदेवके भावसंसारमें तो गोवत्सोंके साथ चलते–चलते ब्रजबालकोंके सम्मुख पहले नवतृणास्तीर्ण वनभूमि आती है, फिर वहाँ एक रमणीय सरोवर व्यक्त होता है। उल्लासमें भरे रामकृष्णकी तथा गोपशिशुओंकी यहाँ प्रथम चेष्टा होती है – अपने–अपने वत्ससमुदायको सरोवरका सुनिर्मल जल पिलाकर तृप्त करना। परन्तु रासलीलाधारी तो अपनी लीलामें सरोवरके स्थान पर यमुनातटपर अपने वत्सोंको ले आये हैं । ये अपने वत्सोंको जल पिला ही नहीं रहे हैं, न स्वयं ही जल पी रहे हैं ।

पू.गुरुदेवके भावसंसारमें तो इतनी दूरसे चलकर आनेके कारण स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रको भी प्यासकी अनुभूति होती है और वे अपने वत्सोंको जल

पिलाकर परितृप्त करनेके उपरान्त स्वयं भी उस सुनिर्मल सरोवरका अति सुमिष्ट जल पान करते हैं, परन्तु उधर प्रकट रासलीलामें ठाकुर पू. गुरुदेवके भावानुसार लीला सम्पन्न करनेकी अपेक्षा समाजियों द्वारा गाये पदोंके अनुसार दूसरे ही प्रकारसे लीला सम्पन्न करता जा रहा है ।

इसीलिये पू.गुरुदेवका आज रासलीलादर्शनमें वैसा भावोद्दीपन नहीं हो रहा है, जैसा विगत दिवसोंमें होता रहा है। सहसा पू. गुरुदेवके भावसंसारके आराध्य श्रीकृष्ण उनके सम्मुख साक्षात् खड़े हो जाते हैं और कह उठते हैं– 'प्राणेश्वरी ! आज यदि इस ठाकुरस्वरूप द्वारा तुझे अपना उच्छिष्ट प्रसाद दिया जाता है, तो तू कदापि मत ग्रहण करना, और न ही उसे किसी औरको भी प्रदान करना, सावधान !'

पू.गुरुदेव अपने इष्टके इस स्पष्ट आदेशको सुन रहे थे। वे देख रहे थे कि अपनी प्रियाको यह आदेश देते हुए उनके प्राणाराध्यके अरुणिम अधरोंपर मृदु हास्यकी छटा भर आयी है। उस स्मितकी ओटसे चिन्मय सुधा–सीकर झर रहे हैं। मुखमण्डलका सौन्दर्य, लावण्य निखर उठा है । पू. गुरुदेव अपने आराध्यकी इस विलक्षण शोभाको सचकित निहार ही रहे थे कि इसी समय उन्हें रासलीलाका बंकासुर बनाहुआ एक पात्र सम्मुख दृष्टिगोचर हुआ। पू. गुरुदेव उसे देखने लगे। वे सोचने लगे – क्या सचमुच ही ये रासमण्डलीवाले मुझसे कोई छल करने जा रहे हैं ? इधर उस विशाल बकाकृति धारण किये रासधारीने अपने विस्तारित चञ्चुपुटोंको सखा बने रासधारी बालकोंकी ओर फैला दिया।

गोपबालकोंकी लीला करनेवाले बालक भागे अपने प्राणसखा ठाकुरकी ओर। इधर ठाकुर अपना वक्तव्य बोल रहा था–' भैयाओ ! देखो ! आकारसे तो यह पक्षी ही लगता है, पर इसकी चेष्टा पक्षी–जैसी सर्वथा नहीं है। यह तो सर्वथा पर्वत–श्रृंग–जैसा प्रतीत हो रहा है।''

गोपसखा श्रीकृष्णको घेरे हैं एवं भीतिसे भरे परस्पर वार्ता कर रहे हैं–'अरे भैया ! यह पक्षी नहीं है, यह अवश्य ही कोई दानव है। यह तो हम सभीको निगल जानेको उत्सुक है । चलो ! कन्नू ! हम सभी भाग चलें ! '

'अरे ! यह क्या ?'– पू.गुरुदेव देख रहे हैं कि ठाकुरवेषधारी बालक अपने सखाओंसे 'भयभीत मत होवो' कहता हुआ बकासुरके निकट चल पड़ता है। पू. गुरुदेव पुनः इस बालकके बाल्यावेशपर मुग्ध होगये। सरल मुग्ध

शिशुकी भंगिमा धारण किये बालक ठाकुर वक्रतुण्ड बकासुरकी ओर अग्रसर हो रहा है। बालक मन्द गतिसे बकके निकट जा रहा है। उसकी चालसे स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि उसे बकका किञ्चित् भी भय नहीं, अपितु उसके प्रति उपेक्षा–अवहेलना है ।

पू.गुरुदेवकी वृत्ति पुनः इस लीलाके बाह्य दर्शनको छोड़ अन्य विचारोंमें उलझ गयी। वे सोचने लगे – जब मेरे इष्टदेव ठाकुर ही मूर्तिमान् बकासुरसे किञ्चित् भी भयभीत न होकर, उसकी उपेक्षा, अवहेलना कर रहे हैं, तो मैं लोकनिन्दारूप इस बकसे क्यों भयभीत होऊँ ? मेरे प्रियतम प्राणाराध्य मुझे अतिशय स्नेह करते हैं, अतः भविष्यमें होनेवाले अपवादसे मेरी रक्षा करनेके लिये अपनी सर्वज्ञता प्रकाशित करते हुए मुझे इस ठाकुरका उच्छिष्ट ग्रहण नहीं करनेका प्रेमाग्रह करते हैं। अवश्य ही उन्हें मेरे संन्यासीवेषकी मर्यादाका विचार है। परन्तु अन्ततः उन्होंने इस बकासुरका वध तो किया ही । क्या यह महाबली तीक्ष्णतुण्ड पक्षी मेरे प्राणपति नीलसुन्दरको अपने चञ्चुपुटोंसे आहत करके उदरस्थ कर पाया ? अन्ततः इस बकका विनाश ही तो हुआ ! फिर मैं भयभीत क्यों होऊँ ? जब मैं रासलीला देखने यहाँ उपस्थित ही हूँ तो मुझे संन्यासकी अपेक्षा रासलीलाकी मर्यादाको ही तो प्रमुखता देना चाहिये।

पू. गुरुदेव इन्हीं विचारोंमें खोये रहे और लगभग डेढ–दो घण्टे लीलाका समय व्यतीत होगया। सम्पूर्ण लीला कैसे सम्पन्न हुई, उन्हें कुछ ज्ञान ही नहीं रहा। कब श्रीकृष्ण बकके मुखविवरमें समाये, कब उनके प्राणपति व्रजेन्द्रनन्दनको उगल देनेको वह बाध्य हुआ, कैसे श्रीकृष्ण अक्षतरूपमें उसके कण्ठसे बाहर आये , कब अतिशय रोषमें भरकर पुनः बकने उनपर चञ्चुप्रहार किये, कब बकदैत्यकी दोनों बृहत् चोंचोंको अपने सुकोमलतम नन्हे करपल्लवोंसे बलपूर्वक उन्होंने पकड़ा, और फिर क्षणार्धमें ही मानो वह बकदैत्य ग्रन्थिहीन –एक तृणविशेष हो इस प्रकारका होगया, अनायास ही बीचसे कब उन्होंने उसको चीर दिया– पू.गुरुदेव सब कुछ खुली आँखोंसे देखते हुए भी कुछ भी नहीं देख पाये।

उनके विचारोंका प्रवाह तभी थमा, जब देवगणों द्वारा सहस्र–सहस्र कुसुमोंकी वृष्टि होने लगती है और रासलीलाके समाजी अपने ठाकुरके अंगोंको वनधातुओंसे सुसज्जित करने लगते हैं । इसी उमंगके प्रवाहमें ठकुरीबाबूद्वारा

ठाकुरको थाली भरकर नुक्ती(बुँदिया)का प्रसाद गुलाबके पुष्पोंसे आच्छादितकर भोग लगाया जाता है। ठाकुर उसी थालीमें मुट्ठी भर–भरकर स्वयं भी खाता है और अन्य सखाओंको भी खिलाता है । ब्रजवासी बालकोंके संस्कारोंमें उच्छिष्ट–अनुच्छिष्टका तो विचार रहता ही नहीं है । वे तो उमंगके प्रवाहमें एक–दूसरेके मुखोंमें बूँदी डालनेकी स्पर्धामें जुटे हैं । वहाँ इसे असम्बद्ध और असंगत तो कुछ माना ही नहीं जाता है।

अन्ततः लीलाका पटाक्षेप आरतीके साथ होता है, और लीला सम्पन्न होती है। इसी समय स्वयं ठाकुर उठकर उस बूँदी प्रसादमेंसे दोना भर–भरकर सभी सम्मान्यजनोंको देनेकी योजनानुसार सर्वप्रथम वह प्रसाद पू. राधाबाबाको देने उनके सम्मुख खड़ा हो जाता है। ठाकुर वह उच्छिष्ट प्रसादका दोना राधाबाबाके हाथमें दे देता है और कहता है कि इसे पालें। पू. राधाबाबाके नेत्रोंमें, मुखपर एक साथ किंकर्तव्यविमूढ़ताकी छाया झलमल कर उठती है। वे पुनः विचारमें पड़ जाते हैं । उस दिन अवश्य ही वह अमरूद जो ठाकुरकी दंतपंक्तिसे अर्धचर्वित था, उन्होंने खाया था, परन्तु उस दिवस तो वे सच्चिन्मय महाभाव–रससागरमें सपूर्णतया निमग्न थे , उन्हें बाह्य लोकाचारका ज्ञान ही नहीं था । उस दिवस तो उनका सम्पूर्ण मायादृश्य ही तिरोहित हो गया था, परन्तु आज तो यह स्थिति है नहीं । आज तो वे पूर्णतया जागरूक हैं और उनकी बुद्धि धर्माधर्मका पूर्णतया निर्णय करने में समर्थ है । तब वे आज चतुर्थाश्रमी संन्यासी होकर सारे विश्वमें प्रचलित संन्यासमर्यादाके शास्त्रविहित आचरणको सब जनसमूहके सम्मुख क्यों लाञ्छित करें ? यह जनसमूह तो उनके आचरणको ही अनुकरणीय मानेगा ! और यदि उन्होंने प्रसाद ले लिया तो सभी इस उच्छिष्ट–भक्षणको धर्मसम्मत मान लेंगे। शास्त्रके विधि–निषेधका तो यह सर्वथा उल्लंघन होगा ही। ब्राह्मण संन्यासीको किसी भी व्यक्तिका चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, उच्छिष्ट ग्रहण करना तो शास्त्रमें पूर्णतया वर्जित है ही। परन्तु इस रासलीलाके ठाकुरकी भी कुछ मर्यादा है । समग्र वैष्णव–सम्प्रदायोंकी यह परम्परा है कि ब्रजवासी ब्राह्मण बालक यदि मुकुट धारणकर श्रीकृष्णवेषमें समुपस्थित हो तो उसे प्राणप्रतिष्ठित भगवन्मूर्तिके समान ही आदर देना चाहिये। और उसके उच्छिष्ट प्रसादको भगवत्प्रसादवत् महिमान्वित समझना चाहिये। तब इस प्रसादका एक कण मात्र क्या मैं ग्रहण

करलूँ ? कोई भी व्यक्ति भगवत्प्रसाद कहकर मुझे कुछ भी यदि देता है तो उसका एक कण तो मैं ग्रहण करता ही हूँ ! फिर मैं ब्रजवैष्णवोंकी इस मान्यताका समादर क्यों न करूँ ? जब ठाकुर स्वयं अपने हाथों प्रसाद दे रहा है, तो इसकी मर्यादाकी रक्षा तो होनी ही चाहिये ! इस प्रकार ऊहापोहमें भरे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा अपने हाथोंमें वह बूँदीका दोना लिये बहुत कालतक खड़े रहे। आसपास खड़े भावुक भक्तों और छिद्रान्वेषी सभी लोगोंकी दृष्टि उनकी क्रियाको देखती–परखती उनपर गड़ी थी। श्रीराधाबाबाके मनमें यह भी आया कि अपनी दो अँगुलियोंके मध्य चुपचाप बिना किसीके देखे बूँदीका एक दाना दबालूँ ! इस दानेको बादमें मैं पालूँगा। इस प्रकार मैं संन्यासी होकर सबकी दृष्टिमें अनुकरणीय आचरणका शास्त्रसम्मत आदर्श भी समुपस्थित कर दूँगा और वैष्णवोंकी मर्यादा भी रह जायगी। परन्तु फिर उन्होंने इसे अपने समक्ष खड़े ठाकुरकी वञ्चना मानकर ठाकुरके वचनोंका ही सम्मान करनेका विचार कर लिया और एक कण प्रसाद लेकर अपने मुखमें रख लिया, शेषांश प्रसादका दोना उन्होंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको दे दिया जो स्पर्शास्पर्शका अत्यधिक विचार रखनेवाले थे। श्रीगोस्वामीजीने वह उच्छिष्ट प्रसाद बिना कोई विचार किये मात्र इसीलिये पा लिया, क्योंकि उन्हें वह प्रसाद उनके गुरुतुल्य आदर्श संन्यासी श्रीराधाबाबाने दिया था। अब तो भावुक भक्तोंके साथ–साथ छिद्रान्वेषण कर श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके कानमें उलटी–सीधी लगानेवाले बक–चरित्र लोगोंकी भी योजना आवश्यकतासे अधिक पूर्ण हो चुकी थी। छिद्रान्वेषी लोगोंको तो अनेकों सम्मान्य प्रतिष्ठित लोग भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षीके रूपमें मिलगये थे, अतः उन्होंने तत्क्षण ही उन सबकी एक नामावली बना डाली जिन्होंने पू. राधाबाबाको उच्छिष्टका कण प्रसाद लेते देखा था और गोस्वामीजी जैसे आदर्शचरित्र व्यक्तिको भी, जो श्रीसेठजीके परिवारकी भी अनसखड़ी ग्रहण नहीं करते थे एवं गंगाजलमें ही बनी वस्तु स्वीकार करते थे, पूरा उच्छिष्ट दोनाप्रसाद पाते देखा था। इधर भावुक भक्तोंने जब इन दोनोंको प्रसाद लेते देख लिया, तो वे निस्संकोच ठाकुरका प्रसाद निर्भय होकर पाने लगे।

एक छिद्रान्वेषी व्यक्तिका तो इस इधर–उधरकी लगौवनलीलामें उद्देश्य ही यह था कि श्रीसेठजीका–जिन्हें पू. गुरुदेव राधाबाबा सदा पितातुल्य पूर्ण

समादर देते थे और अपनी ब्रह्मज्ञानकी अपरोक्षानुभूति उपलब्धिमें जिन्हें हेतु मानकर साक्षात् भगवान् नारायणतुल्य ही देखते थे – पू. राधाबाबाके प्रति दुर्भाव बन जाय और दोनोंके मध्य न पाटी जा सके वैसी खाई खुद जाय। उसने अपने मन्थरास्वभावका पूर्ण परिचय देते हुए इन सभी तथ्योंको पत्रोंद्वारा इतना विकृतरूपमें सेठजीके सम्मुख प्रस्तुत किया कि सेठजी स्वयं सत्संगका कार्यक्रम छोड़ गोरखपुर चले आये।

श्रीसेठजी शास्त्रीय विधि–निषेधके इतने कट्टर समर्थक थे कि वे उसका अन्य किसी भावनासे किसी भी प्रकार सामंजस्य करना चाहते ही नहीं थे। उन्होंने अपने निजी एवं सार्वजनिक सत्संगोंमें इस मान्यताका पूरा खण्डन किया कि रास अभिनय करनेवाले बालकमें मात्र मुकुट धारण करनेसे श्रीकृष्णावेश होता है। उनका कथन था कि यदि उस बालकमें श्रीकृष्णावेशकी छाया भी थी तो वह लोगोंके सिखाने–पढानेसे अपने ही गीतोपदेशके विरुद्ध आचरण करता हुआ उच्छिष्ट वितरण क्यों करता ? क्या श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णकी वाणी नहीं है और उसमें उन्होंने अपने मुखसे उच्छिष्ट भक्षणको सरासर तमोगुणी नहीं कहा है ? फिर भगवान् स्वयं अपने ही उपदिष्ट सिद्धान्तका स्वयं ही अपने आचरणसे खण्डन कैसे कर सकते हैं ? श्रीराधाबाबा और गोस्वामीजी–जैसे व्यक्तियोंने एक उच्छृंखल आचरण करनेवाले चपल बालकमें किस हेतुसे ऐसी आसक्ति करली। प्रतिदिन उसका नाट्याभिनय देखना और उच्छिष्ट भक्षण करना तो खुला नरकका द्वार है। यह मेरे आजीवनके स्थापित सिद्धान्तोंका मेरे अपने विश्वस्त जनों द्वारा खुला मजाक बनाया गया है ! इसके उपरान्त भी श्रीराधाबाबा यदि वृन्दावन जानेकी धमकी देते हैं, तो उन्हें रोका किसने है ? वे भले ही वृन्दावन जावें।

श्रीसेठजीकी कठोर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ जब पू. राधाबाबाके पास और भी विकृत होकर पहुँची तो उन्होंने यह निर्णय कर लिया कि अबतक तो वे श्रीपोद्दार महाराजके निर्देशसे बँधे उनके पास रह रहे थे, किन्तु अब यदि सेठजी स्वयं उनको नहीं रोकेंगे तो वे पोद्दार महाराजकी रुचिकी उपेक्षा करके भी वृन्दावन चले जावेंगे। श्रीगोस्वामीजी चिम्मनलालजीने भी यह निर्णय कर लिया कि पू. श्रीराधाबाबाके गीतावाटिका छोड़कर वृन्दावन प्रस्थान करते ही वे भी कल्याण और कल्याणकल्पतरुके सम्पादनकार्यसे अपना त्यागपत्र दे देंगे। इधर तो श्रीसेठजीके प्रखर प्रहार चल ही रहे थे,उधर पू. राधाबाबाके सम्मुख

स्वयं ठाकुर घनश्यामने निष्कपट होकर रासधारी समाजियोंकी दुश्चरित्रताका ऐसा भण्डाफोड़ किया कि राधाबाबाका हृदय टूक–टूक होगया। उन्होंने निर्णय ही कर लिया कि वे अपने हृदयकी विशुद्ध प्रेममयी परम पवित्र एवं सत्य अनुभूतियोंको साथ लिये अपने प्राणप्यारे पोद्दार महाराजका त्याग करके वृन्दावनधाम कूच कर जावें ।

परन्तु प्रभुका विधान कुछ दूसरा ही था। प्रभुकृपासे संयोग ऐसा बना कि श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया इन्हीं दिनों गोरखपुर आये। उन्होंने श्रीसेठजीके सत्संगोंमें श्रीसेठजीकी आहतभावनाको दुखी मनसे सुना। श्रीकानोडियाजीकी श्रीपोद्दार महाराजसे बालमित्रता थी। और वे उनके सभी विचारोंसे बालकपनसे ही परिचित थे। वर्षोंतक वे गोविन्दभवनन्यासके महामन्त्री रहे । अतः सेठजीको भी अन्तर्हृदयसे भलीप्रकार जानते–समझते थे। इसी प्रकार इनका पू.राधा बाबासे पुराना परिचय था। श्रीराधाबाबासे इनका पत्राचार चलता था। श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया सीधे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबासे मिलने गीतावाटिका आये । श्रीराधाबाबाने उनसे अपने मनकी राई–रत्ती भावना निष्कपट अभिव्यक्त कर दी।

उन्होंने कहा कि –'या तो मुझे सर्वथा झूठा एवं दम्भी माना जावे, अथवा पागल माना जावे अन्यथा यदि मेरे सत्यपर किञ्चित् भी कोई विश्वास करे तो श्रीपोद्दार महाराज स्वयंको भी उस ब्रजवासी बालकमें कुछ अभूतपूर्व चिन्मयताका प्रकाश हुआ है । मैंने उसके द्वारा अभिनीत लीलाकी अपने मानस संकल्पोंसे बीसों बार परीक्षा की है, जब यह ठाकुर सर्वथा मेरे मनोनुरूप मेरी लीलाभावनाको बीसों–पच्चीसों बार अनवरत अभिव्यक्त कर गया , तभी इसमें मैंने मेरे आराध्य श्रीकृष्णको अभिनिविष्ट समझा है और उसका मेरे परमार्थ–धरातलपर सर्वथा चिन्मय प्रतिफल अनुभव करके ही उसका कणमात्र उच्छिष्ट प्रसादरूपमें ग्रहण किया है । जब मुझसे यह प्रसाद–ग्रहण–क्रिया प्रथम बार घटित हुई थी, उस समय तो मैं सर्वथा लोक–ज्ञानातीत दशामें रहा हूँ। दूसरी बार वैसी क्रिया करते समय मैं अवश्य होशमें था एवं मुझे अपने पितातुल्य सेठजीके सिद्धान्तोंको देखते हुए ऐसा नहीं करना चाहिये था परन्तु वैष्णवजगत्की भागवतधर्म–प्रतिपादक भावनाओंका भी मुझे रसजगतका साधक होनेके नाते पालन करना अनिवार्य था। यह बगीचा श्रीसेठजीका है। गीताप्रेस, कल्याण

पत्र, सभी संस्थायें श्रीसेठजीकी परम लोककल्याणकारी भावनाओं और सिद्धान्तोंकी समर्थक हैं । मेरी रस–समर्थक भावनाओंको वे यदि असह्य समझते हैं, तो मैं यह स्थान उनके प्रति पूर्ण आदर रखते हुए छोड़ना चाहता हूँ। मैं भविष्यमें भी ऐसे प्रसंग उपस्थित होनेपर उन्हें यह आश्वासन नहीं दे सकता कि मैं रासधारी ठाकुरोंसे भगवत्प्रसाद नहीं ग्रहण करूँगा। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि ऐसे अवसरोंसे मैं बचना अवश्य चाहूँगा, परन्तु यदि ऐसा अवसर उपस्थित होगया और भविष्यमें भी मैंने किसी अज्ञात कारणोंवश उच्छिष्ट प्रसादका कणमात्र ग्रहण कर लिया तो श्रीसेठजी पुनः आहत होंगे , अतः मेरा यह स्थान छोड़ देना ही उपयुक्त होगा । '

श्रीज्वालाप्रसादजीने पू.गुरुदेवकी सभी बातोंको बहुत ध्यानपूर्वक सुना, और वे श्रीसेठजीसे पुनः वार्ता करने गीताप्रेस चले गये। श्रीकानोड़ियाजीने इस सम्बन्धमें श्रीपोद्दार महाराजसे भी वार्ता की। श्रीपोद्दार महाराजको सभी बातोंका ज्ञान न हो, सो बात तो नहीं थी, परन्तु उन्होंने श्रीज्वालाप्रसादजीके सम्मुख ऐसा ही अभिव्यक्त किया मानो उन्हें तो कुछ भी भनक ही नहीं हो। वे अति क्षुभित होकर ज्वालाप्रसादजीसे कहने लगे कि यह भला कैसे संभव है कि श्रीराधाबाबा यहाँसे चले जावें । संसारी लोगोंको तो बात बिगाड़नेमें ही आनन्द आता है।

श्रीज्वालाप्रसादजी पुनः सेठजीसे मिले। उन्होंने श्रीसेठजीको पू. श्रीराध ाबाबाद्वारा दिया समग्र स्पष्टीकरण भी सुनाया। श्रीसेठजीने उनसे कहा कि मैं स्वयं प्रातःकाल जाकर स्वामीजीसे भेंट करूँगा।

प्रातःकाल श्रीसेठजी गीतावाटिका आकर पू. राधाबाबासे मिले। उन्होंने कहा कि "मैं सर्वथा नहीं चाहता कि आप हम लोगोंको छोड़कर चले जावें। मैं तो उच्छिष्ट–ग्रहणको गीताशास्त्रानुसार तमोगुणी मानता हूँ और आपका उच्छिष्टग्रहण मुझे सर्वथा अनुचित लगा। आपके चले जानेकी बात मैंने कभी नहीं कही और ऐसी बातकी कोई स्फुरणा भी मेरे प्रसुप्त मनमें भी कभी उदित हो, तो भगवान्से मैं प्रार्थना करता हूँ कि उसकी छायाको भी वे तुरन्त मिटादें। मैं आपको एवं श्रीगोस्वामीजीको अपने आपसे भिन्न सर्वथा नहीं मानता और मैं आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि आप भविष्यमें कभी किसीका उच्छिष्ट प्रसाद सर्वथा ग्रहण न करें। यही बात परमोत्तम होगी। आपके प्रति आनुगत्यके कारण

ही श्रीगोस्वामीजी जैसे आचारनिष्ठ व्यक्तिने उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण किया । मेरी दृष्टिमें यह सर्वथा अनुचित आचरण हुआ है। "

श्रीसेठजीकी छलरहित प्रीतिभरी बातें सुनकर पू. राधाबाबाका हृदय भर आया। उन्होंने उन्हें यही आश्वासन दिया कि मैं यथाशक्ति आपके अनुरोध का अवश्य पालन करूँगा , परन्तु किसी अवश परिस्थितिमें यदि मैं मात्र एक कण प्रसादरूपमें उच्छिष्ट ग्रहण कर लूँ, तो इसके लिये आपको विचार न कर, मुझे क्षमा कर देना चाहिये। –यह सुनकर श्रीसेठजी मुसकुराकर विदा हुए।

अब श्रीराधाबाबाका पू. पोद्दार महाराजको छोडकर कहीं भी आने–जानेका तो प्रश्न ही नहीं रहा था। अकारण ही जो विषम परिस्थिति उत्पन्न होगयी थी, वह सर्वथा समाप्त होगयी। श्रीसेठजीके विरोधसे सारे मारवाड़ी समाजका वातावरण इस प्रकारका द्वन्द्वात्मक होगया कि रासलीलावालोंकी जो अर्थप्राप्तिकी संभावनाएँ थीं, वे अति न्यून होगयीं। अतः उन्होंने गोरखपुरसे प्रस्थान करना ही उचित समझा। पू. श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा भी उन्हें अधि

रोकना नहीं चाहते थे, कारण, मण्डलीके समाजियोंकी चरित्र–न्यूनताकी अनेक घटनाएँ ठाकुरवेष धारण करनेवाले बालक घनश्यामने श्रीराधाबाबाके प्रति अपना सच्चा आन्तरिक निष्कपट प्रेम रखते हुए, उन्हें निस्संकोच बतला दी थीं। श्रीराधाबाबाने मण्डलीके स्वामीको स्पष्ट तौरपर कह दिया था कि उन्हें भविष्यमें गोरखपुर नहीं आना चाहिये। कारण, उनके गोरखपुर आनेपर घनश्याम ठाकुरके प्रति अतिशय प्रीतिभाव रखनेसे एवं उसमें अत्यंत उद्दीपक भगवद्भाव उत्पन्न होनेपर भावातिरेकमें उनकेद्वारा प्रसादग्रहण जैसी कोई भी संभावना घटित हो सकती है। वे श्रीसेठजीके प्रति अतिशय श्रद्धा और प्रेमके कारण ऐसी किसी परिस्थितिसे सर्वथा बचना चाहते हैं । अतः उनके प्रति यदि उन सबमें किञ्चित् भी प्रेम हो तो उन्हें गोरखपुर तबतक कदापि नहीं आना चाहिये, जबतक उन्हें वे स्वयं नहीं बुलावें। इस प्रकार अत्यन्त स्नेह एवं आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए पू.श्रीराधाबाबाने रासमण्डलीको बिदा दी। वे लोग प्रस्थान कर गये।

———————

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या 101-200 तक

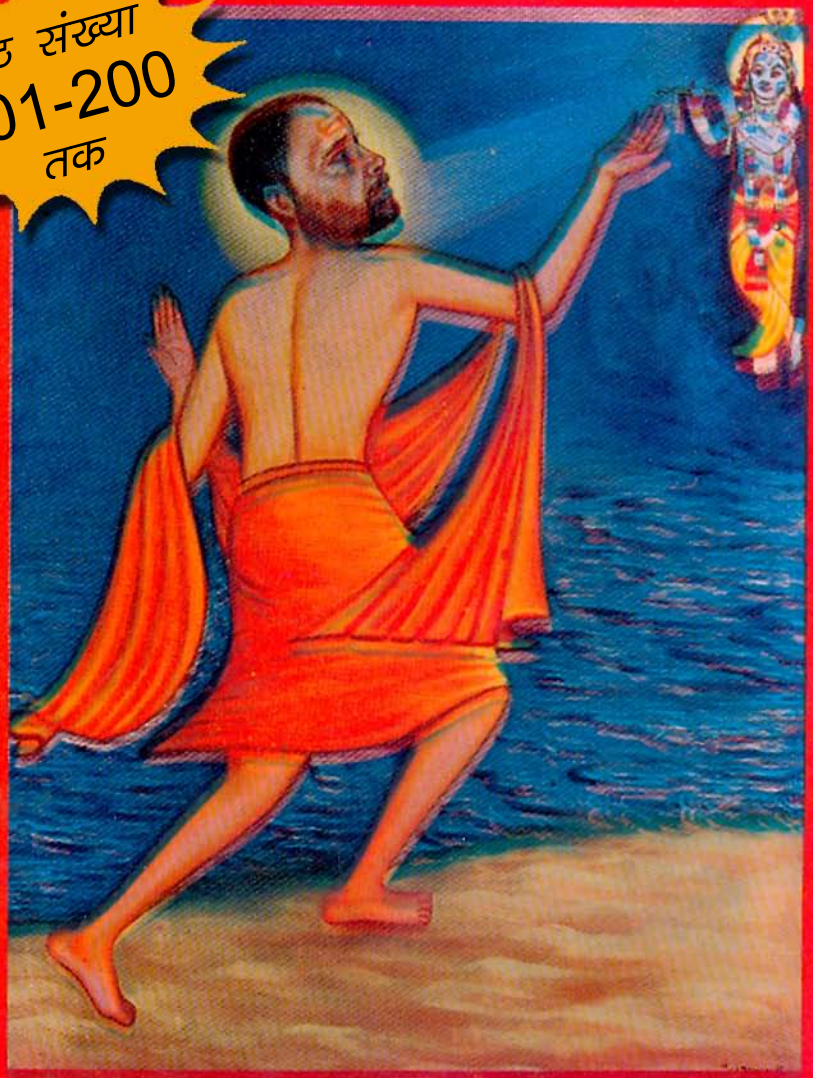

साधु कृष्णप्रेम

रासमण्डलीका पुनः आगमन

यद्यपि पू. गुरुदेवने रासमण्डलीके स्वामी श्रीरामजीको बिना बुलाये गोरखपुर आनेकी मनाही कर दी थी,परन्तु भगवद्विधानवश मण्डलीवाले पुनः गोरखपुर आगये। रासमण्डलीके ठाकुरके प्रति पू.राधाबाबाका विशिष्ट भाव था ही, अतः उनके आगमनका पत्र पाकर पू.गुरुदेवने उसे श्रीकृष्णनिकेतन जो गीतावाटिकाके निकट रेलवे–कालोनीमें स्थित था, वहाँ ठहराया।

श्रीकृष्णनिकेतनमें पू. गुरुदेवकी पूजा–अर्चनाके लिये श्रीपरमेश्वरजी फोगला (पू.पोद्दार महाराजके जामाता)ने ,जिनकी यह व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, बहुत सुन्दर पुष्पवनवाटिका निर्माण की थी।

ठाकुरस्वरूप बालक घनश्याम और अन्य ब्रजवासी बालकोंको यह स्थान ब०हुत ही सुखकर एवं मनोहर लगा। स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट जल एवं शीतल पुष्पगन्धवासित मन्द समीरने सभीके अंगोंकी यात्राके कारण हुई सारी थकान हर ली।

मण्डलीवालोंके नेत्रकोणोंमें विकसित पुष्पोंकी शोभा समा गयी। नाना–विधि कुसुमोंके सुवासने उनकी घ्राणेन्द्रियोंको कृतकृत्य कर दिया। मानो श्रीराधाबाबा ही उनके आनन्दसंवर्धन और स्वागतके लिये यह प्राकृत प्रेमपरिपूर्ण भेंट उन्हें दे रहे हों।

ठाकुर घनश्याम और ब्रजवासी बालकोंने उत्फुल्ल होकर वहाँकी सघन सुन्दतरुराजिपर दृष्टि डाली। बालकोंने देखा सर्वत्र ही शोभाका अम्बार लगा है। अरुणवर्ण कोमल पल्लवजालसे मण्डित हो रहे थे गगनस्पर्शी वृक्ष– समूह। अगणित फलसमूहों एवं पुष्पगुच्छोंके गुरुभारसे ये सभी अवनत हो रहे थे। मानो अपने भवनमें पधारे इन ब्रजवासी अतिथियोंके दर्शन पाकर ये वनवासी वृक्षगण मस्तकपर सँजोये पूजोपहार – फलपुष्पोंको उनके चरणसरोजोंमें निवेदन कर रहे हों। नमित होकर, अपनी शाखावलीसे विशेष अतिथियोंके पाद–पद्मोंकी सन्निकट धराका संस्पर्श करते हुए मानो ये मूक निवेदन कर रहे हों –'आओ, भक्तराज पोद्दार महाराज और श्रीराधाबाबाके अतिथिगण ! आओ, हमारा उपहार स्वीकार करो। जो हो, वृक्षावलियों और पुष्पवनवाटिकासे लदे

कृष्णनिकेतनकी शोभा अपने ब्रजवासी अतिथियोंको एक अनिर्वचनीय हर्षदान करने हेतु मानो मुसका रही हैं ।

ब्रजवासी बालक तो बालक ही थे, बाल्यचञ्चलता उनका स्वभाव थी, अतः सभी बालमण्डली उस अति मनोहर वनराजि एवं फुलवारीपर मुग्ध हुई, अपने स्वभाववश वहाँ बालक्रीड़ा करने लगी। इसी समय गीतावाटिकासे गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको साथ लेकर पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा कृष्णनिकेतन पहुँच गये। दूरसे ही उनकी दृष्टि उन्मुक्त क्रीड़ा करते इन बालकोंपर पड़ी। पू. गुरुदेवको तो वह प्राकृत ब्रजवासी बालकोंकी मण्डली दिखलायी ही नहीं पड़ी । उन्हें तो गोपशिशुओंके साथ नये–नये क्रीड़ा–कौतुक करते नन्दनन्दन ही दृष्टिगोचर होरहे थे, जो अपने हाथों कूपसे जल खींच–खींचकर पौधोंको सींचनेकी क्रीड़ामें निरत थे। पू. गुरुदेव बालकोंकी स्वतंत्र, उन्मुक्त क्रीड़ामें कोई विघ्न न पड़े इस भावसे एक वृक्षकी ओट लेकर खड़े हो गये। "देखो, श्रीकृष्णका अभिनय करने वाले बालक घनश्यामको एक वृक्षमें लिपटी लता–वल्लरी पर विकसित एक सुन्दर कुसुम दिख गया है, और वह स्वयं उसे चयन करनेको आतुर हो उठा है । उसने उस कुसुमके साथ ही वृक्षपर लगे फलगुच्छको भी देख लिया है और अपने हाथों उस उच्चस्थित फलगुच्छको तोड़नेके लिये वह कुदान भर रहा है। उसने अपना दुकूल पुष्पों एवं फलोंसे पूर्ण भर लिया है फिर भी उसकी लालसा पुनः–पुनः जाग्रत हो रही है। "

पू.गुरुदेव अपने ब्रजवासी बालक बने प्राणाराध्य प्राणपतिके मुखचन्द्रसे झरती हुई सौन्दर्यसुधाका पानकर तन्मय हो रहे थे। " अहा ! उनकी घुँघराली कुन्तलराशि, उनका बालोचित चापल्य, उनकी स्वाभाविक चेष्टायें, उनका अपने सखाओंके साथ उन्मुक्त सम्भाषण नित्य नूतन सौन्दर्य–माधुर्यसे भरा है। क्षण–क्षणमें इनका लावण्य परिवर्धित होता है। क्यों न हो, जो रसस्वरूप हैं, जिन रस–सागरकी एक बूँद रससे अगणित विश्व–प्रपञ्चमें रसका संचार होता है, जिनकी रसकणिका पाकर विश्वके प्राणी आनन्दमत्तताका अनुभव करते हैं, वे आनन्दकन्द ही तो इन ब्रजवासी बालकोंके रूपमें एक–दो छींटे किनारेपर खड़े मुझपर बिखेर रहे हैं। "

पू. गुरुदेव बहुत कालतक अपने मानसमें न जाने क्या–क्या देखते रहे। पू. गुरुदेवने पास खड़े गोस्वामीजीको भी अपनी अँगुलियोंसे चुपचाप वहीं

खड़े रहनेका संकेत दे दिया । पू. गुरुदेवके नेत्रोंसे अनवरत अश्रुधारा उनके कपोलोंसे होती बह रही थी । वे सोच रहे थे, सचमुच ही श्रीकृष्णचन्द्रसे, उनकी चिन्मय लीलासे सम्बद्ध किसी भी तत्वरहस्यको एक मात्र उनकी कृपावारिकी कणिका मात्रको ही सम्बल बनानेपर जाना जा सकता है। अचिन्त्य भावोंमें तर्कोके लिये स्थान जो नहीं। श्रद्धापूत चित्तसे अनुशीलन करनेपर उनकी कृपाशक्ति सत्यको अपने-आप व्यक्त कर देगी। उसे जानकर अनुभव करके ही कोई कृतार्थ हो सकता है ।

इस प्रकार उन ब्रजवासी गोपबालकोंकी बालकोचित स्वाभाविक चपल बालक्रीड़ासे ही भावोद्दीपित एवं आलोकित-चित्त पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दिव्य रसपानमें आनन्दनिमग्न हुए बहुत कालतक भावविभोर रहे। सुदीर्घ काला-वधि पश्चात् जब पू. गुरुदेव संवरित हुए तभी श्रीगोस्वामीजीने रासमण्डलीवालोंको सूचित किया कि पू. राधाबाबा वहाँ आये हैं ।

गुणीजनलीला

शुभ्र ज्योत्स्नाका परिधान धारण किये निशासुन्दरीने गोरखपुरस्थित कृष्णनिकेतनमें आज अपनेको धन्यभाग्य अनुभव किया है। आसपास नीरव वनक्षेत्रमें सभी विहंगम शान्त शयित हैं। कृष्णनिकेतनकी गौएँ भी गंभीर निद्रामें निमग्न हैं। सुदूर रेलवेकालोनीके बने गृह-आवासोंमें आबाल-वृद्ध सभी निवासी सुखपूर्वक गंभीर निद्रामें अचेत हैं। मध्य निशा हो चुकी है। कृष्णनिकेतनसे कुछ ही दूरीपर स्थित गुड़धोइया नामक नालेके पंकमें खिले कमलकोश निमीलित हो जानेके कारण मधुकरवृन्द वहीं पूर्णतया बन्दी बन चुके हैं। कुमुदिनी अपनी अभिलषित वेलाका समागम पाकर अपने प्रियतम चन्द्रदेवका आनन निरखती अतिशय प्रफुल्लित हो रही है। ऐसे परम रसमय वातावरणमें आज पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी अभियोजनानुसार इस पूर्णतः एकान्त कानन-खण्डमें रासलीलाका आयोजन किया जा रहा है । लीलाके भावोंकी पवित्रता एवं गंभीरताको बनाये रखनेके लिये इस लीलाके अभिनीत होनेकी सूचना किसीको भी सार्वजनिक रूपमें नहीं दी गयी है । मात्र ग्यारह दर्शक ही इस अभिनयको निहारने वाले हैं । यह लेखकका सौभाग्य था कि वह इन

लीला-दर्शकोंमेंसे एक था।

पू.गुरुदेवने अपने मानसिक मानचित्रके अनुसार आज अभिनयमण्डपका निर्माण कराया है। वे आज मध्याह्नसे ही प्रबन्धकोंको निर्देश दे-देकर मण्डपनिर्माणमें निरत थे। मध्य रात्रिमें इस रासाभिनय-मण्डपको महाभाग चन्द्रदेवने अपनी सुधामयी ज्योत्स्नासे ऐसा परिस्नात किया है कि जिधर दृष्टि जाती है, उधर ही प्रतीत होता है, मानो सौन्दर्य अधिष्ठात्रीके कोषमें जितनी शोभा संचित है, सब-की-सब यहीं बिखेर दी गयी हो। पू. गुरुदेवने विशाल भूखण्डमें वन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन सभीकी यथाशक्य लघु अनुकृतियाँ निर्मित की हैं। सभी दर्शकोंको ऐसा जीवन्त अनुभव हो रहा है, मानो एक अनन्त अचिन्त्य सौन्दर्य-रस-समन्वित उदधि लहरा रहा हो, जिसका कहीं कोई न ओर हो एवं न ही कोई छोर हो। सचमुच चिदानन्दमय परब्रह्मकी प्रतिष्ठा – महामहेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलास्थलीका निर्माण जो हुआ है, वह तो उनके समान ही विभु होना ही चाहिये। लीलाके प्रारंभ होते ही द्वारपर ताला लग जाता है ।

अभिनयमण्डप वस्त्रोंसे ही बनाया गया है । बीचमें एक सुन्दर सिंहासन प्रिया-प्रियतमके विराजनेके लिये सुरचित है । रासमण्डपके चतुर्दिक् मणिदीपोंकी शोभाका अनुकरण करते विद्युद्दीप जगमगा रहे है। सभी समाजियोंको आज पू. गुरुदेवने पीत रेशमी वस्त्र दिये हैं । सभीके मस्तकोंमें सुन्दर कलगी-लगे साफे हैं। कलगीके रूपमें अनेक रासधारियोंने तो मयूरपिच्छ, अनेकोंने नीलकण्ठ पक्षीके पंख और कुछने बगुला जलपक्षीके पंख धारण किये हैं। प्रायः अधिकांश श्रृंगारसामग्री मथुरासे किसी व्यक्तिको भेजकर मँगायी गयी है। समाजियोंमें मुख्य कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी सारंगी लिये हैं। मंडलीके स्वामी श्रीरामजी हारमोनियममें सुर दे रहे हैं, एक समाजी मृदंग मिला रहा है, और कुछ पीछे कीर्तन करनेवाले झाँझ लिये हैं । सहसा श्रीहरिवल्लभजी अत्यन्त सुमधुरस्वरमें सारंगीवाद्यमें सुर भरते हुए गाने लगते हैं–

अंकस्थितेऽपि दयिते किमपि प्रलापं हा मोहनेति मधुरं विदधन्यकस्मात् ।
श्यामानुरागमदविह्वल मोहनांगी श्यामामणिर्जयति कापि निकुञ्जसीम्नि।।

देवभाषा संस्कृतमें वन्दनाके साथ धीरे-धीरे रासाभिनयका मखमली रशमी पर्दा शनैः-शनैः अपसर्पित होता है। सभी दर्शक प्रिया-प्रियतमकी अतिशय दिव्य झाँकीका छवि-दर्शनकर किसी दूसरे ही अनिर्वचनीय लोकमें पहुँच जाते हैं। स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्य लीला-महाशक्ति ही

तो उनकी समस्त लीलाओंकी सूत्रधार हैं । वे ही तो उनकी प्रियाके भी महाभाव-सुधासागरकी एकमात्र नियंत्रिका हैं । वे ही उनकी एक-एक भावोर्मियोंपर भी नियंत्रण करती हैं । श्रृंगाररसकी कौनसी पयस्विनी कब किस रंगमंचपर उफनेगी, कहाँ अपने प्राण-प्रियतम रसराज श्यामसुन्दरसे संगमित होगी, किस संगमपर, किस माधुर्यतीर्थपर उन्हें आज स्नान कराना है– इस सबकी पूरी अनुक्रमणिका तो उन्हींके पास रहती है। अपनी इच्छानुसार अपने निर्दिष्ट क्रमसे वे श्रीकृष्णचन्द्रको महाभावसागरकी लहरोंपर बहाती हुई किस संगमपर ले जावेंगी, श्रीकृष्णचन्द्रको वहाँ कितनी सीमातक डुबावेंगी, अथवा परिस्नात करावेंगी और वे महाकृपालु रसिकवर न जाने क्यों, कैसे, एवं कब इस श्रृंगाररससुधाके एक-दो छींटे अथवा फुहारें अपनी अपार कृपासे किनारेपर खड़े सांसारिक जीवोंपर बिखेर देंगे – इसका किसे ज्ञान है ? इन्हीं विन्दुओंकी रस-छायासे तो प्रपंच-जगत् के श्रृंगारस्रोतमें रसका संचार अनादि कालसे होता रहा है, एवं अनन्त कालतक होता रहेगा। यह मायिक श्रृंगार-स्रोत भी कभी सूख नहीं पाता है। आज इन्हीं लीला-महाशक्तिके दर्शक बने पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा, पू. पोद्दार महाराज और अन्य उनके चरणावलम्बी अनुगत जीवोंके हृदयकी भावधाराको इस महाभावसागरसे संगमित करना है। लीलामहाशक्तिको प्रत्येक दर्शकके हृदयकी भाव-सुपात्रताका पूरा-पूरा परिज्ञान है । ये लीलामहाशक्ति यह भी भलीभाँति जानती हैं कि पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा जहाँ प्रिया-महाभाव-वारिधिके ठीक किनारेपर खड़े हैं और प्रपंचका पूर्णतया त्यागकर बस किसी भी ज्वार-लहरमें डूबनेको सन्नद्ध हैं, वहाँ पू. पोद्दार महाराज पूर्ण रसिक रसराजसिन्धु बने लहरा रहे हैं; और शेष उनके चरणाश्रित जन यद्यपि अभी विषयपंकमें ही रचे-पचे डूबे हैं, परन्तु वे सभी हेतुरहित कृपा-कणिकाका दान पानेके तो अवश्य ही याचक हैं । अतः लीलामहाशक्ति ऐसा मंच निर्माण करती हैं, जिससे प्रत्येक अपनी-अपनी योग्यतानुसार इस पवित्र लीलारससुधाका मुक्त आस्वादन कर पावे । अतः वे क्रमशः सबके लिये विलक्षण रसरीतिसे कपाट उन्मुक्त करनेका प्रावधान करती हैं ।

ज्योंही रासमञ्चका परदा उठता है, दर्शक देखते हैं– श्रीकृष्णचन्द्र अपनी प्रिया राधारानीके अंकमें विराजित हैं। प्रियतम श्यामसुन्दरके नेत्र अपनी प्रियाकी आनन-छवि निरखनेमें पूर्णतया निरत हैं। यद्यपि प्रियतम निज प्रियाके अंकमें ही लेटे हैं, तदपि प्रिया–"हा प्राणवल्लभ ! " कहकर उन्मत्त प्रलाप कर

रही हैं । वे अनुरागमदमें पूर्णतया विह्वल हैं। उनकी विलक्षण प्रेमशोभा देखते ही सभी दर्शक अश्रु बहाने लगते हैं ।

सभी रासमण्डलीके समाजी यह देखकर विस्मित हैं कि प्रथम छवि-दर्शनके साथ ही श्रीपोद्दार महाराजके नेत्रोंसे तो ऐसी अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है मानो उनके नेत्र नहीं, कोई दो लघुत्तम जलधरखण्ड रसवर्षा कर उठे हों । इधर पू. गुरुदेव यद्यपि जागरूक हैं , परन्तु उनके पार्श्वमें बैठे गोस्वामी चिम्मनलालजी सिसकियाँ भर रहे हैं । रासके समाजियोंने इन प्रमुख दर्शकोंकी ऐसी विलक्षण भावदशा देखकर एक बार तो रासमञ्चका परदा ही डाल देना उचित समझा। मात्र अकेली इस अभिनव रसझाँकीके साथ ही परदा गिर जाता है । कुछ काल पश्चात् जब श्रीगोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी संवरित होते हैं, तो रासलीला पुनः प्रारंभ होती है।

पुनः परदा धीरे-धीरे सरकता है। इस बार दर्शक देखते हैं, दोनों युगलस्वरूप प्रिया-प्रियतम सिंहासनपर गलबैयाँ दिये विराजित हैं। अहा ! इन युगल दम्पतीका सौन्दर्य कितना मोहक है, दर्शकगण थकितनेत्र हो उठते हैं। पलकें प्राकृत नियमानुसार गिरना चाहती हैं, परन्तु दर्शन-लालसामें अवरोध न आवे, इसलिये मन उन्हें बरबस गिरने नहीं देना चाहता। मन मुग्ध है।"अहा! प्रियाजी बने इस बालककी इतनी सघन कुन्तल राशि !, कुन्दनद्युति आननसरोजपर बिखरी अलकावलीकी लघु-लघु लटें, विशाल नेत्र, वह मृदु मुसकान, मधुस्रावी अधरयुग्म, ललित चंचल भंगिमायें– जो निहार रहे थे, वे ही अनुभव कर रहे थे कि उस निशामें कैसी विलक्षण शोभाराशि उस रासमंचमें उमड़ी थी।

समाजी गा रहे थे। मृदंगमें कहरवा ताल बज रहा था। परम सुरीली झाँझें झंकृत होरही थीं। प्रमुख गायक श्रीहरिवल्लभजीका सुर अतिशय मधुर था।

बैठी सिंहासन हित-जोरी ।
जिहिं लखि लाजत काम करोरी।।
अनुपम छवि ललितादि निहारैं ।
होत मगन तनमनधन वारैं।।
तत्सुख भाव विचारत रहैं ।
जातैं प्रिया-पीव सुख लहैं।।

अहा ! स्वर और शोभा दोनोंने मिलकर वातावरणको जीवन्त, सरस कर दिया था। इसी समय अनेक ब्रजसुन्दरियाँ रंगमंचपर उपस्थित होती हैं और परस्पर गायनमें ही वार्ता करती चौपाईछन्दमें कहती हैं :–

रचैं छद्म सब मिलि मन आई। लाल-प्रिया जिहिं जान न पाई।।

प्रथम ब्रजांगना–" (ब्रजभाषा गद्यमें) हे सखियों ! आज मेरे मनमें एक नवीन उत्कण्ठा उदित भई है। आज तौ कोई अतिशय नवीन छद्म हम सब मिलिकैं रचैं, जाकूँ प्रिया-प्रियतम परख ही न सकैं । "

द्वितीय ब्रजांगना–" हाँ बीर ! तेरी राय तौ अतिशय सुखकारी है ! ये दोनों प्रिया-प्रियतम तौ हमें सदा ही अपनी लीलान तैं भ्रमित राखैं हैं । आज हम ऐसी लीला-रचना करैं , ऐसौ नवीन रसमय भेष धारण करैं कि ये दोनों हू भूलनमें परि जावैं ! "

तीसरी ब्रजांगना–" हाँ, हाँ री सखी ! पहिलैं प्यारी रानीसौं कोऊ सेवा करवेकी आग्या लै कुंजनमें प्रवेश कर छद्म भेष तो बनावैं ।

(तीनों ब्रजांगना सिंहासनमें बैठे प्रिया-प्रियतमके निकट जाती हैं) समाजी गाते हैं:-

चौपाई

अस बिचारि करि हियैं दृढाई । पहुँचि प्रिया ढिंग बिनय सुनाई ।।

तीनों ब्रजांगनायें (गायनमें)

जो प्यारी निदेस हम पावैं । तौ चुनि कुसुम हार पहनावैं।।
रचना हार अनौखी करिहैं । पहिरैं आज हियौ छकि जैहैं।।

(अर्थ)

"अहो ! हमारी प्राणसखी ! तुम्हारी बलिहारी है ! यदि आपकी अतिशय सुखकारी सम्मति होय तौ हम सभी सखीगण आज आपकी कुञ्जवाटिकासौं पुष्पचयन कर लावैं और आप दोनों प्रिया-प्रियतम कौं नयौ प्रकारकौ पुष्पश्रृंगार रचकर पहनावैं । हम सभीकी आज यही कामना है कि आप दोनों प्रिया-प्रियतम पुष्पश्रृंगार धारणकर पुष्पमहलमें पुष्पशय्यामें पौढौ । "

पू.गुरुदेव रासलीला क्या देखरहे थे, उनके तो रोम-रोमसे आनन्द झर रहा था। पू. पोद्दार महाराजकी भी अद्‌भुत विचित्र दशा थी। इन दोनोंके सम्मुख तो साक्षात् स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन ही अपनी प्रिया रासेश्वरी सहित विस्मित कर देनेवाली लीला कर रहे थे। राधा-प्राणधन ! प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र!

बलिहारी है, तुम्हारी मुनिमनहारिणी निजमनमोहिनी, भक्तसर्वस्वदायिनी लीलाकी! भक्त-वात्सल्यका ऐसा निदर्शन तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कर सकता है ?

लेखक इस लीलादर्शनके समय इन तीनों महापुरुषों (पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा ,श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी) के निकट ही बैठा था । वह इन तीनोंकी विचित्र प्रेमदशा निरख-निरखकर चकित था। उनके मनोराज्यमें प्रवेश पाना तो उसके वशकी बात नहीं थी। फिर वह उनकी इस विचित्र भाव-दशाका रहस्य कैसे जाने ? उसने धीरेसे अपने मामा श्रीचिम्मनलालजीसे प्रश्न भी किया,"मामाजी ! क्या आपको भगवद्दर्शन हो रहे हैं ? परन्तु वे बताते भी कैसे ! वे तो दूसरे ही लोकमें थे। कभी लेखकके अतिशय हिलानेसे अपने प्राकृत देहको पकड़ते तो अपने कण्ठको अतिशय भावरुद्ध पाकर बोल ही नहीं पाते। लेखकको कुछ भी बतानेमें असमर्थ हो जाते। रासलीलाका क्रम आगे बढ रहा था।

समाजी गा रहे थेः—

चौपाई

सहज प्रिया आज्ञा करि दीनी। चली तुरत उर अति सुख भीनी।।
सखियन अस बिचारि मन कीनौ । रचौ खेल कोऊ रसभीनौ।।

(पटाक्षेपमें)

अपनी प्राणसखीसे सहज ही अनुमति पाकर सखियाँ अतिशय सुखमें भरीं तुरन्त ही कुञ्जवाटिकामें प्रविष्ट हो जाती हैं। वे अपने प्राणसारसर्वस्व प्रिया-प्रियतमको रिझानेके लिये नटकला करनेवाले गुणीजनोंका वेष धारण करती हैं।

इधर लीलामंचमें अपनी प्रियाके प्रेममें अतिशय मुग्ध ठाकुर उन्हें सम्बोधित करता गाता हैः—

(श्रीहरिवल्लभजीकी अँगुलियाँ सारंगी वाद्यमें अतिशय सरस सुर भरती थिरक उठती हैं । राग मालकौंस मानो मूर्तिमान् प्रकट हो जाता है। मृदंगमें तीन ताल बज उठती है)

ठाकुर —(अपनी प्रिया श्रीराधारानीके चिबुकको संस्पर्शित करते हुए)

तुव मुख कमल , नैन अलि मेरे , राधे !
पलक न लगत, पलक बिनु देखैं , अरबरात अति फिरत न फेरे, राधे !!
पान करत मकरन्द रूप-रस, भूलि नहीं फिर इत-उत हेरे राधे !

'भगवत रसिक' भये मतवारे, घूमत रहत छके मद तेरे राधे !!

ओह ! ठाकुरके मधुमय कण्ठके इस संगीतमें कोई मोहन-मंत्र भरा था। पू. गुरुदेव लोकातीत रसमें आपाततः निमग्न थे। मैं उनके रसमुग्ध मुखकी ओर एकटक देख रहा था। कभी श्रीपोद्दार महाराजके भावसमाधिस्थ आननपर मेरी दृष्टि जम जाती। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो इन युग्म हृदयोंमें अनन्त पारावार-रहित रससिन्धु है, उसमें कभी नीलवर्णकी और कभी विद्युल्लताप्रभ कनकवर्णकी तरंगें उठ रही हैं। प्रत्येक तरंग मेरे प्राणोंमें समाकर कह रही है—'अरे ! अरे !! भाग्यवान् ! ये हृदय-द्वय प्रिया-प्रियतमके रसपूर आवास हैं, इनमें अन्य कोई प्रवेश ही नहीं कर सकता।' अहो ! मेरे स्वयंके नेत्र भी रसनिमीलित हो उठे। अपना समस्त धैर्य बटोरकर मैं पुनः लीलादर्शन करने लगता हूँ।

अपने प्रियतमके प्रेमनिवेदनका प्रत्युत्तर प्रिया राधारानी दे रही हैं। प्रियतमने जहाँ मालकौंस रागमें आलाप किया था, वहाँ प्रियारानी अपनी कोकिलकण्ठी ध्वनिमें जोगकौंस रागमें प्रत्युत्तर देती है। मृदंग त्रितालमें गमक रही है :—

नैननि ही में राखूँ ,तोहे पिया !
प्राण ! तिहारे एक रोम पर, जगत वारि सब नाखूँ ।।
भेटूँ सकल अंग साँवरकौं, अधर सुधा रस चाखूँ ।
'रसिक प्रीतम' हित-चितकी बतियाँ ना काहूसौं भाखूँ।।

मैंने देखा कि पदगायन सुनते-सुनते पू.गुरुदेव ऐसे काँप रहे थे, मानो ग्रीष्मके स्थानपर शिशिर ऋतुका पदार्पण होगया हो। उनके नेत्र राधारानी बने स्वरूपके आनन-सरोजमें विजड़ित थे। उन्हें तो ये दोनों बालक नीलपद्म एवं राकाचन्द्रका सम्मिलन दृष्टिगोचर हो रहे थे। जैसे सुनीलपद्मको अपने अनादिसिद्ध चन्द्र-विरोधका पूर्ण विस्मरण होगया था। वह चन्द्रसे निस्संकोच पूर्ण प्रेमनिवेदन कर रहा था। मरकतश्याम मुखसरोजसे झरते प्रेमनिवेदनका राकाचन्द्रने कितना सटीक उत्तर दिया था। राकाचन्द्रके इस प्रेमभरे उत्तरको सुनकर नीलपद्म मानो रुदन कर उठा। हाय ! अबतक मैं इस कनकमयंकसे क्यों विरहित रहा ? नीलपद्मका प्रेमविलाप उसके नवनीत-विन्दुसम अश्रुकणोंके रूपमें झरने लगा। इधर प्रिय-समागमसे प्रफुल्लित चन्द्र भी शान्त नीरव गगनमें प्रेम-पीयूषकणोंकी वर्षा करने लगा। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका इस

विलक्षण भावदर्शनसे परम सात्विक कम्पविकार बढ़ता जारहा था। उन्हें बग्राहत वल्लरीके समान काँपता देख मैंने रासमण्डलके स्वामी श्रीरामजीको संकेत किया। तुरन्त ही यवनिका गिर जाती है और अभिनयको किंचित् विराम दे दिया जाता है ।

किञ्चित् विरामके पश्चात् ज्योंही पू. गुरुदेवकी भावदशा संवरित होती है, रासलीला पुनः प्रारम्भ होती है ।

इस बार परदा ललिताकुञ्जका है। कुञ्जके बाहर एक सखी प्रहरीके रूपमें खड़ी है। उसकी अनुमतिके बिना मानो कोई भी कुञ्जप्रवेश नहीं कर सकता।

"देखो ! देखो !! सखियोंने कैसा वेष धारण किया है ! सभी अपना स्त्रीवेष त्यागकर पुरुषवेषमें गुणीजन बन गयी हैं। अहा ! इनके अंगोंमें धोती, झँगला, पाग, दुपट्टा, कमरफैंट – सभी वस्त्र कैसे फब रहे हैं ! इनमेंसे किसीने सारंगी, किसीने मृदंग, किन्हींने झाँझ, करताल और कुछने तानपूरे, इकतारे, श्रीतार आदि तन्तुवाद्य धारण किये हैं। वे कैसे उमग-उमगकर द्वाररक्षिका सखीके सम्मुख ठुमक रहे हैं ! अहा ! अनाविल रसमुद्रामें ये सखीसे निवेदन कर रहे हैं :–

"कुंज पौरि ठाढ़े भये, करौ खबर सखि जाय ।
हम जु गुनी बहु दूर के, प्रिया सुयश सुनि आय ।।

(अर्थ)

"हे सखी ! तुम भवनके अन्तर्भागमें जाकर अपनी स्वामिनीसे निवेदन करो कि बाहर गृहतोरणके समीप आम्रकी शीतल छायामें बहुत दूरसे समागत गुणीजन आसीन हैं। जो रावरी आज्ञा मिलै तो कुछ अपने गुण आपके सम्मुख निवेदन कर आपका सुख-संवर्धन करैं । "

गुणीजनोंका निवेदन सुनकर द्वाररक्षिका महलके भीतर चली जाती है और सत्वर ही महलके अन्तर्भागमें प्रवेशकर कुछ काल पश्चात् ही लौटती है। उसे रानीकी आज्ञा प्राप्त होगयी है कि गुणीजनोंको भीतर महलमें उपस्थित करे ।

(पटाक्षेप होकर पर्दा गिर जाता है)

कुछ क्षणोंके पश्चात् ही नवीन झाँकीको प्रदर्शित करता पुनः परदा

उठता है। दर्शक देखते हैं–

"निकुञ्जान्तर्गत रंगमहलका दृश्य है। प्रिया-प्रियतम राधामाधव अतिशय सुभग परम रसमय श्रृंगार धारण किये पुष्प-पर्यंकमें विराजित परस्पर रसकेलि कर रहे हैं। उनके अंगोंमें आज पुष्पोंसे विरचित सम्पूर्ण श्रृंगार शोभा पा रहा है। बेलाके मुकुट और चमेलीके पुष्पोंसे उनकी वेणी ग्रथित है। सर्वांगोंमें चम्पादि श्वेत शुभ्र पीताभायुक्त पुष्पोंके ही अलंकार सुशोभित हैं । पैरोंमें पैंजनी और कटि किंकणीतक शुभ्र रजत एवं वज्रमणिखचित हैं। रजतके घुँघुरू नूपुरोंमें अतिशय मधुर रुनझुन-रुनझुन रव कर रहे हैं ।"

मैं अपने आपमें ही विचार करने लगता हूँ–"मुझे एवं मेरे समान ही यहाँ आसीन अन्य दर्शकोंको तो यह रासलीला चाहे कितनी ही रसमयी हो, प्राकृत ब्रजवासी बालकोंका एक कुशल अभिनय ही दृष्टिगोचर हो रही है, परन्तु अहा ! मेरे इन धर्म-मातुल श्रीपोद्दार महाराज और गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी कैसी पावन विशुद्ध दृष्टि है कि उन्हें इन गृहस्थ कामज ब्रजवासी ब्राह्मणोंकी सन्तानोंके पदगायन और रासाभिनयोंमें सर्वान्तर्यामी सर्वनियामक सच्चिदानन्दघन परतत्व परब्रह्म परमात्मा साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे दोनों ही मेरे अति सन्निकट बैठे हैं, परन्तु इनकी एवं मेरी दृष्टिमें कितना आकाश-पातालका भेद है ? मेरी दृष्टिके सम्मुख तो जहाँ मेरी धर्म-भगिनी बाई सावित्रीकी वाटिका है, गोरखपुर नगरकी भूमि और नभ है, वहीं मेरे पार्श्वमें ही विराजित मेरे गुरुस्वरूप श्रीराधाबाबाके नेत्र यहीं चिन्मय संधिनीशक्तिकी परिणति– ब्रजपुर वृन्दावनकी परम रसमयी वसुन्धरा एवं उसीके द्युलोकका दर्शन कर रहे हैं। अहा ! उनकी कैसी विशुद्ध प्रीतिरसभरी दृष्टि है कि वे जगत्के मायामय कीचका दर्शन ही नहीं करते और इन साधारण गँवार बालकोंमें, इनके मात्र श्रीकृष्णवेषमें सज्जित हो जाने भरसे , उनमें अपने आराध्यको भरा देख रहे हैं। इनकी पावन विशुद्ध दृष्टिमें न तो कहीं कोई जागतिक वाटिका है; न ब्रजवासी बालकोंका रासलीलादल है, न ही कहीं कोई अभिनय-क्रीड़ा हो रही है। इन्हें तो अपने परमाराध्य परम प्राणधन अनन्त ऐश्वर्यनिकेतन भगवान् श्रीकृष्ण ही माधुर्यरससुधापानकी अत्युत्कट अभिलाषावश अपने किशोरावेशके अन्तरालमें अपनी समग्र भगवत्ता, अशेष ब्रह्मरूपता, सर्वनियामकता एवं अखण्ड ईश्वरताका आत्यंतिक विस्मरणकर ब्रजपुरकी

विमल वसुन्धरामें विहार करते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये दोनों सन्त त्रिजगन्मंगलकारी एवं परम धन्य हैं, क्योंकि इनकी सत्य तत्वदर्शी दृष्टिके सम्मुख जो भी आता है, ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब पर्यन्त,वह सब सत्य-का-सत्य श्रीकृष्ण ही होता है। उन्हें अपने परमाराध्य श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्य सत्ताकी प्रतीति ही नहीं होती। यहाँ तो इन बालकोंद्वारा सिद्धसन्तोंद्वारा वर्णित रसलीलाओंका अभिनय होरहा है, परन्तु जहाँ ऐसी किसी भावोद्दीपन करनेवाली चेष्टाका, परिस्थितिका सर्वथा अभाव है , अपितु दुर्दान्त आसुरी आवेश है, वहाँ भी इन सन्तोंको अपने आराध्यके अतिरिक्त कुछ भी पृथक् अनुभव नहीं होता। कितनी विशुद्ध इनकी पावन निष्ठा है !

हम अज्ञानी जीवों और इन सच्चे सन्तोंके दर्शनमें यही अन्तर है । हमें पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, आदित्य, दिशायें, तारावली, चन्द्रमा, आकाश, तम, तेज आदि अधिदैव जगत् सत्यवत् भासित होता है; हमें अधिभूतरूप विश्व भी – कीटसे ब्रह्मापर्यन्त सत्य दिखते हैं; हमें प्राण, मन, वाणी, नेत्र, श्रोत्र, त्वक्, विज्ञान(बुद्धि), वीर्य आदि अध्यात्मरूप जगत् भी सत्य दिखता है, परन्तु इन सभी अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्मरूपोंमें हमें उनके नियामक श्रीकृष्ण कहीं नहीं दिखते। परन्तु इन महासिद्ध सन्तोंको इन सबके रूपोंमें सर्वान्तयामी, सर्वनियामक श्रीकृष्ण ही पूर्णतया भरे ओतप्रोत सत्य दृष्टिगोचर होते हैं। शेष सभी प्रतीयमानता उन्हें विनाशी, क्षणभंगुर माया समझमें आती है। ये सन्त ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सर्वत्र मात्र अपने प्राणाराध्य श्रीकृष्णको सत्य देखनेके कारण, इन सभीको प्रतिपल परममंगलमयी विशुद्ध स्नेहराशिका दान करते हैं और हमारी अज्ञानमयी मायादृष्टि इन्हें रागद्वेषमयी त्रितापदायिनी भीषण भवज्वालामें दग्ध करानेकी हेतु होती है। देखो न ! इन ब्रजवासी रासमण्डलीके प्रत्येक पात्रमें ये महाकृपावतार रससिद्धसन्त बाह्याभ्यन्तर सर्वत्र अपने आराध्य महाभाव एवं रसराज श्रीराधामाधवको देखते हुए, उन्हें इनका ही दान कर रहे हैं, और हम इन्हें मात्र ब्रजवासी बालक देखनेके कारण भले ही, थोथी भावुकतावश ही इनके द्वारा प्रदत्त श्रीकृष्णप्रीतिभावको ग्रहण करते हुए भी, इन्हें अपनी त्रितापज्वाला ही प्रदान कर रहे हैं ।

'आओ चलें ! इन पावनहृदय सन्तोंकी विमल दृष्टिकी अनुकृति करते

हुए ही सही, इनसे किञ्चित् साम्य तो करें और रासलीलादर्शन करें। कैसी विलक्षण बात है कि सम्पूर्ण विश्वप्रपंचके द्रष्टा, अन्तर्यामी हुए सबके गहिराकाशमें छिपे परमानन्द वितरण करनेवाले सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र आज स्वयं रसवश हुए अपनी प्राणप्रिया रासेश्वरी राधारानी सहित सिंहासनासीन इन गुणीजनवेषधारी आभीर सुन्दरियोंसे आनन्दोपभोग करनेके लिये लालायित – चञ्चल हो रहे हैं ।

गुणीजनोंको श्रीश्यामप्रिया राधारानीकी आज्ञा मिल गयी है–

"तबहिं प्रिया बोली मुसकाई । जो जानत प्रकटौ चित लाई ।।

" हाँ ! हाँ ! तुम जो कुछ भी गुण-कला जानत होउ, सो अतिसय उत्साहसौं हम दोनूँनके सम्मुख प्रकट करिकै दिखाऔ और मेरे प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरकौं रिझावौ । "

अरे ! अरे ! यह क्या ? गुणीजनोंने तो हू-ब-हू ज्यों-का-त्यों प्रिया-प्रियतमका भेष बनाकर दोनोंको चकित कर दिया। स्वयं श्रीकृष्ण चकित हैं। **समाजी गा रहे हैं –**

देखि लाल कछु रहे ठगे से । स्वप्न कहहि अरु अहहिं जगे से ।।

श्रीकृष्ण –"अहा-हा ! मैं यह कहा अचंभौ देखि रह्यौ हूँ ? मैं जागि रह्यौ हूँ कि स्वप्न देखि रह्यौ हूँ ? प्रिये ! ये कहा कौतुक होय रह्यौ है ? ठीक, सांगोपांग मेरे द्वै रूप कैसें ह्वै गये ?"

श्रीराधारानी –"प्यारे ! ये तो गुनीजन हैं ! मेरी आज्ञानुसार लीला-अनुकरण करिकैं आपकूँ दिखाय रहे हैं ।"

इधर तो प्रकटमें रासलीला हो रही है, और आओ ! उधर पू. गुरुदेवके भावसंसारकी भी झाँकी देखें ! – समाजियोंके वाद्योंकी ताल और झंकारमें अपनी कटिकिंकणी एवं पदनूपुरोंका स्वर हू-ब-हू मिलाकर उनके भावजगत्में सर्वत्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण भर गये हैं। एक ओर तो उनके प्रियतम उनकी सहोदरा अग्रजा राधारानीके साथ सिंहासनासीन हैं और शेष सभी दृश्य उन्हें श्रीकृष्णकी ठीक अनुकृतिमें व्यक्त होता दिखने लग जाता है। वे एक क्षण अपनी भगिनीके बगलमें बैठे सिंहासनासीन श्रीकृष्णको देखते हैं और तब अपने बगलमें ही आसीन पोद्दार महाराज, श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीपर दृष्टि निक्षेप करते हैं। वे इन दोनोंके स्थानपर भी उन्हीं श्रीकृष्णकी आकृतिको हू-ब-हू किञ्चित् भी अन्तर नहीं लिये देखते हैं । उनकी दृष्टि आकाशकी ओर

उठती है। आकाशपथमें भी उन्हें अपने प्राणपति भरे नृत्य करते दिखते हैं। एक नहीं, अनन्त रूपोंमें सर्वत्र उनके प्रियतमकी अनुकृतियोंसे ही मानों समग्र अन्तरिक्ष भर गया हो। मानो सर्वत्र भूमि, नभ, नक्षत्र, चन्द्र, वृक्ष, जनसमुदाय, स्त्री-पुरुष सभीके रूपोंमें शत-सहस्र सौन्दर्य-मन्दाकिनीकी धारा बहाते सर्वत्र श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। पू. गुरुदेवके नेत्र नाचते हुए-से अपने प्रियतम नन्दनन्दनमें डूबने लगे। उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उनका मन अपने प्रियतमके इस अपार मनोहर नृत्यपर कोटि-कोटि प्राणोंको न्यौछावर कर दे रहा था। पू. गुरुदेव स्तब्ध हैं । उनकी श्रीकृष्णपूरित दृष्टिमें सम्पूर्ण जगत्का ही अस्तित्व जो विलीन हो गया है । हाँ ! उनके सम्मुख सिंहासनासीन उनके प्रियतम उनकी अग्रजा भगिनी सहित अवश्य विराजित हैं। किन्तु इन सम्मुख विराजित सिंहासनासीन श्रीकृष्ण और सर्वत्र भरे श्रीकृष्णके रूपोंमें कहीं कुछ भी अन्तर नहीं। एक-सा सौन्दर्य, एक-सा श्रृंगार, एक-सा हाव-भाव, एक-से अंग-अवयव, वैसी ही मुसकान, लावण्य और नित्य नव-नवायमान उमँगती शोभा। पू. गुरुदेव प्रेमभ्रान्त हो उठते हैं। रसस्रोतमें डूबते-उतराते उनके चित्तकी दशा विलक्षण ही हो उठती है। इसकी प्रबल लहरोंसे उनकी बुद्धि पूरी आवृत हो जाती है। उनका यह आवेश तब शिथिल होता है, जब श्रीपोद्दार महाराज उन्हें हिलाकर सचेत करते हैं—"बाबा! ये रासधारी तो पूरे नट हैं, देखो ! कैसी शरीरकी लचक है इनकी ! ये तो अपने तनको पूरे गोलाकार रूपमें ही मोड़ देते हैं !"

पू. राधाबाबा अचिन्त्य लीला-महाशक्तिकी प्रेरणासे विक्षिप्त होते-होते मानो बच गये। रासलीला चल रही थी। श्रीमती राधारानीका स्वरूप बना बालक गा रहा था। वह बालक मानों गुरुदेव पू.राधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजकी ओर मुख किये उन्हें ही सम्बोधित कर रहा था। यद्यपि रासलीलामें उसको ठाकुर स्वरूपके प्रति सम्बोधन करना चाहिये था।

ये तो चतुर प्रीतिके आलय।
हियौ आनँद- निधि जब उमगै , मन अरु बुधि -बल कछू न चालय।
बरन्यौ चहूँ कछुक गुन इनके, सुमति प्रेम बस हिलै न हालय।
वृन्दावन हित' रूप बिहारी, प्रेम-सिन्धु ते कौन उबारय ।।

श्रीराधारानी—हे प्राणवल्लभ ! आप तो चतुर-शिरोमणि हो ही, किन्तु ये (दोनों) भी अत्यन्त चतुर-शिरोमणि एवं प्रेमके आलय(घर) हैं। इनकी प्रेमभरी

दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ

रसीली लीला(दशा) देखकर, इनके भावनकूँ परखिकैं मेरे हृदयमें हू प्रेमसमुद्रकी तरंगैं उमड़ि रही हैं। इनके सम्मुख मेरौ बुद्धिबल तों कछु ही नाँय चलै। मैं अपने मनसौं इनके प्रेम–गुण कछु-एक बरणन करनौ चाहूँ हूँ, किन्तु इनके प्रेमकी अगाधता देखकर मेरी बुद्धि न तो हिलै है , न ही डुलै है, अतिशय (मुग्ध) मूढ़ हो जाय है। हे प्राणेश्वर ! अब या प्रेम-समुद्रसौं मोहि तुम ही उबार सकौ हो, और कौन उबारै ?

(श्रीराधारानीकी गीतोक्तिका उत्तर प्रियतम श्रीकृष्ण भी गीतोक्तिके रूपमें ही देते हैं। ये भी पू. श्रीपोद्दार महाराज और पू.राधाबाबाकी ही ओर मुख कर, उन्हें ही संबोधित करते हैं।)

श्रीकृष्ण–

छिन-छिन नेह अपूरब सरसै।
मुख हेरत ही हेरत इनकौ, प्रेम तरंगनि मन-मति हरषै ।
उमग्यौ प्रेम पयोधि स्वामिनी, अति ही आनँद गरजै सरसै।।
बूढ़त लेउ बचाय अतिलड़ी, कृपा घुमड़ि पावस ज्यौं बरसै ।
वृन्दावनहित रूप-चातुरी नैंक नहीं मो हिय सौं परसै।।

(अर्थ)

हे मेरी प्रानाधार ! मैं इन प्रेमीजनोंको देखकर मेरी जो गति होय रही है, वाकौ किन शब्दनते वर्णन करूँ ? मेरे उरमें छिन-छिनमें नेह-निधि उमगि रही है । और इन दोऊनकौ प्रेम देखकर मेरौ हियौ प्रेम-समुद्रमें डूब्यौ ही जाय है। हे अतिलड़ी ! अब बेगि ही मेरे ऊपर आप कृपारसरूप बादर बरसाऔ। जातैं मैं इनकी कछु गति समुझ सकूँ, मेरे लिये तो ये दोनूँ अगम्य होय रहे हैं। हे मेरी जीवनमूरि ! आप तौ मोहीकूँ प्रीतिमें परम चतुर समझ रहीं थीं, किन्तु इनकी परम पवित्र प्रीति-चतुरताके आगें तौ मोमें चतुरताकौ लेस हू नाँय ।

(दोहा)

हा ! हा !! राधे मुकुटमनि ! हा मम जीवन प्रान !
हा ! हा ! कुँवरि किसोरि प्रिय, नागरि परम सुजान।।

सहसा प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरके पद्मविनिन्दित चञ्चल नयन प्रेमविरहकी उच्चातिउच्च दशाका प्रकाश करते हुए अश्रुवर्षा करने लगते हैं

और उनका विरहभाव हाहाकार रूपमें उनके मुखके बोलोंके रूपमें फूट पड़ता है – "हा प्राणप्रिये राधे ! हा मेरी रसमणि प्रेममुकुटमणि !! हा मेरी जीवनप्राणेश्वरि!!! हा कुँवरि किशोरी ! हा प्रिये ! इन प्रेमीजनोंके ऋणके भारतें अब तो मोहि तुम ही उबारो।

ये कहते-सुनते ठाकुर-स्वरूप और राधारानी-स्वरूप अपनेको आत्मविस्मृतकर पू. राधाबाबाके पास चले आते हैं और पू.गुरुदेवको सम्बोधित कर कहने लगे–

(चौपाई)

छद्म बढ़ाय प्रिया प्रिय बोले। अस अनुकरण को करै अमोले।।

अहो बाबा ! अब हमने छद्मवेष दूर करि दियौ है। सच्चे प्रिया-प्रियतम तो आप ही हौ । हम तो गुनीजन हैं । आपकी आज्ञा पायी तो हमने अनुकरन कियौ । अब आप ही बताऔ कि ऐसो परम अद्भुत अनुकरन और कोई करि सकै है ? प्रिया-प्रियतम तौ सच्चे आप ही हौ, आप अपने सरूप कूँ मति भूलौ। अब हमारी कामना पूरी करौ । हे कामनापूरन कल्पवृच्छ स्वामीजी ! आप ही हमारी स्वामिनी हौ। पहिलै हमकूँ वचन देऔ तौ हम माँगैं।

(इतने में ही समाजी गान कर उठते हैं)

कह्यौ प्रिया पैहौ, तुम पैहौ । मानि वचन निष्फल नहिं जैहौ।।

(समाजी) हे गुनीजनो ! तुम पाओगे, पाओगे । ये परम उदारशिरोमणि महापुरुष द्वय हैं, यदि प्रसन्न है जायँ, तो तुम कदापि निष्फल नायँ जाओगे। तुम्हैं जो चाहिये सोई माँगि लेऔ।

(समाजी पुनः गाते हैं)

तबहिं गुनी बोले सुनि लीजै। हम चाहत निज प्यारौ दीजै।।

इतनेमें कुछ गुनीजन बने समाजी पू. पोद्दार महाराजके पास भी पहुँच जाते हैं और कहने लगते हैं– "हे परमोदार ! हम ये ही भिच्छा चाहैं कि अपने प्यारे श्यामसुन्दर कूँ हमें दै देऔ । ठाकुर एवं ठकुरानी बने स्वरूप भी पू. श्रीराधाबाबासे यही भिक्षा माँगते हैं ।

(समाजी पुनः गाते हैं)

सुनत प्रिया सुधि सबै भुलाई । हाँ–नाहीं कछु कही न जाई।।

मौन चकित कछु अकी-जकी सी।बुद्धि सिथिल भई सिमिटि थकी सी।।

श्रीठाकुर 'एवं प्रियाजी-(श्रीराधाबाबाको संबोधित कर)

अति विनीत वर वचन तब बोले गुनी सुजान।
सत्यसंध विरदावली, राउर कीन छिपान।।

(चौपाई)

मिलिबौ ना मिलिबौ नहिं सोचू। कछु न भई आज्ञा संकोचू ।।
अबहूँ जो इतनौ सुनि पाऊँ । यह न मिलै तौ उठि घरजाऊँ।।

(अर्थ)

हे सत्यसंध विरदावलीवाले स्वामीजी एवं सन्त पोद्दार महाराज ! मिलिबे, न मिलिबे को हमें नैंक हू सोच नायँ है। केवल आपकी आज्ञाकी बाट हम तौ देखि रहे हैं । यदि आप कह दौ कि ये वस्तु तो हम तुम्हें नाँय दै सकैं तो तुरन्त बिना संकोच, बिना दुःखके हम अपने घर चले जावैं ।

समाजी(पू. पोद्दार महाराज एवं पू.राधाबाबाकी ओर से)

कहत लाडिली सबहिं सुनाई । तुम कत गुनी हियें दुख पाई ।।
लेहु लाल, घर जाउ सुजानू । भाग्य तुम्हार न जाय बखानू।।

(अर्थ)

हे गुनीजनो ! तुम अपने मनमैं नैक हू दुखी मत होऔ। लेऔ, तुम इनते इनके प्राननसौं प्यारे लालनकूँ लै ही जाऔ । तुम सभीके भाग्य बड़े ही विलच्छन हैं। लैऔ ! आनन्दसौं ये लालनकूँ तुम्हें देय रहे हैं ।

(परदा गिरजाता है, अब लीला दूसरा मोड़ ले लेती है)

ठाकुर एवं ठकुरानी सिंहासनमें विराजे हैं। गुनीजनवेषमें समाजी ठाकुरको अपने अधीन कर लेते हैं और पकरि कर ले जाय रहे हैं ।

समाजी गाते हैं:–

(चौपाई)

गुनी लियौ करि पकरि लालकौं । गयौ हियौ कुम्हलाय बालकौं।।
ललकि गह्यौ प्यारी तब लालहिं। करि बैठी निज प्रियउरमालहिं।।
गुनिजन बोलि कही तब प्यारी । एक विनय सुनि लेउ हमारी ।।

(अर्थ)

जैसे ही गुणीजन प्रियतम श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर अपने संग ले जानेको उद्यत होते हैं, असह्य वेदनावश प्रिया तो ऐसी मुरझा जाती हैं मानो

कनकलता वज्रपातसे कुम्हला गयी हो। उनके प्राण तो अत्यन्त द्रुतगतिसे उनके हृदयकमलसे निकलकर अपने प्रियतमकी उर-माला बन जाते हैं।

अपने प्रियतमके विरहकी आशंकासे उनके समस्त अंग पसीने से लथपथ हो जाते हैं। अत्यंत वेदनाके कारण वे बाह्यज्ञान खो बैठेंगी , ऐसा ही लगता है। किसी प्रकार अपनी वेदनाको संवरित करती हुई वे कहती हैं– "हे गुनीजनो, तनिक ठहरो ! मेरी एक विनय सुनि लेऔ । "

प्रियाजी–

(दोहा)

लाल समान जो वस्तु कोउ, तिभुवन दीखै कोइ।
माँगौ ताकी दून जू, अबहिं देउँगी तोइ ।।

(अर्थ)

मर्मान्तक पीड़ासे व्यथित हुई स्वामिनी कहती हैं– हे गुनीजनो ! यदि मेरे प्यारे श्यामसुन्दरके समान तुम्हें इनके स्थानपर कोई भी दूसरी वस्तु रुचै और तुम लैनो चाहौ, तो दुगुनी, चौगुनी, सौगुनी मोपैते ले लैऔ, मैं सहर्ष वह वस्तु तुम सबकौं दै दूँगी, इन मेरे प्राणस्वरूप प्रियतमकौं तुम मेरे पास छोड़ जाऔ । मैं इनके बिना और ये मेरे बिना छिनहू जीवित नाँय रह पावैंगे।

(गुणीजन गाते हैं)

{राग तैलंग,ताल-त्रिताल}

तुम बिनु को न्याय करै, हे सर्बेश्वरि प्यारी मेरी।
लालन सौं बढ़ि कौन, मोहि इन सम लखि ना परै।।हे सर्वेश्वरि०
सकल भुवन सेखरमनीजु ये, तदपि न प्रभुता ध्यान धरै ।
रूप राधिकाचरन दासिकौ पटतर अब न तरै।।हे सर्वे०

(अर्थ)

अहो सर्वेश्वरी प्यारी ! आप तौ न्यायाधीश हौ। आप हू विचार कर लौ। इन प्यारेके समान त्रिभुवनमें अन्य कोऊ वस्तु है का ? ये त्रिभुवननायक शेखरमणि हैकैं हू अपनी प्रभुताकौं भूल आपके चरण-कमलनके अनन्य भ्रमर बन रहे हैं।

श्रीप्रेयाजी-

सुनिजु बैन गुनियनके प्यारी । सकुचि सोचि मुनिगिरा उचारी ।।
सुनहु गुनी लै जाहु लाल मम। सत्य कहत कोउ वस्तु न इन सम।।

(अर्थ)

प्यारे गुणीजनो ! तुम्हारे वचन परम सत्य हैं । लालनके समान त्रिभुवनमें कोउ वस्तु है ही नाँय। यासैं तुम जीते, मैं हारी। लैऔ मेरे जीवन-धनकूँ लैजाऔ ।

(समाजी गाते हैं)

(दोहा)

चले गुनी तब मुदित ह्वै, गहि मोहनकौ हाथ।
प्यारी दसा जु कहिय कस, लाल नमित लखि माथ।।

अरे, अरे ! गुणीजन श्रीकृष्णकों प्रियासौं विलग करकै लै जाय रहे हैं ! प्रियतम श्यामसुन्दर निम्नमुख किये अपनी प्रियाको त्याग उनके संग जाय रहे हैं; अब प्रियाकी कैसी आकुल दशा है, इसका क्या वर्णन किया जाय।

इधर प्राकृत देश गोरखपुरकी कृष्णनिकेतन-वाटिकामें तो रासधारी ब्रजवासी यह लीला सम्पादित कर रहे हैं, चलो, उधर पू. गुरुदेवके भावजगत्की संघटित लीलाकी भी झाँकी देखें। पू.गुरुदेवके सामने तो चिन्मय वृन्दावन व्यक्त है। चतुर्दिक् पारिजात-तिरस्कारी तरुश्रेणियाँ झूम रही हैं । षड्ऋतुओंकी समग्र शोभा मानो इन तरुराजि पर न्यौछावर हो रही है। इन तरुओंको चारों ओरसे माधवी लतायें आलिंगित किये हैं । उन पर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंके गुच्छ लदे हैं । कुसुमोंसे मकरन्द झर रहा है । उनके मधुगन्धको अपने दुकूलमें धारण किये मन्द समीर प्रवाहित हो रही है। गुन-गुन करती भ्रमरावली विचरण कर रही है; किसी-किसी भ्रमरका स्वर यदा-कदा इतना उच्च हो उठता है, मानो वह हरिगुणगान करता उन्मादित हो उठा हो। ऐसे सुरम्य वृन्दावनमें प्रिया-प्रियतम एक पुष्पासन पर विराजित हैं। पू. गुरुदेव प्रियाकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उनपर व्यजन डुला रहे हैं । सहसा प्रियतम श्रीकृष्ण अतिशय गंभीर होकर अपने आलिंगन-निबद्ध प्राणप्रियाकी ओर अति सतृष्ण देखते हुए कहते हैं –"प्राणेश्वरी! ऐसा अवश्यंभावी प्रारब्ध समुपस्थित हो गया है, जिससे कुछ-एक क्षणोंके लिये मेरा तुमसे वियोग संघटित होना अवश्यंभावी है। और यह कहते हुए वे एक ओर अति अनमने निम्नमुख किये चल पड़ते हैं। अकस्मात् इस प्रकार अपनी प्रियाको सहसा ही आलिंगनमुक्त कर प्रियतमको अति विषादमें भरा निम्नमुख किये जाते देख

प्रियाकी अनुजा भगिनी बने पू. गुरुदेव इस प्रकार काँप उठते हैं, मानो अत्यंत सुविकसित किसी कञ्चनवल्लरीपर वज्रपात हो उठा हो। प्रिया श्रीराधारानी तो तत्क्षण ही 'हा प्राणनिकेत !' उच्चारण कर मूर्च्छित हो जाती हैं। अपनी अग्रजा प्राणोपम भगिनीको इस दशामें देख पू. गुरुदेवके हृदयमें ऐसी असह्य वेदना उठती है कि उसका भार उनका मस्तिष्क सह ही नहीं पाता। प्राणाधार प्रियतमके बिना मेरी प्यारी बहिन कैसे जीवित रह पावेगी ? और कहीं उसके प्राण उसका शरीर त्यागकर प्रियतमके संग पलायन कर गये तो उसके बिना क्या मेरा शरीर-धारण होगा ? इस भयसे उनके प्राण अभिभूत हो उठते है। उनकी बुद्धिका संतुलन ही डाँवाडोल हो जाता है। " उन्हें दौड़कर प्रियतम श्रीकृष्णको रोकना चाहिये" – एक बार उनमें इस समयोचित कर्तव्यका स्फुरण होता तो है , परन्तु मूर्च्छित, भूलुण्ठित अपनी भगिनीको सम्हालनेकी त्वराने उनके इस प्रयासपर भी पूर्ण विराम लगा दिया है।

"मेरी बहिनका तो सर्वस्व समर्पित है, एकमात्र प्रियतमके लिये ही। प्रियतम-सुख ही इसका साध्य है। इसकी समस्त चेष्टाएँ मात्र प्रियतम श्यामसुन्दरकी प्रसन्नतापर ही केन्द्रित हैं। इसका तो श्रीदामभैया, अथवा अन्य सखियोंके प्रति जो सौहार्द है, वह भी है सर्वथा प्रियतम प्राणसुन्दरके निमित्तसे ही। इसका तो वैभव, श्रृंगार सभी प्रियतम-सेवाकी ही सामग्री है। इसमें अन्य कोई इच्छा नहीं, वासना नहीं, मनमें मात्र एक विशुद्ध अभिलाषा है – 'नीलसुन्दर प्राणवल्लभ सुखी हों । किन्तु जब ये उसके प्राणधन जीवनसर्वस्व ही उससे छिन गये, उसे छोड़कर चले गये दीख रहे हैं–तो वह कैसे जीवन धारण करेगी ? विचार करती मञ्जुश्यामाके भावको वरण किये पू.गुरुदेव अनर्गल अश्रुप्रवाह करने लगते हैं ।

उनके सम्मुख जो वृन्दावनका परम सुभग दृश्य था, वह भी प्रियतमके बिदा होते ही दूसरा ही हो गया है। दिशायें धूएँसे धूमिल अत्यन्त म्लान होगयी हैं, महिषश्रृंगके समान समग्र अंतरिक्ष ही मानो काला पड़गया है। स्वयं दिनमणि सूर्य भी निस्तेज हुए रोते-बिलखते प्रतीत हो रहे हैं। अपनी प्राणोपम पुत्री भानु-दुहिताका विरह-दुःख भला सूर्यदेव कैसे सह पाते ? वे प्रसन्न कैसे बने रह पाते ? आपाततः विषादित वे निस्तेज अपनी अस्ताचल-यात्रा भी स्थगित कर बैठते हैं । प्रस्फुटित कुसुमगुच्छ मुरझाये भूलुंठित हैं । सुखस्पर्शी

शीतल पवन भी एक झंझावातकी तरह विरहाग्निमें तपी लग रही है। उन्हें ब्रजकी धरा भी अभूतपूर्वरूपसे कम्पित होती-सी दिखती है।'असहाय किंकर्तव्य-विमूढ बालिका बने पू. गुरुदेव दुःख, शोक, भयके अनन्त भारसे अभिभूत हुए काँपने लगते हैं। उनके पास तो जलपात्र भी नहीं है, जिससे वे आकुल-मूर्च्छित अपनी बड़ी बहनके अंगोंपर यमुनाजल लाकर छींटकर उन्हें जाग्रत् करनेका प्रयास तो करें। वे तो अपनी अग्रजाके मस्तकको अपनी गोदमें लिये उसके मुरझाये म्लानमुख पर अपनी अश्रुवर्षा ही कर पा रहे हैं।

अचानक ही उन्हें अपनी अग्रजा राधाके अंगोंमें प्राणतन्तुओंका जीवन्त उग्र स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है। वे सँभलें, इतनेमें तो उनकी भगिनी नितान्त विक्षिप्त-सी अपने प्राणसारसर्वस्वको अन्तिम बार ही सही, जिस किसी अवस्थामें भी निहार लेनेकी वासना लिये दौड़ पड़ती है। उनकी प्राणोपम बहिनके पीछे पू.गुरुदेव भी भागने लगते हैं । उनके मुखसे मात्र एक ही पुकार उठ रही है:—"किशोरी ! बहन राधा ! मुझे साथ ले चल ! बहिना री ! " वे देख रहे हैं—मेरी बहिनके केश-बन्धन उन्मुक्त हो चुके हैं, उसे कहाँ जाना है, किस स्थलपर जानेसे उन्हें अपने प्राणधन नीलसुन्दरके दर्शन होंगे—कुछ भी तो ज्ञात नहीं है । उसके समग्र शरीरावरक वस्त्र यदि खुल गये तो ? उसकी लज्जा-मर्यादाकी भी उसे तो परवाह ही नहीं है, उनके चरण तो निर्बाध अपनी अग्रजाका अनुसरण कर रहे हैं। पद-पदपर स्खलित होतीं, भूमिपर गिरती-उठतीं, आगे उनकी बहिन राधा और पीछे वे दौड़े जा रहे हैं । उनकी भगिनीके कण्ठसे मात्र 'हा ! प्राणनिकेत ! अहो जीवनधन ! हे हृदयसर्वस्व ! कृष्ण रे ! का करुण नाद वनप्रान्तरको प्रतिनादित करता निःसृत हो रहा है।

सहसा पू.गुरुदेव देखते हैं कि उनकी भगिनीके अपने प्राण-प्रियतम नीलसुन्दरके वृन्दाकाननकी धरापर अंकित पदचिह्न दिख जाते हैं। मानो वे स्पष्ट ही संकेत कर रहे थे—'आओ, आओ ! अपने प्राणप्यारेको हमारे सहारे अन्वेषण कर लो !' और अब तो वे और उनकी भगिनी दोनों ही रविनन्दिनी यमुनाके तटकी ओर दौड़ पड़ती हैं। क्योंकि वे चिह्न यमुनाकी ओर ही अग्रसर होते उन्हें दिखते हैं । उन दोनोंके नेत्र केन्द्रित हो रहे हैं अब्ज, यव, अंकुश, वज्र, ध्वज आदि चिह्नोंसे विभूषित उस पथ पर। किन्तु यहाँ आनेपर उस विशाल कदम्बकी छायाके नीचे उन्हें दिख जाती है उनके प्रियतम नीलसुन्दरकी

(अर्थ)

प्यारे गुणीजनो ! तुम्हारे वचन परम सत्य हैं । लालनके समान त्रिभुवनमें कोउ वस्तु है ही नाँय। यासैं तुम जीते, मैं हारी। लैऔ मेरे जीवन-धनकूँ लैजाऔ ।

(समाजी गाते हैं)

(दोहा)

चले गुनी तब मुदित ह्वै, गहि मोहनकौ हाथ।
प्यारी दसा जु कहिय कस, लाल नमित लखि माथ।।

अरे, अरे ! गुणीजन श्रीकृष्णकों प्रियासौं विलग करकै लै जाय रहे हैं ! प्रियतम श्यामसुन्दर निम्नमुख किये अपनी प्रियाको त्याग उनके संग जाय रहे हैं; अब प्रियाकी कैसी आकुल दशा है, इसका क्या वर्णन किया जाय।

इधर प्राकृत देश गोरखपुरकी कृष्णनिकेतन-वाटिकामें तो रासधारी ब्रजवासी यह लीला सम्पादित कर रहे हैं, चलो, उधर पू. गुरुदेवके भावजगत्की संघटित लीलाकी भी झाँकी देखें। पू.गुरुदेवके सामने तो चिन्मय वृन्दावन व्यक्त है। चतुर्दिक् पारिजात-तिरस्कारी तरुश्रेणियाँ झूम रही हैं । षड्ऋतुओंकी समग्र शोभा मानो इन तरुराजि पर न्यौछावर हो रही है। इन तरुओंको चारों ओरसे माधवी लतायें आलिंगित किये हैं । उन पर प्रस्फुटित कुसुमसमूहोंके गुच्छ लदे हैं । कुसुमोंसे मकरन्द झर रहा है । उनके मधुगन्धको अपने दुकूलमें धारण किये मन्द समीर प्रवाहित हो रही है। गुन-गुन करती भ्रमरावली विचरण कर रही है; किसी-किसी भ्रमरका स्वर यदा-कदा इतना उच्च हो उठता है, मानो वह हरिगुणगान करता उन्मादित हो उठा हो। ऐसे सुरम्य वृन्दावनमें प्रिया-प्रियतम एक पुष्पासन पर विराजित हैं। पू. गुरुदेव प्रियाकी अनुजा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उनपर व्यजन डुला रहे हैं । सहसा प्रियतम श्रीकृष्ण अतिशय गंभीर होकर अपने आलिंगन-निबद्ध प्राणप्रियाकी ओर अति सतृष्ण देखते हुए कहते हैं –"प्राणेश्वरी! ऐसा अवश्यंभावी प्रारब्ध समुपस्थित हो गया है, जिससे कुछ-एक क्षणोंके लिये मेरा तुमसे वियोग संघटित होना अवश्यंभावी है। और यह कहते हुए वे एक ओर अति अनमने निम्नमुख किये चल पड़ते हैं। अकस्मात् इस प्रकार अपनी प्रियाको सहसा ही आलिंगनमुक्त कर प्रियतमको अति विषादमें भरा निम्नमुख किये जाते देख

विनाश कर देनेको दौड़ पड़ते हैं, वे प्रेमीजन-सुहृद, स्वयं उनके लिये ही जीवन धारण करनेवाली अपनी प्रियाको ऐसे व्यथा-सागरमें क्यों असहाय एकाकिनी छोड़ आये ? प्रियानुजा मञ्जुश्यामा अन्ततः मुखर हो ही गयीं !

"प्राणेश्वरी ! तुम्हींने तो गुणीजनोंको मुझे दान कर देनेका वचन दिया था, और तब तुम्हीं उन्हें मुझे देनेमें असमंजस अनुभव कर रही थीं । अब भला, तुम्हारी वचन-रक्षाकर तुम्हारे भक्तवात्सल्यकी अनन्तकालतक यशध्वजा फहराना क्या मेरा कर्तव्य नहीं था ? अतः मैंने ही इन गुणीजनोंको संकेत कर दिया था कि प्रिया ऐसे तो मेरा दान कदापि नहीं कर पावेंगी। हाँ, मैं इन्हें अत्यन्त निष्ठुरतापूर्वक त्यागकर यदि यमुनाके किनारे चला आऊँ, तो तुम मुझे अपने घर भले ही ले जाना । अब प्राणेश्वरी ! तुम्हारी मेरे विरहमें और मेरी तुम्हारे विरहमें जब ऐसी विषम प्राणघाती दशा इन गुणीजनोंने देखी, तो ये स्वयं ही पिघल गये और मुझे तुमसे माँगनेकी बहुत भारी भूल मानने लगे। लो ! इनकी कृपासे ही यह मेरा और तुम्हारा मिलन हुआ है। देखो ! ये गुणीजन अपराधबोधसे गड़े, तुम्हारे सम्मुख आनेका साहस ही नहीं कर पा रहे हैं ।

अपनी भावलीलामें अपने प्रियतमकी ऐसी प्रेमोक्ति सुनते-सुनते पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी बहिर्मुखी वृत्ति हो उठती है। वे अपने सम्मुख रासधारियोंको लीला करते देख रहे हैं –

(समाजी श्रीहरिवल्लभजी राग देश, ताल धमारमें गा रहे हैं)

कबहुँक निबिड़ तिमिर आलिंगत, कबहुँक पिक-सुर गावै।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि, संगहि उठि-उठि धावै ।।
कबहुँक नैन मूँदि अन्तर गति मनिमाला पहिरावै ।।
परमानँद प्रिय स्याम -ध्यान करि ऐसेहिं विरह गमावै ।।

(अर्थ)

प्रिया राधा अपने प्रियतमके प्रेम-विरहमें कभी तो सभी कुछ विस्मृत कर निविड़ अतिशय घने अन्धकारको ही प्रियतम श्यामसुन्दर समझ 'हा प्राणवल्लभ !' उच्चारण करती आलिंगन करने लगती हैं, कभी काली कोकिल बनी स्वयं 'पीहू, प्रीतम, प्रीतम' मधुर स्वरमें पुकारने लगती हैं। कभी अतिशय संभ्रममें 'कहाँ गये ,कहाँ गये ''कहती अपने प्राणवल्लभके अंकमें आलिंगित हुई उठकर दौड़ने लगती हैं । कभी नैन मूँदकर ध्यानमें अपने प्रियतमकी छवि

प्रत्यक्ष करती, उन्हें अपनी गलेकी वनमाला पहनाने लगती हैं । श्रीपरमानन्दजी कहते हैं, कि प्रियतम श्यामसुन्दर भी अपनी प्रियाके समान ही, ध्यान करते–करते ही, अपना विरहकाल काटते हैं ।

समाजियोंकी इस उक्तिके साथ ही रासलीलामें भी प्रियतम–प्रियाका परस्पर मिलन हो जाता है। इस मिलनके पश्चात् श्रीजीकी उक्ति :–

(चौपाई)

प्रान हमारे लाल तिहारे । थाती राखहु सदन हमारे।
सलिल-मीन गति हम दोउ जानी । यह उपकार करहु मन आनी।।

(अर्थ)

हे गुणीजनों ! ये लालविहारी मेरे प्रान हैं, जीवनाधार हैं । सो कृपा करि मेरे इन प्राननकूँ आप अपनी ओरीसौं मेरे हृदय-सदनमें अपनी थाती करिकैं राखि देऔ; क्योंकि हम दोऊनकी जल एवं मीनकी-सी गति है। तुम यदि हमारे प्राननकी रच्छा कियौ चाहौ तो मोकूँ यह भिच्छा दैऔ । गुणीजन उत्तर देते हैं:–

सुनत गुनी बोले सिर नाई। आग्या राउर सीस सदाई ।।
चरनकमल तजि अनत न जैहें । सरन रावरीमें ही रहिहैं ।।
टहल महलकी निसिदिन करहूँ। राउर रुचि सेवा अनुसरहूँ ।।

(अर्थ)

स्वामिनीजी ! आपकी आज्ञा सिरोधार्य है। अब हम आपके चरणकमलकूँ छोड़िकै कहूँ नाँय जायँगे । आपकी सरनमें ही रहिकैं महलकी टहलमें रुचि लैकैं आपकी सेवामें चित्त दिये रहैंगे ।

समाजी गाते हैं--

(चौपाई एवं दोहा)

ह्वै प्रसन्न प्यारी सब काहू । करहु निवास कहेहु सउच्छाहू ।।
तबहीं हारि निकारि कैं दियौ युगल उर डारि।

(सखी वचन)

हम हैं ललितादिक सखी, फूलन बीननिहारि ।।

(सब सखियाँ छद्मवेष उतारिकैं फूलनके हार प्रिया-प्रियतमके श्रीकण्ठमें धारण करावैं)

(दोहा)

चूकि छमा करिये प्रिये ! आजु भई बहु बार ।
अब निकुञ्ज चलि पौढिये, अहो स्वामिनि सुकुमार।।

(श्रीजीका कथन)

ए हो ललितादिक सख़ी, तुम मो हियो सिराय ।
उर लगाय प्यारी कह्यौ, को अस छद्म दिखाय।।

(श्रीहरिवल्लभजीके द्वारा राग वृन्दावनीसारंगमें अति मधुर गायनके साथ यह रासलीलानुकरण समापन होता है)

(पद)

साँची प्रीति भई इक ठौर ।
मृगनयनी जु कमलदललोचन , लंाल श्याम राधा तन गौर ।।
तुम सिर सोहत पाटकी डोरी, हरि सिर रुचिर चन्द्रिकामोर ।
तुम रसिकनी, ये रसिक-सिरोमनि, तुम ग्वालिनि ये माखनचोर ।
तुम करिनी ये गजबर-नायक ,तुम मालति ये भोगी भौंर ।
परमानन्द लाल गिरिधरकैं राधा- सी जोरी नहिं और ।।

(पू. गुरुदेवकी अन्तरिक अनुभूतियाँ इस प्रसंगमें उनके ही द्वारा लेखकके सम्मुख कथित की गयी हैं एवं यथास्मृति वर्णन की गयी हैं ।)

वेणीगूँथन लीला

{दूसरे दिवस भी पू. राधाबाबाने कृष्णनिकेतनमें ही इसी रीतिसे वेणी-गूँथनेकी रासलीला करायी थी। दूसरी बार दर्शक कुल इक्कीस लोग थे। यह बाध्यता थी कि सभी दर्शक स्नान करके और नवीन वस्त्र धारण करके ही बैठें। इस लीलामें भी पू. गुरुदेव एवं पू.श्रीपोद्दार महाराज दोनोंको ही महारस-भावोदय हुआ।}

जैसे किसीने अमृत उँडेल दिया हो, प्राणोंमें दिव्यातिदिव्य मधुकी धारा बहा दी हो—इस प्रकार अनुभव करते हुए पू.गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराज श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियाकी सुमधुर गायनध्वनिसे उत्पन्न महारस-सिन्धुमें डूब गये थे। इस संगीतकी मधुधाराने उनके अन्तस्तलमें नित्य अनवरत प्रवाहित भाव-स्रोतस्विनीकी चंचल तरंगोंको इतना उद्दीपित किया था कि जो रस-कल्लोलिनी उनके उरस्थलको नित्य निमज्जित रखती थी, वह गंभीर,गंभीरतम आवर्त्तों सहित उफनने लगी थी। वह संगीत-स्वरमाधुरी सामान्य तो थी नहीं, किसी प्रत्यक्षदर्शी महापुरुषकी मंत्रवत् समाधि-वाणी थी। जिसे रासलीलाके वरिष्ठ समाजी श्रीहरिवल्लभजी गा रहे थे।

(श्रीहरिवल्लभजी एवं सभी समाजी रासलीला-प्रारम्भमें मंगलाचरण कर रहे थे ।)

मध्ये-मध्ये कुसुमखचितं रत्नदाम्नानिबद्धं
मल्लीमाल्यैर्घनपरिमलैर्भूषितं लम्बमानैः ।
पश्चाद् राजन् मणिवरकृतोदारमाणिक्यगुच्छं
धम्मिल्लं ते हरिकरधृतं कर्हि पश्यामि राधे ।।

(अर्थ)

अहा ! जिनके घन जलधरकृष्ण केशोंके मध्य-मध्यमें कल्पतरु-काननके कुसुमों द्वारा,खचित विलक्षण रसकलाकृतियाँ निर्माण की गयी हैं; जो ईश्वर-प्रतिपादक समस्त उपनिषदोंकी प्रामाण्यरूपा ब्रह्मविद्यास्वरूपा मणिमालाओंसे निबद्ध हैं; जो शास्त्रप्रसिद्ध सन्ताद्घोषित निविड़ आनन्द-सुधा-सागरकी उद्गमस्थल स्वरूपा मालती मालाओंसे भूषित हैं; जिसके अन्तिम भागमें जिसे कुछ लोग ब्रह्म कहते हैं, कुछ मनीषी जगत्कर्त्ता कहकर परिचय देते हैं, कुछ

प्राणी जिसे परमात्मा बतलाते हैं; जिसे कुछ श्रेष्ट पुरुष भगवान् कहकर प्रतिपादित करते हैं, जिसका प्रभाव देशकालसे परिच्छिन्न नहीं है, देश–कालकी सीमामें जो बद्ध नहीं है; वही देव महामणि–माणिक्य–गुच्छवत् सुशोभित है। जिसका ग्रन्थन करते समय रूप–माधुर्यकी शत–सहस्र धारायें बहानेवाले मरकत–द्युतिकलेवर रसराज रसिकशेखर नन्दतनय, उसे हृदयसे लगानेका मनोरथ करने लगते हैं, ऐसी उन रसिकशिरोमणि–करपल्लवरचित तुम्हारी वेणीके हे श्रीमती राधारानी ! मुझ दीन–हीनको कब दर्शन होंगे ?

इस मंगलाचरणका श्लोक सुनते-सुनते पू.गुरुदेव और पू. पोद्दार महाराजके आनन्दकी सीमा नहीं रही। अमृत पीकर आनन्दोन्मत्त हुए प्राणीकी तरह भाव-भक्तिके प्रबल आवेशसे उनका रोम-रोम पुलकित होने लगा। विलक्षण रसभरे इस मंगलाचरणके श्लोककी एक-एक शब्दावली उन्हें, मानो किसी परम अनिर्वचनीय लोकमें पहुँचा गयी। एक क्षण तो उन दोनोंकी ऐसी दशा हो गयी कि उन्हें होश ही नहीं रहा एवं उनके शरीर जड़वत् हो गये। यद्यपि दोनोंके नेत्र स्थिर थे, किन्तु अन्तर्में पूर्ण भावचेतना उत्ताल तरंगोंमें उमड़ रही थी । उनके सम्मुख एक परम चिन्मय दृश्य व्यक्त हो उठा था। प्रिया राधारानी स्नानकर एक श्रृंगारचौकी पर विराजित हैं। उनकी श्रृंगारचौकीकी विलक्षण शोभा पू.गुरुदेव एवं पू. पोद्दार महाराजके परम चिन्मय नयनोंमें हू-ब-हू इसी प्रकार व्यक्त हो रही थी , जिसका वर्णन कोई पूर्ववर्त्ती रससिद्ध संत निम्न श्लोकमें इस प्रकार कर चुका है।

लसत्कनक कुट्टिम स्फुरदमन्दमुक्तावली
समुल्लसित कान्तिभिः कलित शक्रचापव्रजे।
महाभरणमण्डपे इन्द्रनीलसिंहासनं
सखीजनसमावृतं समधितिष्ठ रासेश्वरी ।।

(अर्थ)

वह श्रृंगारचौकी विशुद्ध सत्वस्वरूपा कनकसे निर्मित है। वहाँ किसी प्राकृत कनकधातुका तो प्रवेश ही नहीं है। उस श्रृंगारचौकीके चतुर्दिक् ब्रह्मविद्यारूप असंख्य रत्नहार इतस्ततः भूमिमें बिखरे हैं। इन हारोंकी मणियोंसे शुभ्र मन्द ज्योत्स्ना दिप-दिपा रही है। प्रियतम श्यामसुन्दरका तन जिस विशुद्ध सच्चिन्मयी नीलिमासे बना है, वह नीलिमा ही यहाँ मणियोंके रूपमें इतस्ततः

प्रकीरित है। विशुद्ध चिन्मय रागभाव ही जहाँ माणिक्यराशि है, और विशुद्ध प्रियतमरति ही जहाँ प्रवाल बनी है,इन समग्र भावोंके एक साथ एक स्थानपर एकत्रित होनेसे सर्वत्र शक्रचाप (इन्द्रधनुष)की-सी कान्ति समुल्लसित है। इस महाभरण-मण्डपमें प्रिया राधारानी विराजित हैं। वे अपनी ललिता, विशाखादि सखियोंसे समावृत हैं ।

देखो ! देखो ! प्रिया मुसका रही हैं । पू.गुरुदेव एवं पू. पोद्दार महाराज दोनोंहीके हृदय इनके अरुण अधरोष्ठकी कान्तिसे दमकती कुन्दपंक्ति सदृश दन्तावलि द्वारा प्रकटित सरस ज्योत्स्नासे उद्भासित हो उठे । वे इस शोभामें तन्मय हैं । कितना विशुद्ध मन है, इनका। इस विशुद्धसत्वमयी हासछटामें निरतिशय डूबे रहनेके अतिरिक्त अन्य कोई संकल्पका लेश भी जहाँ उत्थित नहीं हो रहा है । उनकी अन्य सभी कामनाओंपर किसी परम रसिकशेखरने अपनी महारसमयी यवनिका जो गिरा दी है। पू.गुरुदेवके नेत्र निमेषशून्य हो गये हैं। कुछ क्षणके लिये वे सब कुछ विस्मरण कर जाते हैं। उनका हृदय अत्यन्त वेगसे स्पन्दित हो रहा है, किन्तु अन्य अवयव चैतन्यविहीन-से हो गये हैं, सर्वथा जड़ बन गये हैं । उनका हृदय तो चैतन्य है, वह उनकी वृत्तियोंको श्रोत्रेन्द्रियकी ओर उन्मुख किये है और उस श्रोत्रेन्द्रियमेंसे प्रमुख समाजी श्रीहरिवल्लभजीकी परम सुमधुर संगीतध्वनि आ रही है। वे तोड़ी रागमें एवं चौताल तालमें आलाप भर रहे हैं :

मज्जन करि कंचन चौकी पर बैठी बाँधत केसन जूरौ।
रुचिर भुजनकी उपमा अनुपम , ललित करन बिच झलकत चूरौ।।
लाल जटित बैंदी सुविराजित तैसोई फबि रह्यौ माँग सिंदूरौ ।
चतुर बिहारी प्रिया मुख छबिपर वारत कोटि सरद ससि पूरौ।।

अहा ! सद्यस्नाता श्रीराधारानी उपरोक्त कंचनचौकीपर अपनी नीलश्यामघन केशराशिका जूड़ा बाँधे बैठी हैं। उनके अंग-प्रत्यंगोंसे शोभाका निर्झर झर रहा है। पू.गुरुदेव चित्र लिखे-से बैठे हैं । उनका आनन्द विगलित हृदय अश्रु बनकर नेत्रोंके पथसे बह चलता है। पू.गुरुदेवके सम्मुख अपनी अग्रजा भगिनी भानुकिशोरीका कैसा विलक्षण सौंन्दर्य प्रकट हो रहा है । "मानों अभी-अभी सिन्धुमन्थन हुआ है । और उसमेंसे साक्षात् महालक्ष्मी कमलासनके स्थानपर कंचनचौकीपर सुविराजिता प्रकट हुई हो ,ऐसी कुन्दनद्युति

प्रियाकी अंगकान्ति है । सघन नील मेघराशि मानो दामिनीमालासे बँधी नभके मध्यभागमें एकत्रित हो गयी हो , और यदा-कदा दो-चार बूँदें टपका देती हो, ऐसी शोभा प्रियाके क्षौम-शुभ्र-वस्त्रावृत केशकलापके जूड़ेकी है, जो उनके अनावृत अंगोंपर मुक्तामालावत् जलविन्दु टपका रहा है।

कमलनाल-सी परम सुकोमल कुन्दनद्युति काम-कमनीय दोनों भुजायें इतनी अनुपमेय रुचिर हैं कि इनकी सुन्दरता सदैव श्रीकृष्णचन्द्रके नयन-सरोजोंको लुभाये रखती हैं । इनके युगल करोंमें सप्त रत्नोंकी सात-सात चूड़ियाँ सदैव खनकती रहती है। ये चूड़ियाँ यद्यपि हैं, रत्न-पाषाणनिर्मित किन्तु इनकी सुकोमलता कुसुमदलोंकी अपेक्षा भी अत्यन्त मृदुल-मृदुलतर है। एक लघु तूल-पुंजमें जितना भार होता है , उतना भार भी इन चूड़ियोंमें प्रियाके करोंको संवेदित नहीं होता। इन चूड़ियोंके रंग एवं इनकी कलात्मक संरचना इतनी सुमनोहर है कि इन्हें निहारते हुए विश्वविमोहन प्रियतम नीलसुन्दर भी अपनी त्रैलोक्य मनोरम छविको इन पर न्यौछावर कर देनेको समातुर हो उठते हैं । इन चूड़ियोंके अग्रभागमें प्रियाकी कमलदलोंसी सुन्दर दोनों हथेलियोंकी अपरिसीम शोभाको मानो निरखते इन्द्रनीलमणिके दो कंकण (कड़े) सुशोभित हैं। इन नीलमणि वलयोंके रूपमें स्वयं प्रियतम ही प्रियाके कमल-किसलय-से दोनों हाथोंको सुपरिवेष्टित किये रहते हैं। इन नीलमणि वलयोंके पश्चात् प्रिया प्रियतम-रागकी तीन-तीन रक्तवर्णकी माणिक्यचूड़ा धारण किये रहती हैं। तत्पश्चात् वे विशुद्ध सत्वमयी वर्णकी सर्वोच्च भक्तिभावकी प्रकाशिका दो पीतद्युति पुखराजरत्नकी चूड़ी पहनती हैं एवं सबसे पश्चात् उनकी कलाइयोंमें दो चूड़ियाँ जो विशुद्ध ज्ञानभावकी प्रकाशिका हैं वज्रमणि (हीरे)की धारण होती हैं। इसके पश्चात् उनके बाहुयुगलमें त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका प्रतीक कंचनवलय सुशोभित होता है।

पू.गुरुदेव श्रीमती राधारानीकी चूड़ियोंकी शोभा देखते-देखते इतने आनन्दित हो उठते हैं, कि उनका हृदय इस आनन्दातिरेकको सँभाल नहीं पाता। उन्हें भय है कि कहीं वे मूर्च्छित होकर गिर नहीं पड़ें और पू.पोद्दार महाराज इस रासलीलाभिनयको ही स्थगित कर दें। उनका हृदय भावातिरेकमें इतनी तीव्र गतिसे स्पन्दित हो उठता है कि उन्हें प्रियाकी भुजाओंसे अपने मनको निवारित करना पड़ता है। परन्तु मन तो मन ही है।

वह प्रिया राधारानीकी भुजाओंकी शोभासे निवारित होता है तो मुखचन्द्रकी शोभामें फँस जाता है। अहा ! उनके मुखारविन्दका सौन्दर्य तो इन सुकोमल बाहु-वल्लरियोंसे अनन्त गुना मनोज्ञ है। प्रियाके बाहुयुगल पद्म हैं तो उनका मुख पूर्ण चन्द्र है। अहा ! यह पूर्ण प्रफुल्लित चन्द्र तो उनके मानसमें प्रेम-पीयूषकणोंकी वर्षा ही कर बैठता है। पू. गुरुदेव अपने मानसमें लबालब भरी इस छविपर अपने प्राणोंको न्यौछावर ही तो कर सकते हैं ।

अहा ! उनके कुन्दनद्युति चमकते ललाटपर कुंकुमकी बड़ी-सी बेंदी सुशोभित हो रही है, जो झलका रही है कि प्रियाका मन-मस्तिष्क अपने प्रियतमके प्रेमसे लबालब भरा है और इस बिन्दीके ठीक ऊपर मध्य सिरमें रत्नमालाओंसे समलंकृत केशराशिको समानरूपमें बाँटकर विरचित सीमन्तमें सिन्दूरकी ऐसी शोभा है, मानो दोनों ओर सघन वनांचलको चीरकर सुमेरु शिखर जगमग-जगमग करता ज्योतिर्मान हो रहा हो। प्राणप्रिया श्रीराधारानी माधुर्य एवं लावण्यकी अपरिसीम सागर हैं और इनकी मुखछविपर पूर्ण शरच्चन्द्र निर्मञ्छन करनेयोग्य तुच्छ प्रतीत हो रहा है ।

पू. गुरुदेव देख रहे हैं कि सद्यस्नाता प्रियाकी वस्त्रालंकार-अनावृत सौन्दर्यराशिको अपने नयनोंमें आपूरित करनेको लालायित प्रियतम श्रीकृष्ण स्नानकुञ्जके एक सघन लतासमूहकी ओटमें छुपे-दुबके इस अनुपम शोभाको निरख रहे हैं ।

(समाजी गा रहे हैं)

(राग- आसावरी,ताल त्रिताल)

कौन भाँति मुसकाति छबीली दुरि प्रियतम तिहिं छबिहि निहारत ।
निरखत रूप प्रकास माधुरी, रीझि प्रान- तन- मन- धन वारत ।।
चहुँ दिसि सखी-सहचरी जे निज, सादौ कछु सिंगार विचारत ।
प्रेम चाइके रंग रँगी सब, एक हार अरुझे निरवारत ।।
इक सौंधी फुलेल लियैं ठाढ़ी , एक फूल सौं केस सँवारत ।
मज्जन करि पहिरे पट-भूषन छिन-छिन प्यारसौं पियहिं सँभारत ।।

अरे ! अरे ! ऐसा तो सुना है कि प्रियतम श्रीकृष्ण अनेकों प्रकारसे मुसकाते हैं। विश्वविमोहिनी मन्द मुसकान तो उनके अधरोंपर सदा ही विराजित रहती है। अपनी मधुरातिमधुर मुसकानसे आत्माराम योगीन्द्र -मुनीन्द्रोंको अपने भक्तिपथका पथिक बनानेकी अभिसन्धिसे जब ये मुसकाते हैं, तब इनकी

और ही विलक्षण मुनिजनमनमोहिनी मुसकान होती है। लीलारससुधाकी शत-सहस्र मन्दाकिनी धाराओंको अपने निजजनोंमें बहाने और उन्हें सदा-सदाके लिये आनन्दसिन्धुमें निमग्न कर देनेका संकल्प उदय होनेपर भी ये मुसकाते हैं, तब इनकी निजजनमोहिनी मुसकान कुछ पृथक् ही होती है। रासलीलाके समय जब ये ललित त्रिभंगरूप धारणकर अपने मकर कुण्डलज्योतिसे उद्भासित युगल अमल कपोलोंको जब मुसकानमाधुरीसे दमकाते हैं और तब इनकी अपूर्व सौन्दर्यराशिसे राका शरदशशि भी लज्जावनत हो उठता है, वह उनकी मन्मथ-मानस-मन्थिनि मुसकान कुछ पृथक् ही अर्थ रखती है। परन्तु आज तो इनका दाव ऐसी अपूर्व सौन्दर्यराशिकी उद्गमस्थलीसे पड़ा है जिसकी एक अति साधारण मन्द मुसकानसे ही ये भूमि-लुण्ठित होने जा रहे हैं। तभी तो न ये उस मुसकान माधुरीको सम्मुख आकर देख भी नहीं पाते । वे उसे लता-ओटसे मात्र दुर-दुर छिप-छिपकर ही देख रहे हैं । अहा ! उनकी सद्यस्नाता प्रियाके निरावरित अंग कैसे स्वच्छ हैं, मानो उत्कृष्ट कंचनमणिके नवोन्मिषित अंकुर हों , इतने मृदु हैं मानो माधवीलताके पुष्प-पल्लव हों, इतने स्निग्ध हैं, मानो वर्षणोन्मुखी नवजलधरोंके मध्य संजात विद्युल्लहरी हो, इतने सुरभित हैं मानो त्रैलोक्य-लक्ष्मीके भालका कस्तूरीतिलक हो, इतने सुचिक्कण एवं आकर्षणशील हैं मानो सौभाग्यश्रीके अंगोंमें मूर्त कामकला हो । अहा ! लता ओटसे अपनी प्रियाकी निराविल छवि देखते वे अभूतपूर्व आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं । उनकी कैसी दर्शन लालसा है, जो क्षण-क्षणमें उत्तरोत्तर चञ्चल चलायमान हो रही है। वे प्रतिपल व्याकुल हैं, कैसे अपनी प्रियाके अभूतपूर्व, परम विलक्षण अंगोंको शीघ्र-से-शीघ्र आलिंगित करें। उनकी उत्कण्ठा अब तो चरमोत्कर्षको प्राप्त हो रही है।

न जाने कितने कालसे वे लता-ओटमें छिपे अपनी प्रियाके वदनारविन्दका मधुपान कर रहे हैं, इसे कौन कहे ? चिन्मय जगत्में यह प्राकृत जगत्की क्षणभंगुर कालसत्ता तो है नहीं जिसकी पल-क्षण, घड़ी-प्रहर, दिवस-रातके रूपमें परिगणना हो । अनादि, असीम कालसत्ताके व्यतीत होने पर भी न तो उनके नेत्र थके हैं, न ही तृप्त ही हो रहे हैं, अपितु जितना देखते हैं, उतनी ही दर्शनोंकी प्यास उत्तरोत्तर बढती जाती है। अहा ! प्रियाकी अंगशोभा देखते हैं तो नयन वहीं रम जाते हैं, वहाँसे हट ही नहीं पाते, अधरोंपर दृष्टि चली

जाती है तो दीखता है, मानो रक्तरागमणिके अंकुर किसी अपूर्व कंचनलतामें उन्मिषित हों; करतल, चरणतल, नखावली, एकसे-बढकर-एककी शोभाके आवर्त्तोंमें पड़े प्रियतम भ्रमित हुए, बस अपना तन-मन-धन न्यौछावर ही कर पा रहे हैं।

उनकी प्रियाको चारों ओर से सखी सहचरियाँ घेरे हैं । अपने प्रियतमकी छुप-छुपकर प्रिया-शोभा निरखनेकी चातुरी उनसे अप्रकटित तो है नहीं, अतः वे प्रियतम-दर्शन लालसानुरूप प्रियाको अत्यन्त सादा ही श्रृंगार धारण कराती हैं । ये सभी सखियाँ अपनी प्रिया एवं प्रियतमके प्रेम एवं चावमें पूरी रँगी हैं । इन सखियोंमें कुछ-एक तो प्रियाका उलझा हार सुलझा रही हैं,कुछ-एक अतिशय सुगन्धित फुलेल लिये हैं, एक प्रियाके केश पुष्पोंसे सुसज्जित कर रही है। सभी सखियाँ अतिशय उत्कण्ठित हो रही हैं। प्रियाने स्नान कर साधारण वस्त्राभूषण धारण कर लिये हैं एवं अपने प्राणप्रियतमकी क्षण-क्षण स्मृति-सुधि कर रही हैं।

इधर प्रियतम बार-बार दृष्टि छुपा-छुपाकर अपनी प्राणप्रियाकी सलौनी आकृति निरखते जाते हैं, किन्तु उनको तृप्ति होती ही कहाँ है ? इतनी देर दर्शन करके भी आँखें दरसनकी प्यासी ही रह जाती हैं। प्रियाके कंचन-गौर श्रीअंगोंपर तो नित्य लावण्यकी लहरें उठती रहती हैं। वे तो नित्य नवसुन्दर हैं, उनका क्या तो स्नान और क्या श्रृंगार ! परन्तु यह तो सखियोंके हृदयमें उठतीं अपने प्रियतमको नित्य नव-नव सुखदान देनेकी लालसाओंका मात्र एक लघु-सा प्रीति-उपक्रम है। उनके अति मधुर श्रृंगार-रसकी नित्य नव-नव वेगसे उमगती चंचल लहरें हैं, जो विविध श्रृंगारसे अपनी प्राणसखीको सज्जितकर अपने प्रियतमके नयनोंका आनन्दवर्धन करती रहती हैं। श्रृंगाररसकी पाठशालाकी तो यह प्राथमिकी ही है, प्रेमरसकी एक अतिशय प्यारी, अति स्वाभाविक प्रीति-प्रक्रिया भर है जिससे प्रेरित हुईं सखियाँ अपनी प्राणसखी भानुतनयाकी श्रृंगारसज्जा करती हैं एवं भानुतनया स्वयं अपने हाथों अपनी सखियोंका अतिशय वात्सल्यसे भरकर श्रृंगार करती हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी प्राणप्रियाका पूर्ण मनोयोग एवं लालसासे श्रृंगार करते हैं और प्रिया अपने प्रियतमको अपने समग्र कौशल और प्यारदान देकर सजाती हैं । जो हो, तात्पर्य यह है कि यहाँ – इस वृन्दाकाननमें प्रिया-प्रियतमकी माधुर्यरसप्रधान श्रृंगार-सेवार्चना कुछ निराले ढंगसे ही होती है। यहाँ विधि-विधान,कार्य-कारण

कुछ नहीं है, यहाँ तो सखियोंके, प्रियाके, प्रियतमके अन्तस्तलमें प्रवाहित अनाविल प्रमसिन्धुकी उर्मियाँ ही हैं, जो प्रिया-प्रियतमके अन्तस्तलमें प्रिया-प्रियतम, सखी-समुदाय, पशु-पक्षी, लता-वृक्ष, पुष्प-भ्रमर एवं क्या कहें समग्र ब्रज-बृन्दावनको ही निरंतर नृत्य कराती, थिरकती रहती हैं। ये प्रीति-उर्मियाँ परम रसमयी भाव-समुद्रकी लहरें, जहाँ, जिसे, जब, जिधर बहा ले जावें, वहाँ, उस ओर, वैसे ही बह जाना यहाँका अखण्ड प्रेमनियम है।

लो ! प्राणवल्लभ नीलसुन्दरकी दशा देखें। प्रियतम प्राणसुन्दर नीलमणि अबतक जो स्वयंको गोपन रखकर अपनी प्रियाको लता-जालकी ओटसे निरख रहे थे, अब उनके पार्श्वमें ही आकर अवस्थित हो गये हैं। वे अपनी प्रियाके सम्मुख अपना प्रेम-निवेदन कर रहे हैं। समाजी अतिशय मधुर स्वरमें आलाप ले रहे हैं –

हियकौ प्रेम समुझि रस-नागर चरननि चूमत नयननि लावत ।
हित ध्रुव' प्रीति परस्पर ऐसी, ये उनकौं वे इनहिं लड़ावत ।।

सप्त स्वर्ग – सप्त पाताल समन्वित असंख्य ब्रह्माण्डश्रेणीके प्रधान प्रतिपालक विराट् पुरुष परमात्मा जब इस ब्रज-वृन्दावनमें नन्दगोपतनय बनकर अवतरित होते हैं, इस ब्रजभूमिकी परम अनोखीलोक-वेदमर्यादाओंसे परेकी प्रीति-रीति अपनाते हैं, और बृषभानुगोपदुहितासे प्रेमकी पैंगें बढ़ाने लगते हैं तो उन्हें अपने अनन्त अपरिसीम ऐश्वर्य और भगवत्ताकी सभी मर्यादाएँ रससिन्धुके अतल तलमें डुबानी ही होती हैं। यहाँ तो उन्हें भानुनन्दिनी-नायक होनेके लिये उसका अतिशय प्रेम-दुलार स्वीकार करना ही होता है और अपने प्राणोंके उन्मत्त वेगसे उसे दुलारना ही पड़ता है। रसिक-शेखर रसनागरको तो नागरी राधाके चरण चूमने ही होंगे, उन्हें कभी नयनोंसे और कभी अपने हृदयदेशसे सटाना ही होगा ।

यहाँ इस प्रीति निकुञ्ज-स्थलीमें तो भला उनकी अर्चना'**ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः**' मन्त्रसे होनेसे रही। भले ही कहीं वे अनन्त चरण, अनन्त मस्तक, अनन्त नेत्र हों, परन्तु यहाँ तो इस अनन्तता, ईश्वरत्वका बाना उन्हें उतार फेंकना ही पड़ेगा। इस प्रेमभूमिके जो स्मृति-वेद-विधिसे उलटे-पुलटे रसीले नियम हैं, वे सभी उनपर लागू हो ही जावेंगे। यहाँ उनकी आसन,पाद्य,अर्घ्य, स्नानीय, धूप, दीपसे पूजा कदापि नहीं होगी। यहाँ तो रजनीका विराम होते

ही ललितादि गोपकन्याएँ, अपनी अतिशय प्रेमिल खण्डिता भाव-प्रवण भर्त्सना-स्तुतियोंसे ही उन्हे जगावेंगी, शुक-सारिका पक्षीगण काम-सूत्रा पाठ करके ही उनका प्रथम प्रभात-स्तवन करेंगे। अपनी प्राणवल्लभाकी नील-साड़ीको उत्थान-त्वरामें पहन लेना और उस अनावृत कंचनांगीको अपने पीताम्बरसे आच्छादित कर लेना ही, यहाँ उनको आसन समर्पण होगा। यहाँ तो प्रिया द्वारा उनके कपोलोंपर प्रीतिचिह्न अंकन कर देना ही उनका मुख-प्रक्षालन होगा। यहाँ तो निज प्रियाके द्वारा उन्हें अपने आलिंगनपाशमें ग्रथित कर लेना ही उनका तुलसी-गंगोदक स्नान होगा। **'प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे'** ही यहाँका प्रधान मन्त्र है, अतः यहाँ तो प्रिया भानुतनयाके प्रेमपवित्र उत्तुंग उरोज ही उनके परमाराध्य इष्ट शालिग्राम हैं और उसका संलालन, संग्रहण और निज वक्षस्थलमें संलिप्त केशरसे उसका श्रृंगार करना ही यहाँ उनका पवित्रतम इष्ट-पूजन है। निज प्रियाकी निशापर्यन्त कामकेलिसे बिथुरी, उन्मुक्त-बंधन, अस्त-व्यस्त केशराशिका वेणी-ग्रन्थन ही यहाँका धूपदीप-समर्पण है। प्रियामुखका उच्छिष्ट ग्रहण करना ही यहाँ नैवेद्य है और उसके प्रेम-सुदृढ़ बाहु-पाश आलिंगनमें पूर्णतया निबद्ध होकर आत्मसुधि विस्मृत हो जाना ही यहाँकी ध्यान एवं समाधि-प्रक्रिया है। प्रिया-विरहमें अविरल अश्रुप्रवाह ही यहाँका स्नान है और 'हा प्रिया, हा प्रिया'कहकर हाहाकार भरा विलपन ही यहाँकी स्तुति है, अस्तु कहनेका तात्पर्य यही है कि इस रसीली ब्रजभूमिकी अनोखी प्रीति-प्रक्रियामें सर्वलोकैकपाल प्रिया-प्रियतम राधामाधव (विराट पुरुष)की अर्चना अतिशय निराले ढंगसे ही होती है। यहाँ तो सभी लोक-वेद-मर्यादा प्रेमसिन्धुके अतल तलमें डुबानी ही होती हैं।

आओ, इसी प्रीतिभूमिके सर्वोच्च शिखर मोहन-मादन महाभावमें डूबे पू.श्रीपोद्दार महाराज एवं राधाबाबाके मनश्चित्रकी एक अल्प-सी झाँकी करें !

{पाठक सावधान रहें, इस परम चिन्मय अनाविल अनुपम श्रृंगाररस-साधनामें प्राकृत काम-कालुष्य और मलिन पाशविक स्त्री-पुरुष, रमण-रमणी भाव देखना रौरवादि नरक-पतनका ही हेतु है, अतः सावधानीपूर्वक सदैव संयत रहें, ये सभी परम चिन्मय भगवद्रराज्यकी बातें हैं। }

"श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके हृदयदेश परम रसमय वृन्दावनमें प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाकी वेणी गूँथ रहे हैं–

"असीम माधुर्यरसपूरित करोंसे प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाकी महामरकत श्यामल केशराशिको पहले अपूर्व सुगन्धयुक्त फुलेलसे सिञ्चन किया है। अहा ! निज प्रियाकी कैसी त्रिभुवनमोहक रूपराशि उनके सम्मुख व्यक्त है। अपनी प्रियाके अंग-प्रत्यंगसे झरती सौन्दर्य-सुधाका वे कैसे तन्मयतापूर्वक पान कर रहे हैं। उनके हृदयदेशमें प्रीतिसागरके असंख्य आवर्त्त एक-से-एक उच्च वेग लिये उत्थित हो रहे हैं। लो, इसी क्षण सौन्दर्यकी अपार उच्च विलक्षण रसमयी लहर आयी, इस लहरने प्रियतमके हृदयको कैसा रस-निमग्न कर दिया, इसका अनुभव तो मात्र वे ही कर सकते हैं। उनके सिवा अन्य कोई उसे जान भी कैसे पावेगा ? परन्तु अपने हृदयके इस रस-स्पन्दनसे वे उबरें-उतरें, इसके तो पहले ही प्रियाके असीम लावण्यसागरमें इतना अत्युच्च ज्वार आ जाता है कि प्रियतम अपने अस्तित्वकी रक्षा ही नहीं कर पाते और धराशायी होकर आपाततः उसमें पूरे डूब जाते हैं।

ब्रजवासी रासधारी समाजी राग कल्याणमें स्वामी हरिदासजी महाराजका परम अनुभूत पद गा रहे हैं। पदके बोल हैं–

बेनी गूँथ कहा कोउ जानै, मेरी-सी तेरी सौं प्यारी ।
बिच-बिच फूल पीत-सितराते, को करि सकै ऐरी सौं प्यारी ।।
बैठे रसिक सँवारत बारन, कोमल कर ककही सौं प्यारी।
हरिदासके स्वामी स्यामा नख-सिखलौं , बनाइ दै काजर नखहीसौं प्यारी।।

महारसिकशेखर पूज्यपाद श्रीस्वामीजीके इस पद गायनमें तो अवश्य ही वेणी गूँथी जा रही है, परन्तु पू. पोद्दार महाराज एवं पू. राधाबाबाके मानस भाव-वृन्दावनमें तो प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्रियाके केशोंको मात्र स्पर्श भर ही कर पाते हैं कि उनकी ऐसी प्रेम-विचित्र दशा हो जाती है कि जिसका वर्णन ही कोई कवि नहीं कर सकता। यदि स्वयं सरस्वती भी कुछ कहना चाहे तो इतना ही कह सकती हैं कि जब नन्दनन्दन प्राणपति अपनी प्रियाकी वेणीकी एक लट मात्रका संस्पर्श करते हैं, इतना करते ही उनके नेत्र-मन-प्राण और उनकी समग्र अस्मितामें मात्र प्रिया-ही-प्रिया भर जाती है, और कुछ रह ही नहीं पाता। एक परम रसमयी तड़िल्लहरी उनके अंगोंमें व्याप्त हो जाती है और प्रियतमके समस्त अंग-अवयव पूर्ण निस्पन्द ही हो जाते हैं, उनकी वाणी रुद्ध हो उठती है,केवल निर्निमेष नयनोंके पथसे वे उस अप्रतिम रसमयी केशराशिको

निरखते रह जाते हैं। उनके नयनोंसे परम शीतल भाव वारिविन्दु प्रवहमान हो उठते हैं।

हाँ ! यह अवश्य है कि प्रियाकी समग्र वेणीरचना सांगोपांग उनके ही करकमल करते हैं, परन्तु करते हैं यंत्रवत् ही ।

पू.गुरुदेव एक दिवस मुझ परम अनधिकारीके सम्मुख जब महाभावगत मोहनभावकी व्याख्या कर रहे थे तो उनके कथनका सार यही था कि जब प्रियतम श्यामसुन्दर निज प्रियाके किसी भी अंगके दर्शनपर स्नेहके अतिशय अतिरेकमें सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य हो जाते हैं, और फिर सर्वथा मोहित अवस्थामें रहते हुए भी उनके द्वारा यथायोग्य निज प्रियाकी सेवा सम्पादित होती रहती है, तो समझना चाहिये कि वे मोहन-महाभाव-भावित हैं। पू.गुरुदेव श्रीराधा बाबाका इस पदके सम्बन्धमें यही कथन था कि प्रियाकी बेनी गूँथते समय प्रियतम श्यामसुन्दरकी इसी महाभावगत दशाका परम पवित्र दर्शन स्वामी हरिदासजी महाराजको इस पदकी रचना करते समय हो रहा था। इसीलिये इस पदमें वे प्रियतम श्यामसुन्दर द्वारा सम्यक् प्रकारसे वेणी गूँथनेकी समग्र क्रियाका वर्णन होशपूर्वक कर गये हैं। पू. गुरुदेव एवं पू. श्रीपोद्दार महाराज इसी भावका प्रत्यक्ष दर्शन अपने अन्तर्नेत्रोंसे रासलीलाके मध्य कर रहे थे।

प्रियतम श्यामसुन्दरने कलाकी इति करदी है। ये वेणी-रचना करना कब सीखे ? इन्हें इस कलाकी शिक्षा किसने दी ? इन सभी प्रश्नोंका उत्तर तो अचिन्त्य महिमामयी योगमाया ही जानती है। वस्तुतः तो प्रिया राधा-रानीकी धम्मिल्ल तो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधारानीके मस्तकपर भला उनके सिवा और कौन है, जो नित्य विराजित रहे। यह तो सच्चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी सदंशमें रहनेवाली संधिनी शक्तिका ही विलास है कि उन्होंने प्रियतम श्यामसुन्दरको धम्मिल्ल बनाकर अपनी प्रियाके शिरोभागमें प्रतिष्ठित कर दिया है। प्रियतम श्रीकृष्णके समान ही तो यह भी विभु है, नित्य चिन्मय है। इसकी सज्जा तो नित्य नव-नूतन हुई ही हती है। यह धम्मिल्ल तो अनादिकालसे है, अनन्त काल तक रहेगी।

प्रपञ्चमें जिस समय श्रीकृष्णचन्द्रकी चिदानंदमयी लीलाका प्रकाश होता है तथा क्रमशः लीलाविस्तारके क्रममें उनकी नित्यप्रिया श्रीमती राधा बृषभानुपुरमें बृषभानुगोपके घर जन्म लेती हैं, उसी समयसे तो वे अपनी

प्रियाके मस्तकपर विलक्षण शोभा धारणकर चूड़ा बन जाते हैं। तबसे कभी तो वे माता कीर्त्तिदा द्वारा वेणीरूपमें बाँधे जाते हैं, और कभी सखियों किंवा दासियों द्वारा। आज इसी लीला-सिन्धुके आवर्त्तोंने ऐसा सुअवसर उपस्थित कर दिया है कि वे अपने ही हाथोंसे अपनी ही श्रृंगार-संरचना कर रहे हैं। यह विलक्षण संरचना तो उनके नेत्रोंमें अनादिकालसे पूर्वतः ही भरी है। बस, वे तो मात्र इस चिन्मय अतिशय विलक्षण केशराशिका स्पर्शभर करते हैं और प्रेम समाधिमें डूब जाते हैं। धम्मिल्लका श्रृंगार तो अपने आप आविर्भूत होता है। यह वेणीगूँथनलीला तो मात्र उनके लिये है, जिनके नेत्रोंमें त्रिगुणका तेज भरा है। उन्हें तो यही दिखता है, मानो स्वयं श्रीकृष्ण अपने हाथोंसे एक-एक विकसित पुष्प, एक-एक रत्नमणिमालाको पिरो-पिरोकर अतिशय कौशलसे वेणीरचना कर रहे हैं। परन्तु पू.पोद्दार महाराज एवं श्रीराधाबाबा-जैसे सिद्ध संत दर्शक जिनकी आँखोंमें श्रीकृष्ण नखचन्द्रकी चन्द्रिका भरी है, उन्हें तो स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है कि प्रियाकी नित्य चिन्मय केशराशिमें वेणीका समग्र कलात्मक श्रृंगार तो भगवती योगमाया द्वारा पूर्वतः ही किया जा चुका है। बस, प्रियतम तो अपने प्रेमभरे नेत्रोंसे उस भगवती योगमाया द्वारा पूर्व रचित श्रृंगारका दर्शन भर पाते हैं, वह श्रृंगार उनके प्रेमभरे नेत्रों एवं मनके सम्मुख संकल्प , कल्पना अथवा कुछ भी कहो, मनोरथके रूपमें सामने भर आता है। और बस तत्क्षण ही वह वेणीपर समलंकृत हो जाता है।

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज दोनों युगल संत इस सत्यको खूब अच्छी तरह अवगत कर रहे हैं, और अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी इस चिन्मय विचित्र कलात्मकताको निरखकर मुग्ध ही नहीं, समाधिस्थ हो रहे हैं। उनके सामने विलक्षण सुन्दर दृश्य है और वे सर्व बाह्यजगत्से आत्मविस्मृत निस्पन्द, निश्चेष्ट उसे अपने अन्तःकरणपटल पर देख रहे हैं—"प्रियतम श्यामसुन्दरने प्रियाकी अत्यन्त मनोहर वेणी गूँथी है। उसमें श्वेत, लाल, पीले, पुष्पोंसे अनोखी रसमयी संरचनाएँ की हैं। और वे तत्पश्चात् अतिशय प्रेमभरी गर्वोक्ति भी कर रहे हैं कि मेरी-सी वेणीरचना अन्य कोई भी सखी नहीं कर सकती। उन्होंने आरसीकी सहायतासे निज प्रियाको उस अपनी रचनाके सौन्दर्यका दर्शन भी कराया है ।

सचमुच ही स्वय उनकी प्रिया राधारानी भी उनकी उस चिदानन्द-मयी शोभाको देख मुग्ध हो उठी हैं। और अपने प्यारे प्रियतमसे अपने समग्र

अंगोंका श्रृंगार करनेका आग्रह कर बैठती हैं। यह सत्य, परम सत्य है कि प्राकृत जगत्के किसी भी मनकी सामर्थ्य ही नहीं कि वास्तवमें उस विचित्र श्रृंगार-वैभवके किसी एक अंशको तो –उस सर्वथा अतुलनीय नित्य चिदानन्दमय श्रीसौन्दर्यकी कणिकामात्रको तो छू पावे। हाँ ! उस विचित्र शोभाका अनुभव होता है, किसे होता है, कैसे होता है, यह बताना भी असंभव है। परन्तु पू. राधाबाबा एवं श्रीपोद्दारं महाराज-जैसे सन्तोंको होता है, प्रचुर होता है और उन्हें अपनेमें डुबाकर अपनेसे एकमेक कर लेता है । उसकी छायाके किसी क्षुद्र अंशको वाणी ग्रहण करती है और शाखाचन्द्र-न्यायसे ही सही , उस अनुभूत सत्यको कवि आनन्द कम्पित कण्ठसे पुकार उठता है–

बेनी सुन्दर श्याम गुही, री।
राजति रुचिर सीस प्यारी कैं चम्पक और जुही, री।।
नख-सिख लौं पहरावत भूषण, दै बीरी मुख ही, री।
चतुर्भुज प्रभु गिरिधरन लालके, सुखकी रासि तुही, री।।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा प्रत्यक्ष देख रहे थे –" प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाकी फूलनसौं बेणी गूँथी, काजर लगायौ, ललाटपर कुंकुमकी बैंदी लगायी, कपोलनपर केसर तथा चंदनके पुष्प और चित्र रचना की , उन्हें कण्ठश्री, पदिक हार, पुष्पहार पहनाये, चरणोंमें नूपुर पहनाये, महावरकी विचित्र रचना की, नख-सिख पर्यन्त सम्पूर्ण सिंगार करकें तब अधरनकौं बीरीसे रंजित कियौ।

समाजी गारहे हैं

सारी सँभारी है सोनजुहीकी, जुहीकी ही तापै लगायी किनारी।
पंकजके दलकौ लहँगा, अँगिया गुलबाँसकी सोभित न्यारी ।।
चमेलीके हार हमेल गुलाबकी, मोरकी बैंदी दै भाल सँवारी।
आज विचित्र सँवारि कै देखिये, कैसी सिंगारी है प्यारे ने प्यारी।।

(अर्थ)

यह वृन्दावन भी विलक्षण है। यहाँकी मरकत मणिमय अप्राकृत भूमि है। इस भूमिपर स्वर्णमय गुल्मलतायें और द्रुमसमूह परिशोभित हैं। जब भूमि में ही मृत्तिक़ाका लेश नहीं तब मणिमय वल्लरियाँ और गुल्म-तरुपंक्तियाँ हों, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अतः आज प्रियतम श्यामसुन्दरने अपनी प्रियाका जो श्रृंगार किया है उसमें उन्हें स्वर्णमय जुहीकी सारी पहनायी है। कुन्दनांगी

प्रियाकी सोनजुहीकी साड़ीकी किनारी भी जुहीके तारोंसे निर्मित है । अब लहँगेकी शोभा निरखें, वह कमलदलोंसे विनिर्मित है। और सुनो,देखो, कैसा आश्चर्य है। प्रिया गुलबाँसकी चोली पहने हैं, चमेलीके हार हैं और गुलाबकी हमेल धारण किये हैं। उनके मस्तकपर मौलसिरीके पुष्पकी बिंदी शोभा पा रही है।

भाई ! क्या आश्चर्य कर रहे हो ? क्या इसे असंभव मान रहे हो ? अभी तुमने अपने नेत्रोंमें किसी महासिद्ध सन्तकी चरणोंकी रेणु अंजनकी तरह आँजी नहीं है। अभी तुम भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी स्वरूपशक्तिसे परिचित नहीं हो। अरे भाई ! तुमने तो प्राकृत जड़ पुष्प ही देखे हैं, अतः तुम बृन्दावनके अप्राकृत पुष्पोंके रूप,रंग, आकार-प्रकारको जड़ जगत्के इदमित्थं प्राकृत पदार्थोंके समान ही समझ रहे हो। तुम्हारी यह समझमें ही नहीं आ रहा कि प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रकी अचिन्त्य लीलामहाशक्ति कर्त्तुम्-अकर्त्तुम्-समर्थ है। श्रीकृष्णकी जब जैसी लीलाका प्रकाश करना हो, वह वैसा ही करनेमें समर्थ है। वह कमलदलोंको लहँगेके रूपमें परिणत कर सकती है। जुहीकी कलिकाओंको साड़ीकी किनारीके समान निर्माण कर देना उसके वाम हस्तका कार्य है। अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी लीलाको मधुरातिमधुर बनाकर स्वयं उसका रसपान कर क्षण-क्षणमें आनन्दसिन्धुमें निमग्न होनेके लिये न जाने कितनी ही बार ये इस बृन्दावनके कमल, जुही, गुलनार, चमेली, गुलाब, मौलश्री अपना संकोच , विस्तार एवं रूप-परिवर्त्तन यथानुरूप कर लेते हैं, अन्यथा तो ब्रजेन्द्रनन्दनकी अनाविल मधुरिमामय लीलारसपान और रसदानका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जाय। अस्तु,

देखो ! देखो !! पू.पोद्दार महाराज एवं पू. गुरुदेवके भावराज्यमें कैसे विलक्षण लीला-दृश्य उभर रहे हैं। पहले तो प्रियतम श्रीकृष्णने अपनी प्रियाकी अभूतपूर्व सज्जा की थी, अब प्रिया श्रीराधारानी अपने प्रियतमका श्रृंगार कर रही हैं।

समाजी केदारा राग एवं तीन तालमें गा रहे हैं-

सोनजुहीकी बनी पगिया रु चमेलीको गुच्छ रह्यौ झुकि न्यारौ।
द्वै दल फूल कदम्बके कुण्डल, सेवतीको जामा हू घूम घुमारौ।।
नव तुलसी पटुका घनश्याम, गुलाब इजार नवेलीको न्यारौ।

फूलन आज विचित्र बन्यौ देखौ, कैसो सिंगार्यौ है प्यारीने प्यारौ।।

(भावार्थ)

सचमुच ही जगत्के प्राणियों ! श्रीकृष्णचन्द्रसे, उनकी लीलासे सम्बद्ध किसी भी तत्वरहस्यको एकमात्र उनकी कृपावारिकी कणिका मात्रको ही सम्बल बनाकर ही जाना जा सकता है। अचिन्त्य भावोंमें तर्कोंके लिये सचमुच सर्वथा ही स्थान नहीं है। श्रद्धाभूत चित्तसे अनुशीलन करनेपर उनकी कृपाशक्ति सत्यको अपने आप ही व्यक्त कर देती है। यही वहाँतक पहुँचनेका एक मात्र पथ है।

पू. पोद्दार महाराज एवं पू. गुरुदेव राधाबाबाके मानसिक नेत्र कहीं हमें उनकी कृपासे एक क्षणके लिये भी मिल जाते तो हम इस प्रिया-प्रियतमकी परस्पर श्रृंगाररचना और उसकी शोभाकी एक झाँकी कर पाते। प्राकृत शब्दों, भावों एवं द्रव्योंके सहारे तो इसकी वास्तविक अद्भुत श्रीको, इसके असमोर्द्ध वैभवको, इसकी रूपरेखाकी एक अल्प-सी छटाको भी देखा नहीं जा सकता। लो ! प्रिया एक अभूतपूर्व प्रेमजन्य परमानन्दमें निमग्न हुईं अपने प्रियतमको अपने अंकमें धारण किये विराजित हैं । प्रियतमकी उन्मुक्त केशराशिको वे बन्धन दें, यह उन्हें सर्वथा स्वीकार जो नहीं। परन्तु उन्हें अपने प्रियतमका श्रृंगार भी करना ही है। क्योंकि निकुंजलीलाकी एक चिन्मय झाँकी प्रपञ्चमें प्रकाशित हो , इसकी सूत्रधार उन्हें जो बनना है। देखते-ही-देखते प्रिया स्वयं ही सोनजुहीकी पाग बनकर अपने प्रियतमके केश-कलापोंमें बँध जाती हैं। प्रियतमके केश सबसे उन्मुक्त रहें यह तो उन्हें स्वीकार है, किन्तु स्वयं प्रियाके प्रेमबन्धनको, उनके प्रेमालिंगनके प्रगाढ़ बंधनसे वे कैसे उन्मुक्त रहेंगे ? प्रिया तो उनमें समायी है, उनसे पृथक् प्रियतमकी सत्ता ही कहाँ है ? अतः प्रिया स्वयं ही सोनजुहीकी पाग बनी उनके केशकलापको अपने आलिंगनमें बाँध लेती हैं। लो, देखो न ! इस पागके अन्तरालसे महारसकी कैसी विलक्षण स्रोतस्विनी प्रकट हो उठी । जगत्के आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी उस विलक्षण श्रृंगार-सौन्दर्यके एक कणसे सिक्त होनेके लिये लालायित हो उठे। प्रियाने अपनेको तो अपने प्रियतमकी केशराशिसे संलग्न कर लिया, किन्तु सहसा उनके भक्तवत्सल हृदयमें अपनी सखियोंका स्मरण हो आया। इन सखियोंसे विरहिता एकाकिनी वे अपने प्रियतमसे संयोग भी कैसे करें ? बस,

उन्होंने अपनी सभी सखियोंको सर्वलीलामुकुटमणि चमेलीके गुच्छके रूपमें अपनी कलंगी बना लिया।

पू.राधाबाबा एवं पू. पोद्दार महाराज अपने रस-विजड़ित अन्तःकरणमें इस लीला-माधुरीकी बहती धाराको प्रत्यक्ष देख रहे हैं और इसके महारसमें आकण्ठ डूबते जा रहे हैं। जिनका श्रृंगार-कौशल कभी कुण्ठित हो नहीं सकता, वे चौसठ-कला-चतुर प्रिया अति मुग्ध हुई ठहर-ठहरकर सोचने लगती हैं कि आगेकी रचना क्या हो ? इतनेमें उन्हें पुनः एक आवेश-सा आता है। अरे ! वह कदम्ब जिसकी छायाके नीचे खड़े होकर उनके प्राणसुन्दर वंशीनिनाद द्वारा उनको आवाहन करते हैं, जिसकी अतिशय निराली हरीतिमा उनके प्राणपति प्रियतमके नयन-सरोजोंमें सदैव समायी रहती है, ओह ! जिसकी शत-शत सुन्दर शाखायें कभी एक क्षणके लिये भी प्राणधनको विस्मृत नहीं कर पातीं, उसका एक-एक पल्लव सदैव उनका अखण्ड मानस-दर्शन करता, आनन्दमें नृत्य करता,, थिरकता रहता है, वह कदम्ब तो उन्हें विस्मृत ही हो गया ! अरे ! उनसे यह कैसी प्रमाद-क्रिया घटित हो गयी ? इस तरुराजको तो उन्होंने बिसार ही दिया, जो निरन्तर प्रेम-सौरभ संचार करता सभी प्रेमीजनोंको प्रियतमकी जीवन्त स्मृति कराता रहता है, जो कालके नियमोंका सर्वथा अतिक्रमण कर पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म – सदैव एकरस मनोज्ञ एवं सुख-शीतल बना रहता है, जिसके अंग बारहों मास पुष्पभारसे नमित रहते हैं, सदा ही जो कुसुमित रहता है और जिसकी शोभासे दसों दिशायें सदैव उद्भासित रहती हैं, उसे वे सर्वथा ही विस्मृत कर गयीं ? ऐसा असम्भावित प्रमादाचरण उनसे कैसे घटित होगया ? इस प्रकार विचार करते-करते तत्क्षण ही उन्होंने इस परम पुनीत कदम्बके दो फूल उठाये और प्रियतमके कानोंमें कुण्डलके रूपमें संलग्न कर दिये। प्रियाने देखा जिन कुसुमरूप नयनोंसे कदम्ब अपने प्रियतमके मुखचन्द्रको निहारता कैसा कृतकृत्य हो उठा है। वह अत्यन्त कृतज्ञ हुआ प्रियासे अति विनीत निवेदन कर रहा है– "मेरी प्राणाराध्या ! मेरे चिर जीवनकी अभिलाषा पूर्ण कर तुमने मुझे कृतकृत्य कर दिया ! "

सचमुच ऐसी है श्रीकृष्ण-मुखारविन्द-दर्शनकी महिमा ! यह दर्शन प्राप्त हो, फिर तो कहना ही क्या है; किसीके लिये केवल मात्र यह सौभाग्य निर्धारित

ही हो जाय, प्रिया-प्रियतमकी कृपाशक्ति भविष्यमें, सहस्र-सहस्र युगसमूह व्यतीत होनेके अनन्तर भी यदि किसीके लिये ऐसे परम सुदुर्लभ संयोगका विधान मात्र करदे तो इससे अधिक जीवनकी कृतार्थता और है ही क्या ?

देखो ! देखो !! प्राणप्रिया श्रीराधारानीके कटाक्षकोरमें जो अद्भुत अनादि अनन्त लीलोपकरण-तालिका सुरक्षित रहती है, उसमें सेवती कुसुमकी यह वल्लरी जो आ गयी। इस सेवती लताका स्थान इस कदम्बतरुके ठीक पश्चात् ही तो था। प्रियाने अपनी श्रृंगारक्रियाकी मौजमें इस वल्लरीपर भी अपनी नेहदृष्टि डाल दी और उसके पुष्पोंका घूमघुमारो जामा अपने प्रियतमको धारण करवा दिया। लो, जब प्रियतम श्रीकृष्ण अपने अनन्त ऐश्वर्यको सर्वथा किनारे कर, एक अभिनव मुग्धताके साजसे सज्जित हुए निराविल लीलारस सिन्धुमें अवगाहन करते हुए जब इन सेवती पुष्पोंका घेरदार जामा पहन अपनी प्रिया एवं उसकी सखियोंको अपने स्वरूपभूत परमानन्दका दान कर रहे थे तो नव तुलसी मानवती होकर रूठ गयी। उसके नयनोंसे झर-झर अश्रुपात होने लगा। प्रियतमने तो उसके रूठनेकी कुछ भी परवाह नहीं की, किन्तु प्रिया यदि अपने सर्वश्रेष्ठ शालीनतागुणका निदर्शन उसके सम्मुख नहीं करें, यह कैसे संभव है ? बस, तत्क्षण ही प्रिया राधारानीने उसके अश्रु पौंछे एवं श्यामा एवं हरीतिका दोनों तुलसियोंके साथ-साथ गुलाब, इजार एवं नवेली इन पाँचों लताओं और पुष्पोंकी पंखुड़ियोंसे विशेष प्रकारका घनश्याम वर्णका पटुका विरचित किया और वह पटुका अपने प्रियतमको उपरैना (पिछौरा)के रूपमें धारण करवा दिया। लो, इन विलक्षण आवरण-पटोंमें श्रृंगारित प्राणवल्लभ प्रियतम अपनी प्रियाके कण्ठसे जा लगे और उन्हें गलबाँही दिये अपने किशोरावेशमें अपनी एवं अपनी प्रियाकी श्रृंगार-शोभा आरसीमें निहारने लगते हैं।

"अहा ! आरसीमें उन्हें अपना सौन्दर्य अपनी प्रियाके सौन्दर्यसे किंचित् हीन दिखता है। एक अप्रतिम सुमधुर हीनताजन्य संकोचकी छाया प्रियतमके मुखचन्द्रको आवृत कर लेती है। इस हीनताको निकुञ्जमें चतुर्दिक् प्रिया-प्रियतमको घेरकर विराजित ललितादि सखियाँ निरख लेती हैं। सखियोंके हृदयमें प्रेम-समुद्र लहराने लगता है। रसतरंगोंके आवेगसे उनके धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित मुक्त मुसकानके रूपमें प्रेमतरंगें मुखसे बाहर

आ जाती हैं। सभी सखियाँ उन्मुक्त हास करने लगती हैं।.रासधारी समाजी अतिशय मधुर स्वरोंमें तान भर रहे हैं–

मुखसौं मुख मिलाय निरखत आरसी।
विकसित नील कमल ढिंग उदित भयौ किधौं पूरण ससी ।।
निरखि वदन मुसकाइ परस्पर करत हास गिर जात अंक खसी।
गोविन्द' प्रभु-प्यारीजु परस्पर दम्पति परे प्रेम फँसी।।

भावार्थ

अहा ! इन युगल दम्पती राधाकृष्णकी परस्पर मुखसे मुख मिलाकर आरसी देखती छबि कितनी मोहक है। दोनोंकी ही वेणी-बद्ध सघन कुन्तलराशि, विशाल कज्जलभरे नेत्र, वह मंद-मंद मृदु मुसकानयुक्त बोलन, मधुस्रावी अधर-युग्मोंपर नाचती प्रेम सरसता, परस्पर प्रेमभरी चंचल भ्रुकुटि-नर्तनयुक्त चेष्टाएँ , इन्हें जो निहार रही हैं, वे परम सौभाग्यवती प्रत्यक्षदर्शी सखियाँ ही जानती हैं कि इस सौन्दर्यमें कैसी विलक्षण मादकता भरी है। अमर्यादित, संभ्रमरहित स्वरूपभूत विभुरससे छलकता इनका जो हृदय है, वही ऐसा सरोवर है जहाँ यह कृष्ण-नीलनलिन भी विकसित होता है और साथ ही पूर्ण राधा-राकाचन्द्र भी उदित होता है। आश्चर्य है नलिन एवं चन्द्रका तो अनादिकालीन वैर है, परन्तु धन्य है यह गोपीमानस जहाँ ऐसी प्रेम-मादकता भरी है कि यह वैर सर्वथा एवं सदाके लिये समाप्त तो हो ही जाता है अपितु ये दोनों ही परस्पर प्रेमबन्धनमें बँध जाते हैं। ये एक दूसरेका सौन्दर्य निहार-निहारकर परस्पर रीझते हैं और फिर विहँसते-मुसकाते एक दूसरेके अंकमें गिर जाते हैं। श्रीगोविन्दस्वामी कहते हैं कि परस्पर प्रेममें फँसे ये युगलदम्पती प्रभु एवं प्यारी विलक्षण स्वभावके हैं ।

लो, अब तो ये दोनों अतिशय मुग्धभावसे अपनी श्रृंगार-माधुरीका रस लेने लगे। दोनों दम्पती आरसी में अपनी छवि देखते अपने-अपने मुख-सौन्दर्यकी तुलना करने लगते हैं कि दोनोंमें से किसका मुख अधिक सुन्दर है।

समाजी अपने-अपने वाद्योंमें सुर देने लगते हैं और ठाकुर वेषधारी बालक अतिशय मधुर ध्वनिमें राग कोशिया ताल दादरामें गाता है–

मेरो मुख नीकौ कै तेरौ री प्यारी।
दर्पण हाथ लिये नँदनन्दन , साँची कहौ बृषभानुदुलारी।।

ठाकुरके प्रश्नका उत्तर देती किशोरी बना ब्रजवासी बालक गाता है–

हम कहा कहैं तुमहिं किन देखौ, हम गोरी तुम श्याम बिहारी।
कृष्णदास प्रभु गिरिधर नागर, चरनकमलपर राधिका वारी।।

अहा ! प्राणवल्लभ नीलसुन्दरका अपनी प्रिया राधारानीके संग मुखसे मुख मिलाकर आरसी देखना अपने मुखसरोजके सौन्दर्यसे उनके मुखचन्द्रके रूपकी तुलना करना कितना सरस है, इसका आकलन हम लोगों-जैसे विषय-कीचमें सने जीव भला कैसे कर सकते हैं। उनकी इस प्रेममुग्ध लीलाके द्वारा कैसी विलक्षण रसतरंगें सृष्ट हो रही थीं, इसके तो पू. गुरुदेव अथवा श्रीपोद्दार महाराज ही अनुभवकर्त्ता थे और हम सभीने इस प्रवाहका आकलन यही देखकर जाना कि इस लीलाका दर्शन करनेके पश्चात् पू.गुरुदेव निरन्तर आठ प्रहर प्रस्तर प्रतिमाकी तरह निस्पन्द रहे। उन्होंने न तो जल पिया एवं न ही भिक्षा की। वे कृष्णनिकेतनसे अपने आवास गीतावाटिकातक भी कैसे आ पाये, यह उन्हींका स्वसंवेद्य अनुभव था। अवश्यमेव उनका चित्त तो किसी दूसरे ही लोकमें इस परम चिन्मय रसमयी लीलाके आस्वादनमें निरत था, हाँ, पैर किसी तरह उन्हें यंत्रवत् मोटरगाड़ीतक ले गये थे, जिसमें आरूढ़ वे चिर अभ्यासवश अपने निवासतक पहुँच पाये थे। लेखक तो उनकी विलक्षण भावदशाका प्रत्यक्षदर्शी था। तीसरे दिवस जब लेखकने उनसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया तो उन्होंने मात्र इतना ही उत्तर दिया कि"भगवान् श्रीकृष्ण जब कृपाकर तुम्हें स्वयं अनुभव करावेंगे तभी गुड़ कैसा होता है, समझ पाओगे। वाणी द्वारा बतलाने एवं कहनेका यह विषय ही नहीं है। हाँ, इतना ही समझ लो कि यद्यपि आज मैं बाह्यावेशमें हूँ, परन्तु अभी भी वह परम रसमयी झाँकी मेरे मानस नेत्रोंमें ज्यों-की-त्यों विजड़ित है ।"

अनेक दिवसोंतक पू. गुरुदेवके मुखमें रासधारी बने प्रिया-प्रियतमके परस्पर वार्त्तालापकी निम्नलिखित रसभरी उक्तियाँ नाचती रहीं –

ललिता–"प्यारे ! हमारी प्यारीकौ मुख तौ चन्द्रमाके समान उज्ज्वल है और आपको मुख अँधेरी रातके समान कारौ-कलूटौ है।"

श्रीकृष्ण–"अजी ! तौ चन्द्रमा हू तब ही सोभा देय है, जब कारी-कलूटी अँधेरी रात होय।" पू.गुरुदेव अनेक दिनोंतक ये निम्न पद जो रास-धारियोंने इस वेणीगूँथनलीलामें गाये थे, मुझसे एकान्तमें सुना करते थे ।

बात कहत रस रंग उच्छलिता ।
फूलन महल विराजित दोऊ मंद सुगन्ध निकट बहै सलिता।।
मुख मिलाइ हँसि देखत दरपन, सुरति-स्रमित उर माल विगलिता।
परमानँद प्रभु प्रेम बिबस कहैं, हममें सुन्दर को है ललिता।।

बेसर कौनकी अति नीकी।
होड़ परी लालन अरु ललना, बढ़ी चौंप अति जी की।।
न्याय पस्यौ ललिताके आगैं, कौन सरस कौन फीकी ।
नंददास प्रभु विलग जिन मानौ, कछु एक सरस ललीकी।।–
–

बनी तेरे चारि-चारि चूरी करन।
कण्ठसरी दुलरी हीरनकी नासा मुक्ता ढरन।।
तैसोइ नैंननि कजरा फबि रह्यौ , निरखि काम जिय डरन।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी रीझि -रीझि पाइन परन।।
–

इस बेणीगूँथनलीलाका प्रभाव पू. गुरुदेव और पू. पोद्दार महाराजपर पड़ना स्वाभाविक ही था, जो इक्कीस लोग उस सुभग निशामें इसके दर्शक थे, वे भी अनेक दिनों तक लीलाके निम्न पद गुनगुनाया करते थे–

कुंज पधारौ स्यामा ! रंगभरी रैन ।
रँगभरी दुलहिन, रँगभरे पिया, श्यामसुन्दर सुखदैन।।
रँगभरी सयनी बिछी सेजपर, रँग भर्यौ उलहत मैन।
रही रैन थोरी नागरिया, करौ सेज सुख सैन।।

लड़ैतीजीके नयनन नींद घुरी।
आलस बस, जोबन घन, मद बस, पियके अंक दुरी ।।
पिय कर चिबुक परसिबौ चाह्यौ बाँकी भौंह मुरी ।
बावरि सखी हित व्यास सुवन सुख देखत लतन दुरी ।।

इस बार रासमण्डलीने कृष्णनिकेतन एवं गीतावाटिकामें सोलह लीलाएँ की थीं। इनको संक्षेपमें श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियासे लिखाकर पू. गुरुदेवने श्रीराधामाधव-सेवा-संस्थान,गीतावाटिका,गोरखपुरसे प्रकाशित भी कराईं थीं। पाठकोंकी जिज्ञासा होनेपर वहाँसे प्राप्त की जा सकती हैं।

देवाराधना द्वारा पू.पोद्दार महाराजकी बीस वर्षकी आयुवृद्धि

(छठा अध्याय)

पू.पोद्दार महाराजकी जन्मकुण्डलीके अनुसार उनकी आयु सन् १९५२ ई. में समाप्तप्रायः थी। उनके नक्षत्र इस वर्ष उग्र मारकेशकी दशाका प्रकाश कर रहे थे। पू.गुरुदेव इन दिनों अनेकों प्रकाण्ड ज्योतिषियोंसे विचार करते रहते थे और ज्योतिष-फलितार्थ देखते हुए उन सभीको पूरी संभावना थी कि पू.पोद्दार महाराज इस वर्ष देह-संवरण कर लेंगे। यदि भगवत्कृपावश वैसा न भी हो तो अतिशय कष्टदायी रोगोंसे आक्रान्त तो वे हो ही जावेंगे, ऐसा उन सबका एकमतसे निश्चय था।

पू.गुरुदेवने इस परिस्थितिको अपने देवाराधनाके बलसे टालनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। क्योंकि वे सर्व-कर्म-न्यस्त, विरक्त, चतुर्थाश्रमी संन्यासी थे, अतः उनका स्वयंका कर्म फलदायी हो, इसकी संभावना तो थी नहीं; उन्होंने पाँच ब्राह्मणोंको लेकर देवाराधन-अनुष्ठान करवानेका निश्चय कर लिया। पाँच ब्राह्मणोंमें रतनगढ़के श्रीमोतीजी पारीक, श्रीइन्द्रजी महर्षि, श्रीसाँवरमलजी जोशी, श्रीसूरजमलजी शर्मा एवं गोरखपुरके श्रीशिवनाथजी दुबे थे। पू.गुरुदेवने मुझे भी इस अनुष्ठानमें सम्मिलित किया था। मैं यथासमय बीकानेरसे गोरखपुर आ भी गया था, किन्तु किसी दुर्दैववश ठीक समय मेरा चयन स्थगित हो गया।

बीकानेरसे गोरखपुर पहुँचनेके उपरान्त मैं कुछ दिवस गोरखपुर ही रहा और उस अवधिमें मैंने पू. गुरुदेवसे अपनी अनेक शंकाओंका समाधान किया। पाठकोंके लिये अतिशय उपयोगी जानकर इस समाधानको यहाँ संक्षेपमें उल्लिखित कर दे रहा हूँ।

मेरा प्रथम प्रश्न था – "पू.गुरुदेव ! आप हम सभीसे अनेकों बार यह कह चुके हैं कि हम सभीकी कर्मराशिका लेखा-रखनेवाली फाइलें अब कारण-जगत्के नियामक देवता – यमराजके पास नहीं हैं, वरं वे सभी फाइलें साक्षात् श्रीकृष्ण – लीलापुरुषोत्तमके पास हैं, अतः स्वयं श्रीकृष्ण ही अपने हाथों

सभीको दण्डित अथवा पुरस्कृत कर रहे हैं। जब हम सभी विषयी-पामरोंकी यह स्थिति है, फिर आपका अतीव भगवच्छरणागत पाञ्चभौतिक शरीर, अथवा पू. पोद्दार महाराजका चिन्मय-भगवत्संस्पर्शप्राप्त शरीर, क्या इन मायिक, अविद्यामूलक, जड़ नक्षत्रोंकी गति द्वारा नियन्त्रित है ? मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि व्यर्थ ही आप प्रेमजन्य अनिष्टाशंका कर रहे हैं। पू.पोद्दार महाराजके तो रोम-रोममें सर्वस्रष्टा, सर्वनियन्ता, सर्वावतारावतारी, स्वयं भगवान् भरे हैं। नित्यसिद्ध, परमानन्दविग्रह, ब्रजेन्द्रनन्दन, स्वरूपानन्दास्वादनपरायण, मायातीत श्रीहरि ही जब स्वयं जिसके अन्तःकरण और बहिःकरण-विवरोंमें प्रविष्ट होगये हों तो फिर उनमें अनिष्टके प्रवेशकी गुंजाइश ही कहाँ है ? श्रीपोद्दार महाराजका यह शरीर तो ब्रजराजनन्दनकी लीलास्थली है। बाबा ! जब यह आपकी ही निष्ठा है, तो फिर आप इस प्रकार व्यग्र एवं उद्विग्न क्यों हैं ?"

अत्यन्त कलुषपूर्ण, माया-पंकमें लिप्त, घृणित-जीवन मेरी बालोचित वाचालता सुनकर पू.गुरुदेव मुसका उठे । वे कहने लगे – "भैया ! तेरी बात पूरी सत्य है। किन्तु जब पोद्दार महाराजको साक्षात् भगवान् नहीं देखकर, पू. अ.सौ.मैया (पोद्दार महाराजकी पत्नी) उनके भोजन-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्नान-संध्या – सबकी यथोचित व्यवस्था करती हैं, वे ऋतु-अनुसार शिशिरमें ऊनी वस्त्र पहनते हैं, रजाई ओढते हैं, अग्नि तापते हैं, तो जहाँ शरीरकी यथायोग्य सभी व्यवस्था होती है, तब ग्रह-नक्षत्रों और उनके अधिदेवोंकी शान्तिकी यथायोग्य व्यवस्था भी तो होनी ही चाहिये।"

"भैया ! यद्यपि मैं इसे स्पष्ट जानता हूँ कि तुझे मलेरिया बुखार नहीं आयेगा; श्रीकृष्ण स्वयं ही तेरा बुखार होंगे; तुझे मच्छर नहीं काटेंगे, स्वयं श्रीकृष्ण ही मच्छर बनकर तुझे काटेंगे; फिर भी मैं तेरे सोनेके समय मछहरी लगवाता हूँ, मलेरियाके आनेपर कुनैनकी दवा दिलाता हूँ, उसी प्रकार मैं श्रीपोद्दार महाराजके ग्रह-नक्षत्रोंकी भी शान्ति-व्यवस्था कर रहा हूँ।"

पू.गुरुदेवका उत्तर पूर्णतया सटीक था। फिर वे मुझे इसी प्रसंगमें अन्य तथ्य भी बताने लगे। वे कह रहे थे – "भैया ! मेरे जीवनमें आठ ऐसे महासिद्ध सन्त आये हैं, जो ज्ञान एवं भक्तिकी परमोच्च भूमिकाओंका निर्वाह कर रहे थे। उनमेंसे कुछ अब भी जीवित हैं। परन्तु अभी तक मेरे संपर्कमें ऐसा एक भी ऋषि-ब्राह्मण नहीं आया जो अधिदैव-जगत्के देवताओंकी मंत्रसिद्धि रखता हो। अधिदैव-जगत्के सभी देवगण निश्चय ही मंत्रस्वरूप होते

हैं। पहले कर्मकाण्ड करनेके पूर्व ब्राह्मणोंको गुरु लोग यह **शिक्षा अनि**वार्यरूपमें देते थे कि वे मंत्रोंके पुरश्चरण करके मंत्र सिद्ध **करें। मंत्रसिद्धि**के द्वारा जिन-जिन देवगणोंका वे प्रत्यक्ष कर लेते थे, **उन्हींका** अनुष्ठान वरण करते थे। आजकल तो तिलक-छापा लगाया, **नाममात्रकी** संध्या-गायत्री की, कुछ संस्कृतके श्लोक उच्चारण करना सीखा और ब्राह्मण कर्मकाण्डी आचार्य हो जाता है। इसी कारण अधिकांश ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित कर्मकाण्ड वाञ्छित फलदायी नहीं होता और सर्वत्र ब्राह्मणोंका तथा उनके कर्मका उपहास हो रहा है। इसीलिये देवजगत्के प्रति भी सर्वत्र अनास्था प्रसरित हो रही है। देवताओंका मंत्र ही कलेवर होता है, मंत्र ही उनके प्राकट्य, उनके तदाधीन आचरण, और उनके वरदानमें हेतु होता है। मुझे अबतक एक भी ऐसा ब्राह्मण-ऋषि नहीं मिला, जिसने किसी एक मंत्रका ही सांगोपांग पुरश्चरणकर उसे सिद्ध कर लिया हो। अतः इस अनुष्ठान-कर्मका मेरा एक प्रयोजन यह भी है कि मैं मेरे प्रति निष्कपट इन सात्विक ब्राह्मणोंसे इस प्रकार विधि-विधानपूर्वक देवाराधना कराऊँ, जिससे मंत्र सिद्ध होकर आवाहन करनेपर उस देवताको साक्षात् प्रकट होना पड़े। वह देवता इनके द्वारा समर्पित अर्घ्य, पाद्य, आचमन, धूप-दीप, नैवेद्य आदिको प्रकट होकर स्वीकार करे, और प्रत्यक्ष होकर अपना कृपा-वरदान इन्हें प्रदान करे। यह सत्य है कि श्रीपोद्दार महाराज सत्यसंकल्प हैं, उनके दिव्य चिन्मय मानस-तलमें जबतक इस अविद्यामयी मायिक सृष्टिमें रहनेका संकल्प भगवान्की योगमाया लीला-महाशक्ति द्वारा उत्थित है, उनका कोई भी अनिष्ट करनेमें समर्थ नहीं है । परन्तु हम सबकी यह अनवरत तपस्यापूर्ण देवाराधना, देवजगत्के सम्मुख की गयी हमारी विकल प्रार्थना, श्रीपोद्दार महाराजके अनन्त पारावारविहीन कृपासिन्धुको उद्वेलित तो करेगी ही। हम उनके अपने आत्मीय स्वजन सहचर हैं, हमें इस प्रकार साधनरत देखकर वे अपनी ही कृपाकी उर्मियोंमें निश्चय ही बह चलेंगे। हमारा यह स्पन्दन उनकी कृपा-लहरोंको उच्छलित करनेमें किंचित् हेतु तो होगा ही। यदि सच्ची आन्तरिक कामनासे हम उन्हें हमारेसे विलग नहीं करना चाहेंगे, तो वे दयासिन्धु, अहैतुक करुणावरुणालय हमारे साथ रहनेके, अथवा **हमें** अपने साथ रखनेके संकल्प-स्रोतमें बह जायेंगे। हमारे तो दोनों ही हाथोंमें लड्डू हैं। **यदि** वे हमें अपने साथ रखनेका संकल्प करलें और यह माया-भूमि त्याग दें,

तब भी हमारा अशेष हित है। हम सभी इस शरीरके प्रारब्धका नाश होते ही मृत्युके उपरान्त उनके अचिन्त्य, चिन्मय लोकमें बिना किसी श्रम और आयासके पहुँच जायेंगे। और वे यदि यहाँ इस माया-लोकमें हमारे साथ सहचररूपमें कुछ कालमान और रह गये तब भी हमारा कल्याण-पथ प्रशस्त ही होगा । और कहीं भगवत्कृपावश ये दोनों बातें एक साथ सम्पन्न हो जाती हैं कि वे हमें साथ रखनेका संकल्प भी करलें और कुछ काल यहाँ और रह जावें फिर तो कहना ही क्या है ? भैया ! वास्तवमें यह सब इन पोद्दाररूप महाप्रभुकी ऐश्वर्य-सम्पुटित लीलाकी मात्र एक लहरी भर है। जब अशेषदृग् माया-मूलहारी पोद्दार महाराज स्वयं ही उपाय निर्धारण करने चलेंगे तब उपाय क्यों नहीं मिलेगा ? उनकी अचिन्त्य लीला-महाशक्तिने तो हम सभीको श्रीपोद्दार महाराजसे मिलानेका लीला-क्रम निर्धारित कर ही रखा है। यदि ऐसा लीला-क्रम नहीं होता तो श्रीपोद्दार महाराजका आत्मीय स्वजनभाव हमें मिलता ही नहीं। श्रीपोद्दार महाराजको तो उस क्रमसे देख लेना भर है और उसे शीघ्रातिशीघ्र काल-क्रममें प्रकट भर करना है।

मैं अश्रु-सिक्त नेत्रोंसे पू.गुरुदेवके आनन-सरोजको एकटक निहार रहा था और अनवरत झरती उनकी मधु-स्निग्ध वाणी सुनता जा रहा था। मेरे रोम-रोममें नवजीवन संचरित हो रहा था। मुझे पूर्णतया शंका-निवृत्त पाकर पू. गुरुदेव अपने अन्य कार्यक्रममें लग गये।

दूसरे दिवस ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही सभी ब्राह्मणों द्वारा देवोंका अनुष्ठान प्रारंभ करना था। इस अनुष्ठानमें यथासमय पूर्ण पवित्रतापूर्वक नैवेद्य सम्पादन कराना, सभी पूजा-सामग्रीका अग्रिम संचयन करना, उन्हें परम पवित्र रीतिसे गंगाजलसे संशुद्ध एवं संस्कारित करना, आदि इतने कार्य थे कि उन सबको पू.गुरुदेवकी पूर्ण सात्विक पवित्र मनोभूमिके अनुरूप सम्पादित करनेके लिये प्राणपणसे जुटने एवं आठों-याम सजगतापूर्वक श्रम करनेवाले लोगोंकी पूरी पंक्ति आवश्यक थी। भाई राधेश्याम पालड़ीवाल, भाई कुञ्जबिहारी, भगतजी राधेश्याम धानुका, भाई रामसनेहीजी आदि अनेकों भ्राताओं एवं साथ ही अपना निजका गृहकार्य त्यागकर इस तपस्यामें निरत अनेकों माताओंने अनवरत छः मासतक प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्तके पूर्व ही उठकर एवं मध्य रात्रितक जागकर कठोर परिश्रमपूर्वक ब्राह्मणोंको सहयोगकर अनेकों पुरश्चरण कराये और विलक्षण देवाराधना सम्पन्न हुई ।

प्रथम दिवसकी पूजाका एक शब्दचित्र पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत कर दे रहां हूँ, जिसे मैंने प्रत्यक्ष अपने नेत्रोंसे देखा है। श्रीमोतीजी पारीक जो अतिशय सत्त्वसम्पन्न, ब्रह्मचर्यव्रतधारी, तितिक्षाकी मूर्त्ति, अतिशय विनयी, सदैव प्रसन्नचित्त ,कठोर परिश्रमी, पू.गुरुदेवपर पूर्ण निष्ठा रखनेवाले, निष्कपटहृदय ब्राह्मण थे, पूजनका प्रारम्भ करते हुए गणेशार्चन करवा रहे थे। उनके पार्श्वमें ही श्रीपोद्दार महाराज अपनी धर्मपत्नी सहित विराजित थे। अन्य ब्राह्मण पूर्वतः ही आचमन, स्वस्ति-वाचन, दीप-प्रज्वालन, अर्घ्य-स्थापनादि कर्म सम्पादित कर चुके थे। सभी ब्राह्मण मुण्डित-मस्तक, गोखुरके समान चौड़ी शिखायुक्त, ललाटपर पू.गुरुदेव द्वारा प्रदत्त ब्रजरजकी वटिकाका लेपन किये, कुकुम-केसरकी बिन्दी एवं तिलक लगाये, कंधेपर अँगोछा रखे, आर्श्व-पार्श्वमें विराजित थे। नवीन निर्मित काष्ठकी चौकीपर शुद्ध लाल रेशमी वस्त्र आस्तृत था और उसपर श्रीगणेशजीकी स्वर्णप्रतिमा विराजित थी । चतुर्दिक् धूपका अतिशय सुवासित धूम व्याप्त था। अखण्ड दीपक जगमगा रहा था। ब्राह्मणगण वेदध्वनि कर रहे थे। नतजानु अंजलि-बाँधे श्रीमोतीजी पारीकने श्रीगणेशप्रतिमाके सम्मुख इस प्रकार प्रणाम किया मानो उनके सम्मुख सचमुच ही श्रीगणेश प्रत्यक्ष हो चुके हों। पू.गुरुदेव के प्रति अतिशय समर्पण और पू.पोद्दार महाराजके प्रति विलक्षण सन्तोपम श्रद्धाने उनके रोम-रोममें दिव्य देवदर्शनका उन्मेष कर दिया था। सद्योदित बालरविके समान सिन्दूरी वर्णमें श्रीगणेशजीको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख निरखकर श्रीमोतीजी चमत्कृत थे, वे किंचित् उन्मत्त थे और श्रीगणेशजी महाराजके अचिन्त्य अनन्त ऐश्वर्यको सम्मुख प्रकट पाकर अपनी तनकी सुध-बुध ही भूल गये थे। श्रीमोतीजीकी ऐसी विलक्षण दशा सभी ब्राह्मण आश्चर्य-विस्फारित एवं अश्रुसिक्त नेत्रोंसे देख रहे थे। पू.गुरुदेव कुछ ही दूरीपर खड़े समग्र दृष्य देख रहे थे। उन्होंने तीखी आवाज लगायी, गंगाजल-निर्मित प्रसाद उपस्थित किया जाय। एक बहिन सचैल-स्नात, स्वच्छ धौत वस्त्र धारण किये, भालपर सौभाग्यसिन्दूर और ललाटपर बिन्दी लगाये, उन्मुक्तकेशी, रजत थालीमें तीन-पाव प्रसाद लेकर तत्क्षण समुपस्थित हुई। वह पार्श्वके कक्षसे जहाँ पूजाकी सभी सामग्री पृथक्-पृथक् पात्रोंमें, गौके गोबर और पीली मिट्टी मिलाकर बनाये लेपसे चौकाकर, अतिशय स्वच्छ वस्त्रोंमें ढँकी, पृथक्-पृथक् काष्ठ-चौकियोंपर रखी थी, ले आई । सेवक एवं सेविकाएँ इतनी पवित्रता बरत रहे थे कि खाँसी भी उस कक्षसे दूर, बाहर जाकर करते

थे और खाँसी आनेमात्रसे हाथ-पैर धोकर आचमन करके तब पूजा-उपकरण-कक्षमें प्रवेश करते थे। पू.गुरुदेवका संकेत पाते ही तत्परतापूर्वक वाञ्छित सामग्री समुपस्थित कर देते थे। पार्श्वमें वृक्षोंके नीचे शुद्ध भूमिपर धौत टाटके विशाल आसनोंपर स्वच्छ स्नात, पवित्र कटिया-रेशमके वस्त्र पहने, अनेक सेवक – कोई वाञ्छित पुष्पमालायें अग्रिम गूँथ रहे थे, कोई डलियाओंमें भिन्न सुगन्धित पुष्पराशि संचितकर ला रहे थे, कोई तुलसीदल, कोई बिल्वपत्र संकलित कर रहे थे। प्रत्येक बिल्वपत्रको, तुलसीदलको उनके वृक्षोंसे इस प्रकार तोड़ा जाता था, मानो वृक्ष मात्र उद्भिज जन्तु न होकर, स्वयं देवस्वरूप हों। साधक तुलसी एवं बिल्ववृक्षको पहले प्रणाम करता था, फिर उसे शुद्ध जलसे सिंचित करता था, एवं तब प्रार्थनाके श्लोकोच्चारणकर अतिशय विनयपूर्वक एक-एक दलको अतिशय श्रद्धासहित संचयन करता था।

पू.गुरुदेवकी दृष्टि इतनी जागरूक होकर निरीक्षण कर रही थी कि किसीके भी द्वारा तनिक-सा प्रमाद होते ही वह प्रमाद उनकी पकड़में आ ही जाता था और वे उसे सुधारने तथा उसकी पुनरावृत्ति कदापि नहीं हो, इसका कठोर अनुशासन कर देते थे। नौसिखिये व्यक्तिके स्थानपर तत्क्षण ही किसी अभ्यस्त साधकको उसे शिक्षित करने भेज दिया जाता था।

पू.पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी (अ.सौ.माताजी) एवं उनकी पुत्री (अ. सौ.सावित्रीबाई) रात्रिपर्यंत एक क्षण भी सोई नहीं थी। परिवारके सभी परिजन जब जागे हों तो वे शयित हों भी कैसे ? फिर भी रात्रि कब, कैसे समाप्त हुई, किसीको भी उत्साहके कारण ज्ञात नहीं हुआ था।

देवगृह-कुटी, जहाँ ब्राह्मण उपासना कर रहे थे, कदलीवृक्षोंसे सज्जित की गई थी। कदली-स्तम्भोंपर यथास्थान सूक्ष्म सूतलियोंमें ग्रथित आम्रपल्लव टँगे थे। प्रथम पूजन अति संक्षेपमें ही श्रीपोद्दार महाराज और उनकी अ.सौ. पत्नीके द्वारा सम्पन्न कराया जाय – पू.गुरुदेवकी ऐसी इच्छा थी। अतः श्रीपोद्दार महाराजके सहित उनकी धर्मपत्नी ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही स्नानकर आसनपर सुविराजित हुई पूजा कर रही थीं। श्रीमोतीजी पारीकको अतिशय भावपूर्ण मुद्रामें गणेशपूजनमें निरत देख श्रीपोद्दार महाराज अति संक्षेपमें सभी प्राथमिक पूजा समाधान कर रहे थे, परन्तु इस प्रकार, जैसे उनके हाथोंसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा रही हो, तथा स्वयं वे इस लोकमें न हों। इस प्रकार पूरे एक प्रहर दिन चढ़नेतक शास्त्रीय कर्मकाण्ड पूरा होते ही एक साथ ढोलक,

शंख, कांस्य मँजीरे आदि वाद्य बजने लगे, आरतीके पश्चात् विशुद्ध प्रेमरस-भावित-चित्त बगीचेवासी भगवन्नाम संकीर्त्तन करते थे। चाहे किसी भी देवताकी पूजा, कोई भी त्यौहार हो, चाहे शिवरात्रि एवं नवरात्रपूजन ही क्यों न हो, यहाँकी नित्यकी ही परम्परा रही थी कि पहले तो तत्तद् देवतागणके नामसे संकीर्त्तन प्रारंभ होता था किन्तु उसका पर्यवसान सदैव 'राधे-राधे' नामध्वनिमें ही होता था। यह रांधे-राधे नामध्वनि प्रारंभ होते ही सभी बगीचेवासी उन्मत्त-से हुए, खड़े हो जाते थे। जिसके हाथमें जो भी वाद्य आ जाय, उसे वे सभी आबाल-वृद्ध एक प्रमत्त लय और तालमें बजाने लगते थे, उनके पैर एक विलक्षण प्रकारसे कूदने-उछलने लगते थे, अंग-अंग प्रेमसे थिरक उठते थे, और राधा-राधा शब्द-ध्वनि इतने उच्च स्वरसे होने लगती कि उसकी प्रति-ध्वनि सम्पूर्ण अन्तरिक्ष और नभको भेदती हुई शब्दब्रह्मको अपनेमें लीन कर लेती थी । उस तुमुल 'राधे-राधे' के आनन्द-कोलाहलसे पशु-पक्षी, वृक्ष एवं लताएँ, यहाँतक कि जड़ भूमि-भवन भी पुलकित हो उठते थे, फिर मानवकी तो बात ही क्या ? पू.गुरुदेव एक कांस्य झालर और उसे निनादित करनेके लिये काष्ठ-दण्ड लेकर उस महान् प्रेमभरे आयोजनका नेतृत्व सँभाल लेते थे। जो भी इस उद्दाम संकीर्त्तनके प्रत्यक्षदर्शी आज भी जीवित हैं, वे मेरे इस कथनको सर्वथा अतिशयोक्ति नहीं मानेंगे कि उन दिनों पू.गुरुदेवके नेतृत्वमें जब यह कीर्तन सम्पन्न होता था तो कालकी गति स्तंभित हो उठती थी । उद्दाम नर्तन एवं संकीर्त्तन करते लोगोंको यह पता ही नहीं चलता था कि यान्त्रिक घड़ी कब बारहसे एक बजा चुकी है और कब मध्याह्नसे सायंकाल हो आया है । यह संकीर्त्तन जब भी प्रारंभ हुआ है, तीन-साढे तीन घण्टेके पूर्व तो सम्पूर्ण होता ही नहीं था। जब इसे विराम देना होता था तो पू. गुरुदेव श्रीराधा बाबा ही विराम देते थे, अन्यथा संकीर्त्तन करनेवालोंका रसप्रवाह तो कभी विरस होता ही नहीं था। उन्हें तो इस संकीर्तनकी अवधिमें थकान लगती ही नहीं थी। हाँ, ढोल अथवा खोल बजानेवाले वादककी अँगुलियाँ चिरकर रक्त प्रवाहित भले ही करने लगें, परन्तु उसे न तो इसका ज्ञान ही होता था, न अँगुलियोंको विरमित करनेकी रुचि ही उसे अनुभूत होती थी। कांस्यकी झाँझ बजानेवालेकी हथेलियोंमें फफोले पड़ जाते थे, और फफोले फूट कर रक्तस्राव हो उठता था, फिर भी झाँझ बजाना वह विरमित नहीं कर पाता था। कोई ऐसी रसमयी सुधा चतुर्दिक् प्रवाहित होती रहती थी जो सभीको चिन्मय

रस-सागरमें डुबो देती थी और यंत्रवत् शरीरकी श्रमसाध्य क्रियायें घटित होती रहती थीं ।

हाँ, इस रसप्रवाहमें निमग्न होनेकी अतीव लालसा रखनेपर भी उस दिवस श्रीमोतीलालजी पारीक आदि ब्राह्मण पू.गुरुदेव द्वारा अवश्य संकीर्त्तनसे निवारित कर दिये गये थे , क्योंकि उन्हें अपनी जप एवं पाठसंख्याएँ एक निश्चित कालावधिमें पूर्ण करनी ही थीं और आज प्रथम दिवसके पूजन-संयोजनमें ही कालातिरेक हो चुका था। अतः वे सभी अतिशय लालायित होने पर भी अपने मनको इस रस-प्रवाहमें निपतित होनेसे रोक रहे थे।

वैष्णव पाठकों ! पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा और श्रीपोद्दार महाराज ऐसे रसीले सन्त थे कि इनके प्रति जो भी अपना मन-प्राण न्यौछावर कर दे, उसके लिये इस तुच्छातितुच्छ जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय संसारका मूल्य ही क्या था ? ये दोनों उस ऐश्वर्य-ज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें तत्मय थे, जिसमें तत्व, अतत्व क्या है – इसके अनुसन्धानकी आवश्यकता ही नहीं थी । वस्तुस्थिति भी भला क्या अनुसन्धानकी अपेक्षा रखेगी ? वह तो जो है, वही रहेगी ही। जब ब्रजेन्द्रनन्दन और उनकी प्राणप्रिया रासेश्वरी श्रीराधा ही आत्माकी आत्मा हैं, प्रियोंके प्रियतम हैं, इन्हींके लिये देहादि भी प्रिय हैं, इनसे प्रेम करनेमें ही जब जीवनकी परम सार्थकता है, तो इन ब्रजेन्द्रनन्दनके प्रेममें मत्त सन्तोंकी सन्निधि के सम्मुख अन्य वस्तु अर्थ ही क्या रख पावेगी ?

इस तरह पू.पोद्दार महाराजके जीवनरक्षार्थ प्रारंभ किये गये अनुष्ठान-संस्कारका प्रथम दिवस समापन हुआ था।

इसी प्रकार इन अनुष्ठान-कर्त्ताओं और उनके सहयोगियोंके छःमास क्षणोंके समान व्यतीत होगये। प्रत्येक रात्रिमें उद्दाम नाम-संकीर्त्तन हुआ करता था। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा स्वयं संकीर्त्तनमें खड़े होकर नेतृत्व करते थे। पू. गुरुदेव के बायें हाथमें कांस्य घण्ट(टकोरा) रहता था, दूसरे दाहिने हाथमें लकड़ीकी हथौड़ीनुमा मोगरी। पैरोंसे ताल देते वे लयबद्ध कांस्यघण्ट (टकोरा) बजाते थे और परिक्रमावत् घूमते जाते थे। प्रथम'राधे–राधे' की ध्वनि पू. गुरुदेव द्वारा होती थी एवं तत्पश्चात् पीछे सभी लोग बोलते थे। प्रायः भावाधिक्यसे पू.गुरुदेव की आँखें मुँद जाती थीं । कीर्त्तन एवं नृत्य करते सभी लोग इतने उन्मत्त हो उठते थे कि कोई नृत्य करता बाह्यावेश-विस्मृत व्यक्ति पू. गुरुदेवपर गिर न पड़े, इसलिये चार-पाँच लोग पू.गुरुदेवके चतुर्दिक् एक घेरा

बना लिया करते थे। इस कीर्तनमें लोगोंको अनेक विलक्षण अनुभव हुए।

एक दिवस पू.पोद्दार महाराजकी पत्नी (माताजी) ने देखा कि सात-आठ वर्षकी एक अतीव सुन्दरी बालिका कीर्तन करते पू. राधाबाबाके पीछे-पीछे दोनों हाथ उठाकर नृत्य करती चल रही है। कीर्त्तनके भावावेशमें पू. गुरुदेव जिस ओर अपनी गर्दन झुकाते अथवा लटकाते हैं, उसी ओर वह बालिका भी पू. गुरुदेवकी ठीक अनुकृति करती अपनी गर्दन झुकाती है। मैयाने पास खड़ी किसी अन्य स्त्रीको कहा –"बहिन ! देख तो ! यह न जाने किसकी कमनीय बालिका कीर्तनमें प्रवेश कर गयी है, मुझे तो चिन्ता है, कहीं यह सुकोमल बालिका कीर्तनकारोंकी भीड़में कुचली नहीं जावे। इन लोगोंको तो होश ही नहीं कि इस बालिकाका ध्यान रख सकें। सभी लोग अपनी मस्तीमें नृत्य कर रहे हैं । इनके सभीके नेत्र ही मुँदे हैं। इन्हें क्या पता, कौन इनके आगे-पीछे है। पू.राधाबाबा तो इतने भावाविष्ट हैं कि उनका भाव ही सबमें संक्रमित होकर सभीको अलमस्त बना रहा है। इन उमंगभरे पागलोंकी झूमती हुई भीडमें कहीं यह बालिका बहिन, दब न जावे ! " इस प्रकार माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) उस बालिकाकी चिन्ता कर रही थीं। विद्युत्की भाँति यह समाचार समस्त स्त्रीवर्गमें फैल गया किन्तु कोई भी स्त्री उस बालिकाकी रक्षाके लिये आगे बढ़नेकी हिम्मत इसलिये नहीं कर पा रही थी कि वह बालिका पू.गुरुदेवके सर्वथा निकट थी, और उसे पकड़नेमें पू.गुरुदेवसे स्पर्श होनेका सभीको भय था । पू.गुरुदेव · किसी स्त्रीवर्गका कीर्तनकारोंके मध्य इस प्रकार प्रवेश सर्वथा सहन नहीं करते थे। अतः वे सभी भाग्यवान् स्त्रियाँ जिन्होंने अ.सौ. पू.माताजीके संकेत करनेसे उस दिव्य बालिकाका दर्शन किया था, मानसिक उलझनमें ही रहीं। जब कीर्तनका विराम होगया तो मैया स्वयं उस बालिकाके पास दौड़ीं। उनके वात्सल्यपूर्ण हृदयमें यही वेदना थी कि घण्टों पू. गुरुदेवके साथ-साथ उनका हू-ब-हू अनुकरण करती एवं नृत्य करती बालिका थक गयी होगी। किन्तु देखते-देखते ही वह सबकी दृष्टिसे ऐसी ओझल हुई कि बहुत खोजनेपर भी मिली ही नहीं। मैया आश्चर्यचकित थी कि अभी तो वह बालिका यहाँ थी, अभी-अभी इसी अवधिमें कहाँ चली गयी। जिन स्त्रियोंने वह बालिका देखी थी सभीने अपना-अपना सौभाग्य माना कि राधानाम-संकीर्त्तन के मध्य उन्हें दिव्य बालिकाके दर्शन हुए।

एक भक्तको यह भी दर्शन हुए कि नेत्र मुँदे हुए पू.गुरुदेवके साथ

स्वयं श्रीकृष्ण मयूरमुकुटधारी हाथ उठाकर 'राधा-राधा' कीर्त्तन कर रहे हैं। लोग उनके पास पहुँचकर उनके भीतरसे निकल जा रहे हैं। जब कोई कीर्तनकार श्रीकृष्णके मध्यसे निकल जाता है, तो वे अति मधुर कृपावर्षी मुसकान बिखेरते हँस पड़ते हैं। कभी-कभी यह संकीर्त्तन ऐसा जमता था कि रात्रिपर्यंत जागरण हो जाया करता। कीर्तन विराम ही नहीं लेता था।

पूजा-अर्चनकालमें भी अनुष्ठानकर्ताओंको अनेक चमत्कारोंके अनुभव हुए। श्रीमोतीजी पारीकको तो प्रत्येक निशा कोई-न-कोई दिव्य अनुभव अवश्य होता था। वे प्रत्येक दिवस ही पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको अपने अनुभव बताया करते थे। श्रीशिवनाथजी दुबेको नवदुर्गाओंके प्रत्यक्ष दर्शन हुए। पू.गुरुदेवको स्वयंको अनुभव हुआ कि उन्हें भगवतीने दो फल दान किये हैं, जिसका स्पष्ट अर्थ था कि श्रीपोद्दार महाराजकी आयु द्वै-दश वर्ष बढ़ गयी है। वस्तुतः इस अभूतपूर्व अनुष्ठानमें सैकड़ों सेवकोंका योगदान था। बिना किसी स्वार्थकामनाके अनवरत छः माह तक अनेकोंने पूर्णकालिक और अनेकोंने अंशकालिकरूपसे अपनी सेवाएँ समर्पित करके इस अनुष्ठानको सफल बनाया था। ये सभी महाभाग्यवान् साधक इस अलभ्य तत्सुख-प्रेमभावनाके पात्र सिद्ध होगये थे, क्योंकि इन सभीने बिना किसी स्वार्थ-भावनाके अनवरत छः मासतक श्रम करके श्रीपोद्दार महाराज-जैसे महासिद्ध सन्तका हित एवं सुख सम्पादित किया था। इनके प्रयाससे ही इस अनुष्ठानकी सम्पन्नता संभव हुई थी। अनेक साधकोंका तो निस्वार्थ आठोंयामका ही श्रम एक महासिद्ध भगवत्स्वरूप सन्तपर न्यौछावर हुआ था। उन्हें तो इस साधनाका सफल हो जाना ही वाञ्छित फल था। यह स्वयंमें ही एक महासिद्धि थी और इस सिद्धिसे वे सब पूर्ण संतुष्ट एवं कृतकृत्य थे ।

———

प्रयागमें कुम्भमेला : पू० गुरुदेवको नावमें उद्दीपन, सिद्धजगत्‌का सन्देश

(सातवाँ अध्याय)

प्रतिवर्ष द्वादश वर्षके अन्तरालमें जब बृहस्पति बृषराशिमें और सूर्य मकरराशिमें होता है, प्रयागमें कुंभपर्व होता है। प्रयागका अर्थ ही है कि जो पवित्र भूमि प्रकृष्ट यज्ञोंके लिये उपयुक्त हो। इसीलिये सृष्टिके आदिमें श्रीब्रह्माजीने यहाँ प्रथम यज्ञ किया था। यहाँ सरस्वती, गंगा एवं यमुनाका संगम है और इस त्रिवेणीमें स्नान करनेवाले ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। यहाँ स्थित श्यामल अक्षयवट अपनी छायासे मनुष्योंको दिव्य सद्गुण प्रदान करता है। इसी अक्षय वटके पत्रपर लेटे भगवान् माधवके ऋषि मार्कण्डेयको दर्शन हुए थे। गोघाती, चाण्डाल, शठ, दुष्टचित्त, बालघाती, ब्रह्महत्यारे भी इस अक्षयवटके दर्शनमात्रसे चतुर्भुज माधवका दिव्यरूप पाकर वैकुण्ठमें अक्षय निवास करते हैं—पद्मपुराणादिमें ऐसे कितने ही वचन हैं।

कुम्भपर्वमें प्रयागमें त्रिवेणीमें स्नानार्थ लाखों लोग आते हैं। जब भी कुम्भका योग होता है, यहाँ गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-पण्डाल भी लगा करता है। इस वर्ष क्योंकि श्रीपोद्दार महाराज यहाँ माह-डेढ़ माह कुम्भस्नानके लिये रहनेवाले थे, अतः एक विशाल पण्डालका निर्माण हुआ था और भव्य सत्संग, कथा आदिका आयोजन था।

बात सन् १९५४ ई.की है। श्रीपोद्दार महाराज पौष शुक्ला सप्तमी तदनुसार ११ जनवरीको प्रयाग पहुँचे। उनके साथ उनका परिवार और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो थे ही, अनेक सत्संगी भाई-बहिन भी थे। १४ जनवरीको तीन दिवस पश्चात् ही मकरसंक्रान्तिका प्रथम पर्व-स्नान पड़ रहा था, अतः मैं भी गोरखपुरसे पू. गुरुदेवके साथ ही चला आया था।

हम सभी लोग निरे प्रभात ही रेल द्वारा गोरखपुरसे प्रयाग पहुँचे थे अतः सर्वप्रथम स्नानार्थ त्रिवेणीकी ओर चल पड़े थे। यमुनाघाटपर पहलेसे ही नावोंकी व्यवस्था थी, अतः एक बड़ी नावमें श्रीपोद्दार महाराजका परिवार, पू. गुरुदेव एवं हम लोग जो सेवामें थे, आरूढ़ थे। सत्संगी भाई दूसरी नावोंमें

सभीको दण्डित अथवा पुरस्कृत कर रहे हैं। जब हम सभी विषयी-पामरोंकी यह स्थिति है, फिर आपका अतीव भगवच्छरणागत पाञ्चभौतिक शरीर, अथवा पू. पोद्दार महाराजका चिन्मय-भगवत्संस्पर्शप्राप्त शरीर, क्या इन मायिक, अविद्यामूलक, जड़ नक्षत्रोंकी गति द्वारा नियन्त्रित है ? मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि व्यर्थ ही आप प्रेमजन्य अनिष्टाशंका कर रहे हैं। पू.पोद्दार महाराजके तो रोम-रोममें सर्वस्रष्टा, सर्वनियन्ता, सर्वावतारावतारी, स्वयं भगवान् भरे हैं। नित्यसिद्ध, परमानन्दविग्रह, ब्रजेन्द्रनन्दन, स्वरूपानन्दास्वादनपरायण, मायातीत श्रीहरि ही जब स्वयं जिसके अन्तःकरण और बहिःकरण-विवरोंमें प्रविष्ट होगये हों तो फिर उनमें अनिष्टके प्रवेशकी गुंजाइश ही कहाँ है ? श्रीपोद्दार महाराजका यह शरीर तो ब्रजराजनन्दनकी लीलास्थली है। बाबा ! जब यह आपकी ही निष्ठा है, तो फिर आप इस प्रकार व्यग्र एवं उद्विग्न क्यों हैं ?"

अत्यन्त कलुषपूर्ण, माया-पंकमें लिप्त, घृणित-जीवन मेरी बालोचित वाचालता सुनकर पू.गुरुदेव मुसका उठे । वे कहने लगे – "भैया ! तेरी बात पूरी सत्य है। किन्तु जब पोद्दार महाराजको साक्षात् भगवान् नहीं देखकर, पू. अ.सौ.मैया (पोद्दार महाराजकी पत्नी) उनके भोजन-वस्त्र, औषधि-पथ्य, स्नान-संध्या – सबकी यथोचित व्यवस्था करती हैं, वे ऋतु-अनुसार शिशिरमें ऊनी वस्त्र पहनते हैं, रजाई ओढते हैं, अग्नि तापते हैं, तो जहाँ शरीरकी यथायोग्य सभी व्यवस्था होती है, तब ग्रह-नक्षत्रों और उनके अधिदेवोंकी शान्तिकी यथायोग्य व्यवस्था भी तो होनी ही चाहिये।"

"भैया ! यद्यपि मैं इसे स्पष्ट जानता हूँ कि तुझे मलेरिया बुखार नहीं आयेगा; श्रीकृष्ण स्वयं ही तेरा बुखार होंगे; तुझे मच्छर नहीं काटेंगे, स्वयं श्रीकृष्ण ही मच्छर बनकर तुझे काटेंगे; फिर भी मैं तेरे सोनेके समय मछहरी लगवाता हूँ, मलेरियाके आनेपर कुनैनकी दवा दिलाता हूँ, उसी प्रकार मैं श्रीपोद्दार महाराजके ग्रह-नक्षत्रोंकी भी शान्ति-व्यवस्था कर रहा हूँ।"

पू.गुरुदेवका उत्तर पूर्णतया सटीक था। फिर वे मुझे इसी प्रसंगमें अन्य तथ्य भी बताने लगे। वे कह रहे थे – "भैया ! मेरे जीवनमें आठ ऐसे महासिद्ध सन्त आये हैं, जो ज्ञान एवं भक्तिकी परमोच्च भूमिकाओंका निर्वाह कर रहे थे। उनमेंसे कुछ अब भी जीवित हैं। परन्तु अभी तक मेरे संपर्कमें ऐसा एक भी ऋषि-ब्राह्मण नहीं आया जो अधिदैव-जगत्के देवताओंकी मंत्रसिद्धि रखता हो। अधिदैव-जगत्के सभी देवगण निश्चय ही मंत्रस्वरूप होते

विहीन सागरकी उर्मियोंमें बहने लगे हैं । माधुर्य-सिन्धु उनके अन्तःकरणमें उद्वेलित हो उठा था।

बहुत दिवस पुरानी बात है, तनिक प्रसंग से पृथक् हो रहा हूँ। मैंने पू. गुरुदेवसे पूछा था –"क्या आप अपने प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको परब्रह्म पुरुषोत्तमके रूपमें मानते हैं ?" तो उन्होंने इसका उत्तर दिया था–"भैया ! तुझे सत्य कहता हूँ माधुर्य-मसृण चित्तमें तत्त्वज्ञानके लिये टिकनेको स्थान ही नहीं होता। मेरा दूसरा प्रश्न था–"बाबा ! क्या आपके प्यारके उद्दीपनमें और उसे सर्वातिशय अनुभव करनेमें आपके प्रियतम श्यामसुन्दरका अभूतपूर्व सर्वजयी, मन्मथ-मथन सौन्दर्य हेतु है ?" तो इसका उत्तर उन्होंने दिया था–"सौन्दर्य प्रथमतः तो मात्र नेत्रेन्द्रियग्राही ही होता है, और प्रेम आत्माका आस्वादन है। फिर एक नेत्रेन्द्रियजन्य सौन्दर्य होता है और दूसरा महाभावगत सौन्दर्य जिसे प्रेमप्लावित हृदय ही अनुभव करता है, श्रीकृष्णका सौन्दर्य प्रीतिजन्य है, प्रीतिग्राही है, इन्द्रियग्राही है ही नहीं। मेरे भाव-शरीरकी इन्द्रियाँ भी प्रीति द्वारा ही सृष्ट होती हैं, वे मायिक देहजन्य इन्द्रियाँ हैं ही नहीं।" मैंने पुनः प्रश्न किया था, "तो क्या आपके चित्तकी गति भगवत्ताकी स्फूर्त्तिसे श्रीकृष्णके प्रति प्रेमप्रवाहित होती है ? " इसपर भी वे निषेधात्मक रूपमें अपना मुख हिला दिये थे। मैं जिज्ञासु हो उठा था। सौन्दर्य-निबन्धन, भगवत्ताकी स्फूर्त्ति, दैहिक इन्द्रियग्राही सम्बन्ध, तत्त्वज्ञान – जब इनमेंसे एक भी उनके प्रेममें हेतु नहीं, फिर उनका अन्ततः अपने प्रियतम नीलसुन्दरसे ऐसा अपरिसीम प्रेम किस हेतुसे है ? किस हेतुसे उसकी वह सतत, निर्बाध गति है ? तो मेरे इस प्रश्नका उन्होंने एक ही उत्तर दिया था कि " श्रीकृष्णके प्रति उनका प्रेम हेतुरहित है। श्रीकृष्ण उनकी आत्माकी आत्मा हैं और आत्मा हेतुरहित सबको निरतिशय प्यारी होती है। हाँ, उन्हें ये श्रीकृष्ण योगमायाका आश्रय लेनेके कारण देहधारी और अपनेसे भिन्न अवश्य प्रतीत होते हैं, किन्तु वस्तुतः वे श्रीकृष्णकी आत्मा हैं, अतः श्रीकृष्णके सर्वाधिक प्रिय हैं और श्रीकृष्ण उनकी आत्मा हैं अतः उन्हें वे सर्वातिशय प्रिय हैं। शब्द इतना ही इस विषयमें निदर्शन कर सकते हैं। शेष सब सौन्दर्य, सद्गुण, माधुर्य, ऐश्वर्य मात्र अलंकरण भर हैं।"अस्तु, ...मैं मेरे गुरुदेवके प्यारको नितान्त अन्धस्नेहकी संज्ञा दिया करता था।

पुनः प्रसंगपर आता हूँ। पू.गुरुदेवकी उन दिनों विलक्षण स्थिति थी।

कोई दूरसे भी यदि **''भानुदुलारी, गोपिका प्यारीं, कृष्ण प्राणधन श्रीराधे ''**यह संकीर्त्तन गुनगुना देता, वे भाव-समाधिस्थ हो जाते थे। फिर उन्हें बाह्य होश नहीं रह पाता था। अतः मेरे गायनने पू.गुरुदेवके प्राणतन्तुओंको खींचकर बलात् अपने प्रियतमके चरणोंसे प्रेम-निबद्ध कर दिया था। उनके नितान्त अन्धस्नेहकी स्रोतस्विनी उमड़ उठी थी। उनके हाथ आलिंगन करनेकी मुद्रामें ऊपर उठ गये। जैसे कलिन्दनन्दिनीकी उछलती लहरोंपर उनके प्रियतम स्थित हों, वे अपने प्रियतमकी व्यक्त मूर्त्तिको आलिङ्गन करने उद्यत हो गये। वे नावपर खड़े हो गये थे और यमुनामें कूदनेको समुत्सुक हो उठे थे। मैंने जैसे ही यह दृश्य देखा, मैं उन्हें अपने बाहुओंमें बाँधनेको उद्यत हो उठा। मैं उन्हें अपने बाहु-बन्धनमें जकड़ूँ, इसके पहले ही पोद्दार महाराज क्रियाशील हो उठे। उन्होंने अत्यन्त बलपूर्वक पू गुरुदेवका हाथ पकड़ लिया और अति उच्च स्वरसे बोले –"बाबा ! आप स्वामी चक्रधरजी हैं, आप मेरे साथ त्रिवेणीसंगममें स्नान करने जा रहे हैं। यह प्रयागराज तीर्थ है।" श्रीपोद्दार महाराज अनेक आवृत्ति कर-करके इन्हीं शब्दोंको पू गुरुदेवके कानोंमें दोहरा रहे थे। श्रीपोद्दार महाराजकी वाणी इतनी तीव्र एवं ओजस्वी थी, साथ ही उनका पू गुरुदेवका हाथ पकड़ना इतना सुदृढ़ संकल्पभरा था कि पू गुरुदेवका उद्दीपन कुछ ही क्षणोंमें शिथिल हो गया।

मैं अपनी क्रियापर बहुत लज्जित था। सचमुच ही मुझसे भूल हो गयी थी, कहीं पू.गुरुदेव यमुनामें गिर जाते, कौन उन्हें बचाता ? यद्यपि वे कुशल तैराक थे, फिर भी भावावेशकी अवस्थामें कुछ भी अनहोनी संभव थी। मैंने अतिशय लज्जासे अवनत हो, पू.पोद्दार महाराजकी ओर देखा। मैंने देखा – परम क्षमाशील उनका हृदय मेरे कर्मको क्षमा कर चुका है। वे वात्सल्यभरे मेरी ओर निहार रहे थे । उनके लिये तो अत्यधिक असीम मात्रामें पू.गुरुदेवके स्नेहका यह प्रवाह कोई आश्चर्यका विषय था ही नहीं। हाँ, उनके पार्श्वमें बैठी माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) अवश्य ही भयभीत हो उठी थीं और मुझे डाँटने लगी थीं। यह सब प्रत्यक्ष देखकर मैं तो अपनेको परम धन्यभाग्य समझने लगा। मैं मन-ही-मन पुनः श्रीमद्भागवतका यह श्लोक गुनगुना उठा

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्।।

(श्रीमद्भा०१०।६।२०।।)

जिस कृपा-वैभवका आस्वाद पू. पोद्दार महाराज और मेरे पू. गुरुदेवको हे श्रीकृष्ण ! तुमने कराया, उसे सचमुच ही आजतक भगवान् नारायणके नाभिकमलसे उत्पन्न, प्रापञ्चिक भक्तोंके आदिगुरु जगत्-विधाता ब्रह्माने नहीं पाया, कदापि नहीं पाया; आत्मस्वरूप भगवान् शंकर भी उसे अनुभव नहीं कर सके, और वक्षस्थल-विलासिनी लक्ष्मीको भी वह आस्वाद नहीं ही मिला। मुक्तिपर्यंत पुरुषार्थदाता हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारी जय हो।

++ + ++

उसी दिवसकी दूसरी घटनाका उल्लेख कर रहा हूँ। इसी प्रयागयात्रामें पू. पोद्दार महाराजने श्रीराधाबाबाके निवासकी व्यवस्था अपने निवाससे किञ्चित् दूरीपर की थी। श्रीराधेश्यामजी धानुका जिन्हें हमलोग श्रद्धासे भगतजी कहते हैं, पू.गुरुदेवके द्वारपाल थे। पू.गुरुदेवकी सेवामें निरन्तर रहना ही उनका कार्य था। मैं तो मात्र कुछ दिवसोंके लिये ही प्रयाग गया था, फिर भी क्योंकि मेरे सर्वाधिक आकर्षणके केन्द्र पू.गुरुदेव ही थे, मैं पू.गुरुदेवके पास ही आसीन, उन्हींसे लीला-वार्त्ता सुन रहा था। श्रीपोद्दार महाराज तो आते ही अनेक कार्यक्रमोंमें व्यस्त हो गये थे। उन्हें गीताप्रेस-पण्डालमें श्रीमद्भागवतके १०८ सप्ताह पारायणोंकी आवृत्ति करानी थीं, रामचरितमानसके अनेक नवाह आयोजित करने थे। फिर सत्संग-प्रवचन, कथा-संकीर्त्तनोंकी स्थान-स्थानपर इतनी धूम थी कि उन्हें बड़े-बड़े महात्मा अपने-अपने पण्डालोंमें व्याख्यानोंके लिये भी ले जाने आते थे। इन सबके अतिरिक्त स्वामी श्रीशरणानन्दजी,स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी, श्रीपथिकजी महाराज, श्रीरामकिंकरजी आदि अनेक सन्त एवं विद्वान् भी उन्हें घेरे थे। इसके उपरान्त श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन और श्रीजवाहरलालजी नेहरू आदि राजनेताओंसे भी उन्हें मिलना था। 'गोवधबन्दी' के आन्दोलनकर्त्ता भी उन्हें अपना नेता बनाये थे।

पू.गुरुदेव एकान्तमें थे और प्रायः हम लोगोंसे ही उनकी सत्संग-वार्त्ता चलती रहती थी। पू.गुरुदेवकी चित्तभूमिमें तो अनन्त लीला-महोदधि सदैव ही उफनता रहता था और उनके प्रियतम श्रीकृष्ण नव-नव प्रेमावेशसे विभूषित सदैव ही उनसे क्रीड़ा-कौतुक करते रहते थे। इस प्रकार पू.गुरुदेव काय-मनो-वाक्यसे सदा अपने प्राणप्रिय नीलसुन्दरमें ही तन्मय रहते थे। कभी वे मुझसे पद-गायन सुनने लगते, कभी स्वयं गाने लगते। प्रेमावेशसे प्रस्वेदकण उनके भालपर, कपोलोंपर, चिबुकपर झलमल करने लगते।

उस दिन भी उनकी मुझसे बात चल रही थी। वे मेरे सम्मुख अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी एक अति मनोहर लीला सुना रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे क्षीरसिन्धुके मन्थनसे सुधा निकली हो और मोहिनी अवतार लेकर स्वयं श्यामसुन्दर ही अपने हाथों हमें पिला रहे हों। किन्तु मेरा अनुमान था उस सुधामें भी वह स्वाद नहीं रहा होगा, जो स्वाद हमें तब मिलता था जब पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा परम प्रेम-तन्मय हुए अपने प्रियतम नीलमणिकी लीलाएँ हमें सुनाते थे। और उस परम चिन्मयी रस-सुधा-धाराका हम भाग्यवान् सतृष्ण पान करते थे।

उस दिन ऐसा ही अवसर मुझे प्राप्त हो गया था। वे लीला सुनाते मुझे कह रहे थे – गोपी अपने प्राणधन प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके स्मितसमन्वित मुखचन्द्रको निरखनेमें तन्मय है। यमुनाका परम पुनीत विलक्षण सुन्दर घाट है। अहा ! उस श्रीकृष्णानन-अम्भोजपर बिखरी कुञ्चित कुन्तलराशिकी शोभा निहारनेमें तन्मय गोपीके हृदयमें प्रीतिके कैसे निर्मलतम भाव उफन रहे हैं। गोपीके लिये अपने प्रियतमकी तृप्ति, अपने प्रियतमका सुख, अपने सुखकी अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान् है। उसका सुख विनष्ट हो जाय और उससे उसके प्रियतमके सुखकी संभावना दिखती हो तो गोपीका रोम-रोम उसके लिये सदैव प्रस्तुत रहता है। गोपीको यह त्याग-भावना करनेका कोई प्रयास अथवा चेष्टा नहीं करनी होती, उसका तो यह चिरन्तन स्वभाव है। अवसर उपस्थित होते ही गोपीके हार्दिक प्रेमका यह स्वभाव तत्क्षण ही उसकी चेष्टा में व्यक्त हो जाता है। पू.गुरुदेवकी सरस वाणी प्रवाहित हो रही थी। वे वैसे तो मौन थे, परन्तु यदा-कदा जब लीला-प्रवाह का वर्णन करने लगते तो उनकी वाणी भी स्फुट शब्दोंमें मुखर हो उठती थी। वैसे स्लेटपट्टी और वर्त्तनी उनके हाथमें रहती और एकाध शब्द उस स्लेटपर अंकित भी होते ही थे। हम दोनों ही परस्पर रस-तन्मय थे। अचानक श्रीभगतजीके आगमनने हमारी रस-तन्मयता तोड़ दी। हम दोनोंकी दृष्टि श्रीभगतजीकी ओर फिर गयी थी। वे कह रहे थे कि एक साधु पू.गुरुदेवसे मिलनेकी इच्छा कर रहे हैं ।

पू.गुरुदेव वार्त्ता स्थगितकर उन समागत अतिथि साधुका सम्मान और स्वागत करने उठ पड़े। मैंने देखा –"साधु तेजस्वी थे और गैरिक वस्त्रधारी थे।" पू.गुरुदेवने उन्हें आसन दिया। आसन ग्रहण करनेके पश्चात् साधुने अतिशय स्नेहकी दृष्टिसे पू.गुरुदेवकी ओर देखा। पू.गुरुदेवने पट्टीपर लिखकर

मुझसे पढ़कर महात्माजीको सुनानेके लिये कहा। मैं गुरुदेवका सन्देश पढ़कर महात्माजीको सुनाने लगा। पू.गुरुदेव का कथन था–" कैसे पधारे प्रभो ! निस्संकोच कहिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? "

वे साधु कहने लगे – "मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसपर तो आपको विश्वास करना ही होगा। मैं अपने कथनको सिद्ध करनेके लिये आपको कोई प्रमाण नहीं दे पाऊँगा। हाँ ! कुछ काल बादमें आपको मेरी बात पूर्णतया सत्य लगेगी। और आप मेरे प्रति कृतज्ञ हो उठेंगे। "

पू. गुरुदेवने कहा – "निस्संकोच कहिये, प्रभो ! मुझे इतना अश्रद्धालु मत समझें।"

वे साधु पुनः मुसकाये और कहने लगे–"मैं सिद्ध जगत्का सन्देशवाहक हूँ। उनका सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। श्रीपोद्दार महाराजके पास मैं पहुँचता, किन्तु वे रजोगुणी लोगोंसे घिरे हैं । अतः मैंने आपको ही यह सन्देश देना उपयुक्त समझा। आप तीर्थराज प्रयागमें कुम्भपर्वपर स्नान करने आये हैं। आप एवं श्रीपोद्दारजीके आगमनसे प्रयागराजमें वर्तमानमें स्थित सिद्ध सन्त-समाज बहुत ही आमोदित है। देखिये ! कल ही प्रथम संक्रान्ति पर्वस्नान होगा। आप पर्वस्नान करने ब्राह्ममुहूर्त्तमें सूर्योदयसे पूर्व ही पहुँचें। उस समय आपका प्रयागराजमें स्थित सिद्ध-सन्तोंसे मिलन-दर्शन तो होगा ही, इस अवधिमें स्नान करनेवाले लोगोंपर अन्तरिक्षचारी ऋषि-महर्षि भी कृपा-वर्षा करेंगे। अतः आपके साथ जो लोग आये हैं , वे भी यदि इस कालमें स्नान करेंगे तो उनका परम कल्याण होगा। मैं यही सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ। आपके शुभ दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हुआ। सिद्ध-समाज एवं अन्तरिक्षचारी सन्त भी यथावसर आपसे सम्पर्क कर लेंगे।

पू.गुरुदेव उन महात्माका सन्देश सुनकर बहुत ही श्रद्धाभिभूत हो उठे। उन्होंने उनके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और सूचनाके लिये अतिशय कृतज्ञता व्यक्त की। पू.गुरुदेवने पश्चात् यह सन्देश श्रीपोद्दार महाराजको भी दे दिया। उस सन्देशका पालन करते हुए कुंभका प्रथम संक्रान्तिस्नान पू. पोद्दार महाराजके परिवार-सहित हम सभी सत्संगी बन्धुओंने ब्राह्ममुहूर्त्तमें सूर्योदयके पूर्व ही किया था। मैं स्नानके समय पू.गुरुदेवके साथ ही था। मैंने देखा – पू. गुरुदेव स्नानके लिये ज्योंही त्रिवेणीसंगम पहुँचे, उनका समग्र शरीर एक विशेष रोमाञ्चित अवस्थाको प्राप्त हो उठा था। स्वयं मुझे तो वहाँ किसी भी

आकाशचारी सन्तके दर्शन नहीं हुए। पू.गुरुदेवसे पूछनेपर उन्होंने अवश्य अनेक उच्चतम सिद्ध महात्माओंकी उस समय उपस्थितिकी बात बतायी और उनके दर्शन-मिलनकी बात भी कही।

इन्हीं दिनोंकी एक घटना और है। मैं पू. गुरुदेवको उन दिनों प्रति दिवस प्रातः सात बजेसे श्रीमद्भागवत मूलपाठ सुनाया करता था। गोरखपुरमें ही हम लोग पू.गुरुदेव की निवास-कुटीके पास एक बिल्ववृक्षके नीचे बैठा करते थे। मैं सप्ताहक्रमसे पाठ करता था और पू.गुरुदेव सुना करते थे। उन दिनों वर्षाकाल था। मेरे पास वस्त्रोंका अभाव था। अतः स्नानके पश्चात् वस्त्र सुखाकर तब पहनकर आना होता था। इसमें यदा-कदा विलम्ब हो जाया करता था। पू.गुरुदेव अपनी घड़ीसे ठीक सात बजे श्रीमद्भागवतपाठ सुनने बैठ जाया करते। मेरा विलम्ब करके आना उन्हें अप्रिय लगता था , यह मैं समझता था, किन्तु वर्षाके कारण कपड़े नहीं सुखा पानेसे विवश था। एक दिवस ज्योंही मैं पाँच-सात मिनट विलम्बसे आया, पू.गुरुदेव मुझपर बिगड़ गये। वे आज अतिशय ही उग्र थे। उसी उग्रतामें वे कह बैठे –"तुम समझते हो, यहाँ केवल राधाबाबा ही कथा सुनते हैं। तुम्हें पता है, मेरे साथ कौन-कौन महासिद्ध लोग आते हैं और श्रीमद्भागवत सुनते हैं ? वे सभी यथासमय मेरी उपस्थितिके साथ यहाँ आ जाते हैं और उनको प्रतीक्षा कराना मुझे सर्वथा असह्य है। तुम्हें कलसे पाठ सुनाना हो तो ठीक समयपर आ जाया करना अन्यथा कलसे मैं पाठ सुनना स्थगित करता हूँ।"

उनकी डाँट इतनी उग्र और कठोर थी कि मैं अश्रु बहाने लगा था। मैंने उनसे इतना ही कहा था–"बाबा ! एक ही धौत वस्त्र रहता है। इसे धोकर प्रतिदिवस सुखाकर तब पहनना होता है, अतः चेष्टा करते-करते विवशतावश पाँच-सात मिनट विलम्ब हो जाता है। फिर मेरे पास समय देखनेके लिये घड़ी भी नहीं है। वर्षाकी झड़ी सूर्यको अनवरत ढके है, क्या करूँ ?" इस मेरे उत्तरपर उस दिवस उनके दयार्द्र स्वभावसे अचानक ही एक अति विलक्षण सत्य उद्घाटित हो गया था। वे बोल उठे थे – तुझे पता है विगत कल और आज दोनों दिवस सनकादि ऋषि तेरी कथामें समुपस्थित थे और वे ठीक समयपर आवें और तू विलम्ब करे , क्या यह शोभनीय है ? अब तो मैं पानी-पानी हो गया था। दूसरे दिवससे मैं इस विषयमें इतना जागरूक हो उठा था कि फिर मेरे आनेमें कभी विलम्ब नहीं हुआ।

एक घटनाका उल्लेख और कर देता हूँ। गोरखपुरके निकट ही देवरिया जिलेमें तमकुही नामक एक स्थान है। पहले ब्रिटिश राज्यमें यह एक स्वतंत्र स्टेट थी। इस स्टेटके राजा साहबका इलाज करने एक नामी वैद्यजी बुलाये गये थे। ये वैद्यजी बहुत ही साधन-परायण थे। इन संत-हृदय वैद्यजीकी पारमार्थिक एवं साधनभूमि अच्छी थी और इन्हें दिव्य सन्तोंके दर्शन होते थे। उन दिनों श्रीपोद्दार महाराजका गीतावाटिकामें प्रतिदिवस सत्संग हुआ करता था। तमकुही जानेका रास्ता गोरखपुर होकर ही था। अतः श्रीवैद्यजीके मनमें श्रीपोद्दार महाराजके दर्शन-सत्संग एवं पू. श्रीराधाबाबाके भी दर्शनकी इच्छा बलवती हो उठी थी। श्रीवैद्यजी एक-दो दिवस गीतावाटिकामें सत्संग-लाभ करते रहे। जब वे तमकुही जाने लगे और बिदाई लेने पू.गुरुदेवके पास पहुँचे तो कहने लगे–"बाबा ! यह वाटिका अतिशय पवित्र एवं तीर्थमयी है। यहाँका वातावरण बहुत ही शुद्ध पारमार्थिक है। यहाँ तो उच्चतम नारदादि महर्षियोंका भी आवागमन होता रहता है। मैंने संकोचवश श्रीपोद्दार महाराजसे तो यह बात इसलिये नहीं कही कि उनके मुखपर उनकी प्रशंसा क्या करूँ; किन्तु आपसे विनम्र निवेदन है कि श्रीपोद्दार महाराजका अलौकिक सत्संग प्रातःकाल, जो भी निर्धारित समय हो, ठीक उसी समय प्रारंभ कर देना चाहिये। उनके सत्संगमें अनेक उच्चकोटिके महात्मागण सूक्ष्मशरीरसे सम्मिलित होते हैं। समयावधि निश्चित नहीं होनेसे उन्हें अनेक बार तो अत्यधिक लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती है, और अनेक बार सत्संगसे वंचित हो जाना होता है। ये सभी साधु अन्तर्जगत्में बड़ा ही महत्व रखते हैं, अतः मैंने आपसे विनम्र निवेदन किया है। यह तो सौभाग्य है कि ऐसे साधुओंका यहाँ निरन्तर आवागमन है। मैं ये सब बातें प्रत्यक्षदर्शी होनेके नाते ही आपसे निवेदन कर रहा हूँ।

पू.गुरुदेवने तबसे यह सदा ध्यान रखा कि श्रीपोद्दार महाराजका सत्संग यथासमय हो।

तीर्थयात्रा-प्रस्थान

(आठवाँ अध्याय)

तीर्थोंकी अनन्त महिमा शास्त्रोंमें वर्णन की गयी है। वे अपनी स्वाभाविक शक्तिसे ही सबका पापनाश करके उन्हें मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं और मोक्षतक दे देते हैं । महाभारत, रामायण आदिके साथ ही प्रायः सभी पुराणोंमें तीर्थोंकी महिमा गायी गयी है । पद्मपुराण और स्कन्दपुराण तो तीर्थमहिमासे परिपूर्ण हैं । तीर्थोंमें किनको कब, कैसे क्या-क्या लाभ हुए तथा किस तीर्थका कैसे प्रादुर्भाव हुआ – इसका अति सुन्दर ढंगसे विशद वर्णन उनमें किया गया है।

स्कन्दपुराण एवं पद्मपुराणके संक्षिप्त संस्करण जब गीताप्रेससे निकाले गये उस समय श्रीपोद्दार महाराजको अन्तर्जगत्से तीर्थयात्राकी प्रेरणा हुई थी। कारण स्पष्ट था – भगवान्के स्वरूपका साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी महात्मा स्वयं 'तीर्थरूप' होते हैं । उनके हृदयमें भगवान् सदा प्रकट रहते हैं। इसलिये वे जिस स्थानमें जाते हैं, वही तीर्थ बन जाता है। वे तीर्थोंको अपने निवाससे 'महातीर्थ' बना देते हैं। धर्मराज युधिष्ठिरने महात्मा श्रीविदुरजीसे यही कहा था –

भवद्विधा भावगवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता।।

(श्रीमद्भा०१।१३।१०।।)

भगवती श्रीगंगाजीने भगीरथसे कहा–"तुम मुझे पृथ्वीपर ले जाना चाहते हो ? अच्छा, मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। देखो, मुझमें स्नान करनेवाले लोग तो अपने पापोंको मुझमें बहा देंगे; परन्तु मैं उनके पापोंको कहाँ धोने जाऊँगी ?" इसके प्रत्युत्तरमें भगीरथजीने कहा –

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसंगात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ।।

(श्रीमद्भा०६।६।६।।)

"इस लोक और परलोककी समस्त भोगवासनाओंका सर्वथा परित्याग किये हुए शान्तचित्त ब्रह्मनिष्ठ साधुजन, जो स्वभावसे ही लोगोंको पवित्र करते

रहते हैं, अपने अंग-संगसे आपके पापोंको हर लेंगे; क्योंकि उनके हृदयमें समस्त पापोंको समूल हर लेनेवाले श्रीहरि नित्य निवास करते हैं ।''

वस्तुतः स्वधर्मपर आरूढ़ आदर्श सिद्ध सन्त-महात्मा जंगम तीर्थ होते हैं।

वैसे पू.पोद्दार महाराजको अन्तर्जगत्की प्रेरणा तो बहुत पहले ही मिल गयी थी किन्तु यह प्रेरणा मूर्त्त तब हुई जब सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका और गीताप्रेसके अन्य ट्रस्टियोंने निश्चय किया कि सन् १९५७ ई०तदनुसार सं. २०१४ वि. में 'कल्याण' पत्रिकाका 'तीर्थाङ्क'के रूपमें विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाय और मुख्य-मुख्य तीर्थ-स्थानोंका सही विवरण जाननेके लिये स्वयं श्रीपोद्दार महाराज एक तीर्थयात्रा-ट्रेन लेकर प्रायः सभी तीर्थोंमें भ्रमण करें। श्रीसेठजी स्वयं भी इसके पूर्व गीताप्रेसकी एक तीर्थयात्रा-ट्रेन लेकर तीर्थोंमें भ्रमण कर चुके थे। इस ट्रेनके कारण 'कल्याण'के ग्राहकोंमें भी आशातीत अभिवृद्धि हुई थी, साथ ही गीताप्रेसकी पुस्तकें भी बहुत संख्यामें विक्रय हुई थीं।

श्रीपोद्दार महाराजका मन इधर अत्यधिक एकान्तप्रिय हो रहा था, अतः उनकी रुचि सैकडों व्यक्तियोंकी व्यवस्था अपने सिरपर लेकर तीर्थयात्रा करनेकी सर्वथा नहीं थीं। किन्तु श्रीपोद्दार महाराजका प्रारम्भसे ही यह शील रहा कि वे श्रीसेठजीके द्वारा हाँके जानेपर जैसे वे नचाते थे, नाचने लगते थे। पू.पोद्दार महाराजने किसीको अपने निजी पत्रमें लिखा –''मैं तो चाहता था–एकान्त तीर्थसेवन किन्तु बदलेमें मिला यह रजोगुणी मनुष्योंका मेला। मैं तीर्थयात्राट्रेनमें जबरदस्ती ले जाया जारहा हूँ। मैंने निश्चय कर लिया कि भगवान्की यही इच्छा है, इसीसे जानेको तैयार हो गया हूँ। ''

परोक्ष स्तरपर वास्तविकता यही थी कि अन्तर्जगत्ने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये श्रीसेठजी जयदयालजीके हृदयमें यह भाव जाग्रत् कर दिया कि वे श्रीपोद्दार महाराजको भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंमें जानेका आग्रह करें, क्योंकि उनके समाग्रहके बिना श्रीपोद्दार महाराज उद्यत होने संभव ही नहीं थे।

१९ जनवरी सन् १९५६को श्रीपोद्दार महाराज गोरखपुरसे काशी पहुँचे। काशीसे ही इस यात्राका शुभारम्भ होना था। वस्तुतः यात्राका प्रारम्भ पूर्वाभिमुखी होना चाहिये था किन्तु अचानक ही उड़ीसामें दंगे हो जानेके कारण यह तय

हुआ कि यात्रा पहले चित्रकूट, प्रयागकी तरफ उत्तरी भारतका भ्रमण करले और तब आगे अग्रसर हो। कार्यक्रमको बदलनेके लिये पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराजको लगभग एक सप्ताह काशीमें ही रहना पड़ा।

पू.गुरुदेव द्वारा काशीका महिमा-वर्णन

ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें काशी संसारकी सर्वाधिक प्राचीन नगरी है। काशीके बारह नाम प्रसिद्ध हैं। काशी, वाराणसी, अविमुक्त, आनन्दकानन, महा श्मशान, रुद्रावास, काशिका, तपःस्थली, मुक्तिभूमि और श्रीशिवपुरी।

जो पृथ्वीपर होनेपर भी पृथ्वीसे संबद्ध नहीं है, साधारण पृथ्वी नहीं—तीन लोकसे न्यारी है, जो अधःस्थित मृत्युलोकमें स्थित होनेपर भी स्वर्गादि लोकोंसे भी अधिक उच्चतर है, जो जागतिक सीमाओंमें परिच्छिन्न होते हुए भी मोक्षदायिनी —सबके बन्धन काटने वाली है, ऐसी भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशी है।

काशी त्रिलोकीका सार है। पापाचारी —दुराचारी यहाँ पापमुक्त होकर देववत् प्रकाशित हो उठते हैं। यह भगवान्‌के त्रिशूलके ऊपर बसी नगरी है। प्रलयमें भी इसका नाश नहीं होता। यहाँ देहत्यागके समय भगवान् मरणोत्सुक प्राणीको तारकमंत्र सुनाते हैं और उससे उसे तत्क्षण ही तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके सम्मुख निजका ब्रह्मस्वरूप प्रकाशित हो जाता है। 'काशी' नामका अर्थ है—जहाँ ब्रह्म मूर्त्त हो। **काश्यां हि मरणान्मुक्तिः**—काशीमें कैसा भी प्राणी मरे, वह मुक्त हो जाता है।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो काशी—विश्वनाथपर अत्यधिक आस्था रखते थे, अतः तीर्थयात्राके उद्देश्यसे काशीमें प्रवेश करते ही पू. गुरुदेवने निर्णय किया कि एक नाव लेकर काशीके सभी घाटोंके दर्शन किये जावें । उन्होंने अपने साथ गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी एवं श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीको लिया। अन्य लोग भी जिनमें श्री शिवनाथजी दुबे, श्रीरामनिवासजी ढंढारिया, श्री बजरंगलालजी बजाज, श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक आदि प्रमुख थे, उनके साथ

थे। लेखक भी इस यात्रामें पू.गुरुदेवके साथ था। पू. गुरुदेव गोप्रेक्षतीर्थ स्थित गायघाटपर बनी डालमियाकोठीमें श्रीपोद्दार महाराजके साथ ठहरे थे। नावसे यहींसे यात्रा प्रारंभ हुई। घाटपर स्थित हनुमानजीके मन्दिरके पास नावपर हम सभी आरूढ़ हुए।

जैसे ही हम लोग नावपर बैठे पू. गुरुदेव श्रीयाज्ञिकजीको संबोधित कर कह उठे– "याज्ञिकजी ! उन्मुक्त गगनमें उड़ते हुए राजहंसको देखकर पकड़ लेनेकी, पकड़कर अपने उद्यानके सरोवरमें अथवा सुन्दर-से पिञ्जरमें रुद्ध रखनेकी लालसा कितने ही सुजनोंकी हो सकती है, परन्तु उसे पकड़ लेनेकी सामर्थ्य सबमें नहीं होती, नहीं हो सकती। भगवान् शंकर जैसी अनन्त वैराग्यके आकाशपथमें उड़ती हुई महाविभूतिको अपनेमें आकृष्टकर धारण करनेकी शक्ति इस काशी नगरीमें ही है। इस काशीनगरीने अपने अप्रतिम पावित्र्यका जाल फेंककर इस श्मशानप्रिय औढरदानी शिव-मरालको अपनी स्थायी निधि बना लिया है। कैसी विलक्षण कृपालु भूमि है यह ! यह पञ्चभूतोंकी रचना सर्वथा नहीं है। यह प्राकृत प्रतीत होती हुई भी अप्राकृत, विशुद्ध सत्वमय है।"

"कहते हैं – श्रीयोगत्रयानन्दजी नामक एक सिद्ध पुरुष पहले भगवान्के सगुण साकार स्वरूपको नहीं मानते थे। वे नैयायिक थे और महर्षि गौतमने स्वयं प्रकट होकर उन्हें काशीमें न्यायवार्त्तिक पढाया था। ये बादमें श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीके शिष्य होगये थे। जब श्रीगोस्वामीजीके अनवरत समझानेपर भी इन्होंने भगवान्के सगुण साकार शिवस्वरूपको नहीं माना और काशीमें 'भगवान् प्रत्येक मरणासन्न प्राणीको भगवन्नाम तारकमंत्र सुनाते हैं'– इन शास्त्रवचनोंको कपोलकल्पित किंवदन्ती ही माना, तो श्रीगोस्वामीजीने उन्हें एक दिवस काशीके राजघाटपर जाकर एक गटरके मुखपर लगे लोहेके ढक्कनको उठानेको कहा। श्रीयोगत्रयानन्दजीने ज्योंही ऐसा किया उन्हें एक विलक्षण दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। वे चकित हो उठे। उन्होंने देखा कि गटरमें एक सद्यजात शिशु पड़ा है। गन्दे जलमें गिरकर श्वास घुटनेसे उसकी मृत्यु आसन्न है। वह ऊर्ध्वश्वास ले रहा है। टूटते श्वासोंके मध्य प्रत्येक हिचकीमें उसे भगवान् शंकर गोदमें ग्रहण किये उसके दाहिने कानमें अपना मुख सटाकर तारक राममन्त्र सुना रहे हैं। श्रीयोगत्रयानन्दजी यह दृश्य देखकर

एक बार तो अभिभूत हो उठे, किन्तु पुनः अविश्वासने उनके मनपर अपना अधिकार कर लिया। उन्होंने सोचा – संभव है, मुझपर किसी सिद्धिका प्रयोग किया गया हो, अतः उन्होंने अपने हाथ-पैर धोकर सर्वथा जागरूक होकर पुनः उस गटरमें झाँका, पुनः उन्हें वही दृश्य प्रत्यक्ष हुआ। अब तो वे पूर्ण विश्वस्त हो, अपने गुरुजीके पास पहुँचे और उन्होंने भविष्यमें सगुण साकार भगवान् शिवकी भक्तिमें ही अपनेको पूर्णतया तल्लीन कर दिया।"

"याज्ञिकजी ! जैसे नवजलधर विचार नहीं करता उच्च-नीच, मलिन-पवित्रका, सर्वत्र समानभावसे बरसकर वह ग्रीष्मका ताप शमित कर देता है, वैसे ही यह काशी नगरी कहाँ देखती है उज्ज्वल-तमोमय भावोंकी ओर; समान रीतिसे बरस रही है इसकी करुणामृतकी धारा सबपर। यह काशीनगरी बड़े-बड़े पाण्डित्याभिमानी धर्मधुरन्धरोंको भी वही गति देती है जो गति यह अपनी सँकरी गलियोंमें विचरण करते विष्ठाभोजी ग्राम्यसूकरको देती है।"

पू.गुरुदेव अपनी स्लेटपट्टीपर काशी-महिमापर धाराप्रवाह लिखते जा रहे थे और गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी उसे पढकर सुना रहे थे।

"जैसे नवजलधरमें सर्वत्र सदैव विद्युत्का निवास है, उसी प्रकार इस काशीके भीं कण-कण, अणु-अणुमें भगवान् शंकर ओतप्रोत हैं। काशीधाम और भगवान् शंकर परस्पर एक-दूसरेमें सदैव अपृथक्, पूर्णतया ओतप्रोत हैं। काशीका एक-एक धूलिकण भी पूर्ण परात्पर भगवान् शंकर है।"

"काशी महाश्मशान है। महाश्मशान सबकी अवश्यंभावी गति है। पापी-से -पापी भी मृत्युके समय श्मशानकी शरण तो पाता ही है। बालघातिनी पूतना, महानिर्दय अघासुर, रावण, कुम्भकर्ण, कंस, जरासंध – सभीकी श्मशानमें तो समान गति ही हुई है। काशी सबको समान आश्रय एवं मुक्ति-गति देनेमें समर्थ होनेसे ही महाश्मशान है। यह सबको अनवरत मुक्तिदान करती है किन्तु स्वयं त्रिगुणात्मक प्रपञ्च में स्थित रहती है , अतः इसे अविमुक्त संज्ञा दी गयी है।"

"काशी विलक्षण कृपामयी है। कहते हैं – पहले काशी भगवान् माधवकी पुरी थी। एक बार भगवान् शंकरने किसी बातपर कुपित होकर अपने त्रिशूलसे ब्रह्माजीका मस्तक काट दिया था। ब्रह्महत्याके फलस्वरूप वह मुण्ड

उनके करतलसे संलग्न हो गया। भगवान् शंकर अनवरत द्वादश वर्षोंतक बदरीनारायण, कुरुक्षेत्र, ब्रह्महृद आदि तीर्थोंमें घूमते रहे, किन्तु न तो वे ब्रह्महत्यारूप पापसे मुक्त हुए एवं न ही ब्रह्महत्याके प्रतीकरूपमें उनके हाथसे संलग्न वह मुण्ड ही उनके करतलसे पृथक् हुआ। अन्तमें ज्योंही वे काशीकी परिधिमें प्रविष्ट हुए ब्रह्महत्याने उनका पीछा छोड़ दिया और यहाँ स्नान करते ही कर-संलग्न कपाल भी पृथक् हो गया। जहाँ वह कपाल पृथक् हुआ वही कपालमोचनतीर्थ कहलाया। भगवान् शंकर काशीकी इस करुणावर्षिणी कृपाशक्तिको देखकर इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने अपने श्वसुरालय हिमालयमें रहना त्यागकर काशीमें ही नित्य निवास स्वीकार कर लिया। भगवान् माधवसे उन्होंने अपने आवासके लिये यह नगरी माँग ली। भगवान्ने द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें से विश्वनाथात्मक ज्योतिर्लिंगके रूपमें अपनेको काशीमें ही प्रतिष्ठित किया है। भगवान् शिव अनन्त हैं किन्तु काशीकी गली-गलीमें, गृह-गृहमें इनके इतने मन्दिर हैं कि इनकी नामावली दे पाना ही असंभव है।''

''याज्ञिकजी ! काशीकी महिमा उद्घोष करती है कि भक्ति सभीके लिये नितान्त आवश्यक है । भक्तिके अभावमें न अभ्युदय संभव है, न ही अपवर्गकी सिद्धि। क्योंकि सब प्रकारके कल्याणका उदय, विस्तार, इस भक्तिरूप मूल स्रोतसे ही होता है; यद्यपि काशी उन भ्रान्त लोगोंको भी सदासे आश्रय देती आयी है, जो भक्तिका आश्रय गहण करना तो दूर, उसकी अत्यन्त अवहेलना करते हैं। ऐसे असंख्य लोगोंको काशीने अपना आश्रय दिया है जो मात्र ज्ञानकी संथा लेकर आत्मबोधके लिये सतत प्रयत्नशील रहे है। सर्वमंगलनिकेतन भगवान् आशुतोषकी भक्ति उन्हें सहज ही ज्ञानकी प्राप्ति करा देती, इसके अवान्तर फलरूपमें ही उन्हें स्वतः आत्मबोध हो जाता, परन्तु उन्होंने इस ओर ताका तक नहीं है। ज्ञानलाभके लिये इन असंख्य लोगोंने अथक श्रम किया है, किन्तु सच्ची बात यही है कि इतना श्रम करनेपर भी परिणाममें हाथ उनके लगा है, ज्ञानाभिमान एवं विद्याभिमान ही। सच्चे ज्ञानकी आलोकमाला उनके मानसतलको, उनकी बुद्धिको उद्भासित नहीं कर सकी है। उन्हें तो परिणाममें हाथ लगा है – केवल क्लेश-ही-क्लेश, साधनश्रम मात्र; इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। उन्हें इस ज्ञानाभिमानके फलस्वरूप साधनजन्य यत्किंचित् सिद्धियाँ भी नहीं मिलीं। मिलें कैसे ? समस्त सिद्धियोंके मूल तो भगवान् आशुतोषके

श्रीचरणोंकी अर्चना है; उनके सम्बन्धसे शून्य तो कोई भी साधन –किसी भी शुभ फलका सृजन कर जो नहीं सकते।"

"याज्ञिकजी ! जैसे थोथी भूसीके ढेरका कूटनेपर अन्नकणोंकी उपलब्धि नहीं होती, निरर्थक श्रम मात्र ही होता है, इसी प्रकार श्रेयकी निर्झरिणी भगवान् आशुतोषकी भक्तिकी जो अवहेलना कर देते हैं, वे शुष्क ज्ञानलाभके लिये भले ही कुछ भी कर लें; उनके लिये अवश्यम्भावी परिणाम मात्र क्लेश ही होता है।"

"याज्ञिकजी ! इस काशीका असंख्य योगीगण भी आश्रय ले चुके हैं, योगके साधनोंकी चरमोत्कर्ष दशामें वे अवस्थित भी हो चुके, किन्तु उन्हें अपने सच्चे लक्षकी प्राप्ति तो दूर, उसकी झाँकी भी नहीं हुई। हाँ ! वे अपनी योगसिद्धियोंका चमत्कार जगत्में जादूगरोंकी तरह प्रदर्शित अवश्य ही कर गये हैं। और तब वे लौटे भक्तिकी ओर । भक्तिमार्ग – राजमार्गका अवलम्बन जैसे ही उन्होंने किया, उनकी सब चेष्टाएँ समर्पित होने लगीं भगवान् आशुतोषको। उनके इन्द्रियोंका समस्त व्यापार होने लगा भगवान् औढरदानीके उद्देश्यसे ही। इस कर्म-समर्पणने शीघ्र ही समग्र मनका मैल धो दिया। फिर तो भक्तिका उन्मेष हुआ ही और स्वरूपज्ञान होनेमें विलम्ब ही क्या था, वह तो स्वतः ही हो गया। इस प्रकार इन योगियोंने अतिशय सुगमतासे परमपदकी प्राप्ति कर ली। भगवान्की भक्तिका आश्रय कर लेनेपर कोई भी व्यक्ति अभीष्ट सिद्धिसे च्युत हो जाय, यह तो संभव ही नहीं।"

मैं देख रहा था – पू.गुरुदेवकी दशा ही उपदेश देते-देते कुछ विलक्षण हो रही है। उनके नेत्र-प्राण-मन भगवान् आशुतोषके चिदानन्द श्रीविग्रहकी अनन्त अपरिसीम पारावारविहीन महिमामें डूबने-उतराने लगे हैं। हम लोग जिस गंगाघाटके समीप पहुँच रहे थे, उसके पास ही थोड़ी ही दूरपर भगवान् विश्वनाथका मन्दिर अवस्थित था। अतः सबका यही मत हुआ कि यहाँ नावसे उतरकर एक बार काशी विश्वनाथ एवं माता जगदम्बाके दर्शन किये जावें। सभी लोगोंने नावको किनारे छोड़ दी और घाटसे छोटी सीढ़ियाँ चढ़कर एक गलीसे विश्वनाथ मन्दिरकी ओर चलने लगे। काशीकी गलियाँ इतनी छोटी-छोटी हैं कि अतिशय कठिनाईसे दो-तीन व्यक्ति साथ चल सकते हैं। पू.गुरुदेवके पार्श्वमें श्रीशिवनाथजी दुबे थे, वे काशीकी गलियोंसे परिचित थे। वे पू.

गुरुदेवका हाथ पकड़े आगे-आगे चल रहे थे, हम सभी लोग पू.गुरुदेवके पीछे थे। हमने देखा सामने गलीके किनारे बंगाली गृहस्थके मकानके आगे बनी चौकीपर एक सात-आठ वर्षकी कन्या सर्वथा नग्न खड़ी है। मुझे डर लगा कि पू.गुरुदेवकी कहीं इस नग्न कन्यापर दृष्टि पड़ी तो वे पाँच-सात दिवसके अनवरत उपवासकी घोषणा नहीं कर बैठें। मैं कुछ आगे बढ़कर पू.गुरुदेवकी दृष्टि मेरी अपनी ओर केन्द्रितकर उस दृश्यसे उन्हें निवारित करना चाहता था कि मैंने देखा पू.गुरुदेवके ठीक आगे एक मछुआरिन अपनी टोकरीमें मृत मछलियाँ लिये चल रही है। गली इतनी सँकरी थी कि पू.गुरुदेवको न तो मैं शीघ्र गति दिलाकर उस मछुआरिनसे आगे निकल जानेको कह सकता था, न ही उसकी विशाल टोकरीमें भरे मृत मत्स्योंकी वीभत्स दुर्गन्धसे पू.गुरुदेवकी रक्षाका कोई उपाय ही अन्वेषण कर पा रहा था। अचानक मैंने देखा वह नग्न लड़की उस मछुआरिनको पुकार रही है। उसकी पुकार इतनी तीव्र थी कि निश्चय ही पू.गुरुदेवकी दृष्टि उस ओर उठ ही गयी थी। मेरा अनुमान था पू. गुरुदेव उस पूर्ण नग्न बालिकाको देखते ही नेत्र नीचे कर लेंगे और तब उनके पाँच-सात दिवसके भिक्षात्यागकी उद्घोषणा हो जायगी। परन्तु हुआ कुछ दूसरा ही। पू.गुरुदेवकी दृष्टि ज्यों ही उस बालिकापर पड़ी, वे श्रद्धावनत होकर वहीं बैठकर उस बालाको प्रणाम करने लगे। मैंने देखा उस बालिकाके अमृतस्यन्दी अधरोंपर एक उन्मुक्त स्मित नाच उठा है। उस बालिकाके अरुण अधरोंपर आयी मुसकान वस्तुतः शिशु-स्वभावसुलभ हँसी नहीं थी। वह तो अघटनघटनापटीयसी योगमाया-शक्तिकी मुसकान थी। अनन्त ऐश्वर्यमयी भगवती अपना किंचित् करुणावैभव पू.गुरुदेवको प्रत्यक्ष करानेके उद्देश्यसे उस बालिकाके रूपमें मुसका रही थीं। उस मुसकानको देखते ही पू.गुरुदेवमें तो मानका सर्वथा अभाव होकर सच्चे दैन्यका संचार हो उठा था। हम सभीने देखा पू. गुरुदेव अति अस्फुट स्वरमें बहुत ही मन्द शब्दावली उच्चारण कर रहे हैं और अनवरत उस सर्वथा निर्वस्त्र कन्याको सिर धरापर पटक-पटककर प्रणाम कर रहे हैं।

"हे महामाये ! अपरिच्छिन्नैश्वर्यमयी माँ !! तुम्हारे ऐश्वर्यस्वरूप एवं महिमाका कहाँ आदि एवं अन्त है ! सब कुछ अपरिसीम ! हे सर्वनियामिके ! सर्वत्र सबके बाहर-भीतर अवस्थित ! सबके आत्माओंकी आत्मा ! शेष, शंकर,

ब्रह्मादि भी तुम्हारी मायासे सदैव विमोहित रहते हैं। ऐसी महामहिम, सर्वकारणकारण, सवनिंयंत्री, सर्वमायाधीश्वरी, तुम्हारे सम्मुख मुझ दीन-हीनका अस्तित्व ही क्या है ? प्रज्ज्वलित अनन्तकोटि सूर्य जिसके तेजके सम्मुख मात्र एक खद्योतके समान भी नहीं प्रतीत होते, मेरी तुलना तो वहाँ भला क्या कह कर की जा सकती है, इतनी महान् तुम और इतना तुच्छातितुच्छ मैं ! फिर भी कृपामयी माँ ! तुम अपनी अमोघ कृपावर्षा करती मेरे सम्मुख व्यक्त हो। अपने अनन्त कृपामय स्वरूपसे तुम कदापि स्खलित नहीं हो सकती, इस शाश्वत सत्यकी आशासे मैं अंजलि बाँधे तेरे श्रीचरणोंकी शरणमें हूँ।"

"हे माते ! रजोगुणी मति है मेरी ! प्राकृत रजमें तमका अंश न रहे, यह संभव नहीं, इसलिये तमकी छाया तो मेरी बुद्धिमें है ही। तमोगुणजन्य अज्ञता भी तो मेरी चिर संगिनी बनी रहेगी ही। माँ ! कहाँ तुम विशुद्ध सत्वमयी, मेरे -जैसे नगण्यतमपर, तुझ सुमहत्तमकी कृपादृष्टि पड़े, यह संभावना भी है या नहीं, यह भी कौन बताये ? माँ ! तेरी अयाचित अनुकम्पाराशिकी बलिहारी है !"

पू.गुरुदेव अस्फुट भाषामें स्तुति करते जा रहे थे। सभीने किसी प्रकार प्रयत्न करके पू.गुरुदेवको उस विनयावेगसे उत्थित किया। इसके पश्चात् तो पू.गुरुदेवका एक हाथ दुबेजी थामे रहे, और दूसरा हाथ श्रीरामनिवासजी ढ़ंढारिया। किसी प्रकार भावाविष्ट दशामें ही उन्हें विश्वनाथ मन्दिर लाया गया।

विश्वनाथ मन्दिरमें पू.गुरुदेव अर्धबाह्यावेशमें ही दर्शन करते रहे। दर्शन एवं पूजनके पश्चात् ज्योंही गुरुदेव अन्नपूर्णा मन्दिरकी ओर जानेको उद्यत हुए एक पण्डा दौड़ा हुआ आया और उसने मन्दिरके प्रांगणके एक ओर सौभाग्यगौरी और गणेशजीके दर्शनोंका आग्रह किया। प्रत्येक मन्दिरके प्रांगणमें जैसे ही पू.गुरुदेव खड़े होते थे, ऐसा प्रतीत होता था, मानो मूर्त्ति चिन्मय जाग्रत् होकर मुसका उठती थी। मैंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी को यह चमत्कार संकेत करके बताया। मैंने उनसे जिज्ञासा भी की कि यह मेरी मात्र मानसिक कल्पना ही है, अथवा उन्हें भी ऐसा ही अनुभव हो रहा है। उन्होंने यही बात श्रीयाज्ञिकजीको निवेदन की। मेरी बातसे दोनों ही सहमत थे। पंडाके द्वारा प्रेरित किये जानेपर पू.गुरुदेवने श्रृंगारगौरी, अविमुक्तेश्वर महादेव

तथा श्रीसत्यनारायण भगवान्‌के भी दर्शन किये। इस दिन पू.गुरुदेवकी दशा कुछ इतनी भावाभिभूत रही कि उन्हें आगे किसी मन्दिरकी ओर नहीं ले जाकर सीधे उनके निवास ही पहुँचा दिया गया। उस दिवस अधिकांश काल मैंने देखा पू.गुरुदेव होशमें नहीं रहे थे। उनके नेत्र बरसते रहे।

बहुत दिनों पश्चात् पू.गुरुदेवने मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी, गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको उस दिवसकी अनुभूति सुनायी थी। वे कह रहे थे कि जैसे ही उनकी दृष्टि उस मुसकाती बालिकापर पड़ी, तत्क्षण ही आदिशक्ति महामाया उनके सम्मुख व्यक्त हो उठीं। वे किसी प्रकार उनकी वन्दना कर पाये, किन्तु उनकी स्थिति ऐसी हो गयी कि उन्हें सर्वत्र शिवाशिव ही परस्पर समालिंगित, विराजित दिखने लगे। यह दर्शन उन्हें अनवरत २० घण्टेतक होता रहा। तब जाकर वे प्रकृतिस्थ हो पाये।

बिन्दुमाधवतीर्थके पुजारीको उपदेश

दूसरे दिवस पुनः प्रभात-ही-प्रभात **पू.गुरुदेवकी** नावयात्रा प्रारंभ हुई। गौघाटसे चलते हुए पञ्चगंगाघाटतक हम लोग नावसे चले। कहा जाता है कि यमुना, सरस्वती, किरणा एवं द्यूतपापा नदियोंका गंगाजीसे यहाँ संगम हुआ है। इससे ही इस घाटका नाम पंचगंगाघाट पड़ा है। वर्त्तमानमें तो इस प्रकारका संगम दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु गुप्तरूपसे इन नदियोंका यहाँ समावेश होता है, ऐसी किंवदन्ती है। इस घाटमें विष्णुकाञ्चीतीर्थ एवं बिन्दुतीर्थ भी हैं।

अग्निबिन्दु नामक ब्राह्मणको यहाँ भगवान् नारायणका साक्षात्कार हुआ था, और उन्होंने ब्राह्मणसे कहा था कि मैं यहाँ शाश्वत निवास करूँगा। पुरातन कालमें यहाँ भगवान् बिन्दुमाधवका बहुत ही विशाल मन्दिर था, जिसे औरंगजेबने तुड़वाकर मस्जिदका निर्माण करवा दिया था।

हम लोग बिन्दुमाधव मन्दिरमें दर्शनार्थ ज्योंही पहुँचे, पू.गुरुदेवका चित्त किसी अलौकिक जगत्‌को संस्पर्श करने लगा था। नारायण भगवान्‌की मूर्त्तिको उस समय पुजारी स्नानार्चन करवा रहा था।

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्या नारण्या ग्राम्याश्च ये ।।
ॐ नारायणाय नमः। स्नानीयं जलं समर्पयामि ।।

ब्राह्मणद्वारा मंत्र बोले जा रहे थे। एक तपोनिष्ठ संन्यासीको देखकर वह वृद्ध ब्राह्मण श्रद्धाभिभूत अपना पूजार्चन अपने पुत्रको सम्हला मन्दिरप्रांगणमें स्वागतार्थ आ गया था।

उसने पू.गुरुदेवको साष्टांग प्रणाम किया। वृद्ध ब्राह्मण वस्तुतः सच्चा नारायण-भक्त था। मन्दिरके पीछे ही उसका निवास था। सघन वृक्षावली उस निवासको घेरे थी। पचास वर्षोंसे ब्राह्मणकी नारायण-अर्चना निर्बाध चल रही थी। ब्राह्मण जब शिशु था, उस समय उसकी शैशव-क्रीड़ामें भी नारायण सने थे। जब ब्राह्मणने गृहस्थ-भार सँभाला, तब भी अपने सर्व-कर्म वह नारायणाधीन रहकर ही करता रहा। और अब तो उसकी अवस्था ढल-सी गयी थी। मन्दिरका पूजन-अर्चन अपने नवयुवक बालकके कन्धोंपर डाल, वह ब्राह्मण एकान्तसेवी होकर नारायणमें ही लीन-सा हो रहा था। विगत रात्रि उसे स्वप्न हुआ था। स्वप्नमें उसे भगवान् नारायणने ही आदेश दिया था कि मन्दिरमें दूसरे दिवस वे स्वयं ही एक सुतपस्वी संन्यासीके वेषमें दर्शनार्थ आवेंगे। अतः वह निरे प्रभातसे ही पू.गुरुदेवकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने बहुत ही श्रद्धापूर्वक पू.गुरुदेवका चरण-पूजन किया और उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित माला पहनायी। उसने बहुत-से फल भी पू.गुरुदेवको भेंट किये। हम सभी लोग उस ब्राह्मणकी निर्मल भक्तिसे अभिभूत हो उठे। वह हम सभीके सम्मुख मन्दिरकी पुरातन महिमाका उल्लेख कर रहा था। मन्दिरमें आये अयाचित दान द्वारा ही वह ब्राह्मण अपना जीवननिर्वाह करता था। उस सच्चे ब्राह्मणसे मिलकर पू.गुरुदेवके आनन्दकी सीमा नहीं रही। हम लोगोंको मन्दिरसे विदा करते समय वह वृद्ध ब्राह्मण बहुत ही भावुक हो उठा था। उसने पू.गुरुदेवसे दो शब्द उपदेशके प्रदान करनेका बहुत ही आग्रह किया। पू.गुरुदेवने अपनी स्लेटपट्टीपर लिखकर उसे निम्न संदेश दिया – "

ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठ-भासारुणाय ततनु-द्विजकुन्दपंक्ति।
ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्याऽऽर्द्रयार्पितमना न पृथक् विवृक्षेत्।।
श्रीमद्भा०३।२८।३३।।

"ब्राह्मणदेव ! अहो ! देखो ! प्रत्यक्ष देखो !! आपकी इष्टमूर्त्ति श्रीहरिके अधरोंपर नित्य सुविराजित इस चिन्मयी मुसकानको प्रत्यक्ष देखते रहो; इसमें बस, लीन हो जाओ। ध्यान करते-करते अपनेको विलीन कर देनेका सर्वोत्तम

स्थल यही तो है। ओह ! इन अरुण अधरोष्ठकी अरुणिम कान्तिसे कुन्दपंक्ति-सदृश दन्तावलिपर भी कैसी लालिमा-सी छायी हुई है। बाहर मूर्त्तिमें मुसकाते श्रीहरिको देख रहे हो तो ! वे ही आपके अन्तर्हृदयमें भी सुविराजित हैं। और यदि यह सत्य आपको प्रत्यक्षगोचर हो जाय तब तो कहना ही क्या कि वे ही आपका पुत्र, परिवार, गृह-परिजन और सम्पूर्ण दृश्य मात्र हैं। इन श्रीहरिको सर्वत्र देखते हुए इन्हींमें तन्मय हो जाओ। सुनो ! मनको प्रेमरसमें डुबा दो, डुबा-डुबाकर पूर्णतया मसृण कर लो; फिर इस तुम्हारे मसृण मनको प्रभुकी हास्यकिरणोंके सम्मुख कर दो। बस, अब इन हास्य किरणोंको आपके मनको आत्मसात् करनेमें किंचित् भी विलम्ब नहीं होगा। परन्तु यह सब तभी होगा, जब श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कुछ भी देखनेकी आपकी वासना रहेगी ही नहीं।''

पू.गुरुदेवका उपदेश श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीने पढ़कर ब्राह्मणदेवताको सुनाया। उस वृद्ध ब्राह्मणका तो रोम-रोम पू.गुरुदेवका आदेश सुनकर कृतकृत्य हो उठा। वह ब्राह्मण पू.गुरुदेवको अपने गृहमें भगवान् नारायणका प्रसाद ग्रहण करनेका बहुत ही आग्रह करने लगा। पू.गुरुदेवने उसके द्वारा दिया एक फल भिक्षारूपमें ग्रहण करनेका आश्वासन देकर उस मन्दिरप्रांगणसे प्रस्थान किया।

गोपालमन्दिरमें बालगोपालके दर्शन

यहाँसे हम लोग चौखम्भा मुहल्ला होते हुए गोपालमन्दिर पहुँचे। इस मन्दिरमें श्रीमद्वल्लभाचार्य–सुपूजित श्रीगोपालजी एवं श्रीमुकुन्दरायजीके विग्रह हैं।

गोपालमन्दिरमें मंगला आरतीके दर्शन खुलने वाले थे। मन्दिरके बाहर एक ब्रजवासी कीर्त्तनियाजी पद गारहे थे।

कजरीकौ पय पियहु लाल (मेरे) जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसे देखि और ब्रजबालक त्यों बल-बैस चढ़ै।।
पुनि पीवत हीं कच टकटोरत, झूठहि जननि रढै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै ।।

पू.गुरुदेव स्लेटपट्टीपर लिख-लिखकर सभीको इस पदका भाव समझाने

लगते हैं – "ओह ! जिनसे इस जगत्का सृजन, संस्थान एवं संहार है, जिनकी सत्तापर ही सम्पूर्ण जगत्की सत्ता अवलम्बित है, जगत्का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हैं, जो सर्वत्र हैं, अखण्ड, अबाध ज्ञानसम्पन्न हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जो अपने संकल्पमात्रसे पद्मयोनिमें वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमें योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हो जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उन सर्वैश्वर्यनिकेतन श्रीकृष्णचन्द्रका कजरीके दुग्धपानसे उनकी वेणी लम्बी हो जायगी, इस उल्लासमें भरकर दूध पीने लग जाना, साथ-ही-साथ अपने घनकृष्ण केशोंपर हाथ रखकर देखते भी जाना कि वेणी वास्तवमें बढी या नहीं, अहा ! कितना विमोहक है। ओह! जब वेणी उन्हें बढती नहीं दीखती,तब उन्हें अपनी जननीकी वञ्चनाका भान होता है। उस समय उनके मुखारविन्दपर नाचती हुई विविध भावलहरियोंकी शोभा कैसी विलक्षण होती है, इसे तो कोई सूरदासजीके समान देखनेवाला ही अनुभव कर सकता है। पराजयका रोष, अब भविष्यमें दुग्धपानसे विरत होनेकी भावना, जननीके प्रति अविश्वास, क्षुधाकी निवृत्ति, दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति –ये सब भाव एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो उठते हैं। यशोदारानी इन्हें देख-देखकर अपनी हँसी संवरण नहीं कर पा रही हैं। "

पू.गुरुदेवकी वर्त्तिका स्लेटपट्टीपर लिखती जा रही थी। मन्दिरमें नवागन्तुक अन्य वैष्णव भी पू.गुरुदेवको घेरकर खड़े हो गये थे। अनेक वैष्णव श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीसे पू.गुरुदेवका परिचय पूछ रहे थे। कीर्त्तनियाजीने उस पदगायनकी समाप्तिपर दूसरा पदगायन प्रारंभ कर दिया था।

मुखपर चन्द डारौं वारि ।
कुटिल कचपर भौंर वारौं, भौंहपर धनु वारि।
भाल केसर तिलक छबिपर मदन सत-सत वारि ।।
नयन खंजन मीन वारौं, कमलके कुल वारि।
झलक ललित कपोल छवि पर मुकुर सत-सत वारि ।
नासिका पर कीर वारौं, अधर विद्रुम वारि ।
दसनपर कन वज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि ।।
चिबुकपर चित वित्त वारौं प्रान डारौं वारि ।
सूर प्रभुकी निरखि शोभा को सकै निरुवारि ।।

कीर्त्तनियाजीके कीर्तनोंके मध्य ही दर्शन खुल गये थे। पू.गुरुदेवके सम्मुख गोपालजीकी बालमूर्त्ति प्रत्यक्ष थी।

यह क्या ! पू.गुरुदेवको आनन्दातिरेकवश आत्मविस्मृति हो रही है। उनके रोम-रोमसे दर्शनजन्य आनन्दका मानो प्रस्फोट हो रहा था। पू.गुरुदेवके सम्मुख मन्दिर-स्थित लड्डूगोपालकी मूर्त्ति थी ही नहीं। वे तो देख रहे थे – यशोदारानीने विधिवत् उबटन-स्नान आदि कराके अपने कन्हैयाको सजाया-बैठाया है। तत्क्षण ही पू.गुरुदेवके हृदयमें ऐसा भावोद्दीपन हुआ कि उन्हें कार्य-कारण, भाव-अभाव – सभी वस्तुओंमें उनके आराध्य श्रीकृष्ण ही भरे दृष्टिगोचर होने लगे। उनके सामने तो वात्सल्यरसवितरण की प्रकृष्ट प्रक्रिया, वात्सल्य-रसास्वादनकी एक पवित्रतम प्रणाली , भक्तमनोरथपूर्त्तिकी एक मधुर मनोहर झाँकी प्रस्तुत कर रहे थे, उनके आराध्य बाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्ण-चन्द्र ! इस झाँकीकी जय हो ! जय हो !!

परस्पर जुड़े हुए तारोंमें किसी एक पर स्वरलहरी उदय होते ही अन्य तार भी झंकृत हो ही उठते हैं। इसी नियमसे पू.गुरुदेवके हृदय-तन्तुपर उदय हुई लीलोन्मेषकी सुधा-धारासे सारा वातावरण ही रसमय हो उठा था।

पू.गुरुदेव देख रहे थे – सर्वान्तर्यामी, सर्वनियामक, उनके आराध्य वात्सल्यरस-सुधापानकी उत्कट अभिलाषावश अपने बाल्यावेशके अन्तरालमें अपना सर्वैश्वर्य, अपनी अशेष नियामकता छुपाये ब्रजरानी यशोदाके सामने बालक्रीड़ा कर रहे हैं । पू.गुरुदेव सर्वथा ही विस्मृत कर गये कि वे काशीमें गोपालमन्दिरमें दर्शनार्थ आये हैं । उन्हें तो बस यही अनुभव हो रहा है कि ब्रजपुरके जल,अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आदित्य, चन्द्र, तारिकायें, आकाश, तम, तेज – इन सबके अधिष्ठाता देवता, उनके आराध्य श्रीकृष्णको अपने-अपने नेत्रोंसे निहार-निहारकर कृतकृत्य हो रहे हैं । कैसी विलक्षण झाँकी है !

पू.गुरुदेवके सम्मुख आज श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रियोंके नियामक नहीं हैं, अपितु सभी इन्द्रियाँ उनका नियमन कर रही हैं । अपनी हथेलीपर रक्खे जननी द्वारा प्रदत्त नवनीतपिण्डका सुवास उन्हें अतिशय आकृष्ट किये है। सबके हृदय-मनके भीतर रहनेवाले श्रीकृष्ण आज रसवश आनन्दोपभोगके लिये परम चञ्चल हैं। आज वे सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण अदृश्य द्रष्टा नहीं, आज तो वे अपने इन्द्रनीलद्युति श्रीअंगोंकी शीतल किरणोंसे ब्रजेश्वरीके हृदयको उद्भासित कर रहे हैं, अपनी नवजलधर-कान्तिसे उन्हें सिक्त एवं अपनी परम दिव्य

सुरभिसे उन्हें सुरभित करते हुए वे आज पू.गुरुदेव के हृदयरूपी ब्रजप्रदेशको भी अपनी विहारभूमि बनाये हैं । अपने परम रमणीय बालचापल्यका प्रकाश करते हुए अहा ! पू. गुरुदेवके हृदयदेशमें वे आज अपनी कैसी विलक्षण लीला-माधुरी प्रकट कर रहे हैं । पू. गुरुदेव बस, जड़वत् क्या निहार रहे हैं, यह तो उनका स्वसंवेद्य अनुभव ही था, हम सब तो यही देख रहे थे कि उनके नेत्र सर्वथा अचंचल स्थिर हुए किसी विलक्षण रसमें डूब गये हैं। पू. गुरुदेवका रोम-रोम अपने आराध्यकी किसी विलक्षण छविको निहारता आनन्दसे बेसुध होता जा रहा था। उनके हाथ किसी परम विलक्षण सात्विक आवेशसे कम्पायमान जो हो रहे थे। रसस्रोत में डूबते-उतराते रहनेके कारण पहलेसे ही आनन्दस्थिर हुआ उनका चित्त और भी स्थिर हो उठा था। उसकी प्रबल लहरोंसे बुद्धि भी ढ़क गयी थी। पू. गुरुदेवके सामनेसे गोपालमन्दिर लुप्त ही हो गया था। वे कहाँ किस उद्देश्यसे आये हैं , स्वयं कौन हैं, उन्हें कुछ भी स्मृति नहीं रही थी। गोपालमन्दिरका पुरातन भवन, मन्दिरप्रांगण, स्तंभ, वेष्टन, दर्शनार्थ खड़े वैष्णवोंकी भीड़ – पू.गुरुदेवके सामनेसे सब विलुप्त था।

पू.गुरुदेवकी ऐसी विलक्षण दशा देखकर सभी लोगोंने यही निर्णय किया कि उन्हें शीघ्र ही उनके निवास पहुँचा दिया जाय। गोपालमन्दिरमें उस समय सम्प्रदायके काशीपीठके आचार्य, उनकी विदुषी पुत्री और परिवारके सभी वैष्णव थे। सभी पू.गुरुदेवकी मन्दिरके ठाकुरके दर्शन करते ही, हुई विलक्षण भाव-दशा देखकर मुग्ध थे। पू.गुरुदेवको मन्दिरसे लाकर उनके निवासमें भावदशामें ही बैठा दिया गया। कुछ काल पश्चात् पू.गुरुदेवकी भावदशा जब संवरित हुई तो श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके जिज्ञासा करने पर पू.गुरुदेवने उनसे कहा कि उनका समग्र दृश्य विलुप्त हो गया था और उनके सम्मुख बच रहे थे – नृत्यपरायण श्रीकृष्ण। उस समय एक नही, दो नहीं, अगणित श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे थे। उन्हें दृष्टिगोचर होरहा था – गोपालमन्दिरके स्थानपर नन्दभवन और जो आचार्य थे उनके स्थानपर ब्रजेश्वरी यशोदारानी। उनको यही दृष्टिगोचर हो रहा था कि ब्रजेश्वरी यशोदारानी दधिमन्थन कर रही हैं और दधिमन्थनकी ध्वनिमें अपनी कटिकिंकणी और पदनूपुरोंका स्वर मिलाकर उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण एक नहीं, दो नहीं; असंख्य रूपमें नृत्य कर रहे हैं। अपने नीलमणिके मुखारविन्दसे प्रसरित शत-सहस्र सौन्दर्यमन्दाकिनीकी धाराओंमें अवगाहन करती ब्रजेश्वरी यशोदामैया

अपने कोटि-कोटि प्राणोंको उनपर न्यौछावर कर दे रही हैं। । दधिमन्थन करते उनके हाथ रुक जाते हैं । परन्तु श्रीकृष्णका नर्त्तन-आवेश विरमित नहीं होता। वे नाचते ही जाते हैं। यशोदामैया चकित हैं । वे निर्णय नहीं कर पातीं कौन श्रीकृष्ण उनके अपने पुत्र हैं। एक-सी आकृति, एक-सा सौन्दर्य, एक-सा नर्त्तन। सभी आकृतियोंमें किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं । प्रेमभ्रान्त यशोदारानी सभीको अपना पुंत्र मानने लगती हैं।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि इस लीलादर्शनमें वे अपने आपको ही भूल गये। बहुत काल तक उन्हें यही दृश्य दिखता रहा। बहुत काल पश्चात् जब उनका आवेश शिथिल हुआ तो उन्होंने जल पिलानेके लिये श्रीभगतजीको श्रीरामसनेहीजीको बुलानेका संकेत किया।

भगवती विशालाक्षी मन्दिरमें कृपा-चमत्कार

तीसरे दिवस सभी लोगोंके सहित पू.गुरुदेवकी नौका-यात्रा मणिकर्णिकाघाट पर ही पर्यवसित हो गयी। इस घाटको वीरतीर्थ भी कहते हैं। इस धाटके ऊपर मणिकर्णिका कुण्ड है, जिसमें चारों ओर सीढ़ियाँ हैं और इक्कीस सीढ़ी नीचे जल है। इस कुण्डकी तहमें एक भैरवकुण्ड भी है। इस कुण्डका पानी प्रति आठवें दिवस निकाल दिया जाता है, और एक छिद्रसे स्वच्छ जलधारा अपने-आप निकलती है, जिससे कुण्ड भर जाता है। वीरेश्वरमन्दिर इस घाटका मुख्य मन्दिर है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा और सभी साथ आये लोगोंने इस वीरेश्वरतीर्थका जल अपनेपर छिड़का और वीरेश्वरमन्दिरके दर्शन किये।

वीरेश्वरमन्दिरके दर्शनोंके पश्चात् सभी लोग विशालाक्षी-मन्दिरके दर्शन करने गये। भारतवर्षके इक्यावन शक्तिपीठोंमेंसे एक शक्तिपीठ काशीमें यह विशालाक्षी-क्षेत्र है। यहाँ भगवती सतीका दक्षिण कर्ण-कुण्डल गिरा था। इन भगवती विशालाक्षीके भैरव कालभैरव हैं। हम लोग जब विशालाक्षीमन्दिर पहुँचे तो पुजारी मन्दिरमें देवीका नित्यकालीन पूजन करके, मन्दिरमें ताला लगाकर अपने घर चला गया था। वैसे मन्दिरके मुख्यद्वारके कपाटमें लोहेके

छड़ लगे होनेसे बाहरसे ही भगवतीकी मूर्त्तिका दर्शन संभव था, किन्तु मन्दिरके द्वार-पट बन्द होनेसे पू.गुरुदेवमें एक अति वात्सल्यभरा निर्मल भाव जाग्रत् हो उठा था। वे मन ही मन मातृ-वात्सल्यमें भरे अपनी माँ योगमाया के सम्मुख हठ करके बैठ गये थे। पुजारीका तो प्रतिदिनका ही नियम था कि वह निरे प्रभात आता था एवं गंगास्नान करके, यथावश्यक पूजन संपादितकर, गत रात्रिको लोहेके सीखचोंयुक्त कपाटोंमेंसे फेंकीगयी भेंट-मुद्रा बटोरकर, घण्टे-आधे घण्टेमें ही मन्दिरपट बन्दकर चला जाता था। अब तो वह सायंकालको मात्र आरतीके समय आयेगा और माताकी आरतीकर दिवस-पर्यन्तकी भेंट-मुद्रा लेकर अपने निवास-गृह चला जायगा। उसका निवास भी मन्दिरस्थलसे बहुत दूर मुगलसराय क्षेत्रमें है, और यहाँसे किसी परिचित व्यक्तिको भेजकर उसे बुलाना भी संभव नहीं दिखता था। मन्दिरके आसपास रहनेवाले लोगोंसे इस विषयमें जब वार्त्ता की गयी तो उन्होंने भी यही मत पुष्ट किया कि वह अपने निवासस्थानमें भी दिनमें उपलब्ध नहीं होता। आजीविकार्थ कहीं अन्यत्र सेवाकार्यमें चला जाता है। इधर तो स्थिति यह थी और उधर पू. गुरुदेव अपने हठी स्वभाववश ऐसा निर्णय कर चुके थे कि जबतक पुजारी मन्दिरका पट उन्मोचन न करे और वे अपनी माँकी पूजा सम्पादित नहीं करें, यहाँसे हिलेंगे भी नहीं। वे प्रायः भगवान्की शक्तिके बलपर असंभवको भी संभव करनेका संकल्प कर लेते थे। वे मुझसे प्रायः यही कहा करते थे कि भला भैया, बतला तो, भगवान्की कृपा जिसे दूर नहीं कर सके, ऐसा भी कोई अवरोध जगत्में संभव है क्या ?

पू.गुरुदेवके पास और तो कोई बल था नहीं, मात्र अकिंचन संन्यासी ही तो वे थे, अपनी माँ योगमाया जगज्जननीकी कृपाशक्तिका आह्वान करते हुए वे अन्तश्चेतनाके जगत्में पहुँच जाते हैं। उनके सम्मुख जगज्जननी भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी ध्यानस्थ मूर्त्ति प्रकट हो जाती है। वे प्रार्थना कर उठते हैं– "माते ! तेरे सुप्रकट वात्सल्यके बलपर मैं तेरा हठी बालक तुझसे अनहोने कार्योंके सम्पादनकी याचना कर बैठता हूँ। माँ ! मैं तेरे द्वारपर आऊँ और तेरे द्वारपट मुझे अवरुद्ध मिलें, क्या यह उचित है ? तेरे वत्सल स्वभावको निरखता हुआ मैं तुझसे किसी मेरे-तेरे मध्य आये अवरोधको दूर करनेकी याचना करूँ, क्या यह याचना तेरे वात्सल्यपर कलंक नहीं है ? माँ ! उचित तो यही होता कि मेरे आने के पूर्व ही तू सर्वबाधा-विनिर्मुक्त हुई मेरी प्रतीक्षा

करती मुझे उन्मुक्त-द्वार बाहर ही खड़ी दिखती ! किन्तु तेरे द्वार-देशकी चौखटपर खड़ा मैं तुझे लौह-कपाटोंके भीतर खड़ी देखूँ और तेरी परम वात्सल्यभरी गोदमें अपने को शिशुवत् नहीं समर्पित कर पाऊँ, क्या यह तेरे परम वत्सल स्वभावको देखते हुए शोभनीय होगा ?

पू.गुरुदेव अपनी माताकी गोदमें छोटे-से शिशु बने उसके अति वात्सल्यभरे दुग्धस्रावी स्तनोंकी कर्णिकाको मुखमें लिये अतिशय भावपूर्वक अपनी छोटी-छोटी दुग्ध-दंतपंक्तिसे उन्हें काटनेकी क्रिया कर बैठते हैं । उनके लघु शिशु-सुकोमल हाथ अपनी माँके स्तनोंको पकड़ लेते हैं और स्तनाग्रभागसे स्रवित भाव-दुग्धका पान करते, वे अपनी माँके कृपावत्सल नेत्रोंमें अपने शिशुनेत्र मिला देते हैं।

एक आश्चर्य घटित होता है। हममेंसे किसीको आशा नहीं थी कि पुजारी मन्दिरमें इस समय आ पहुँचेंगे। परन्तु बिना प्रयास किये ही अनिमन्त्रित ही शीघ्र गतिसे कदम बढाता मन्दिरका पुजारी मन्दिर-द्वारपर पहुँच जाता है। वह हम सभीको मन्दिरके मुख्यद्वारपर खड़ा देख मुसकाता है। वह कहता है कि आज प्रातः उससे प्रमादवश पूजा करते-करते ऐसी त्रुटि हो गयी कि जिस मीलमें वह काम करता है, उसका प्रवेशपत्र ही वह मन्दिरमें रखकर भूलगया। इस प्रमादसे उसे अर्धदिवस तो मीलसे अवकाश लेना ही पड़ा । शेष आधे दिवसका अवकाश वह किसी प्रकार बचा ले – इस प्रयासमें शीघ्रतापूर्वक उसे मन्दिरमें पुनः लौटना पड़ा है ।

पुजारीसे हमने जब पू. गुरुदेवके हठका कथन किया, तब तो वह और भी श्रद्धाभिभूत हो उठा। किन्तु पू. गुरुदेव तो दूसरी ही धुन में थे। वे माताकी अपने भावानुसार पूजा करना चाहते थे और पूजाके लिये उन्हें कदम्बवृक्षके पुष्पकी आवश्यकता थी। उस पुष्पकी कहींसे व्यवस्था हो, और उसमें जो कालक्षेप हो, इतने कालके लिये पुजारी रुकनेमें अरुचि प्रकट कर रहा था।

पुजारीको प्रलोभन भी दिया गया कि उसकी मीलमें जो भी अनुपस्थितिजन्य आर्थिक क्षति होगी, वह पूर्त्ति कर दी जायगी। परन्तु वह कह रहा था कि उसे अनुपस्थितिके कारण नौकरीसे हटाया भी जा सकता है। किसी प्रकार बहुत प्रयाससे तो उसे मीलमें नौकरीका अवसर मिला है। अतः उसका आग्रह था कि जो भी पूजा-सामग्री वह पू.गुरुदेवको दे, वे उसीसे पूजा करलें। पू.गुरुदेव तो कदम्बपुष्पके अभावका सामञ्जस्य किसी अन्य पूजन-

सामग्रीसे करनेको तैयार ही नहीं हो रहे थे। पुजारीको हम लोग किसी प्रकार मनानेका प्रयास करते जा रहे थे। इतनेमें ही हमें एक वृद्ध ब्राह्मणने संदेश दिया कि उसके घरपर पुष्पित कदम्बवृक्ष है। किन्तु उस वृक्षसे पुष्पचयनमें अतिशय कठिनाई है। पुष्प ऐसे स्थानोंपर लगे हैं , जहाँसे चयन होना कठिन ही नहीं, असंभव-सरीखा है। पू.गुरुदेव तो इस सूचनाके मिलते ही मुझे लेकर कदम्बवृक्षके स्थानकी ओर चल पड़े। वह कदम्बवृक्ष एक पीपलके वृक्षके भीतरसे ही प्रस्फुटित हुआ इतना विशाल और उच्च था कि उसपर चढ़कर पुष्पचयन करना असंभव था। ब्राह्मणदेवता तो स्वाभाविक ही भूमिपर स्खलित, धूसरित, मुरझाये पुष्प हमें देना चाहते थे, जो पू. गुरुदेवको कदापि स्वीकार्य नहीं थे। मैंने देखा पू.गुरुदेव तो अपने गैरिक वस्त्रको फैलाकर उस कदम्बवृक्षसे पुष्पदानकी भिक्षा माँगने घुटनोंके बल बैठ गये । उन्हें तो वह कदम्बवृक्ष चिन्मय जीवन्ततुल्य दिख रहा था, जो उनके माँगनेपर उन्हें अपने पुष्प दान कर ही देगा।

मुझे तो यहाँ भी अतिशय आश्चर्य ही घटित होता दिखाई पड़ा। सचमुच ही पू.गुरुदेवके अंचल फैलाते ही अनेक कदम्बपुष्पोंसे उनका अंचल भर गया था। कदम्बवृक्षकी ओर नेत्र उठाकर ज्योंही मैंने देखा तो पाया कि एक मादा शुक पक्षी जो अति पुरातन उस पीपलवृक्षके कोटरमें अपने शावक-प्रसव करनेकी योजना बना रही थी, संलग्न कदम्बवृक्षसे पुष्प अपने घौंसलेके निर्माणके लिये तोड़ती है और उनमेंसे कुछको अनुपयुक्त समझ सीधे पू. गुरुदेव द्वारा प्रकीर्ण गैरिक वस्त्रांचलपर गिरा दे रही है। वह पुनः-पुनः इसी प्रक्रियाको दोहरा रही है। मैं माँ जगज्जननीकी पू.गुरुदेवपर संभावित कृपाकी सचमुच ही जय-जयकार कर उठा।

अपनी माँके विलक्षण भक्त थे पू.गुरुदेव । यद्यपि यावज्जीवन मैंने उनका हठ उनकी किसी भी लौकिक कामनाकी पूर्त्तिके लिये नहीं देखा किन्तु अपनी नैष्ठिक पूजाओंके सम्पादनार्थ जब वे विशुद्ध व्यवस्थाओंमें अपनी माँकी सहायताकी माँग कर बैठते थे, तो फिर हठ पकड़ लेनेके अनन्तर उसे छोड़ देना उन्होंने सीखा ही नहीं था। अनुनय-विनय करते हुए अपने भावशिशु-स्वरूपमें अपने करपल्लवोंसे वे अपनी माँ जगज्जननी योगमायाकी स्तन-कर्णिकाको अपनी दुग्ध-दंतपंक्तिसे काट डालते थे, और अपनी व्यवस्था-पूर्त्तिके लिये अड़ जाते थे। उनका वात्सल्यभरा माँको रिझानेका

स्वनिर्मित मंत्र था – 'माँ-माँ, मैया-मैया, जननी-जननी, अम्बे-अम्बे, जगदम्बे-जगदम्बे'। इस मंत्रका वे अनवरत मन-ही-मन उच्चारण करते रहते थे और इस मंत्रके विलक्षण अर्थकी अनुवृत्ति भी करते जाते थे ।

अन्ततः यही होता था कि उनकी ध्यानमूर्त्तिके रूपमें प्रकट उनकी माता जगज्जननी योगमाया शत-शत अवरोध-अनुरोध करती हुई, अपने पुत्रंकी अभिलाषाओंको नितान्त अव्यावहारिक बताती-जताती हुई भी, बंड़े वेगसे सिर हिलाकर तथा 'नहीं-नहीं' 'यह तो होनेकी ही नहीं'–मुखसे भी स्पष्ट कहकर अपना निर्णय सुना देनेके उपरान्त भी जब पू. गुरुदेवको अपने हठपर अड़िग पाती, तो अनुत्साहित चित्तसे ही सही, अन्ततः जगज्जननीको उनका अनुमोदनकर कार्य सिद्ध करना ही होता था । पूजन समाप्तकर पू. गुरुदेव अति प्रसन्नचित्तसे मुसकाते हुए मन्दिर प्रांगणमें खड़े हो जाते हैं ।

अन्नपूर्णा मन्दिरमें भगवतीके साक्षात् दर्शन

उसी समय उनकी सांगोपांग अतिशय भावभरी एवं शास्त्रविहित परम सात्विक पूजासे प्रभावित श्रद्धाशील वह ब्राह्मण जो अपने गृह ले जाकर पू. गुरुदेव को कदम्ब वृक्षका अनुसंधान देता है, प्रार्थना कर बैठता है कि पू. गुरुदेव जब गोरखपुरसे काशी पदार्पण किये हैं, एवं सभी तीर्थ-मन्दिरोंके यथावत् दर्शन-अर्चन कर ही रहे हैं, तो अन्नपूर्णामन्दिरमें तंत्राचार्य श्रीभास्कररायद्वारा स्थापित यंत्रेश्वर लिंग – जिसपर श्रीयंत्र अंकित है, उसका पूजन अवश्य करें। पू.गुरुदेवके इतना कहनेपर कि यहाँसे वे काशी-अन्नपूर्णा मन्दिर ही जायेंगे, वह ब्राह्मण पू. गुरुदेवके साथ चलनेको भी तत्पर हो उठा था।

विशालाक्षी मन्दिरसे लगभग दो फर्लांग चलकर हम अन्नपूर्णा मन्दिर पहुँचे थे। यह दूरी हमें सँकरी गलियोंमें पार करनी पड़ी थी। किंवदन्ती है कि जब भूतभावन भगवान् विश्वेश्वरने काशीको अपना स्थायी धाम बना लिया तो उनका भिक्षापात्र कभी भरता ही नहीं था। फलतः शिवजी महाराज क्षुधातुर रहने लगे। एक बार वे पार्वती देवीके पास पहुँचे और उनसे क्षुधा-निवृत्तिका उपाय पूछा! हँसकर पार्वतीने उनका भिक्षापात्र परिपूर्ण कर दिया। तभीसे माता पार्वतीदेवीका ही एक नाम अन्नपूर्णा हुआ।

पू.गुरुदेवने ज्योंही अन्नपूर्णा मन्दिरमें प्रवेश किया, मैंने देखा उन्हें मानों अपने प्राणोंकी निधि ही प्राप्त हो गयी थी। उनमें विशुद्ध सात्विक भावोंका प्रवाह ही उमड़ पड़ा था। भगवतीका दर्शन करते-करते वे शान्त खड़े ही रह गये। मैंने देखा – जड़िमा भावोदयसे उनके समस्त अंग अवश हो रहे हैं। उनमें गतिका संचार तो तब हुआ जब भगवती अन्नपूर्णा स्वयं एक मानवी सुन्दर युवतीका रूप रखकर स्थिरनेत्र दर्शन करते उन्हें स्पर्श करने उनके पास चली आयीं । चौंककर पू. गुरुदेव छिटककर शीघ्रतापूर्वक उस स्त्रीसे दूर हुए। वह मानवी स्त्री बनी माता पार्वती अन्नपूर्णामन्दिरकी परिक्रमा करने लगी और पू. गुरुदेव पुनः निर्निमेष नयनोंसे माँकी मूर्त्तिपर अपनी दृष्टि स्थिर करने लगे। इस बार वे किंचित् सावधान थे। इस बार भी वह मानवी स्त्री जब पू. गुरुदेवके अति निकट आई तो स्पर्शाशंकासे पू. गुरुदेवको पुनः छिटककर दूर हटना पड़ा और वे स्त्रीरूपधारी भगवती पुनः परिक्रमाको उन्मुख हो गयीं। तीसरी बार भी जब यही आवृत्ति होनेवाली थी और वे माताजी पू.गुरुदेवके इतनी निकट आ गयीं कि मानों स्पर्श हो ही जायगा तो पू.गुरुदेव अति जोरसे बोल उठे– " माँ ! बारबार यह अनर्थ क्यों कर रही हो ? तुम जान रही हो, मैं एक चतुर्थाश्रमी यतिवेशी संन्यासी हूँ और तुम युवती स्त्री हो। यह सत्य है कि मेरी पावनतम दृष्टिमें तुम साक्षात् जगज्जननी ही हो किन्तु एक यतिकी मर्यादाको खण्डित करनेका यह अनवरत प्रयास क्यों हो रहा है ? "

ओह ! पू.गुरुदेवने स्पष्ट देखा कि उस मानवी युवतीका रूपान्तरण भगवती जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरीके रूपमें तत्क्षण ही हो गया और बालरवि-द्युति अनन्तानन्त प्रज्ज्योति उस मानवी स्त्रीके नेत्रोंके द्वारसे उनमें प्रविष्ट होती हुई उनके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गयी। इस मिलन-सुखका कोई क्या कहकर वर्णन करे !

पू.गुरुदेवको वैसे तो भगवती त्रिपुरसुन्दरीके साक्षात् दर्शन सन् १९५१ ई.में ही हो चुके थे और यह घटना जनवरी सन् १९५६ ई.की है। इस चार-साढ़े चार वर्षकी अवधिमें इन भगवती अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाने पू. गुरुदेवका ऐसा मन-मानस निर्माण कर दिया था कि उन्हें सर्वत्र माँ त्रिपुरसुन्दरी ही व्याप्त दृष्टिगोचर होती थी । माँ त्रिपुरसुन्दरी ही पू.गुरुदेवके हृदयके अन्तर्भागमें उनके प्राण-प्रियतम नन्दनन्दन बन गयी थीं। वैसे बाह्यदृष्टिमें पू. गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराज की तरह ही सर्वथा जागरूक रहते हुए सभीसे सभी

व्यवहार यथायोग्य करते थे। किन्तु सभी मिलनेवालोंको उनके नाम एवं आकृतिसे ठीक पहचानते हुए, उनसे ठीक यथानाम, यथासम्बन्ध, यथायोग्य व्यवहार करते हुए भी, वे वस्तुतः पूर्णतया केन्द्रित रहते थे, तन्मय रहते थे अपने आराध्य नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही, जो उनके लिये उनकी माँ भगवती त्रिपुरसुन्दरीका ही स्नेह-सार -संचय स्वरूप था। पू.गुरुदेव इस सत्यसे पूर्णतया परिचित थे कि उनको श्रीकृष्ण-लीलागत समग्र सुख देनेके लिये ही अचिन्त्यमहिमामयी योगमाया चिदानन्दमय ब्रजप्रदेश बनकर उनके सम्मुख प्रकट होती हैं। उनकी बृषभानुपुरी नन्दपुरी गिरि-गोवर्धनकी सुरम्य तलहटी, यमुनानदी एवं चिदानन्दमयी रासस्थली आदि जो भी हैं सभी भगवती योगमायाकी ही संधिनीशक्तिकी नित्य परिणति हैं। भगवती त्रिपुरसुन्दरीके तुल्य ही ये सभी पूर्ण विभु, नित्य और सच्चिन्मय हैं । ये अनादिकालसे हैं और अनन्त कालतक रहनेवाली भी हैं ।

वे यह भी सर्वांशमें सत्य जानते थे कि इन सच्चिन्मयी लीलाओंका किसीके भी हृदयमें तभी प्रकाश होता है, जब प्रथमतया माँ भगवतीका उसके हृदयमें आविर्भाव होता है। यह सभी लीलाजगत् भगवतीका ही चिन्मय प्रेमविलास है। उन्हें यह भी ठीक ज्ञात था कि जिनके नेत्रोंमें भगवती जगज्जननी त्रिपुरसुन्दरीकी चरणनख-चन्द्रिकाका नित्य प्रकाश है, उनके लिये प्रियतम श्रीकृष्ण करतलगत आमलकवत् हैं, एवं वे ही सच्चे ब्रजपुर और बृन्दावनका सच्चिन्मय लीलारस आस्वाद कर पाते हैं।

ओह ! शब्द नहीं कि पू.गुरुदेवको जो भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी सौन्दर्यराशिका उस समय दिग्दर्शन हुआ उसे सुव्यक्त कर सकें। माँ भगवतीकी ओर-छोरविहीन महिमाको भला कौन भाषा दे पावेगा ? इसलिये हार कर मौन ही होना पड़ता है।

श्रुतियाँ कहती हैं कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके सूर्य मिलकर भी जिनकी एक रोमावलिके प्रकाशके सम्मुख खद्योतवत् भी नहीं हैं फिर चन्द्र, तारकसमुदाय और अग्निकी तो बात ही क्या कही जावे ! अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिनकी रोमावलिकी परिक्रमा करते हैं, वे अनन्त ज्योतिर्मयी माँ पू. गुरुदेवके सम्मुख व्यक्त हुईं और नेत्रपथसे उनके रोम-रोममें निमग्न हो गयीं। पू.गुरुदेव कृतकृत्य हो उठे ।

पाठकगणोंमें कोई प्रश्न कर सकता है कि पू.गुरुदेवके रोम-रोममें

भगवतीके सच्चिन्मय तेजके विलय होनेके पश्चात् तो उनमें अनन्त चमत्कारोंको करनेकी सामर्थ्य आ ही जानी चाहिये थी। वे अनन्त शक्ति-सामर्थ्यके अधिपति हो उठे थे, तो उस शक्ति-सामर्थ्यकी अभिव्यक्ति भी तो संसारके सम्मुख हुई ही होगी ! पाठकोंके इस प्रश्नका मेरे पास एक ही उत्तर है कि पू.गुरुदेव भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी परम रसमयी प्रीतिलीलाके परिकर थे। वे उस समय भगवती श्रीराधारानीकी अनुजा मंजुश्यामा (अनंग-मञ्जरी)की भावभूमिमें पूर्णतया आविष्ट थे। रसराज ब्रजेन्द्रनन्दन यदि अपने लीला-परिकरोंमें जागतिक माया-प्रपंचभूमिकी सिद्धियाँ प्रकट करने लगें तब तो उनकी अनाविल मधुरिमामय लीला-रसपानका और साथ ही विशुद्ध रसदानका उद्देश्य ही अपूर्ण रह जायगा। अतः न तो पू. गुरुदेवको ही उस समय यह ज्ञान हुआ कि उनमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृजन-स्थिति एवं प्रलयकर्त्री माँ योगमायाका पूर्ण शक्तिपात हो गया है , और न ही उनके शेष जीवनमें ही किसी विशेष सिद्धियोंका परिचय ही हमें मिलता है। अतः बाहरसे तनिक भी, कुछ भी विशेषताकी गन्ध न दे कर, किसी भी अस्वाभाविकताका प्रकाश न करके, अचिन्त्य लीलामहाशक्ति एक घड़ीमें ही पू गुरुदेवको पूर्ववत् ही यथायोग्य आचरण करनेवाला बना देती हैं।

यदि कोई कहेगा कि इस विलक्षण भागवती दर्शनका महत्व ही फिर क्या हुआ ? तो इसका उत्तर है कि महत्व अवश्य हुआ है, निश्चय ही हुआ है। इस भगवती दर्शनका महत्व प्रापंचिक जगत्में प्रापंचिक चमत्कारोंके रूपमें प्रकट भले ही नहीं हुआ हो, किन्तु पू.गुरुदेवके भावशरीर मञ्जुश्यामाको श्रीराधाभावमें डूब जानेकी प्रक्रियामें इस दर्शनने विलक्षण भूमिकाका सृजन अवश्य किया है। यह घटना जनवरी, १९५६ ई. की है और पू. गुरुदेव श्रीराधाभावमें ८ अप्रेल, १९५७ ई. को प्रतिष्ठित हो गये थे। लगभग पन्द्रह माह पश्चात् ही जो उनमें भगवती श्रीराधाजीका पूर्ण भावोन्मेष हो गया, यह क्या भगवतीके कृपाप्रकाशका चमत्कार नहीं था ? हम जड़ान्ध लोग प्रत्येक पारमार्थिक उपलब्धिको जड़तायुक्त प्रापञ्चिक शक्तियोंसे ही जोड़ते हैं। हमारी आँखें इस जड़ जगत्के परे कोई सच्चिन्मय लोक है, उस लीला-लोकके सच्चिन्मय लीलापात्र हैं, उन पात्रोंमें अनन्त प्रीति-भावोंका उद्दाम प्रवाह लहराता रहता है, उसमें प्रीति, रति, नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभावादि स्तर हैं, इन स्तरोंकी उपलब्धि भी भगवती कृपा-सापेक्ष है – इस सबको कहाँ देख पाती हैं। पू.गुरुदेवके लिये तो अचिन्त्य महिमामयी भगवती अपनी

विलक्षण कृपाका प्रवाह बहा रही थी, किसी विशेष उद्देश्यसे उसके सारे क्रि ाानका आडम्बर ही इसलिये हो रहा था कि सच्चिदानन्दमय परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रकी विभु प्रीति-लीलाके वे सर्वोच्च प्रेमपात्र हो सकें। अतः उस भागवती विलक्षण दर्शन और शक्तिपात्से बाह्य कोई विशेष चमत्कार संघटित नहीं होते हुए भी भगवतीने पू.गुरुदेवको विलक्षण भगवत्प्रीतिशक्तिसे आप्लावित कर दिया।पू. गुरुदेवको भगवती योगमायाने जिस चिन्मय प्रीति-वैभवका उस दर्शनसे दान किया, जिसे किसी भी लेखककेखनीमें सामर्थ्य नहीं कि उसकाचित्रण कर सके। चित्रण तो दूर, मनकी कल्पना भी वास्तवमें उस विचित्र प्रेम-वैभवके किसी एक अंशको भी –उस सर्वथा अतुलनीय नित्य चिदानन्दमय श्री-सौन्दर्यकी कणिकामात्रको भी छू नहीं सकती। उस प्रेम-वैभवदानकी तो मात्र अनुभूति हुई और वह अनुभूति हुई, पू.गुरुदेवको स्वयंको, अथवा पू. पोद्दार महाराजको ? इन्हें क्या अनुभूति हुई, यह बताना भी असंभव है। हाँ, पोद्दार महाराजको जो अनुभूति हुई उससे वे आनन्द-कम्पित कण्ठसे अपने शिष्यके सौभाग्यपर वाह-वाह कर बैठे। पू.गुरुदेवको स्वयंको जो अनुभूति हुई, उस आनन्दसिन्धुमें वे ऐसे डूबे कि लोगोंने काष्ठमौनके रूपमें उनकी अनवरत गंभीरादशामें महाभावमयी स्थितिका प्रत्यक्ष दर्शन किया।

अन्नपूर्णामन्दिरसे पू.गुरुदेव कादि-विद्याके प्रसिद्ध आचार्य भास्कर भट्ट द्वारा प्रतिष्ठापित श्रीचक्रराजयंत्रेश्वर महादेवके दर्शन करने गये। यह यंत्रेश्वर मन्दिर श्रीअन्नपूर्णामन्दिरके प्रांगणमें भूमिके नीचे बने एक गुंभारमें स्थित है। भगवान् नर्मदेश्वर लिंगके शिरोदेशमें अंकित इस यंत्रेश्वरको सच्चे भगवतीके साधक साक्षात् देवतातुल्य ही महत्व देते हैं। इस यंत्रेश्वरके दर्शन करते ही पू.गुरुदेवमें इनकी सांगोपांग पूजा-अर्चना करानेकी वृत्ति जाग्रत् हो गयी । पू. गुरुदेवको विचारदशामें देख विशालाक्षी मन्दिरसे आये ब्राह्मणदेवताने उनकी चिन्ताके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। ब्राह्मणदेवताके सम्मुख पू.गुरुदेवने अपनी चिन्ताका यही विषय प्रकट किया कि उन्हें पूर्णाभिषेकपर्यंत श्रीविद्या-दीक्षित किसी शुद्धचरित्र ब्राह्मणका – जो पूर्ण श्रीक्रमविधिसे पूजा करनेमें पारंगत हो, इस यंत्रेश्वरकी पूजाके लिये सहयोग चाहिये। उस ब्राह्मणदेवताने इसके उत्तरमें यही कहा कि पूर्ण शुद्ध श्रीक्रमपद्धति और पूर्ण श्रीविद्यादीक्षित ब्राह्मणका सहयोग इस समय दुरूह है । काशीमें इसका अभाव तो नहीं होगा, किन्तु उसके अन्वेषणमें पूरी कठिनाई अवश्य है। आप यहाँ अल्प अवधितक ही

ठहरने वाले हैं, अस्तु आप महर्षि अथर्वण रचित भावोपनिषद् द्वारा ही यह भावपूजा सम्पादित कर दीजिये।

पू.गुरुदेवको उन ब्राह्मणदेवताकी यह बात सांगोपांग लगी। पू.गुरुदेव एवं ब्राह्मणदेवताने उसी क्षण विचार-विमर्शकर यह निश्चय किया कि दूसरे ही दिवस शुक्रवारको पू.गुरुदेव श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी द्वारा इस महासिद्ध श्रीयंत्रराजका महर्षि श्रीअथर्वण विरचित भावोपनिषद् द्वारा पूजन सम्पादित करावेंगे। विशालाक्षी मन्दिरके निकट रहनेवाले वे ब्राह्मणदेवता हम लोगोंके साथ ही वहाँसे गायघाट स्थित डालमियाकोठी पहुँचे और फिर उन्होंने ही पू. गुरुदेवको भावोपनिषद्की पुस्तक लाकर दी। यह भावोपनिषद् का श्रीपूजाक्रम पू.गुरुदेवको इतना प्रिय लगा कि उन्होंने श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीसे इसे संशुद्ध कराके उनके हस्ताक्षरोंमें ही लिपिबद्ध कराया और उसकी एक प्रति स्वयं अपने पास रख ली । दूसरी एक प्रति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके पास यावज्जीवन रही। जब यह तीर्थयात्रा-ट्रेन मद्रास पहुँची तो वहाँ भी भगवती त्रिपुरसुन्दरीका पूजन इसी प्रयोगपद्धतिसे सम्पादित हुआ था। पू.गुरुदेवको पश्चात् यह पूजाक्रम कण्ठस्थ हो गया था और उपने काष्ठमौनकालमें भी वे प्रति शुक्रवार इस पद्धतिसे पूजा सम्पादित करते थे।

———

{यह समग्र पूजापद्धति 'महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा (द्वितीय–तृतीय खण्ड) नामक ग्रन्थमें मातृपूजा-प्रकरणमें पृष्ठ सं० ३०१में विस्तारपूर्वक हिन्दी-अर्थसहित दी गयी है। जिज्ञासुजनोंको वहाँ देखना चाहिये}

———————

चित्रकूटमें विचित्र अनुभव

(प्रथम दिवसकी यात्रा)

तीर्थयात्राके लिये जो तिथि निर्धारित की गयी थी, उसके अनुसार २७ जनवरी,१९५६ के दिन तीर्थयात्राट्रेनने वाराणसीसे प्रस्थान किया। प्रस्थानके पूर्व काशीके विद्वान् पण्डितोंके द्वारा भगवान् विघ्नविनाशन गणेशजी एवं अन्य देवताओंका वेदमन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करवाया गया और भगवन्नाम-संकीर्त्तन एवं उद्घोषके उपरान्त ही ट्रेन वाराणसी स्टेशनसे चली।

वाराणसीसे चलकर प्रातःकाल ट्रेन करवी स्टेशन पहुँची। करवी स्टेशनपर प्रातःकाल पहुँचते ही प्रार्थना एवं संकीर्त्तन कार्यक्रम पू.गोस्वामीजीके नेतृत्वमें सभी तीर्थयात्रियोंने किये। उसी समय आसपासके दर्शनीय स्थानोंकी जानकारी यात्रियोंको छपे हुए परिपत्रों द्वारा दे दी गयी। चित्रकूटमें ट्रेनको दो दिन रुकना था।

वैसे चित्रकूट सदैवसे ही तपोभूमि रही है। महर्षि अत्रिका यहाँ आश्रम था। उसके आसपास अन्य बहुतसे ऋषि-मुनि रहते थे। उन दिनों वनोंमें महर्षियोंके कुल रहा करते थे। किसी एक तेजस्वी, तपोधन, शास्त्रज्ञ ऋषिके सहारे आसपास दूसरे तपस्वी, साधननिष्ठ मुनिगण आश्रम बना लेते थे। सत्संग तो वीतराग पुरुषोंको भी प्रिय है ही। इस प्रकार चित्रकूटमें सदैवसे ही एक बृहत् तपस्वी-समाज था और उसके संचालक थे महर्षि अत्रि। वहाँकी पूरी भूमि ही एक समय देवोत्तर पुरुषोंकी पदरजसे पुनीत थी।

चित्रकूटका सबसे बड़ा माहात्म्य ही यह है कि भगवान् श्रीरामने यहाँ निवास किया। यह भूमि भगवान् रामकी वर्षोंतक क्रीड़ाभूमि रही। भगवान् राम इस भूमिके सदैवके ही वासी हैं। यहाँ वे नित्य निवास करते हैं। अधिकारी भगवद्भक्तोंको भगवान् रामके यहाँ प्रायः दर्शन होते हैं। यहाँ तपस्वी, भगवद्भक्त, विरक्तजन सदासे रहे हैं। उनकी परम्परा अविच्छिन्न चलती आयी है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने किस आतुरतासे अपनेको चित्रकूटमें निवास करनेके लिये कहा है, देखते ही बनता है।

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
न करु विलम्ब विचारु चारुमति, बरष पाछिले सम अगले पलु।।

महात्माओंका कथन है कि कलियुगने समस्त संसारपर अपना जाल बिछा दिया, पर प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे अद्यावधि चित्रकूट उससे मुक्त है। मनुष्य जबतक चित्रकूटके पर्वतशिखरोंका अवलोकन करता रहता है, तबतक वह कल्याण-मार्गपर चलता रहता है। उसका मन मोह-अविवेकमें नहीं फँसता। इस पावन भूमिमें प्रवेश करते ही नल, युधिष्ठिर आदिका घोर कष्ट मिट गया था।

चित्रकूटमें पू.गुरुदेवने राघवप्रयागमें स्नान किया एवं कामद गिरिकी परिक्रमा लगायी। पयोष्णी नदीके किनारे धनुषाकार एक नाला मिलता है, जिसे मन्दाकिनी कहते हैं। कहते हैं भगवान् श्रीरामने इसी घाटपर स्वर्गीय महाराज दशरथको तिलांजलि दी थी । यहाँ मत्तगजेन्द्रेश्वरका मन्दिर भी है। पयस्विनी नदीके तटपर चौबीस पक्के घाट हैं जिनमें चार मुख्य हैं– १. राघवप्रयाग २. कैलासघाट ३. रामघाट ४. घृतकुल्याघाट ।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके रहनेके दो स्थान चित्रकूटमें प्रसिद्ध हैं। एक तो रामघाटके पास गलीमें और दूसरा कामदगिरिकी परिक्रमामें चरणपादुकाके पास।

पू.गुरुदेव कामदगिरिकी परिक्रमा करके मन्दाकिनीजीके तटपर बाँयी करवट लेटे हुए थे। उन्हें तन्द्रा भी नहीं थी। सहसा उनका भावजगत् बदला। वे अनुभव करने लगे – वे एक सुरम्य वनमें विचरण कर रहे हैं। जड़ वनकी तरह इस वनका रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्थिति तथा गुण नहीं है। वनकी शोभा अवर्णनीय है। विहंगम मधुर कलरव करते वृक्षोंपर आसीन अपना चांचल्य प्रकाश कर रहे हैं। मृगोंके दल मण्डलाकार हुए सब दिशाओंकी ओर मुख किये शान्त बैठे मन्द-मन्द रोमन्थन (पागुर) करनेमें तल्लीन हैं। मधुपानसे मुग्ध मधुकरवृन्द इत-स्ततः गुंजार कर रहे हैं। सर्वत्र संचारित मन्द समीर आनन्दसे पुलकित है। पृथ्वीपर सर्वत्र अंकुरराशिका आस्तरण है। सचमुच ही ऐसा लगता है मानो धरा-सुन्दरी रोमाञ्चित हो उठी है और यह अंकुरराशि उसका पुलकोद्गम है। अटवी सचमुच ही इस समय एक अभिनव गान, नृत्य, पुलकोद्गम आदि अगणित अनुभावोंमें आनन्द व्यक्त कर रही है।

वृक्षोंपर पके-पके मधुर फल गुच्छोंमें लटक रहे हैं। फलोंके भारसे वृक्षोंकी शाखायें भूमिकी ओर अवनत हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है मानो वृक्ष छोटे-छोटे हों। उन फलोंकी सुन्दरता और कान्ति अनोखी है। वनमें अति लघु

आकारके कासार (तालाब) हैं। इनमें प्रस्फुटित पद्म हैं। लता- वल्लरियोंपर सुन्दर पुष्प खिले हैं। सम्पूर्ण वनकी शोभा आश्चर्यमयी है। पू.गुरुदेवके मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि मैं कहाँ हूँ, यह कौनसा स्थान है, इस वनका नाम क्या है ? किन्तु इस नितान्त निर्जन स्थलमें वे इस वनका नाम भी किससे पूछें ? वहाँ तो उनके सिवा अन्य कोई दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। चारों ओर है घोर सघनता और नीरव निर्जनता।

जो भी हो, पू.गुरुदेवको वनकी शोभा अतिशय प्रिय लग रही थी। सहसा उन्होंने देखा कि वनमें एक सुन्दर श्यामवर्णका बालक विहरण कर रहा है। वह बालक पू.गुरुदेवकी ओर कभी-कभी निहार उठता है। वह बालक पू. गुरुदेवको नव-नव निकुञ्जस्थलीकी ओर संकेत करके वहाँकी अनुपम शोभा दिखाकर प्रफुल्लित होता है। वह पू.गुरुदेवको एक-से-एक सुन्दर स्थानोंका दिग्दर्शन कराता वह ऐसा विश्वस्त है मानो यहाँके प्रत्येक पथसे परिचित हो। दल-के-दल मृग एवं मयूर उस बालकके पास शुभ शकुन प्रकट करते आते है, ललकभरे नेत्रोंसे उसकी ओर देखते हैं, और फिर चौकड़ी भरते, सघन वनकी ओटमें छिप जाते हैं। उनका अनुसरण करता वह बालक भी इस कुंजसे उस कुंजमें, कभी किसी कासारतटकी ओर, कभी तटसे पुनः वनकी ओर, कभी वनसे कल-कल बहती मन्दाकिनी-कूलकी ओर अनवरत विचरण कर रहा है। उस बालकका सौन्दर्य और लावण्य भी इतना अनोखा था कि पू.गुरुदेवका मन उसपर मुग्ध हो रहा था। किंचित् कालावधितक तो पू.गुरुदेव उस बालकको अतिशय मुग्ध निहारते रहे, फिर सहसा ही उससे प्रश्न कर बैठे – 'भाई, क्या तुम बता सकते हो, इस वनका नाम क्या है ?'

बालक अपने सुदीर्घ नेत्र मटकाता बोला – 'अरे ! तुम इतना ही नहीं जानते ? यह चित्रकूट है ।'

चित्रकूटका नाम सुनते ही पू.गुरुदेव अतिशय प्रफुल्लित हो उठे और 'चित्रकूट,''चित्रकूट,''चित्रकूट'नामकी आवृत्ति करने लगे। पू.गुरुदेवको इस 'चित्रकूट' नामावृत्तिमें इतना आनन्द आ रहा था कि वे इस परम धामके नाम-संकीर्त्तनसे अपनेको निवृत्त ही नहीं कर पा रहे थे।

इस नाम-संकीर्त्तनके साथ ही पू.गुरुदेवके सम्मुख दिव्य चित्रकूट प्रकट हो गया । यह त्रेताकालीन प्रकट-चित्रकूट उस कालका था जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भगवती सीता और भाई लक्ष्मणके साथ यहाँ निवास किया

था। पू.गुरुदेवके सम्मुख धनुषाकार-प्रवाहित मन्दाकिनीकी ऐसी विलक्षण शोभा प्रकाशित हुई कि वे 'चित्रकूट' 'चित्रकूट' नाम-जप करते लगभग भाव-नर्त्तन ही कर उठे । उनके सम्मुख कामदगिरिकी भी ऐसी सुभग अलौकिक शोभा प्रकट हुई मानो वह दिव्य गोवर्धन ही हो। कामदगिरिसे यदि कोई कहीं गिरिराज पर्वतकी संतुलना करने लगे तो उसे दोनों ही एक दूसरे-से अतुलनीय सुन्दर एवं समृद्ध ही प्रतीत होंगे। उसे इन दोनों पर्वत-श्रृंखलाओंमें कोई किसीसे किंचित् भी न्यून दृष्टिगोचर नहीं होगा। पू.गुरुदेवको इसी वनमें भगवान् श्रीरामके भी सीताजीसहित दर्शन हुए और इस दर्शनके समय उन्हें यह भी अनुभव हो रहा था कि चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीराम और श्रीकृष्णके सौन्दर्यमें पूर्ण समानता है, कोई किसीसे किंचिन्मात्र भी न्यून नहीं। हाँ ! श्रीकृष्णके नेत्रोंमें अवश्य चंचलता अधिक है और श्रीरामजी गंभीर हैं । पू. गुरुदेवको यह भी अनुभव हुआ कि सचमुच ही जिस स्थानमें बहुतसे पदचिह्न हैं, यही वह स्थान है जहाँ श्रीरामजी भरतजी से मिले थे। पू.गुरुदेव कह रहे थे – इस मिलनमें सचमुच ही ऐसी हृदयद्रावक भाव-विह्वलता व्यक्त हुई थी कि चतुर्दिक्के पाषाण द्रवित हो उठे थे।

पू.गुरुदेवके सम्मुख त्रेताकालीन चित्रकूटकी शोभा बहुत कालतक व्यक्त होती रही। फिर क्रमशः वह दिव्यानुभूति तिरोहित हो गयी । पू. गुरुदेवने देखा कि वे कहीं भी विचरण नहीं कर रहे हैं, वरं मन्दाकिनीके तटपर विश्राम कर रहे हैं।

पू.गुरुदेवने अनेक अवसरोंपर अपनी इस विलक्षण अनुभूतिको लेखकको श्रवणगोचर करायी थी, उनके द्वारा जो भी सुनाया गया है, वही यथास्मृति यहाँ वर्णित किया गया है। यह लेखकका परम दुर्भाग्य था कि वह शरीरसे पू. गुरुदेवके साथ इस चित्रकूट-यात्रामें सम्मिलित नहीं था। जब पू.गुरुदेव तीर्थयात्रासे लौटकर आये और क्रमशः उसे अपनी तीर्थयात्राके अनुभव सुनाते थे, तब वह उनसे पृथक् रहनेके अपने दुर्भाग्यपर सचमुच ही अश्रु बहा रहा था।

गोवर्धन पर्वतके समान ही कामदगिरि पर्वतको भी परम पवित्र माना जाता है। इस पर्वतके शिखर पर कोई नहीं चढ़ता । इसकी मात्र परिक्रमा ही की जाती है। परिक्रमामें प्रथम स्थान मुखारविन्द पड़ता है। यह परम पवित्र माना जाता है। श्रीकामदगिरि पूर्णतया चिन्मय है, यह अनुभूति पू. गुरुदेवको

इसकी परिक्रमा करते समय मुखारविन्दपर पहुँचनेपर हुई। इसी प्रकार उन्हें लक्ष्मणपहाड़ीपर वनवासीवेषमें श्रीलक्ष्मणजीके भी दर्शन हुए।

(द्वितीय दिवसकी यात्रा)

पूर्वतः यह निवेदन किया जा चुका है कि तीर्थयात्राट्रेन मात्र दो दिवस ही करवी स्टेशनपर रुकी थी। वैसे साधारणतया यात्रियोंको कम-से- कम सात रात्रि तो चित्रकूट रहना ही चाहिये। यात्री प्रथम दिवस रेलवे स्टेशन करवीसे सीतापुर पहुँचकर राघवप्रयागमें स्नानकर कामद गिरिकी परिक्रमा करता है और सीतापुरके मन्दिरोंके दर्शन करता है, इतनेमें ही उसका दिन पूरा हो जाता है। दूसरे दिवस यदि वह कोटितीर्थ, सीतारसोई, हनुमानधारा होकर यदि सीतापुर लौटे तो उसे १२ मील अथवा लगभग बीस कि.मी.की यात्रा करनी पड़ जाती है। इसके उपरान्त भी केशवगढ, प्रमोदवन, जानकीकुण्ड, सिरसावन, स्फटिकशिला, अनुसूयाजी, गुप्तगोदावरी, कैलासपर्वत, भरतकूप, रामशय्या आदि प्रमुख तीर्थ तो शेष रह जाते हैं। अतः तीर्थयात्रियोंको पूर्वतया निवेदन कर दिया गया था कि उन्हें मात्र दो दिवसोंमें जहाँ-जहाँ भी जाना हो, स्वतंत्रतासे अपने वाहनोंकी व्यवस्थाकर यात्रा करनी चाहिये।

पू.गुरुदेवके प्रथम दिवसके अनुभवका वर्णन तो किया ही जा चुका है, दूसरे दिवस पू.गुरुदेव जानकीकुण्ड गये। जानकीकुण्डमें जैसे ही पू.गुरुदेव आचमन करने लगे, उनका भावदृश्य परिवर्त्तित हो गया। उन्हें दिखने लगा –" यहाँ सभी वृक्ष सच्चिन्मय हैं। ये वृक्ष और इनके शाखासमूह इतने सुन्दर हैं कि ऐसा लगता है मानो ये मणिमय हों, और इनके शाखासमूह विविध रत्नमय हों। सभी शाखायें विलक्षण शोभासम्पन्न पल्लव-जालसे समाच्छादित हैं। पल्लव-राजिसे राजित सभी वृक्षावलियोंमें कुसुम-समूह प्रस्फुटित हो रहे हैं। ये कुसुम-निकर रत्न-राशिके समान झलमल-झलमल कर रहे हैं। सुन्दर कुसुम चतुर्दिक् भाँति-भाँतिकी सौरभको प्रवाहित कर रहे हैं जिससे भ्रमर-निकर झूम उठे हैं। पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि " अहा ! यही वह प्रमोदवन है, जो भगवती सीताजीको अतिशय प्रिय था। पौराणिक वर्णन है कि भगवान् शंकर भी पार्वतीजीके सहित यहाँ विहार करते थे। प्रमोदवनके सभी वृक्ष इतने सुन्दर और चिन्मय थे कि इन्हें बड़े ध्यानसे देखनेपर ही कोई पहचान पाता

था। इनके पत्रोंकी आकृति, स्कन्ध-विन्यास इतना सुन्दर और सजीव था कि कोई गंभीर विचार करके भले ही जान ले कि यह अमुक तरु-श्रेणी है अन्यथा उन्हें पहचानना कठिन था। शाल, तमाल, अश्वत्थ, बकुल, नारिकेल – ये सभी वृक्ष प्राकृत मायाराज्यके थे ही नहीं। वे सभी वृक्ष थे भगवान् श्रीरामचन्द्रके चिदानन्दमय चित्रकूटधामके, जो उस समय पू.गुरुदेवके नेत्रोंमें, मनमें, व्यक्त हो उठा था।

पू.गुरुदेवको अनुभव हो रहा था कि विश्व-प्रपंचके जिस भू-भागपर यह चित्रकूट व्यक्त हो रहा है , यहाँ यह पुरी अनादि कालसे है और अनन्तकालतक रहेगी। प्रपंचमें जिस समय भगवान् रामकी चिदानन्दमयी लीलाका प्रकाश होता है तथा क्रमशः लीलाका प्रकाश करते हुए जब वे चित्रकूटके रंगमञ्चका स्पर्श करते हैं तब तिरोहित हुआ यह चित्रकूट पुनः आविर्भूत हो जाता है और जब भगवान्की लीलाका अन्तर्धान हो जाता है, तब यह चित्रकूट धाम भी अन्तर्हित हो जाता है। पू.गुरुदेव जब प्रमोदवन और जानकीकुण्डकी ओर मोटरगाड़ीसे आये थे तो उनके साथ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीवल्लभलालजीगोस्वामी और अन्य लोग भी थे। पू.गुरुदेव मन-ही-मन यह भी अनुभव कर रहे थे कि यह आविर्भाव -तिरोभाव भी उनके लिये ही होता है, जिनके नेत्रोंमें त्रिगुणमयी माया भरी है। जिनकी आँखोंमें श्रीरामचन्द्र-नखचन्द्रकी चंद्रिका झलमला रही है, उनके लिये तो यह चित्रकूट सदा वर्तमान ही रहता है। चित्रकूट उनके नेत्रोंमें नित्य भरा रहता है। अस्तु, आज भी पू.गुरुदेवके नेत्रोंमें चित्रकूटका विलक्षणरूपसे आविर्भाव हो रहा था। पू.गुरुदेव प्रमोदवनसे जानकीकुण्ड आये। जानकीकुण्डकी शोभा देखकर तो पू.गुरुदेव अतिशय उन्मत्त हुए-से बोल उठे –'गोस्वामीजी ! देखिये ! जानकीकुण्डकी अप्रतिम शोभा ! पू.गुरुदेव तो वर्षोंसे मौन थे और मात्र नौ मास पश्चात् काष्ठमौन लेनेवाले थे, उन्हें इस प्रकार मुखर देख गोस्वामी चिम्मनलालजी चकित हो उठे। पू.गुरुदेव उच्चारण करते जा रहे थे। –

"अहा ! क्या कहना है ! सुपक्व सुमधुर फल-भारसे अवनत हुई राशि-राशि वृक्षावली, रंग-बिरंगे सुरभित कुसुमोंका आभरण धारणकर तरु-श्रेणीको वेष्टित किये लता-वल्लरियाँ, इनपर चित्र-विचित्र बिहंगमोंका कल गान, हरित् तृणराजि, क्षुप्-वीरुधोंका अम्बार और सर्वत्र मन्द-मन्द मन्थर पवनका सुशीतल

स्पर्श – कहीं इनकी तुलना भी संभव है ?" जानकीकुण्डकी शोभा दूरसे ही निहारतेहुए पू.गुरुदेव आविष्ट-से बोलते जा रहे थे।

पू.गुरुदेवको जानकीकुण्ड पहुँचते ही स्नान करती जगज्जननी सीताजीके दर्शन हुए। पू.गुरुदेव भावशरीरमें उस समय मञ्जुश्यामा (अनंगमञ्जरी)भावमें थे। पू.गुरुदेव इस दर्शनका वर्णन करते समय कह रहे थे कि जगज्जननी जानकी और भगवती श्रीराधा दो हैं ही नहीं। एक ही रूप-रंग, शील दोनोंका है। मात्र नाम और लीला ही भिन्न है। वे कह रहे थे कि नयन चार होते ही जानकीजीने उन्हें ऐसा ही प्यार दिया जैसा भगवती श्रीराधारानी उन्हें सदासे देती आयी हैं । समग्र जीवनमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको दो वार श्रीजानकीजीने दर्शन दिये थे। प्रथम वार, जानकीकुण्ड चित्रकूटमें एवं दूसरी वार इसी तीर्थयात्राट्रेनसे जब वे अयोध्या पहुँचे थे। अयोध्याधाममें हुए श्रीजानकीजीके दर्शनोंकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे।

परम पवित्र चित्रकूटधामने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबापर जैसी कृपा की उससे उनका मन पूर्णतया कृतज्ञतासे भर गया था। तत्वतः तो भगवान् रघुकुलभूषण श्रीरामजीकी विहारभूमि चित्रकूट और वृन्दावन दो तो हैं ही नहीं। मात्र लीलार्थ ही वे पृथक् कालमें पृथक् रूप धारणकर दो भिन्न स्थानोंमें स्थित हैं। संधिनी शक्तिकी परिणति होनेसे धामकी सच्चिदानन्दमयता तो दोनोंमें समान ही थी। अतः यह कृपा तो स्वाभाविक होनी ही थी।

———

प्रयागमें तीर्थयात्रा-ट्रेन

तीर्थयात्राट्रेन करवी स्टेशनसे प्रस्थान करके ज्योंही प्रयाग स्टेशन पहुँची श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके नेतृत्वमें विशाल जनसमूह श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतार्थ उमड़ पड़ा था। इस जनसमुदायमें व्यक्ति-व्यक्तिके मनोगत भावोंमें श्रद्धा हिलोरें ले रही थी। इस भीड़में बहुत बड़ी संख्यामें मुसलमान, बौद्ध, ईसाई, सिख और पारसी भी थे। इसका कारण श्रीपोद्दार महाराजका सर्व-धर्म-सम व्यक्तित्व था। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही व्यक्तित्वके धनी थे। जहाँ परतन्त्र भारतमें उनसे अंग्रेज शासनाधिकारी आत्मीयता रखते थे, वहीं प्रमुखतम राष्ट्रीयनेता महात्मागाँधी, पं.जवाहरलाल नेहरु आदि भी उनके पारिवारिक सदस्य-सरीखे थे। महात्मा गाँधी तो जब भी बम्बई आते श्रीपोद्दारजीकी दादीजीसे मिलने अवश्य आते। रेहाना तय्यबजी जैसी पारसी महिलाएँ उनकी राखीबन्द बहिनें थीं, तो अंसारीजी एवं स्वयं श्रीमोहम्मद अली जिन्ना भी उनके प्रति समादरका भाव रखते थे।

"श्रीपोद्दार महाराज योगसिद्ध समाधिनिष्ठ पुरुष हैं, वे वर्णाश्रम-र्मावलम्बी शुद्ध सनातनी निष्ठा रखनेवाले हैं। वे महादानी हैं, ब्रह्मण्य हैं, भक्ति-श्रद्धासम्पन्न हैं, परम विनयी हैं, सर्वजनके परम आत्मीय हैं; सर्व-ज्वरहारी हैं, जो भी कष्टमें, विपत्तिमें है उसकी सेवाको सदैव तत्पर रहते हैं; आप्तकाम हैं, लोकसंग्रहके हेतु निरन्तर कर्म करते हैं, दीन-दुर्बलोंके बन्धु हैं, उनकी आयुका क्षण-क्षण धर्मसंस्थापनार्थ ही व्यतीत हो रहा है। गोसेवा, अकालपीड़ितों और बाढपीड़ितोंके सहायतार्थ उनके पास न जाने कहाँ-कहाँसे धनका भण्डार आ जाता है। अलौकिक अद्भुतकर्मा हैं। शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् नारायणके उन्हें अनेक वार साक्षात् दर्शन हुए हैं, नारद-अंगिरादि ऋषि उनसे आज भी इस घोर कलिकालमें मिलनेके लिये आते हैं; अन्यान्य सूक्ष्म लोकोंमें उनकी गति है, निपुण लेखक, कवि एवं साहित्यप्रेमी हैं । विद्वान् हैं, बहुपठित हैं, शरणागतवत्सल हैं, विनोदी हैं, सदा हँसमुख रहते हैं। भगवान् रसराज श्रीकृष्णके रसोपासक हैं, सांख्य, योग, वेदान्त, उपासना, समाजनीति, यहाँतक कि राजनीतितकके सुविज्ञ पण्डित हैं; ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसंन्यास, नैष्कर्म्य, सर्व-धर्मसंन्यास, द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सभी मतोंके मर्मज्ञ हैं, श्रीमद्भगवद्गीताके तो अक्षर-अक्षरके भाव वेद् हैं" – यह

सब प्रख्याति सुनकर और इसपर पूर्णतया विश्वास करके हजारों नरनारी उनके दर्शनार्थ प्रयाग स्टेशनपर समुपस्थित थे।

अधिकांश हिन्दूधर्मावलम्बी जनता तो श्रीपोद्दारजीके रूपमें उस व्यक्तित्वको अपनी आँखोंसे देखने आयी थी, जिसे मानो आप मेरे सामने बैठे हों और मैं आपसे बात कर रहा हूँ, इस प्रकार भगवान्‌के दर्शन होते हैं। असंख्य लोगोंके मनमें तो अपने चर्म-चक्षुओंसे ऐसे महापुरुषको देखकर मात्र कृतकृत्य होनेका भाव ही सर्वोपरि था।

किस-किसके भावोंकी पयस्विनी श्रीपोद्दार महाराजरूप महासिन्धुसे मिलने किस वेगसे उमड़ रही है, उसका कहाँ कब पूर्ण संगम होगा, किसके भाव-तीर्थपर आज पोद्दार महाराजका स्नान होगा, इसकी पूरी सूची किसी मानवके पास होनी तो संभव ही नहीं है। हाँ, सर्वविधात्री योगमाया अवश्य इस सबकी सूची अपने पास रखे थी। उसने अपनी योग्यतानुसार इतने सारे जनसमुदायको परमार्थ-पथका सर्वोत्तम बीजदान देनेकी योजना तो बना ही डाली। जय हो ! अचिन्त्य लीला-महाशक्तिकी !

ठीक योजनानुसार ट्रेनके प्रयाग स्टेशन पहुँचते-पहुँचते जहाँ श्रीपोद्दार महाराज तो पूर्णतया बहिर्मुख थे, पू.गुरुदेव अन्तर्मुख होते चले गये और जब ट्रेन प्रयाग पहुँची तबतक तो उनका समग्र दृश्य ही श्रीकृष्णमय बन गया था। इसमें आश्चर्य ही क्या था ? अचिन्त्य लीलाविहारी ब्रजेन्द्रनन्दनका अतिशय प्रीतिभरा कैशोर लीलाविहार प्रत्यक्ष हो जानेपर किसे आनन्दमुग्ध नहीं कर देता ? बस, इस रस-मन्दाकिनीकी धारा उमड़नी चाहिये , उससे कोई भाग्यवान् हृदय संस्पर्शित भर होना चाहिये, फिर उसे आत्मसात् कर इस धाराकी उर्मियोंको उसे अपनेमें डुबा लेनेमें क्षण भी तो नहीं लगता। हाँ, रजोगुणी लोगोंका ऐसा वर्ग अवश्य है, जिनकी आँखें प्रपञ्चमें इतनी आपाततः डूबी रहती हैं, कि वे मिथ्या मोहा-न्धकारमें डूबे इस ओर लव मात्रके लिये भी उन्मुख नहीं होते। उनके सामने किसी सन्तके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रका कितना ही सुखमय विहार भले ही चल रहा हो उनका इन संस्कारोंको आत्मसात् करनेका मन ही नहीं होता। उनके हृदयका तो रुझान अपने मोहमय संसारमें ही होता रहता है। अतः वे ऐसे अभागे हैं जिनके लिये विषयसुख देहोपभोग ही परम सत्य है, आत्मसुख, ब्रह्मानन्द और लीलासुखसिन्धु जिनके मन-मानसमें प्रवेश ही नहीं पा सकता ।

प्रयाग स्टेशनमें श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतमें ऐसे बहिर्मुख लोगोंकी ही बृहद् भीड़ खड़ी थी। इस जनसमुदायमें यह भावना तो अवश्य थी कि कोई ऐसा शुभ क्षण, कृपा-क्षण आ जाय कि हमारा जीवन विषयान्धतासे हटकर परमात्मसुखकी ओर मुड़ जाय, किन्तु उसके लिये किसी भी प्रकारके त्यागके लिये वे सर्वथा ही तत्पर नहीं थे। उनका पूरे-का-पूरा संसार किसी प्रकार बना रहे, उनकी शरीरसुख-सुविधा वैसी-की-वैसी नित्य सुरक्षित और अभिवृद्ध होती रहे, इस सबके योगक्षेममें उन्हें किंचित् भी हानि नहीं सहनी पड़े और किसी कृपासे, चमत्कारसे उनके अघका अन्त भी हो जाय और भगवद्दर्शन भी हो जावें, उनकी यही भीरु माँग थी ।

पू.गुरुदेवके द्वारा इस भीरु-भीड़को अति शुभ परमार्थके बीज प्रदान कराना ही भगवती योगमायाका उस समय प्रयोज्य था, और इसीलिये उन्होंने पू.गुरुदेवमें अलौकिक भावसिन्धुका उद्वेलन कराया था।

पू.गुरुदेवके सम्मुख तो अपने अनन्त ऐश्वर्यपर किशोरावेशजनित प्रणय-भावोंकी चादर डाले, उसे आवृत किये परम मनोहर ब्रजेन्द्रनन्दन माधुर्यलीला-विहारके सुख-सिन्धुमें सन्तरण कर रहे थे। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो इस मायावी प्राकृत तटसे अत्यन्त सुदूर कहाँ-से-कहाँ महाभाव-रससिन्धुमें बहते जा रहे थे। किन्तु भगवती योगमाया लीला-विधातृ महाशक्तिको तो इस महाभाव-प्रवहनसे ही अपना परम मंगल प्रयोजन सिद्ध करना था। अतः ज्योंही प्रयाग स्टेशनपर रेल रुकी, श्रीपोद्दार महाराजने अपने ही पास कम्पार्टमेण्टमें प्रीतिके सर्वोच्च स्तर – महाभावके दुकूल द्वारा अपनेको पूर्णतया आवृत किये, मदहोश राधाबाबाको झकझोरकर उस दुकूलको तनिक-सा हटा लिया। "बाबा! ओ बाबा !! देखिये न ! कितना जनसमूह उमड़ उठा है ! देखिये न ! श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीजी और कितना साधुसमाज है ! श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डन भी आये हैं ! आप अब तनिक बहिर्मुख तो हो जाइये !" श्रीपोद्दार महाराज तो मानो छोटे-से शिशु हों, इस प्रकार एक बाल-कौतूहलसे वे पू. राधाबाबाको झकझोर उठे।

श्रीपोद्दार महाराजमें भी तो सर्वचित्तहारी , सर्वभूत-हृत्स्थित श्रीहरि ही मात्र नाम और रूपका पञ्चभूतात्मक कलेवर ओढे क्रियाशील हो रहे थे। वे सोच रहे थे–"सर्व विश्वका प्रतिपालक तो मैं ही हूँ। यह अनन्त पारावारविहीन मेरा ही मायाप्रवाह मेरे ही जनोंको परम शुभ भक्तिपथसे हटाकर मेरे संरक्षणसे

बाहरकर जन्म-मृत्युकी ज्वालामें झौंक रहा है। अतः निश्चय ही इस समय मेरे स्वागतमें आये इस सारे जनसमुदाय-रूप जीवोंको मुझे कृपा-उर्मियोंसे परिस्नात कराना ही है।

ओह ! दैवकी विचित्र लीला है ! इन हजारों जीवोंके प्रारब्धकी कैसी विचित्र शुभ परिणति है ! क्या इसीलिये दैवने यह तीर्थयात्रा आयोजित की थी ? श्रीपोद्दार महाराज और गीताप्रेसकी प्रख्याति सुनकर प्रत्येक स्टेशनपर जहाँ-जहाँ यह यात्राट्रेन रुकेगी, असंख्य जनसमुदाय कौतूहलवश श्रीपोद्दार महाराजके स्वागतार्थ उमड़ेगा ही। और जो मात्र कृपा-संकल्प हैं, उन महाकृपासिन्धुमें कृपा-उद्वेलन तो होगा ही ! और उस कृपा-उद्वेलनके होनेपर फिर चाहे सम्मुख पड़े जीवोंकी माया-यवनिकाजन्य अघराशि कितनी ही गहन क्यों न हो, वह तो प्रवाहित हो ही उठेगी और तटपर समुपस्थित कृपार्थी स्वाभाविक ही निहाल होगा ही। वस्तुतः सच्चे भगवत्प्राप्त सिद्ध सन्तोंकी यह भी ऐश्वर्यसम्पुटित लीलाकी एक लहरी मात्र ही थी। अन्यथा जो सर्वसुहृद् हैं, रोम-रोमसे दयालु हैं, उनके लिये किसी भी सम्मुख आये जीवको कृपा-स्नान करानेमें कैसी उलझन है ? जब स्वयं भगवद्दृग सन्त ही उपाय निर्धारण करने चलें और उपाय नहीं मिले, यह कैसे संभव है ? बस, अचिन्त्य लीला-महाशक्तिने लीलाक्रम निर्धारित कर दिया। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा के हृदय-वृन्दावनमें नित्य विहार करनेवाले ब्रजेन्द्रनन्दन उस क्रमकी ओर देख लेते हैं, उन्हें अब इस सब जनसमुदायके रूपमें चाहे एक क्षणके लिये ही सही, व्यक्त होना है, यही इस जनसमुदायके कल्याणका उपाय है।

निम्न मुख, निम्न दृष्टि किये श्रीराधाबाबाकी दृष्टि श्रीपोद्दार महाराजके संकेतसे जनसमुदायपर पड़ती है। अन्तरिक्षमें देवसमाज सिहर उठता है। देवसमाज तो सृष्टिप्रवाहको बनाये रखना चाहता है। इन सर्वव्यापी इन्द्रियोंके बहिर्मुख रहनेसे ही तो इन देवगणोंको विषय- सुखोपभोग प्राप्त होता है। अब तो इतने जनसमुदायका परम भगवद्भक्त होना सुनिश्चित होने जा रहा है। अब ये असंख्य जीव भविष्यमें विषयपराङ्मुख हो भगवन्मुखी सन्तहृदय हो जावेंगे, इस आशंकासे अमरमण्डलका कम्पायमान होना स्वाभाविक ही था । किन्तु भीतरसे नहीं चाहते हुए भी उन्हें सन्तकृपाकी जय-जयकार तो करनी ही थी। पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजको माल्यार्पण करते उमड़े जनसमुदायपर जैसे ही दृष्टि उठायी, वहाँसे जनसमुदायका अस्तित्व ही लुप्त हो गया था।

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या 201-300 तक

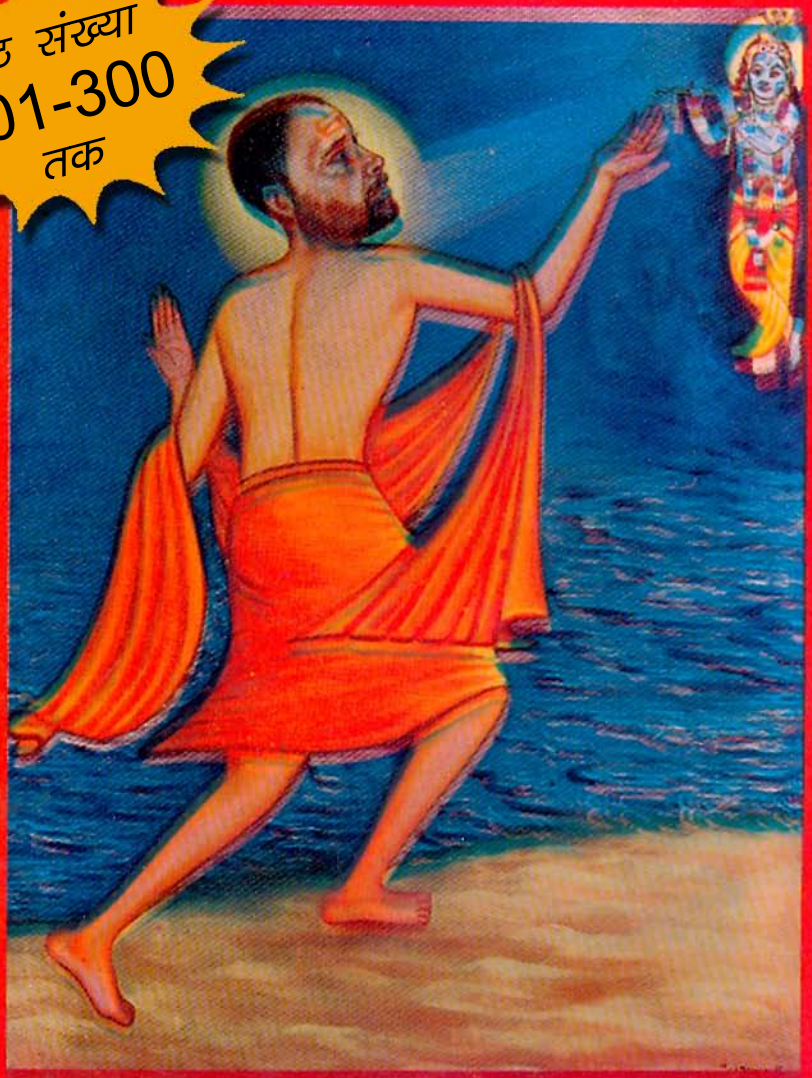

साधु कृष्णप्रेम

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा के इस आत्मस्वरूप, प्राणप्रियतम-दर्शनकी बलिहारी है ! पू.गुरुदेवके पूर्ण अन्तर्मुखी, लीलादर्शन-अवरुद्ध मनमें तो उनके प्राण-प्रियतम ब्रजेन्द्रतनय नित्य सुव्यक्त थे ही। वे एक पलके लिये भी वहाँसे कब हटते थे! उनकी और स्वयं अपनी मनोदशाका चित्रण ही तो श्रीपोद्दार महाराजने अपनी इस पदरचना में किया था –

नैन मन जबतें आइ बसे ।
तबतें आठौं याम दिवस-निसि निमिषहु नाँहि खसे ।।
सबके नयन प्रपंचहि निरखत सबके मन संसार ।
इहाँ जगत आवन नहिं पावत निरतत नंदकुमार ।।

पू.गुरुदेवको अपने प्राणाराध्य ब्रजेन्द्रनन्दनको किसी भी व्यक्ति, वस्तु और परिस्थितिमें कैसे व्यक्त करना है – यह सोचना थोड़े ही पड़ता था; उन्हें उनके आवाहनके लिये किसी प्राणायाम अथवा ध्यान-धारणाकी आवश्यकता थोड़े ही थी, श्रीकृष्णको किसीके भी रूपमें अभिव्यक्त करनेके लिये उन्हें किसी भी प्रयासकी आवश्यकता नहीं थी। उनका कृपा-संकल्प तो उदय होनेके पूर्व ही मानो मूर्त्त हुआ रहता था। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं पोद्दार महाराज कितने महान् थे, आज हम हतभाग्य उन्हें खो देनेपर अपने दुर्भाग्यपर रो रहे हैं । रसकी लहरें उनके ऐश्वर्यकी प्रत्येक उर्मिको संपुटित किये रहती थीं। इसलिये वे अनन्त महिमामय अपनी सामर्थ्यको भूले-से हुए हम लोगोंसे विशुद्ध पारिवारिक भावनासे अभिभूत रहते थे। किन्हींके बाबूजी, किसीके पतिदेव, किन्हींके नानाजी, किन्हींके भाईजी बने वे हम सबके शरीर-भरणकी चिन्तायें करते रहते थे। किन्तु कहीं हम उनके इस मायावी-मोही अभिनयको अपने संयोगके दिनोंमें ही विराम दे देते और उनके वास्तविक रसमय अथवा ईश्वर-सम समर्थ कृपालु रूपको ब्रह्मभावसे निरख पाते तो हमारा सौभाग्य कितना अनोखा होता ! हमारे नेत्र उस समय ठीक सत्य, सत्य देख पाते कि विश्वस्रष्टाओंके ईश्वर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी प्राणाराध्या भगवती जगज्जननी श्रीराधा ही श्रीपोद्दार महाराज और पू. गुरुदेवके कलेवरोंको रंगमच बनाये अपना विलक्षण कृपामय अभिनय कर रहे हैं ।

प्रयाग स्टेशनकी बातपर पुनः आता हूँ। बस, क्षण भी नहीं लगा, नहीं, नहीं, लवमात्र काल भी पूर्ण नहीं हो पाया होगा कि एक अभूतपूर्व चमत्कार मूर्त्त हो जाता है। अभी-अभी जहाँ जनसमुदाय था वहाँ पू. गुरुदेवके

निम्न नेत्रोंके ऊपर उठते ही स्वयं साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन, पू.गुरुदेवके परमाराध्यं, अपने आपको ही सर्वत्र प्रकट कर देते हैं । भगवती योगमांया लीला-विधातृ अघटन-घटना-पटीयसी महाकृपाशक्तिने अपना अभूतपूर्व आप्लावन प्रारंभ कर दिया था। पू.गुरुदेव देख रहे थे – इलाहाबाद रेलवे स्टेशनपर उमड़ी जनसमुदायकी भीड़ जितनी संख्यामें थी, उतनी ही संख्यामें वहाँ श्रीपोद्दार महाराजका सुस्वागत करने स्वयं साक्षात् मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण खड़े थे। उन श्रीकृष्णके किशोरोचित शरीरका परिमाण ठीक जितने हाथ, जितने अंगुलका था, उतने ही हाथ, अंगुलकी वह भीड़ भी हो गयी थी। श्रीकृष्णके कर, चरण आदि अंग-अवयव जितने सुकोमल, जितने परिमित होने आवश्यक थे, यथायोग्य सांगोपांग समग्र भीड़भरा वह दृश्य वैसा ही था। भीड़के सभी पुरुष श्रीकृष्णरूपमें गोचारणमें उपयोगमें आनेवाला लकुट धारण किये थे। वही श्रृंग, वही वेणु, वेसा ही पीताम्बर, वैसे ही किसलय कुसुमके आभूषण, मस्तकपर स्वर्णमुकुट, बाहुओंमें वलय, कंकण, कटिमें करधनी, स्वभावमें वही चंचलता, वही गुण, स्वभाव, आकृति, सौन्दर्य, माधुर्य, चलनेकी भंगिमा, चेष्टायें, वैसा ही कण्ठस्वर, वही रुचि, किसीमें भी कहीं, किञ्चित् भी न्यूनता नहीं, अन्तर नहीं। मानो सचमुच ही श्रीकृष्णचन्द्र अपनी ही कृपाशक्तिके पूर्ण आधीन हुए अपने इस आत्मप्रकाशकी पाठशालामें **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** – यह सबकुछ निश्चय ही (ब्रह्म) श्रीकृष्ण ही है, इस श्रुतिवाक्यका वास्तविक अर्थ पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रकाशित करनेको तत्पर हों। पू. गुरुदेवको इस श्रुतिवाक्यके अर्थको समझनेमें तनिक भी श्रम एवं संशय नहीं रह जाय, इस उद्देश्यसे इस अर्थको वे मानो पू.गुरुदेवके सम्मुख मूर्त्तिमान कर दे रहे हों ! सर्वात्मरूपसे प्रकट होकर इस समस्त जनसमुदाय और इलाहाबाद स्टेशनके भूमि-भवन समस्त वस्तुओंके रूपमें परिणत होकर मानो वे इसीलिये अभिव्यक्त हो उठे हों। पू. गुरुदेव चकित थे। वे जिधर भी दृष्टि उठावें, अनन्त विश्वसृष्टाओंके नियन्ता श्रीकृष्ण मुसका रहे थे। पू. गुरुदेव खुली आँखों पूर्ण जाग्रत् देख रहे थे, कोई भ्रम नहीं, कोई प्रमाद नहीं, किसी चूकका कोई अवसर नहीं । अनेकों बार उन्हें श्रीपोद्दार महाराजमें तो ऐसा दृष्टिगोचर हो चुका था कि उनके स्थानपर पूरे-के-पूरे श्रीकृष्ण दिखाई पड़े हों, किन्तु आज तो बिना किसी भावोद्दीपनके, यह कृपा-चमत्कार उनके नेत्रोंमें जैसे भर ही गया था। ध्यान, चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, समाधि आदि शब्दोंमें यह सामर्थ्य नहीं कि इस उनके आराध्यके

आत्मप्रकाशकी रूपरेखाको वे किसीको भी हृदयंगम करा सकें । यह उनकी कोई मानसिक सृष्टि होती, कोई भाववस्तु-जैसी कुछ होती तो वे कुछ नियमोंकी परिधि भी दे पाते। यह तो उनके आराध्य श्रीकृष्णचन्द्र नित्यलीलाविहारीका अपने-आप द्वारा सम्पादित कृपा-प्रवाह था।

पू.गुरुदेवको इसे समझनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं हुआ। पू.गुरुदेव समझ गये कि यह जो कुछ उनके सम्मुख लीलाकी संघटना व्यक्त हो रही है वह सोद्देश्य है। वह उनके समग्र दृश्यको ही कृपा-आप्लावित करने, उसमें उत्कृष्टतम भक्तिभावका बीज वपन करनेके उद्देश्यसे उनमें उद्रिक्त एवं प्रतिभासित हो रही है। वाणी एवं मन इसकी रूपरेखाको चिन्तनकी परिधिमें ला ही नहीं सकते। यह अनिर्वचनीय है । बस, इसे अद्भुत ही कहा जा सकता है। यदि इसे मनकी कोई अवस्था कहें तो **'वासुदेवः सर्वमिति**' – यह कृपा-प्रतिदानका उत्कृष्टतम रूप है। सर्वविलक्षण ही इसे कहा जा सकता है।

अस्तु, पू.गुरुदेव चुपचाप एक एकान्त स्थानपर बैठ गये। श्रीरामनिवास ढंढारियाने तुरन्त उनके लिये स्टेशनसे एक कुर्सीकी व्यवस्था कर दी। पू. गुरुदेव उस समय भगवत्कृपाके निर्झर ही हो रहे थे। उनकी दृष्टिमें श्रीपोद्दार महाराजके स्थानपर भी साक्षात् नन्दनन्दन ही नन्दनन्दनको माला पहना रहे थे। पू.गुरुदेवकी तो भावस्थिति उस समय ऐसी थी – उन्हें वायु बने श्वास-प्रश्वासके रूपमें, आकाशगत शून्य बने अवकाशके रूपमें, स्थल-जल सभी रूपोंमें एकमात्र उनके आराध्य ही दिख रहे थे। वे उस समयकी स्थितिका वर्णन जब मुझे सुना रहे थे तो उन्होंने अपनेको श्रीकृष्णान्धता-रोगसे ग्रस्त बताया था। ऐसी अन्धता उनके नेत्रोंमें व्याप्त हो गयी थी जिसमें मात्र श्रीकृष्ण ही दृश्य हों, अन्य कोई दृश्य ही नहीं था ।

इधर जो प्राकृत दृश्य हम सभी देख रहे थे, उसमें तो श्रीपोद्दार महाराजका स्वागत करनेका भीड़में अभूतपूर्व उत्साह था। इस यात्रामें श्रीरामनिवास ढंढारिया सम्मिलित थे। वे मुझे बता रहे थे कि –" इसे कहते हैं सच्चे सन्तका आकर्षण।" सचमुच जब किसीका मन सन्तसे मिलनेको व्याकुल हो उठता है, उस समय उसकी ऐसी ही दशा होती है। उसके लिये कोई प्रतिबन्धक नहीं। कोई अवरोध उसके मन-मानसमें प्रविष्ट ही नहीं हो पाता। लोगोंकी दृष्टि एकाग्र थी, मात्र श्रीपोद्दारजीके हँसते मालाओंसे लदे स्वरूपपर और भीड़का प्रत्येक व्यक्ति विघ्न-बाधाओंकी परवाह नहीं करता हुआ, अम्लान मनसे प्रतिक्षण

वर्धनशील उत्साहपूरित चित्तसे पथबाधाकी ठोकरें सहता , बाधाओंको अपने पैरोंसे रौंदता, अन्य सब ओरसे मुँह फेरकर, सबको पूरी तरह विस्मृत कर तीव्रगतिसे बढ रहा था श्रीपोद्दार महाराजकी ओर। प्रत्येक व्यक्ति अविराम प्रयास करता चला जा रहा था उनके चरणोंमें गिरनेका, उनको ही लक्ष्य बनाकर उसके प्रयासकी सब गति थी। वह तभी शान्त होता था, कृतकृत्य होता था , जब या तो उनके चरणोंमे गिर जाता, उनके आलिंगनमें बँध जाता, उनके गलेमें माल्यार्पणके रूपमें अपने आपको ही समर्पित कर देता, उनके चरणोंकी धूलि पा जाता, उनके वरद हस्तको अपने मस्तकपर फिरवा लेता। जनसमूहके व्यक्ति-व्यक्तिकी क्या भावदशा थी इसका वाणी कैसे वर्णन करे ! किसी अंशमें लेखनी इतना ही कह सकती है कि उस जनसमूहका व्यक्ति-व्यक्ति श्रीपोद्दारजीको अपने हृदयमें रख लेना चाहता था। कदाचित् किसीके नेत्र इस बड़भागी जनसमूहकी आँखोंमें, हृदयमें समाकर देखनेकी क्षमता पा लेते तभी वह देख सकता कि कितना अपूर्व , अप्रतिम , श्रद्धासमन्वित आदर भरा था उस जनसमूहमें श्रीपोद्दार महाराजके प्रति । अस्तु,

इधर पू.गुरुदेव चुपचाप प्लेटफार्मके एक किनारे कुर्सीपर विराजित थे। श्रीरामनिवास ढंढारिया, श्रीभगतजी उनके आवश्यक वस्त्र और कमण्डलु सम्हाले थे। कृपा-सिन्धुकी तरंगें पू.गुरुदेवके हृदयमें उमड़ रही थीं। पू. गुरुदेवके अधरोंपर मन्द स्मितकी रेखा नाच रही थी। उनकी दृष्टि अपने आराध्यके नेत्र-सरोजोंपर स्थिर थी। एक साथ आदर्श विनय, अकृत्रिम नम्रता, सरस परिहास, मधुमय रसीली प्रीति, अपरिसीम स्नेह, महान् आदर और पूर्ण प्रणय – न जाने कितने-कितने भावोंका रस अपनी वाणीमें भरकर पू.गुरुदेव अपने प्राणपति श्रीकृष्णसे बोल उठे – "प्राणधन! जीवनसर्वस्व ! प्राण-प्राण ! नहीं, नहीं, सर्वेश्वर ! सुनो, देखो, असंख्य रूपोंमें तुमने आज जो मेरे सम्मुख आत्मप्रकाश किया है, मेरी दृष्टिमें आज यहाँ सम्पूर्ण प्रकृति, उससे सम्बन्धित अनन्त पदार्थात्मक मायिक सृष्टि ही तुम, केवल तुम्ही इन असंख्य रूपोंमें मूर्त्त हो रहे हो, बतादो प्राणेश्वर ! यह सब किस उद्देश्यसे किया है ? विस्तारसे नहीं संक्षेपमें ही सुना दो ! पू. गुरुदेवने शीघ्र उत्तर पानेकी प्रतीक्षा-सी व्यक्त करते हुए अतिशय धैर्यपूर्वक यह बात अपने प्राणपति ब्रजेन्द्रनन्दनको कह दी। अब जब प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनसे उनकी प्राणप्रिया मंजुश्यामा-भावाविष्ट पू. गुरुदेवने यह प्रश्न पूछ ही लिया तो नीलसुन्दर ही अब उनसे कुछ भी रहस्य

गुप्त क्यों रखें ? अपनी प्रियासे वे बोल उठे –" प्राणेश्वरी ! मेरी कृपासे प्राप्त यह तेरी दृष्टि आजसे जिस-जिस प्राणी-पदार्थपर पड़ेगी, उस-उस प्राणीको तत्क्षण नहीं तो शीघ्रातिशीघ्र भविष्यमें मेरे साक्षत्कार और शुभदर्शनमें यह अवश्यमेव हेतु हो उठेगी – इसे सत्य-सत्य मान लेना। आजसे तेरे इस प्राकृत शरीरको भी स्मरण करनेवाला मेरी ही स्मृतिके सभी माहात्म्योंको प्राप्त करेगा, इसमें कहीं कोई न्यूनाधिक्य मत समझना। तेरेसे जुड़ा प्रत्येक प्राणी चाहे कैसा ही क्यों न हो मुझे निश्चय ही प्राप्त करेगा। इसमें कुछ भी, कहीं भी संशय मत करना।"

अपने प्राणप्रियतमकी स्नेहसनी एक-एक बात पू.गुरुदेवको प्यारसे विह्वल कर दे रही थी। पू. गुरुदेव अपने प्राणवल्लभकी वाणी सुन किञ्चित् प्रकृतिस्थ हुए। सहसा पू.गुरुदेवने देखा कि एक ओर प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी और दूसरी ओर श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडनको लिये श्रीपोद्दार महाराज आ रहे हैं। उन्हें एक क्षण तो तीनों ही प्राकृत शरीरके रूपमें दिखे फिर दूसरे ही क्षण पुनः वंशीधारी श्रीकृष्ण ही दिखने लगे। श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवकी भावमयी स्थितिसे परिचित थे, अतः जोरसे बोले – "बाबा ! अपनेको लेने श्रीप्रभुदत्तजी आये हैं , झूसीमें उन्हींके आश्रममें ही हम सभीको रहना है। ये ही हम लोगोंका आतिथ्य-निर्वाह करेंगे।"

पू.गुरुदेवकी प्रयाग-प्रवासके कालमें वृत्ति प्रायः पूर्ण अन्तर्मुखी रही। वैसे प्रयागमें विशाल जनसभा भी हुई जिसमें श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने श्रीपोद्दारजीको मानपत्र समर्पित किया। इस यात्रामें राजर्षि श्रीपुरुषोत्तमदासजी टण्डनको श्रीपोद्दारजीके प्रति बड़ी ही उच्च आध्यात्मिक अनुभूति हुई । उन्होंने पश्चात् श्रीपोद्दारजीको एक अतिशय भावुक पत्र भी लिखा । इस पत्रका उत्तर श्रीपोद्दारजीने उन्हें निम्नरूपमें दिया था –

"आपका कृपापत्र मिला। मैंने यह कभी कल्पना ही नहीं की थी कि आपके द्वारा मुझको कभी ऐसा पत्र भी मिलेगा। विस्तृत सात पेजके पत्रमें प्रारंभसे अन्ततक केवल मेरे दिव्य स्वरूपकी महिमा, दिव्य दर्शनसे परमानन्द तथा उससे प्राप्त लाभ और मेरे गुणोंकी स्तुति भरी है। आप सरीखे सत्यवादी पुरुष मिथ्या लिखेंगे, यह सोचनेका तो साहस ही नहीं होता, पर जो कुछ आपने लिखा है, उसका अधिकांश तो मेरी कल्पनासे बाहरकी चीज है। जो कुछ भी हुआ हो, आप जानें और आपका प्रयत्न जाने। मेरा इससे कोई

सम्बन्ध नहीं है। मैं तो आपका बच्चा हूँ। आपके स्नेहका पात्र तथा अधिकारी हूँ। मुझे सदा अपना बालक मानिये। शिक्षा देते रहिये और आशीर्वाद दीजिये, मृत्युके अन्तिम क्षणतक भगवान्‌की पवित्र स्मृति बनी रहे। ''

अयोध्यामें जगज्जननी माँ सीताजीकी कृपा

जैसे भगवती गंगा भगवान् वामनके चरणोंकी ब्रह्मकमण्डलुसे धोवन है, उसी प्रकार सरयू नदी भी भगवान्‌के वाम पादांगुष्ठकी धोवनसे ही उद्भूत है। पवित्रतम सरयू नदीके दक्षिणतटपर बसी पूरी अयोध्याकी कीर्त्ति सभी पुराणोंमें उल्लिखित है। स्कंदपुराणके अनुसार यह पुरी भगवान्‌के सुदर्शनचक्रपर स्थित है। 'भूतशुद्धितत्व'के अनुसार यह श्रीरामभद्रके धनुषाग्रपर स्थित है– **'श्रीरामधनुषाग्रस्था अयोध्या सा महापुरी'**। अयोध्या शब्दका निर्वचन स्कन्दपुराणमें यों कहा गया है – 'अ'कार ब्रह्मा, 'य'कार विष्णु एवं 'ध'कार रुद्रका स्वरूप है। अयोध्या इन तीनों – ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरका समन्वित रूप है। ब्रह्महत्यादि महापातक भी समस्त उपपातकोंके साथ इससे युद्ध नहीं कर सकते, परास्त हो जाते हैं, इसलिये इसे अयोध्या कहा गया है।

अयोध्यामें पहुँचते ही पहले श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीके सांन्निध्यमें प्रार्थना-संकीर्त्तनका कार्यक्रम हुआ। इसके पश्चान् श्रीपोद्दार महाराज द्वारा अयोध्या माहात्म्यपर प्रवचन-सत्संग कराया गया। अयोध्याके दर्शनीय स्थलोंकी सूची साइक्लोस्टाइल मशीन द्वारा मुद्रितकर यात्रियोंमें अग्रिम वितरित कर दी गयी। इसके पश्चात् सभी यात्री समूहबद्ध ''श्रीराम जय राम जय जय राम'का संकीर्त्तन करते सरयू-स्नानार्थ रवाना हुए। एवं सभीने मन्दिरोंके दर्शनार्थ प्रस्थान किया। तीर्थयात्राट्रेन मात्र एक दिवसके लिये ही अयोध्या रुकी थी, अतः यात्रीगण अयोध्याके मुख्य मन्दिर 'कनकभवन'के दर्शनार्थ रवाना हुए ।

अयोध्याका मुख्य मन्दिर कनकभवन ही है। यह मन्दिर ओरछा नरेशों द्वारा निर्मित है। यह सर्वाधिक विशाल एवं भव्य है। इसकी प्रख्याति श्रीरामके अन्तःपुर या सीताजीके महलके रूपमें भी है। इसमें मुख्य मूर्त्तियाँ प्राचीन

होनेसे भक्त वैष्णवोंमें इनकी ही अधिक मान्यता है।

पू.गुरुदेवके सम्मुख तो अयोध्यामें प्रविष्ट होते ही प्राकृत अयोध्या तीर्थके स्थानपर 'साकेत धाम' प्रकट हो गया था। अयोध्या भूमि ही उन्हें परम चिन्मयी प्रतीत हो रही थी। उन्होंने इस पावनतम नगरीमें अपने चरण रखते ही पहले इस साकेत भूमिकी रज लेकर मस्तकपर लगायी। इस रजके मस्तकपर लगते ही पू. गुरुदेवको अनहद 'रामनाम'का श्रवण होने लगा। यह 'राम'नाम इतना मधुर था मानो असंख्य मञ्जु कनक-मञ्जीर, वलय आदि विविध भूषण मृदु, मधुर झंकार कर रहे हों। कभी-कभी यह नाद गंभीर हो उठता था, और कभी असंख्य तन्तु-वाद्य वीणाकी सुमधुर संगीत स्वरलहरीमें झनझन कर उठता था। कभी यह वेणुवादन ध्वनिकी तरह प्रतीत होता था, और कभी मानों असंख्य घंटाध्वनि हो रही हो इस प्रकार गुंजायमान होता था। जगत्की अशेष अमंगलराशिको निर्मूल कर देनेवाली इस परम सुमधुर ध्वनिकी पवित्रता एवं माधुर्यका वाणी कथन ही नहीं कर सकती थी। पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि अन्तरिक्ष, भूमि, भवन, सर्वत्र अणु-अणुसे निःसृत इस परमातिपरम मधुर नादको दिक्सुन्दरियाँ प्रतिध्वनित कर और भी गुंजायमान कर दे रही हैं। यह परम मंगल 'राम'-'राम'नामका घोष अन्तरिक्षके विमानोंपर सुप्त सुरसन्दरियोंके कर्णरंध्रोमें प्रविष्ट होकर उन्हें चमत्कृत कर रहा है। 'अहा ! यह अप्रतिम 'राम''रामनामका श्रवणसुख ! इसकी तुलनामें तो देवराज इन्द्रकी सभाका गायन-श्रवण नगण्य है, हालाहलकी ज्वालातुल्य है। सुरसुन्दरियाँ विमानोंमें सुषुप्ति त्याग मुख फेरकर चमत्कृत-सी इधर-उधर इस नामध्वनिके अभ्युदय- स्रोतको ढूँढने लगती हैं। पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि इस सुधास्रावी मंगल नामध्वनिको सुन-सुनकर सभी साकेतवासी सदैव आनन्द-रसमग्न रहते हैं। उनके मनकी समस्त वृत्तियाँ ही इस परम मनोहर रामनाम-ध्वनिमें विलीन हुई रहती हैं।

इस नामध्वनि-श्रवणके साथ-साथ पू.गुरुदेवके सम्मुख समग्र चिन्मय 'रामलीला' ज्यों-की-त्यों व्यक्त होने लगी। भगवान् रामचन्द्रका जगज्जननी कौशल्याकी कोखसे भूमिष्ठ होना, बाल लीला, विश्वामित्रका राजा दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगना, विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा, अहल्या-उद्धार, गुरु विश्वामित्रजीके सहित श्रीराम-लक्ष्मणका जनकपुरमें प्रवेश, श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर श्रीजनकजीकी प्रेममुग्धता, श्रीरामलक्ष्मणका जनकपुर-निरीक्षण और

जनकपुरकी स्त्रियोंका भगवान् रामचन्द्रके रूपपर मोहित होना, पुष्पवाटिका -निरीक्षण, श्रीसीताजीका प्रथम दर्शन, श्रीसीता-रामका परस्पर दर्शन, श्रीसीताजीका पार्वती-पूजन, एवं वरदान-प्राप्ति, राम-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम-लक्ष्मणसहित विश्वामित्रका यज्ञशालामें प्रवेश, श्रीसीताजीका यज्ञशालामें प्रवेश, बन्दीजनों द्वारा जनक-प्रतिज्ञाकी घोषणा,राजाओंसे धनुष नहीं उठना, राजा जनककी निराशाजनक वाणी, श्रीलक्ष्मणजीका क्रोध, धनुष-भंग, जयमाल पहनाना, श्रीराम-लक्ष्मण और परशुराम संवाद, दशरथजीके पास जनकजीका दूत भेजना, अयोध्यासे बारातका प्रस्थान, बारातका जनकपुर आगमन, स्वागतादि, श्रीसीता-राम विवाह और विदाई । बारातका अयोध्या लौटना और अयोध्यामें आनन्द।

पू.गुरुदेवके सम्मुख यह सब लीला ज्यों-की-त्यों प्रकट हो गयी। पू.गुरुदेवने भगवान् श्रीरामजीसे प्रार्थना की कि वे उन्हें इस परमानन्दमयी लीलाका ही दर्शन करावें। उनकी मानसभूमि अभी विरह-वियोग- लीलाको सहन कर सकनेकी नहीं है, अतः उनके सम्मुख मात्र रामराज्याभिषेक तककी ही लीला व्यक्त हो, एवं हुआ भी वही।

पू. गुरुदेवने जबसे अयोध्याधाममें प्रवेश किया, तबसे लेकर, उनके सरयू-स्नान और कनकभवन पहुँचनेतक सर्वकाल वे यद्यपि ऊपरसे मुझसे, भाई रामनिवासजी ढंढारियासे, श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीसे अपनी स्लेटपट्टीपर आंशिक लिखकर एवं आंशिक बोलकर बतियाते रहे, किन्तु हम सभी देख रहे थे कि उनके नेत्र भीतर-ही-भीतर किसी विलक्षण आनन्दरसमें डूब-उतरा रहे हैं। यह मेरा शुभ प्रारब्ध था कि श्रीपरमेश्वरजी फोगलाके साथ-साथ मैं भी उनके साथ इस अयोध्या तीर्थयात्रामें सम्मिलित हो गया था। हम लोग गोरखपुरसे जीप द्वारा प्रातः ट्रेन आनेके पूर्व ही वहाँ पहुँच गये थे।

पू.गुरुदेव जब सरयूस्नान करने लगे तब अचानक ही मुझे उन्होंने कहा कि श्रीराधेश्यामजी भगतसे संक्षिप्त पञ्चपूजोपचारकी पूजनसामग्री ले आओ। उन्होंने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे सरयू-प्रवेशके पूर्व सरयू नदीका पूजन सम्पन्न कराया। तत्पश्चात् ही हम सभी लोगोंने स्नान किया सरयूपूजनके पश्चात् पू.गुरुदेवने गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भवभय दारुणं "का पद-गायन भी सुना था। गोस्वामीजीके मधुर कण्ठसे निस्सृत पदगायनकी स्वर-लहरीसे समग्र वातावरण भक्तिमय हो उठा था।

पू.गुरुदेव जब कनकभवन दर्शनार्थ पहुँचे उस समय तीर्थयात्रियोंकी चतुर्दिक् अपार भीड़ थी । छः-सातसौ तीर्थयात्री एवं फिर अयोध्यावासी दर्शनार्थी सब मिलकर इतने लोग हो गये थे कि मन्दिर-प्रांगणमें तिल रखनेकी भी जगह नहीं थी। तीर्थयात्री तो परिचित होनेके कारण पू.गुरुदेवके दर्शनार्थ आनेपर मानो किनारे भी हो जाते, परन्तु अयोध्यावासी दर्शनार्थी तो गुरुदेवसे अपरिचित थे, अतः उनके हटनेका और उन्हें रास्ता देनेका प्रश्न ही नहीं था। श्रीपोद्दार महाराज सार्वजनिक कार्यक्रमोंमें व्यस्त थे। उन्हें सायंकाल रामजन्मभूमिपर विशाल सभा आयोजित करनी थी । बड़ी-बड़ी छावनियोंके महन्तोंसे मिलना, आदि उनकी अति व्यस्त कार्यसूची थी। श्रीपोद्दार महाराजके साथ नहीं होनेसे पू.गुरुदेवको भगवान् कनकविहारीके दर्शन होना ही दुर्लभ हो रहा था। फिर तीर्थयात्री दर्शनार्थी भी आह्लादवश पीछे मुड़कर नहीं देख पानेसे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा खड़े हैं, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, यह जान ही नहीं पा रहे थे। पू. गुरुदेवके प्राण व्याकुल हो उठे। उनमें भावोन्मेष हो उठा। क्या श्रीसीताजी –मेरी बड़ी बहिनको मेरे आगमनकी सूचना नहीं है ? वे क्या मुझे अपना दर्शन ही नहीं देंगी ? कनकभवन तो श्रीसीताजी, मेरी बडी बहनका ही तो महल है ! श्रीरामके महलमें, अन्तःपुरमें मैं आऊँ और श्रीसीताजीको उनकी दासियाँ सूचित नहीं करें, यह कैसे संभव है ? फिर उन्होंने मुझे इस भीड़में दर्शन देनेकी व्यवस्था क्यों नहीं की ? सात्विक उपालंभ देते पू. गुरुदेवके अंगोंमें कम्प होने लगा। तत्क्षण ही हम सभीने देखा कि दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़के अन्तरालसे कुछ क्षणोंके लिये एक ऐसा छिद्र बन गया और उस छिद्रसे हम सभीको सिंहासनासीन सभी मूर्त्तियोंके सुस्पष्ट दर्शन होने लगे। पू. गुरुदेवको मानो राजराजेश्वरी सीताजीने सन्देश दे दिया कि प्राकृत धरातलपर इन कठिनाइयों और बाधाओंसे अन्तर्जगत्के स्नेहका आकलन नहीं करना चाहिये। एक विलक्षणता और घटित हुई हम लोगोंको जो पू. गुरुदेवके संग थे, उन्हें तो जो सन्धि-छिद्र बना उसमेंसे मात्र मूत्तियोंके ही दर्शन हुए, किन्तु पू.गुरुदेवको जो अभूतपूर्व दिव्य दर्शन हुए उसका तो लेखनी वर्णन ही नहीं कर सकती। पू.गुरुदेव स्पष्ट देख रहे थे– " एक परम दिव्य अलौकिक रत्नोंसे जटित सिंहासन है। उस सिंहासनकी शोभा अकथनीय है। उस सिंहासनपर अनन्त जन्मार्जित पूण्यराशिरूप एक नीलसुन्दर किशोर आसीन

है। उसके वाम भागमें मानो अनिर्वचनीय कनकवर्णी तेजोलतिकाका नवोन्मिषित पल्लव हो, ऐसी परम सुकुमारी एक षोडशवर्षीया किशोरी विराजित है। मानो ये दोनों युगलदम्पती उपनिषद्रूप कल्पलताश्रेणीके मधुर फल हों– इस प्रकारकी अलौकिक विशुद्ध सत्वमयी स्थिर शान्ति दोनोंके मुखमण्डलोंसे झर रही थी। कनकमन्दिरकी मणिमय भित्तियों, आच्छादन (छत) और स्तम्भ सब ऐसे अनमोल रत्नोंसे निर्मित थे, मानो सर्वत्र उद्घोष कर रहे हों– यह अनन्त विभु रघुकुलभूषण दशरथनन्दनका महल है, कोई साधारण मन्दिर नहीं। पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा जब दर्शन कर रहे थे, उस समय कोई उनके कानोंमें अतिशय मधुर ध्वनिमें कह रहा था–" सावधान ! तुम्हें उन अजन्माके स्वरूप-सौन्दर्यका दर्शन-सौभाग्य मिल रहा है, जिनके एक-एक रोमकूपमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा,एक-एक विष्णु और रुद्र जिनके भ्रू-संकेतसे सृजन, पालन और संहारका कार्य वहन करते हैं,जिनकी सर्वमोहनकारिणी योमायाका अपरम्पार वैभव है– उन्हें प्रणाम करो।" पू.गुरुदेवने सिंहासनासीन युगल दम्पतीको प्रणाम किया। पू.गुरुदेवका तो सम्पूर्ण दृश्य ही अप्राकृत था। उन्हें तो वहाँ अप्राकृत दशरथात्मजके रंगमहलके दर्शन हो रहे थे। वे देख रहे थे– " प्रसादका कोना-कोना मानो परम सुगन्धित चन्दनवारिसे स्वच्छ किया गया है। फिर सर्वत्र परम दिव्य पुष्परससार छिड़का है। रंग-बिरेगे वस्त्र और सुकोमलतम पल्लवोंके बन्दनवार बँधे हैं, चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ यथास्थान फहरा रही हैं । रत्नमालाकी लड़ियाँ गवाक्षोंमें झालरोंकी तरह लटक रही हैं। मणिमय स्तंभोंपर पुष्पमालायें लिपटी हैं। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लव-समन्वित जलपूर्ण रत्नमय मंगलघट रखे हैं। हरिद्रा, दूब, अक्षत, दधि, कुंकुमसे महलका प्रत्येक द्वार चिन्नित है।स्थान-स्थानपर मोतियोंके चौक पूरे हैं। महलके मुख्य द्वारपर सहनाईवाले मधुरातिमधुर रागिनीकी सुरीली ध्वनि कर रहे हैं। एक ओर ब्राह्मण ब्रह्ममुखनिःसृत वेदमंत्रोंका पाठ कर रहे हैं। तोरणद्वारपर एक ओर ऊँचे आसनपर विराजमान ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मंगलवचनोंको संस्कृत भाषाके श्लोकोंमें निबद्ध करके बोल रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर मागध रघुकुल-वंशावलीका उच्चारण कर रहे हैं। बन्दीजनोंकी पंक्तियाँ हैं, वे महाराज दशरथकी स्तुति कर रहे हैं। ब्राह्मणोंके सामने दूसरी ओर विशाल स्वर्ण-प्रांगणमें संगीतज्ञोंकी मण्डली जम रही है।

एक ओर कलाकार युवतियाँ वीणावादन कर रही हैं। चतुर्दिक् मानो वैभव एवं रस बरस रहा है। एक ओर महाराज दशरथके मंत्री अतुलनीय संपत्तिका दान कर रहे हैं। उनका खजाना मानो अनन्त असीम है। प्राकृत कोषागारकी सीमा होती है, उसमेंसे कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है। उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। परन्तु महाराज दशरथका भण्डार (कोष) प्राकृत नहीं। वह ऐसा है जिसमेंसे जितना वे निकालेंगे, उतना ही और बढ़ जायगा। अपनी जानमें यदि वे सम्पूर्ण लुटा देंगे तो भी उसमें सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये महाराज दशरथके मन्त्रियों द्वारा दान देनेमें विराम नहीं, कोई गणना नहीं, वे भरपूर देते ही जा रहे हैं। यह प्रतिदिनका नियम है। रामकी प्रजामें कोई निर्धन नहीं रहे, सब पूर्णकाम हों, यही निरन्तर केवल एक भावना है। पू.गुरुदेवका इस अभूतपूर्व दर्शनसे रोम-रोम आनन्दनिमग्न हो उठा था। उनके हृदयमें उमड़ते हुए आनन्दप्रवाहका वेग इतना अधिक था कि मन डूब गया था और विचारशक्ति आनन्दतरंगोंसे तरंगायित हुई स्तंभित हो गयी थी। पू.गुरुदेवके नेत्र बन्द थे। किन्तु बन्द आँखोंसे ही उन्हें जो कुछ दिख रहा था, वह हम बहिर्मुखी, खुली आँखोंवाले अभागोंको कहाँ दिख पाता है। हम खुली आँखोंवाले अन्धे हैं और पू. गुरुदेव, जिनकी प्राकृत जगत् देखनेवाली आँखें पूर्णतया बन्द थीं, अप्राकृत अलौकिक लोकका दर्शन कर रहे थे।

अयोध्यामें श्रीकनकबिहारीजीके दर्शनका एक प्रसंग इस तीर्थयात्राट्रेनके पूर्वका भी है। पू.गुरुदेव इसे भी अनेक बार हम सभीको सुना चुके हैं। पू. गुरुदेवने सुनाया था –

"एक बार वे श्रीपोद्दार महाराजके साथ मोटरसे लखनऊसे अयोध्या धाम गये थे। अयोध्या होकर रात्रिको ही गोरखपुर पहुँचनेकी बात थी। श्रीपोद्दार महाराजका परिवार भी उनके साथ था। अयोध्या पहुँचनेपर पू. माताजी(पोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) की इच्छा हुई कि सरयू-स्नानके पश्चात् श्रीकनकबिहारीजीके दर्शनार्थ जाना चाहिये। सभी लोग अतिशय विलम्बसे तो पहले ही अयोध्या पहुँचे थे अतः यह प्रायः निश्चय था कि अब यदि सरयू स्नानमें समय लगाया जायगा तो कनकबिहारीजीके दर्शन संभव नहीं हैं। मन्दिरके पट मध्याहके पूर्व ही बन्द हो जाते हैं। अतः श्रीपोद्दार महाराजने शीघ्र

दर्शन करने पर ही जोर दिया। परन्तु माताजी स्त्री-हठ कर बैठीं । उन्हें पहले कनकविहारीजीके दर्शन करना एवं तब सरयूस्नान करना सर्वथा अटपटा लगा। वैष्णवाचारसम्मत भी यही बात थी कि पहले सरयूस्नान हो एवं तब मन्दिर-दर्शन। पू.माँकी भावनाओंका आदर करते हुए सभी लोग सरयूस्नान करने गये।

स्नानमें विलम्ब तो होना ही था। श्रीपोद्दार महाराजको जो आशंका थी, वही घटित हुआ। श्रीकनकबिहारीजीके पट बन्द हो चुके थे। अब अपराह्नकालके पश्चात् पट खुलनेपर ही दर्शन संभव थे। कनकभवनके बाहर बरामदेमें पोद्दार महाराज तो अपने 'कल्याण'के प्रूफ देखने बैठ गये और शेष परिवारके लोग जो साथमें भोजन-सामग्री लाये थे, खानपानके क्रममें निरत हो गये। जब श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवसे उनकी भिक्षाकी बात पूछी तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि अब तो मैं भिक्षा तबतक नहीं करूँगा जबतक भगवान् कनकबिहारीजीके दर्शन नहीं हो जावेंगे। श्रीपोद्दार महाराजका झुँझलाना स्वाभाविक ही था। पहले तो त्रिया-हठने पर्याप्त विलम्ब कर दिया था, अब यह यति-हठ सामने था। अपराह्नकालके पश्चात् पहले सभी श्रीकनकबिहारीजीके दर्शन करेंगे, फिर पू.गुरुदेवकी भिक्षा बनेगी, और तब भिक्षा होगी, इतनेमें तो रात्रि हो जायगी। वे रात्रिके पूर्व ही दिन रहते-रहते अयोध्यासे गोरखपुर लौट आना चाहते थे। इसी मध्य श्रीकनकभवनके अधिकारीगणोंको पता चल गया कि 'कल्याण'पत्रके सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सपरिवार बरामदेमें बैठे हैं । अधिकारीगण अत्यन्त विनीत होकर उनके पास आये और उनके सपरिवार रहनेके लिये कमरे स्वच्छ कराके खोल दिये गये। श्रीपोद्दार महाराजको उस व्यवस्थाको स्वीकार करना ही पड़ा। कमरोंकी व्यवस्था हो जानेपर यही निर्णय हुआ कि पू.गुरुदेवकी भिक्षा बनानेका कार्य प्रारंभ कर दिया जाय , जिससे भगवान् कनकबिहारीके दर्शनोंके पश्चात् भिक्षा सम्पन्न हो जाय और भिक्षाके पश्चात् दिन रहते-रहते गोरखपुर प्रस्थान कर दिया जाय।

संभवतः पाँच बजे सायंकाल श्रीकनकबिहारीजीके पट खुले। उस दिवस कोई विशेष पर्व एवं उत्सव नहीं था, फिर भी संयोग ऐसा हुआ कि यात्रियोंकी भीड़ असीम रूपसे उमड़ पडी। भीड़में ग्रामीण स्त्रियोंका इतना बाहुल्य था कि पू.गुरुदेवके लिये उस भीड़में जाकर दर्शन करना संभव ही

नहीं था। भीड़ लगातार बढ़ती ही जा रही थी और दर्शनोंका भी ठिकाना नहीं था कि कब बंद हो जावें, क्योंकि सायंकाल बस एक ही दर्शन खुला करते थे। पू.गुरुदेव चुपचाप बरामदेमें एक किनारे बैठ गये और मन ही मन कहने लगे –" प्रभो ! आप तो राजराजेश्वर त्रिलोकीनाथ भगवान् रामचन्द्र हैं। इतनी भीड़में मेरे द्वारा दर्शन किया जा सकना तो संभव है नहीं। अब आपको दर्शन देना हो तो दें, अन्यथा यह भी समझलें कि बिना दर्शन किये मेरी भिक्षा भी नहीं हो सकेगी।"पू. गुरुदेव द्वारा इतना कहा जाना था कि थोड़ी देर पश्चात् ही आश्चर्यवत् जहाँ वे बैठे थे वहाँसे लेकर गर्भगृह तकका जहाँ भगवान् कनकबिहारी, भगवती श्रीसीताजी सहित विराजमान थे पूरा स्थान जनशून्य रिक्त हो गया। भीड़ अपने आप दो भागोंमें विभक्त होगयी और मध्यमें पू. गुरुदेवके सम्मुख एक गलियारा निर्मित होगया, जिससे वे भगवान्के निर्विघ्न दर्शन कर सकें। पू.गुरुदेव अपने स्थानपर बैठे-बैठे ही भगवान् कनकबिहारीके बहुत ही सुविधासहित दर्शन करने लगे। पू.गुरुदेवका रोम-रोम आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा।

इसके पश्चात् एक चमत्कार और घटित हुआ। गर्भगृहसे नितान्त तेजोमयी अत्यधिक सुन्दरी दो महिलायें बहिर्गत हुईं। उनके अंग इतने स्वच्छ और सुन्दर थे मानो किसी कनकलताके अंकुर हों, इतने मृदु और लालिमायुक्त थे मानो पद्म-पल्लव हों, इतने स्निग्ध और तेजोमय थे मानो विद्युल्लता ही मूर्त्तिमती हो उठी हों, इतने सुरभित थे कि साक्षात् त्रैलोक्यलक्ष्मीको उनपर न्यौछावर कर दिया जाय, इतनी आकर्षक एवं सुन्दरी वे दोनों स्त्रियाँ मानो साक्षात् सौभाग्यश्री ही पू. गुरुदेवके सम्मुख अवतरित हो गयी थीं। पू.गुरुदेवने अनुमान लगाया कि अवश्यमेव उनमें एक जगज्जननी श्रीसीताजी थीं ,क्योंकि उनकी आकृति उनकी आराध्या श्रीराधासे सर्वथा मेल खा रही थी । दूसरी या तो श्रीसीताजीकी भगिनी, लक्ष्मणवधू उर्म्मिला रही होंगी अथवा श्रीसीताजीकी कोई सखी। वे आकर पू.गुरुदेवके पार्श्वमें ही रेलिंगके सहारे खड़ी हो गयीं। वे रेलिंगपर अपनी सुकोमलतम अँगुलियोंसे ताल दे रही थीं। इन सबके सम्मुख मन्दिर द्वारतक दर्शनार्थियोंकी भीड़ ज्यों-की-त्यों खड़ी थी। पू.गुरुदेव इन दोनों स्त्रियोंको देखकर अभूतपूर्व आनन्दमें डूबे जा रहे थे। ऐसी विलक्षण, अभूतपूर्व, अश्रुतपूर्व ये दोनों दिव्यांगनाएँ क्यों गर्भमन्दिरसे निर्गत हुई हैं ?

उनकी उत्कण्ठा चरम सीमाको पहुँच गयी थी । अचानक जैसे सहस्र सुमधुर वीणाके तार झंकृत हो उठे हों, उनमेंसे एक परम सुन्दरी बोल उठी–"संन्यासी महात्माजी ! बुरा नहीं मानना चाहिये। भीड़में ऐसा हो ही जाता है। तीर्थस्थलोंमें आप-जैसे पात्रोंका आवागमन तो न्यून हो गया है, किन्तु भीड़के आधिक्यसे अव्यवस्थाएँ होती रहती हैं। '

पू.गुरुदेवको सम्बोधितकर जहाँ एक स्त्री बोल रही थी, वहीं दूसरी खड़ी-खड़ी मुसका रही थी । पू.गुरुदेवका कण्ठ भर आया, वाणी रुद्ध हो गयी। वे कुछ भी उत्तर नहीं दे पाये। उनकी आँखें उस पवित्रतम प्रेमभरी वाणी सुनकर छलछला आयी। छलकती हुई आँखें ही मानो उन दोना युवतियोंको पू.गुरुदेवका उत्तर दे सकीं–" अपने दिये हुए उपालंभके लिये तुमसे क्षमा चाहता हूँ। देवियों ! तुम कौन हो, मैं नहीं जानता, किन्तु तुम्हारे स्वामी राजराजेश्वर रघुकुलभूषणसे मुझ दीनका प्रणाम निवेदन कर देना।

पू.गुरुदेवकी उस समय जो भावविभोर दशा हो गयी, उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः भगवान् तो भावके भूखे होते हैं, वे निजजनके लिये सबकुछ न्यौछावर कर देते हैं।

अयोध्यासे नैमिषारण्य

महर्षि शौनकके मनमें सुदीर्घकालीन ज्ञानसत्र करनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर श्रीब्रह्माजीने उन्हें एक चक्र दिया एवं कहा – इसे चलाते हुए चले जाओ। जहाँ इसकी 'नेमि' (बाहरी परिधि) गिर जाय , उसी स्थलको परम पवित्र मानना। वहीं आश्रम बनाकर ज्ञानसत्र करो। " शौनकजीके साथ अट्ठासी हजार ऋषि थे। गोमती नदीके किनारे एक तपोवनमें चक्रकी नेमि गिर गयी और वहीं वह चक्र भूमिमें प्रवेश कर गया। चक्रकी नेमि गिरनेसे वह तीर्थ 'नैमिष' कहा गया। जहाँ चक्र भूमिमें प्रवेश कर गया, वह स्थान चक्रतीर्थ कहा जाता है। यह तीर्थ गोमतीनदीके वाम तटपर है। कहा जाता है कलियुगमें समस्त तीर्थ नैमिष क्षेत्रमें ही निवास करते हैं। श्रीस्वामीजी नारदानन्दजी महाराजने तीर्थयात्रियोंका स्टेशनपर स्वागत किया। श्रीपोद्दार महाराज सपरिवार पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा सहित उनके आश्रममें ही

ठहरे। ट्रेनसे उतरकर प्रार्थना और संकीर्त्तन करते यात्रीगण 'चक्रतीर्थ' पैदल ही गये। यहाँ सभीने सरोवरमें स्नान किया। अनेक यात्रियोंने नैमिषारण्यका अन्तर्वेदी परिक्रमा भी की। पू.गुरुदेव पञ्चप्रयाग गये और अक्षयवटके नीचे कुछ कालतक ध्यानस्थ हो गये । पू.गुरुदेवने बताया कि इसी अक्षयवटके नीचे ही संभवतः यह महान् शौनकादि ऋषियोंका ज्ञानसत्र चला था। क्योंकि यहाँ उन्हें सहज स्वाभाविक ही बहुत सात्विकता दृष्टिगोचर हुई थी।

श्रीनारदानन्दजी पू.गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजको दधीचिकुण्ड भी ले गये थे। कहा जाता है कि यहाँ महर्षि दधीचिका आश्रम था। देवताओंके माँगनेपर वज्र बनानेके लिये यहीं उन्होंने अपनी अस्थियाँ प्रदान की थीं। दधीचिकुण्डका जल लेकर पूज्य गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजने अपने मस्तकपर शिरोधार्य किया।

———

हरिद्वारमें भगवती गंगाजीके दर्शन

हरिद्वार वस्तुतः भगवान् बद्री और केदारनाथके द्वारपर स्थित होनेसे ही प्रख्यात है। गंगाद्वार (हरकी पैड़ी), कुशावर्त्त, बिल्वकेश्वर, नीलपर्वत, एवं कनखल – ये पाँच प्रधान तीर्थ हरिद्वारके ही अन्तर्गत हैं, जिन्में स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। नारदपुराणादिमें कथा आती है कि राजा भगीरथ द्वारा मर्त्यलोकमें गंगाजीको लानेपर राजा श्वेतने इसी स्थानपर ब्रह्माजीकी बड़ी आराधना की थी। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर श्रीब्रह्माजीने वर माँगनेको कहा। राजाने उस समय यही वर माँगा कि यह स्थान आपके नामसे प्रसिद्ध हो। यहाँपर आप भगवान् विष्णु और शंकरजी, दोनोंके सहित निवास करें और यहाँपर सभी तीर्थोंका वास हो। ब्रह्माजीने कहा–'ऐसा ही होगा। आजसे यह कुण्ड मेरे नामसे ब्रह्मकुण्ड कहलायेगा और इसमें स्नान करनेवाले परमपदके अधिकारी होंगे।' कहते हैं राजा भर्तृहरिने, जो राजा विक्रमादित्यके भाई थे, यहीं तपस्या करके अमरपद पाया था। राजा विक्रमादित्यने ही पहले-पहल यह कुण्ड तथा यहाँ सीढियाँ बनवायी थीं। इसका नाम 'हरि-की-पैड़ी' इसी कारण पड़ गया। इस कुण्डमें एक ओरसे गंगाकी धारा आती है, और दूसरी ओरसे निकल जाती है। कुण्डमें कहीं भी जल कमरसे ज्यादा गहरा नहीं है। इस कुण्डमें ही हरि अर्थात् विष्णुचरणपादुका, मनसादेवी, साक्षीश्वर, एवं गंगाधर महादेवके मन्दिर तथा राजा मानसिंहकी छतरी है। यहींपर सूर्यास्तके समय गंगाजीकी आरतीकी झाँकी बड़ी ही सुन्दर होती है। हरिद्वारका सर्वप्रधान यही तीर्थ है। प्रति बारहवें वर्ष जब सूर्य और चन्द्र मेषमें और बृहस्पति कुम्भराशिमें स्थित होते हैं, तभी यहाँ कुम्भका मेला लगता है। उसके छठे वर्ष अर्धकुम्भी होती है। हरिद्वारमें ही मैत्रेयजीने विदुरजीको एवं नारदजीको सनकादिने यहीं श्रीमद्भागवत कथा सुनाई थी।

नैमिषारण्यसे तीर्थयात्राट्रेन सीधी हरिद्वार पहुँची थी। इस यात्रामें लेखक पू. गुरुदेवके साथ नहीं था। किन्तु मैंने अनेक वर्षों बाद पू.गुरुदेवके मुखसे ही सुना था कि उन्हें हरिद्वारमें सायंकाल आरतीके समय भगवती गंगाने साक्षात् दर्शन दिये थे। पू.गुरुदेव कह रहे थे–"भैया ! वस्तुतः भगवती गंगाका सतत त्रितापहारी प्रवहमान श्रीविग्रह सदैवसे ही सन्तोंके विहरण-समर्पणका

हेतु रहा है। भगवती गंगा पञ्चभूतोंकी रचना कदापि नहीं हैं, वे अप्राकृत विशुद्ध सत्वमय ब्रह्मद्रव हैं । वे अति भक्तजनवत्सला हैं। अपनी वात्सल्यराशि बिखेरती वे देवीरूपमें मुझे हरि-की-पैड़ीपर ब्रह्मकुण्डके ऊपर जलसे दस अंगुल ऊपर स्थित दिखीं । उनकी दिव्यता, कान्ति, दीप्ति, पावित्र्य ही संकेतित कर रहा था कि वे कोई मर्त्यदेवी नहीं हैं। वे देवजगत्की भी प्राणी नहीं थीं, मेरा ऐसा ठीक-ठीक निश्चय है। वे आत्मानन्दानुभव-स्वरूपा हैं। इसलिये उच्चकोटिके सिद्ध सन्त भी निश्छल रूपसे भगवती गंगाका समाश्रय लिये रहते हैं। एक नहीं, सहस्रों संत अपने जीवनका सार-सर्वस्व भगवती गंगाको बनाये उनके तटका आश्रय लेकर विहरण करते रहते हैं। भगवती गंगाका नाम, उनका दर्शन, स्नान, स्पर्श, उनका गुण-कीर्त्तन सब पूर्णतया पवित्र करने वाला है। काय-मनो-वाक्यसे जो भगवती गंगाको अपने जीवनका सार-संबल बना लेते हैं , उनका अन्तर्मन बिना किसी अन्य साधनके पवित्र होकर भगवत्पदका अधिकारी बन ही जाता है। ''

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि भगवती गंगासे उनकी बालकपनसे ही अतिशय श्रद्धा रही है। उनके परिवारके किसी भी प्राणीकी मृत्युपर लोग पैदल गयातक गंगाजीमें ही लाशका दाह करने ले जाया करते थे। तब वे कोसों पैदल चलकर गंगा पहुँचा करते थे।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि एक बार वे तैर रहे थे। कुशल तैराक होनेके कारण संन्यासी होनेके उपरान्त भी वे कलकत्ता, ऋषिकेश, काशी, कहीं भी पोद्दार महाराजके साथ जाते, तो गंगास्नान के लिये अवश्य जाते और तब तैरते अवश्य थे। एक बार वे कलकत्तेमें गंगामें तैर रहे थे। तैरते हुए एक भँवरकी लपेटमें आगये। भँवरमें फँसे वे बहुत चेष्टा करके भी निकल नहीं पा रहे थे। पानीका तेज प्रवाह चक्राकार घूमता उन्हें भीतर डुबा देनेकी भरपूर चेष्टा कर रहा था। जब थककर पू. गुरुदेव चूर हो गये और यह संभावना निश्चित् ही हो गयी कि वे अब डूब जावेंगे, उस समय माँ गंगासे उनके मुखसे निम्न दो शब्द प्रार्थनाके निकल गये–"माँ गंगे ! तुमसे छिपा ही क्या है ? तुम तो माँ ! भूत-भविष्य-वर्त्तमान त्रिकालकी प्रत्यक्षवत् द्रष्टा हो। इस जगत्के प्रवाहमें एक नहीं, असंख्य योगीगण ऐसे हो चुके हैं जिन्होंने योगके, ज्ञानके साधनोंको अपनाया था, साधनकी चरमोत्कर्ष दशामें वे अवस्थित भी हो चुके थे; फिर भी ज्ञानकी ज्योति नहीं ही जग सकी, उनका हृत्तल पूर्ण आलोकित

नहीं ही हो सका। तब वे लौटे तेरी शरणमें। तेरी भक्तिका अवलम्बन किया उन्होंने। हे नारायणी ! जब उनके जीवनकी धारा तुम्हारी ही ओर बह चली, उनकी सब चेष्टाएँ समर्पित होने लगीं तुम्हें ही, तो तुमने शीघ्र ही उनके मनका मैल धो दिया, तुम्हारे तटवर्त्ती संत-समागमका सौभाग्य-लाभकर वे सतत तुम्हारी भक्तिमें निमग्न रहने लगे। उनमें सच्ची भक्तिका उन्मेष हो उठा। फिर तो स्वरूपज्ञान होनेमें विलम्ब ही क्या था, वह तो स्वतः ही हो गया। माँ ! अब तो ऐसा लगता है कि इस शरीरका प्रारब्ध तुझमें ही पर्यवसित होनेका हो रहा है। कृपामयी ! अब तू ही मुझे सम्हाल। अम्बे ! तेरी गोदमें अपनेको पूर्णतया समर्पित कर दे रहा हूँ।"

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि मेरी मानसिक प्रार्थनाके समाप्त होते-न-होते एक मधुर वाणी मेरे कानोंमें गूँज उठी –"वत्स ! क्यों चिन्ता कर रहा है ? तू तो पूर्णतया निरापद है। "बस, यह वाणी कानोंमें पड़ते ही पू.गुरुदेवने देखा वे उस भँवरजालसे अनायास बाहर निकल आये हैं और सहज तैर रहे हैं ।

दूसरी घटनाका उल्लेख करते पू.गुरुदेव बतला रहे थे कि यह घटना भी उनके संन्यासकालकी ही थी। वे ग्रीष्मकालमें प्रायः प्रतिवर्ष गंगातटपर ऋषिकेशमें ही होते थे। जब श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके संग थे, तब भी उन्हें उनके साथ ग्रीष्मऋतुमें तो ऋषिकेशमें ही सत्संगमें समय व्यतीत करना होता था। वे जब भी गंगाके किनारे होते तो नियमसे सूर्यास्तके पश्चात् लम्बी अवधितक गंगा किनारे बैठे रहते थे। एक दिवस जब वे सायंकाल गंगा किनारे बैठे थे, उन्होंने देखा कि भक्तोंने गंगाजीको दीपदान किया है। पू.गुरुदेवको गंगाजीकी लहरियोंपर प्रवाहित दीप बहुत ही मनोहारी लग रहे थे। लोग गंगाके दोनों किनारोंसे असंख्य दीप बड़े-बड़े दोनोंमें फूलमालाओं सहित प्रवाहित कर रहे थे और वे गंगाकी लहरियोंमें थिरकते-नृत्य करते प्रवाहमें बहते जा रहे थे। दीपोंकी अगणित संख्या होनेसे गंगाजी ज्योतिर्मयी हो उठी थीं। पू.गुरुदेवके नेत्र प्राकृत सौन्दर्यसे ऊपर उठ जाते हैं। प्राकृत बुद्धिकी अधिष्ठात्री वाग्वादिनी कमलयोनिसे सृष्ट जगत्को भूलकर चिन्मय वृन्दावनमें प्रवेश कर बैठती है। पू. गुरुदेवके नेत्रोंमें नेत्र मिलाकर कहीं हम सभी इस अप्रतिम सौन्दर्यकी झाँकी कर पाते।

पू.गुरुदेव अपने अनुभवको शब्द देनेमें सर्वथा असमर्थ थे। पू.गुरुदेवके

साथ श्रीकृष्ण तो नित्य रहते ही थे। पू.गुरुदेवको लग रहा था मानो उनके प्रियतम प्राणसर्वस्व ब्रजेन्द्रनन्दनके सौन्दर्यसे अभिभूत भगवती गंगा सचमुच ही दीप-नृत्य कर रही है। गंगाका कल-कल ध्वनि करता पहाड़ी प्रवाह संगीतकी मधुर रागिणी बन गया है। घाटके तरुशाखाओंसे लिपटी लता-वल्लरियाँ पवन-संचारित होकर स्पंदित हो रही हों – यह बात नहीं, अपितु वे उनके प्रियतम-दर्शनसे उल्लसित होकर सचमुच ही नृत्य कर रही हैं। हम लोगोंके प्राकृत नेत्र भले ही उस दृश्यको गंगा-जन्मोत्सव के उपलक्ष्यमें संघटित दीपदानोत्सव मानलें, परन्तु पू.गुरुदेवके चिन्मयशक्ति -विशिष्ट नेत्रोंके लिये तो यह दृश्य अगणित आनन्द-अनुभावोंसे परिपूर्ण हो गया था। उनके लिये तो उस दिवसके गंगातटका अणु-अणु अपनेमें अन-समाहे आनन्दको विभिन्न-विभिन्न सात्विक अनुभावोंमे व्यक्त कर रहा था।

पू.गुरुदेवके मानसिक संकल्पमें एक लहर उत्थित हुई – "मैं भी एक दीप माँ गंगामें प्रवाहित करूँ।" भावसे तो वे भगवती जगज्जननी श्रीराधाजीकी छोटी बहिन मञ्जुश्यामा थे, किन्तु देहसे तो वे एक अकिंचन संन्यासी थे। इतना जन-समुदाय जब दीप प्रवाहित कर रहा था तो पुष्प- मालाओंके दाम आसमान छू रहे थे। मालियोंको उपार्जनका आज ही तो विशिष्ट अवसर था। यद्यपि पू.गुरुदेव श्रीपोद्दारजीके परिवारके किसी भी सदस्यके सम्मुख अपनी भगवती गंगाके अर्चनकी रुचि भर प्रकट कर देते तो सभी व्यवस्था तत्क्षण हो भी जाती, किन्तु स्वतःस्वीकृत उत्कट त्यागको वरण किया मन क्या ऐसी छोटी-मोटी बातोंका याचक बन बैठे ? उनकी संन्यासजन्य विरक्तिके लिये यह कलंककी ही बात तो होती ! फिर वे क्या माँ गंगासे प्रार्थना करें ? नहीं,नहीं, भगवती गंगा क्या स्वान्तर्यामी नहीं हैं ? उन्हें क्या अपने संन्यासी पुत्रके हृदयमें उमड़ती इस पावन अर्चनाके संकल्पका ज्ञान नहीं है ? यदि मेरा यह संकल्प मेरे प्राणप्रियतमके सुखार्थ है, तो भगवती गंगा इसे अवश्य पूर्ण कर देंगी। और यदि मेरा यह संकल्प मात्र मेरी कोई अहंकारगत मनोरुचि है तो मनको मारना तो मेरा परम धर्म है ही। मैं साधु हूँ, भिक्षुक थोड़े ही हूँ ।" ऐसा विचार करते हुए वे अपनी भावजगत्की अपार असीम विभु भूमिमें डूबने लगते हैं ।

"पू.गुरुदेवके सम्मुख प्रतिक्षण नव-नव शोभा धारण करनेवाला वृन्दावन

व्यक्त हो उठता है। उनके प्रियतम प्राणाराध्य उन्हें नव-नव निकुञ्जस्थलियोंकी ओर, लता-पल्लवजालसे आवृत सुरम्य वनस्थलीकी ओर संकेतितकर वहाँकी शोभा निहारनेका आग्रह करते हैं। वे उन्हें एक-से-एक सुन्दर स्थानोंका दर्शन कराना चाह रहे हैं। उनके भावदृश्यकी गंगा किनारे बैठे-बैठे अभूतपूर्व दशा हो उठती है। वे अपने जगत्में मञ्जुश्यामा भाव-भावित देखने लगते हैं – दल-के-दल मृग एवं मयूर अपनी भंगिमासे शुभ शकुनकी सूचना देते हुए उनके सम्मुख आते हैं, ललकभरे नेत्रोंसे उनकी ओर देखते हैं, फिर चौकड़ी भरते नृत्य करते, सघन वनकी ओटमें छिप जाते हैं। उन्हींका अनुसरण करते श्रीकृष्णचन्द्र भी इस कुञ्जसे उस कुञ्जमें, कभी तटसे वनकी ओर, कभी वनसे कालिन्दीकूलकी ओर अनवरत विचरण कर रहे हैं। पू. गुरुदेवके लिये भावजगत्में यही गंगा, कालिन्दी बन जाती है और ऋषिकेशके पहाड़, गिरिराज गोवर्धन। उन्हें ठीक अनुभव होता है, यहींसे तो कहीं पथ गया होगा सुरम्य गोवर्धनके गिरिप्रान्तमें। तरु-लतामण्डित कुञ्जोंकी राहसे वह अवश्य वहाँ पहुँचा देगा। उन्हें लगता है, सचमुच ही वे मृगशावककी तरह दौड़कर एक बार तो उस परम सुन्दर अतिशय आकर्षक गिरिराजको छू लेते । पू. गुरुदेवका ध्यान अपनी गिरिराजदर्शनकी वृत्तिसे न जाने क्यों अचानक ही निवृत्त हो जाता है। ऐसा प्रायः होता नहीं था। उनकी वृत्तियाँ प्राकृत धरातल पर अपने देहाध्यासको पकड़ गंगा किनारे ऋषिकेशके घाटपर पुनः आ जाती हैं। उनके सम्मुख पुनः भगवती गंगामें प्रवाहित वही दीपोंकी झलमलाती शोभा जगमगा उठती है। वे देखने लगते हैं – असंख्य दीपक भगवती गंगाकी प्रवाह-गतिकी धाराके साथ-साथ नाचते-बहते जा रहे हैं। अनेक दीपोंके समूह यदा-कदा एक मालावत् गोलाकार हुए दीपमाला बना लेते हैं। ये मालाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो भगवती गंगाने असंख्य दीपमालाएँ पहनी हैं। पू.गुरुदेव अपने पार्श्वमें ही विराजित प्रियतम श्रीकृष्णकी ओर देखते हैं, और भावमें प्रश्न कर बैठते हैं –"प्रियतम ! कैसी शोभा है ?" वे नित्य उनके साथ ही रहते हैं, उनकी एक श्यामल बाँह तो उनके दक्षिण स्कन्धसे सदा सटी झूलती ही रहती है। स्वप्न-जागरण वे उनके पार्श्वसे कहाँ हट पाते हैं ? "प्राणेश्वरी ! हम लोग भी भगवती गंगाका दीपार्चन करें ! "· उनकी सुमधुर कण्ठध्वनि पू.गुरुदेवके कर्णरन्ध्रोंमें गूँज उठती है। अतिशय लज्जासे पू.गुरुदेव अपने प्रियतमके

पीतोत्तरीयमें मुख छिपा लेते हैं। 'जैसी तुम्हारी इच्छा !'

पू.गुरुदेवकी ज्योंही स्वीकृति मिलती है, एक विलक्षण खेल हो उठता है। सुदूर धारामें प्रवाहित दीपमालाओंमेंसे एक विशाल पुष्पभरा दोना जिसमें दीप-पंक्ति झलमलाती है, लहरियोंपर नाचता विपरीत प्रवाहमें चल पड़ता है। प्रवाहित गंगामें तो कुशल तैराक भी यदि चाहे कि धाराके विपरीत संतरण कर लूँ तो वह असंभव होता है। पहाड़ोंसे तीव्र प्रवाहमें उफनती धारा यद्यपि ऋषिकेश और गीताभवनके घाटोंमें पाट चौड़ा होनेसे शान्त प्रतीत होती है, फिर भी उसका आन्तरिक प्रवाह इतना तीव्र होता है कि मछलियाँ भी उलटी धारामें तैरनेमें कठिनाई अनुभव करती हैं। फिर एक सुकोमल दीर्घ हरे पत्तोंसे निर्मित विशाल दोना, जो पुष्पमालाओंसे पूर्ण हो और ऊपर घृतका प्रज्योतित दीप हो, विपरीत धारामें ऊपरी किनारेमें आसीन पू.गुरुदेवकी ओर चला आवे, इसे आठवाँ आश्चर्य ही तो कहा जायेगा ? किन्तु हुआ यही। ऋषिकेशमें गंगाघाटपर प्रायः वायुका प्रवाह तेज ही होता है। वायुका दबाव गंगामें लघु-लघु लहरियाँ उत्पन्न कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो गंगाका रोम-रोम एक सच्चे संतकी इच्छाको पूर्ण करनेको हर्षवश थिरक रहा हो। उन लघु-लघु लहरोंमें उस दीपकका न बुझकर अनवरत नाचना और विपरीत प्रवाहकी ओर आसीन गुरुदेवकी ओर बह उठना रोमाञ्चक था। लहरोंके मस्तकपर उस दीपकका नाचना भी अनोखा था। वह कभी दाहिने झुकता और कभी बायें झूमता। उसके दाहिने झुकनेपर यही संभावना प्रबल हो उठती थी कि जलप्रवाह कहीं उसे डुबो न दे। उसमें जलराशि न भर जाय। परन्तु तुरन्त ही वह बायें झूम जाता था। कभी लहरोंमें वह उत्तुंग उछाल लेता, और कभी ढलकावमें हिल्लोलित हो उठता। कभी अर्ध गोलाकार बहता, कभी पूर्ण चक्राकार नृत्य करता बहता। परन्तु शनैः-शनैः वह अग्रसर हो रहा था। दक्षिण दिशाके निम्न स्थलसे उत्तरको प्रवाहके उद्गमकी ओर। इस प्रकार आश्चर्यवत् नृत्य करता वह दीप पू.गुरुदेवके इतने निकट आ गया कि उन्होंने उसे हाथसे ग्रहण कर लिया। पू.गुरुदेवको उस समय भगवती गंगाका प्राकृत प्रवाह दृष्टिगोचर ही नहीं हो रहा था। उन्हें तो वे लघु-लघु लहरियाँ माँ गंगाके करसरोज दृष्टिगोचर हो रहे थे, जिनसे माँ एक दीपक लेकर उन्हें प्रदान करने वात्सल्यसे भरी उनकी ओर आ रही थीं । पू.गुरुदेवने पुनः अपने

प्रियतमकी ओर देखा और उनकी स्वीकृति पाकर मुसकाते हुए वह दीपक अपने दोनों करपल्लवोंमें ग्रहण कर लिया। भावभरे मनसे पू.गुरुदेवने वह दीपक अपने प्रियतमकी ओर बढ़ाया और श्यामल एवं पद्मपल्लवी चार भुजाओंने उस महाभाग्यवान् दीपकको पुनः गंगामें प्रवाहित कर दिया। पू.गुरुदेवके मुखसे उस समय गंगालहरीका पाठ मुखरित हो रहा था।

तीसरी घटना पू.गुरुदेवने जो श्रवणगोचर करायी थी, वह उनके काष्ठमौनके समयकी थी। काष्ठमौनके समय पू.गुरुदेवके चित्तकी क्या दशा थी, इसका एक चित्र उनके ही द्वारा , जैसा मुझे बताया है, उसे लिख रहा हूँ। वैसे वाणी द्वारा मुझे बतलाते हुए भी वे बारंबार यही तथ्य उजागर कर रहे थे कि स्थितिकी ठीक-ठीक व्याख्या तो हो ही नहीं सकती। वह स्थिति पूर्णतया अनिर्वचनीय है।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि जगत्में सर्वत्र जाग्रत्में स्पष्ट, अथवा स्वप्न एवं सुषुप्तिमें अस्पष्ट जो चैतन्य सत्ताकी अभिव्यक्ति होती है, इसीको शास्त्रीय भाषामें चिदाभास कहते हैं। इस चिदाभास एवं ज्ञानेन्द्रियोंसे जुड़े, विषयाकार हुए चित्तके द्वारा ही जीवोंको ज्ञान होता है कि यह घड़ा है, यह मकान है। जगत्की जितनी भी जड़ वस्तुएँ हैं, उनका स्फुरण चिदाभासकी सहायतासे ही होता है। किन्तु सच्चिदानन्द वस्तु इस चिदाभाससे प्रकाशित नहीं होती। इसीलिये चाहे भगवान्का निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप हो, चाहे सविशेष श्रीकृष्ण, श्रीराम आदि स्वरूप हो, ये भगवत्स्वरूप चिदाभाससे प्रकाशित नहीं हो सकते। भगवान्के निर्विशेष ब्रह्मस्वरूपका ज्ञान होनेके लिये चित्तकी ब्रह्माकारता ही अपेक्षित है। वहाँ चिदाभास सर्वथा हेतु नहीं है। इसी प्रकार भगवान्के सगुण साकार स्वरूपके साक्षात्कारके लिये भी वृत्तियोंकी श्रीकृष्णाकारता ही अपेक्षित है। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि सूर्यको देखनेके लिये दीपकका प्रकाश निरर्थक है। उसमें दीपकके प्रकाशका कोई प्रयोजन ही नहीं होता। हाँ ! आँख खोलनेकी आवश्यकता है। काष्ठमौन ब्रह्मविद् संन्यासियोंकी वह स्थिति होती है, जहाँ उनकी वृत्ति ब्रह्मदर्शनके सिवा कहीं भी चलायमान नहीं होती । काष्ठमौन तभी संभव है जब किसीकी सभी वृत्तियाँ कूटकाष्ठके समान घन जड़ हो जाती हैं। इसी प्रकार सगुण साकारोपासक साधक भी जब अपने आराध्यको ही सर्वत्र देखता-देखता अपनी वृत्तियोंको अपने आराध्यमें इतना

घन डुबा देता है कि वृत्तिशून्य हुआ उसका देह मात्र धौंकनीकी तरह स्वभावसे साँस भर लेता है और कूट काष्ठवत् पड़ा रहता है, तभी वह काष्ठमौनी होता है। कहनेका यही अर्थ है कि उन दिनों पू.गुरुदेवकी वही स्थिति थी। उनका शरीर अपने प्रारब्ध और स्वभावसे ही शौचस्नानादि, भोजनपानादि क्रिया कर लेता था, वृत्तियाँ निरन्तर डूबी रहती थीं, लीला-महासिन्धुके उत्ताल उच्छलनमें।

हाँ ! तो उस दिन स्वाभाविक ही पू.गुरुदेव गंगातटपर स्वर्गाश्रममें डालमियाकोठीके सामनेके घाटपर शान्त बैठे थे। जब पू.गुरुदेवने काष्ठमौन लिया था, उनका प्रारम्भसे ही ऐसा संकल्प ही था कि यदि श्रीपोद्दार महाराज किसी कारणवश अति सचिन्त्य हो उठेंगे और उन्हें अपनी कुछ चिन्ता सुनाना चाहेंगे तो वे उस दिन अपनी वृत्तियोंको बहिर्मुखकर उनकी बात अवश्य सुन लेंगे। उस दिन ऐसी ही घटना संघटित हो गयी थी। पू.गुरुदेव अपराह्नकालमें स्नानार्थ गंगाघाट आये थे। वे जब भी गंगाघाट आते तो घण्टों ही माँ गंगाके तटपर कटिभागतक जलमें खड़े, माँ गंगासे या तो मन-ही-मन वार्त्ता करते किंवा मूक गंगादर्शन करते रहते। शरीरसे तो लोगोंको यही दृष्टिगोचर होता कि वे गंगादर्शन कर रहे हैं, परन्तु उनका भावसंसार ब्रजप्रदेश एवं उसमें घटित होनेवाली अनेकों अतिशय रसीली लीलाओंमें प्रवाहित होता रहता।

उस सायंकाल भी वे तटपर कटिभागतक जलमें खड़े थे। उनका शरीर तो अवश्य ही गंगामें खड़ा था किन्तु सत्यांशमें उनकी वृत्तियाँ सर्वथा ही उनके अपने देहको विस्मृत कर चुकी थीं। उनके स्थानपर पूर्णतया प्रकाशित थीं साक्षात् महाभाव-स्वरूपा भगवती श्रीराधारानी। उनका दृश्य भी यही था कि कालिन्दीके एक घाटमें जो नन्दभवनके दूसरी छोरपर है, वे सायंकाल स्नान करने आयी हैं और ठीक नन्दभवनके पिछवाड़ेके यमुनाघाटपर ब्रजेशनन्दन श्रीकृष्ण उनके प्रियतम गोचारणके पश्चात् स्नान कर रहे हैं। संयोग ऐसा ही होता है कि दोनों ठीक आमने-सामने हैं और मध्यमें बह रही हैं कालिन्दी अपने सुदीर्घ चौड़े पाटको लेकर। दोनों ओर अतिशय सुरम्य रत्नमय घाटोंकी श्रृंखला निर्मित है। उस समय उनके संग तो उनकी इनी-गिनी सखियाँ हैं और उनके प्रियतम नन्दनन्दनके साथ मात्र एक गृहसेवक गोप।

वे दोनों सुदूर परस्पर विरुद्ध दिशामें स्नान करते एक दूसरेको देखते हैं। परस्पर दोनों ही के हृदयमें एक दूसरेके प्रति प्रीतिका स्रोत उमड़ उठता

है। चातक जिस प्रकार निर्झरकी, सरिताकी, सागरकी, वारि-धाराकी ओरसे मुख मोड़कर एकान्त मनसे स्वाति-बूँदोंकी ही प्रतीक्षा करता है, तृषाकी ज्वालासे विहंगमके प्राण भले झुलस जावें, किन्तु अपने अभिलषित प्रियतम मेघके अतिरिक्त किसी अन्यकी ओर ताकता नहीं, इसी प्रकार दोनोंके ही प्राणोंमें एक दूसरेको प्राप्त कर लेनेकी उत्कण्ठा असीम वेगसे जाग्रत् हो उठती है। दोनोंके नेत्र परस्पर सुदूर दर्शनसे ही छलछला उठते हैं, वाणी गद्गद हो जाती है, रोमाञ्चित हुए शरीरसे दोनों अपने-आपको एक दूसरेके चरणोंमें पूर्ण समर्पण कर देनेकी लालसासे व्याकुल हो उठते हैं।

पू.गुरुदेवके प्राणवल्लभके अमृतस्यन्दी अधरोंपर तो एक विलक्षण चिन्मय स्मित सतत विराजित रहता ही है। किन्तु आज उसके नयन जब अपने प्रियतमसे मिलते हैं, उस समय उनके दृगोंमें एक विचित्र स्पन्दनकी रेखा-सी नृत्य कर उठती है। इस स्मित एवं स्पन्दनकी छाया जब पड़ती है पू. गुरुदेवके अन्तःकरणमें तो अपने महाभावस्वरूप दर्पणके अनुरूप कुछ-न-कुछ किसी विशिष्ट लीलाका संकेत झर पड़ता है, उनके प्राणोंमें। आज भी यही हो रहा है। पू.गुरुदेवने अपने प्रियतमके अधरोंमें एक विलक्षण स्मितिकी और उनके दृगोंमें एक अपूर्व कटाक्षयुक्त स्पन्दनकी अनुभूति की है। और वे उसके अर्थानुसन्धानको पाने डूबते जा रहे हैं अपने अन्तःकरणमें।

इसी समय उनका ध्यान बहिर्मुख कर दिया पू.पोद्दार महाराजकी एक चिन्तित मुद्राने। श्रीपोद्दार महाराज अतिशय घबड़ाये उनके सम्मुख खड़े हो गये थे और चिन्तापूर्ण भाषामें कह रहे थे– बाबा ! जयदयाल डालमियाका पुत्र जयहरि कहीं मिल नहीं रहा है। हम सभीने उसे सर्वत्र खोज लिया है।

इन्हीं दिनों एक अत्यंत कष्टप्रद प्रसंग घटित हो भी चुका था। श्रीबजरंगलालजी आसोपा नापासरके अति प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। कुछ काल पूर्व उनका अग्रज पुत्र आत्मघातकर दिवंगत हो गया था। वे अतिशय अशान्त एवं दुखी हुए सत्संगके लिये सपरिवार श्रीपोद्दार महाराजके पास गीताभवन आये थे। किन्तु हा दैव ! यहाँ उनका दूसरा पुत्र भी गंगाजीकी भेंट चढ़ गया। कहाँ तो वे शान्तिलाभार्थ श्रीपोद्दार महाराजके पास आये थे, यहाँसे अपना दुख बढ़ाकर पुनः नापासर लौटे। अब इधर जयहरिके नहीं मिलनेसे सम्पूर्ण डालमिया-परिवार भी इसी आशंकासे भयग्रस्त हो उठा कि कहीं जयहरि भी

गंगाजीमें ही डूब नहीं गया हो। हो सकता है कि नहाते समय उसका पैर फिसल गया हो और वह धारामें बह गया हो। उसकी खोजमें लोग यत्र-तत्र अनवरत दौड़-धूप कर ही रहे थे। वैसे तो आन्तरिकरूपसे श्रीपोद्दार महाराज अत्यधिक विरक्त थे, किन्तु व्यवहारमें अपने शरणागत डालमिया परिवारपर आयी इस अनिष्टाशंकासे उनका विचलित होना परम स्वाभाविक ही था। इसी मानसिक चिन्ताके आवेशमें उन्होंने पू.गुरुदेवको यह सूचना दे दी थी। पू. गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजकी बात सुन ली। वे अतिशय भावभरे तो थे ही। उनकी वृत्ति अतिशय सरस अपने लीलाजगत्से आधि -दैविक जगत्की ओर मुड़ गयी। वे मन-ही-मन माँ भागीरथीसे यह प्रश्न कर बैठे– माँ! पोद्दार महाराजकी बात तो तूने सुनी ही है । क्या वह बालक तेरे भीतर समा गया है ? यदि तेरे जलमें वह समा गया हो तो कृपया संकेत कर दे।

पू.गुरुदेवके द्वारा यह जिज्ञासा प्रकट होते ही उन्हें एक अतिशय मधुर ध्वनि कर्णगोचर हुई – "मेरे लाल ! वह मेरे अन्दर नहीं है।"

अब तो पू.गुरुदेवका हृदय भर आया। उन्हें आज अधिदैव जगत्की सर्वकल्याणमयी शक्ति गंगाकी वाणी तो सुननेको मिली। वे माँ गंगाकी स्तुति कर बैठे– "माँ ! तू अपरिच्छिन्न ऐश्वर्यमयी है। तेरे स्वरूप, ऐश्वर्य, महिमा आदिका कहीं अन्त नहीं। माँ, नियामकरूपसे तू ही सबके बाहर-भीतर अवस्थित है। आत्माकी आत्मा है माँ, तू ! माँ ! तुझ महा-महामहिमामयी, सर्वकारण-कारणासे मैं कितनी तुच्छ माँग कर बैठा किन्तु जो सचमुच ही महान् है वह कहाँ देखती है अपने छोटोंके अपराधों की ओर ? अपनी अनन्त वात्सल्यभरी कृपामयतासे किञ्चित् भी विमुख न होकर तूने मुझ तुच्छ कीटवत् जीवके प्रति इतनी महान् ममता दिखाई। उसे सम्बोधितकर प्रत्युत्तर दे दिया। माँ ! दयामयी धन्य हो, धन्य हो, तुम्हारी सदा जय हो। "

यह कहते हुए पू. गुरुदेव अपने निवास डालमियाकोठी चले गये। उन्होंने संकेतसे पू.पोद्दार महाराजको भी सूचित कर दिया कि 'जयहरि गंगाजीमें डूबा नहीं है। उसकी अन्यत्र पूरी खोज होनी चाहिये। '

कुछ काल पश्चात् ही सूचना मिल गयी कि जयहरि सत्संगहालमें ऐसे स्थानमें सो गया था, जहाँ उसके होनेकी किसी को भी संभावना नहीं थी । उसके मिल जानेसे सबकी चिन्ता दूर हुई।

कुरुक्षेत्रकी महिमा

कुरुक्षेत्रकी महिमाका वर्णन वामनपुराणमें है। इस पुराणके बाईसवें अध्यायमें ऐसा वर्णन आता है कि महाराज कुरुने पावन सरस्वती नदीके किनारे इस स्थानपर तप, दया, सत्य, क्षमा, शौच, दान, योग तथा ब्रह्मचर्य इन अष्टांगधर्मकी कृषि करनेका विचार किया था। इनके साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षाका महाविद्यालय यहाँ बने –ऐसा विचार किया था। राजाने कृषिके लिये भगवान् शंकरसे उनका वाहन वृषभ और यमराजसे महिष माँग लिया। तब राजा कुरु कृषिके लिये भूमि तैयार करने लगे। जिस स्वर्णरथपर सवार होकर महाराज कुरु यहाँ इस पावन भूमितक पहुँचे थे, उस स्वर्णरथसे ही उन्होंने हल तैयार किया था। महाराज कुरुने इस प्रकार अपने पुरुषार्थसे ४८ कोस भूमि जोतकर तैयार की। जब भूमि उर्वरा हो गयी तो उनके पास क्रमशः इन्द्र और भगवान् विष्णु आये। दोनोंने क्रमशः राजा कुरुसे एक ही प्रश्न किया –"राजन् ! भूमि तो उर्वर हो जायगी किन्तु तप आदि अष्टांगधर्मके बीज कहाँसे लाओगे ?" राजाने भगवान् विष्णुके सम्मुख अपनी दाहिनी भुजा प्रसारित करके कहा – 'मेरी पुरुषार्थस्वरूपा यह भुजा ही धर्मका बीज होगी।' भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे वह भुजा काट दी और उन टुकड़ोंसे इस उर्वरक भूमिमें अष्टांगधर्मका बीजारोपण किया। भगवान् विष्णुने देखा कि मात्र एक भुजाके टुकड़े करनेसे पूरी भूमिमें बीजारोपण संभव नहीं है तो उन्होंने पुनः राजासे बीजके लिये माँग की। राजाने क्रमशः बीजारोपणके लिये अपनी बाँयी भुजा, दोनों पैर, तथा अन्तमें अपना सिर भी भगवान् विष्णुको अर्पण कर दिया। भगवान् विष्णु महाराजा कुरुकी सर्वांग-आहुतिसे बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उनसे वर माँगनेको कहा। महाराजने भगवान् विष्णुसे यही वर माँगा कि जितनी भूमि मैंने जोती है वह सब धर्मक्षेत्र एवं पुण्यक्षेत्र होकर मेरे नामसे विख्यात हो। भगवान् शंकर और आपका समस्त देवताओंसहित यहाँ वास हो, तथा यहाँ किया हुआ स्नान, उपवास, तप, यज्ञ, तथा शुभ कर्म अक्षय हो। जो भी यहाँ मृत्युको प्राप्त हो वह अपने पाप-पुण्यके प्रभावसे मुक्त होकर स्वर्गको प्राप्त हो। भगवान् विष्णुने तथास्तु कहकर राजाके वचनोंका अनुमोदन किया।

तभीसे सरस्वती नदीके किनारे ऋषिगण सहस्रों विद्यार्थियोंको लेकर

इस भूमिमें निवास करते और यह भूमि सदैवसे ही धर्म एवं संस्कृतिकी शिक्षाकी सर्वोत्तम केन्द्र रही।

तीर्थयात्राट्रेनने थानेसरमें ही पड़ाव डाला था। यहीं प्रार्थना और सत्संग होकर यात्रीगण ब्रह्मसर, समन्तपञ्चकतीर्थमें स्नान करने गये। जन-साधारणमें इसे ही कुरुक्षेत्र सरोवर कहते हैं। यहाँ सरोवरमें दो द्वीप हैं। सरोवर लगभग १४४२ गज लम्बा और ७०० गज चौड़ा है। सन् १९४८में महात्मा गाँधीजीकी अस्थिभस्मका एक भाग इस पवित्र सरोवरमें बहाया गया था।

सरोवरके छोटे द्वीपमें गरुड़सहित भगवान् विष्णुका प्राचीन मन्दिर है। यह द्वीप एक पुलके द्वारा श्रवणनाथ मठके समीप उत्तरी तटसे मिला हुआ है। एक दूसरा पुल बड़े द्वीपके मध्यसे होकर सरोवरके उत्तरी तटसे दक्षिणी तटको मिलाता है। यहाँ अति प्राचीन चन्द्रकूप नामक पवित्र तीर्थस्थान है।

इसके उत्तरी तटपर प्राचीन मठ-मन्दिर एवं धर्मशालाएँ हैं। यहाँ श्रवणनाथकी हवेली विशेष उल्लेखनीय स्थान है। यात्रियों, साधु-महात्माओंके ठहरनेका उत्तम प्रबन्ध है। उत्तरी किनारेके मध्य कुरुक्षेत्र पुस्तकालय है, जिसे गीताभवन भी कहते हैं। उत्तर पश्चिममें बिड़लाजीकी ओरसे गीतामन्दिरका निर्माण हो रहा है। गुरु नानकदेवजी, गुरु गोविन्दसिंहजी तथा अन्य सिख गुरुओंने अपने-अपने समयमें इस पुण्यभूमिके तीर्थोंका दर्शन किया था।

पू.गुरुदेवको समन्तपञ्चकतीर्थमें स्नान करते समय एक परम दिव्य पुरुषके दर्शन हुए थे। उनके नेत्र अर्धनिमीलित थे और समग्र शरीरमें दिव्य तेजोमण्डल था। पू.गुरुदेवने अनुमान किया अवश्य ही वे गुरु नानकदेव ही रहे होंगे। कुछ काल आशीर्वादकी मुद्रामें वे पू.गुरुदेवके सम्मुख खड़े रहे फिर आकाशमें विलीन होगये।

———————

दिल्लीमें संत सरमदकी मजारपर

दिल्ली भारतकी राजधानी है। तीर्थयात्राट्रेन कुरुक्षेत्रसे दिल्ली पहुँची। दिल्लीमें पुराने किलेकी – जो यमुनातटपर अवस्थित है, पूर्वी दीवारके निकट झाड़ियोंमें एक छोटा भैरवमन्दिर है। कहा जाता है कि यह मन्दिर महाभारतकालीन है। महाभारत युद्धसे पूर्व भीमसेन काशीसे यह मूर्त्ति ले आये थे। यह मूर्त्ति युधिष्ठिर द्वारा पूजित थी। दीर्घकालीन मुसलमानी राज्यमें भी इस मूर्त्तिका सुरक्षित रहना अद्भुत बात है। भैरवाष्टमीपर यहाँ विशेष समारोह होता है।

पू. गुरुदेव इस मन्दिरका दर्शन करके लौट रहे थे। उनके साथ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक,श्रीरामनिवास ढंढारिया आदि अनेक व्यक्ति थे। पू. गुरुदेव कारमें बैठे हुए थे। भैरवमन्दिरका दर्शनकर पू.गुरुदेव जामामस्जिदके पाससे निकले। पू.गुरुदेवको जामा- मस्जिदके पास एक विचित्र-सा अनुभव होने लगा। पू.गुरुदेवको अनुभव हो रहा था कि यहाँ महापापीको भी पापमुक्त कर देनेवाली परम पवित्र आध्यात्मिक स्तरकी तरंगें सर्वत्र व्याप्त हैं। पू. गुरुदेवने देखा कि आनन्दविह्वल हुए देववृन्द यहाँ अतिशय सुरभित कुसुमोंकी भर-भर अञ्जलि सुमनवृष्टि कर रहे हैं। यहाँ ऋषिकुलका भक्तिपूरित स्तवन, भगवत्पार्षदोंका जय-जयनिनाद गगनके कण-कणको मुखरित कर रहा है। पू.गुरुदेव सुन रहे थे ऋषियोंका स्तोत्रपाठ जनलोक, महर्लोक, तपोलोकतकको मुखरित कर रहा है। पू.गुरुदेव इस अद्भुत स्तवपाठका कारण जाननेको उत्सुक हो उठे।

पू. गुरुदेवने वहाँ अपनी मोटरगाड़ी रुकवाई। पू.गुरुदेव कारमें ही ध्यानस्थ हुए अन्तर्जगत्में डूबने लगे। उन्हें अनुभव हुआ कि यहाँ तो दिव्य प्रेमकी लहरें भी विद्यमान हैं। जामामस्जिद क्षेत्र तो चारों ओरसे गन्दे बूचड़खानों एवं मांसाहारी लोगोंकी बस्ती है। ऐसे हिंस्र वातावरणमें ऐसी दिव्य शान्ति और प्रेमकी तरंगें और अन्तर्जगत्के ऋषिसमाज द्वारा वन्दना– पू.गुरुदेव कुछ भी समझ नहीं पाये।

उन्हें ध्यानस्थ होनेपर यही अनुभव हुआ कि अवश्य ही यहाँ किसी महासिद्ध सन्तकी उपस्थिति है। यदि वर्तमानमें ऐसा सिद्ध सन्त नहीं होगा तो अवश्य ही यह स्थान भूतकालके किसी महासिद्ध सन्तकी निवासभूमि रही

होगी। उसीके कारण यहाँका आध्यात्मिक वातावरण इतना सशक्त एवं जाग्रत् है। पू. गुरुदेवने यह बात अपने पार्श्वमें बैठे लोगोंसे भी कही। पू.गुरुदेवके पार्श्वमें ही बैठे हिन्दूविश्वविद्यालयके अंग्रेजीके प्राध्यापक श्रीजीवनशंकरजी याज्ञिक उनकी सभी क्रियाएँ सूक्ष्म दृष्टिसे देख रहे थे। वे परमपूज्य मालवीयजी महाराजको प्रायः श्रीमद्भागवतकी कथा सुनाया करते थे। 'कल्याण-कल्पतरु'अंग्रेजी मासिकपत्रिकाके यशस्वी सम्पादक गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी अपने अध्ययन कालमें उनके शिष्य रह चुके थे।

श्रीयाज्ञिकजीने ज्योंही पू.गुरुदेवसे उनके विचित्र अनुभवकी बात सुनी, उन्होंने तत्क्षण ही कहा –"यहाँ जामामस्जिदके द्वारपर सिद्ध सन्त सरमदकी मजार है।" पू. गुरुदेव तत्क्षण ही उस मजारपर पहुँचे और वहाँ जाकर उन्हें अनुभव हुआ कि यहाँ तो रामजन्मभूमि अयोध्याके समतुल्य पवित्र तीर्थ–सरीखा वातावरण है। पू. गुरुदेवको ऐसी ही अनुभूति चित्रकूटमें रामघाटपर श्रीतुलसीदासजीकी निवासभूमिपर भी हुई थी।

श्रीयाज्ञिकजीने ही पू.गुरुदेवको मोटरमें बैठे-बैठे ही सरमदकी जीवनी भी सुनाई। सरमद ईरानसे सौदागरके रूपमें भारत आये थे। भारत आकर वे सूफी फकीर बन गये। पहले तो वे मुसलमान फकीर थे, किन्तु पश्चात् वे श्रीरामके सच्चे भक्त होगये। वे सदैव एक अवधूतके रूपमें नग्न विचरण करते थे। उन्हें भगवान् श्रीरामका साक्षात्कार हुआ था। भगवान्की रूपमाधुरीपर संत सरमद जी-जानसे फिदा थे। जिनके श्रीविग्रहकी मानस प्रतिमाको ही एकबार क्षणमात्रके लिये धारण कर लेनेके कारण न जाने कितनोंको परमपद, परमभक्तजनोचित गति प्राप्त हो चुकी है, जिनकी मानसिक मूर्त्तिमें अपनी भावनासे कल्पित, ध्यानपथमें क्षणमात्रके लिये उतरी हुई प्रतिकृतिमें ही सुदुर्लभतम गति दे देनेकी सामर्थ्य है, जिनके मात्र नामजपसे ही अनगिनत जीव दुर्लंघ्य भवसागरको गोपदकी तरह अनायास पार कर लेते हैं, वे नित्यसिद्ध परमानन्दघनविग्रह रघुकुलमणि दशरथात्मज स्वरूपानन्दास्वादन-परायण मायातीत भगवान् रामचन्द्र जब स्वयं भक्तश्रेष्ठ सरमदके हृदयमें अवतरित होगये, फिर उनके मन-प्राण उस अनिन्द्य सच्चिन्मय सौन्दर्य-माधुर्यपर दीवाने हो जावें, इसमें आश्चर्य ही क्या था ? वे अपने असीम भक्तिपूरित हृदयमें सुव्यक्त अपने आराध्यके महामरकत नीलश्याम अंगोंकी द्युतिमें ही खोये रहते। नीलमणिवत्

अवधबिहारी उनके हृदयका हार बन गये थे। उनके नेत्रोंमें रामरूप-अंजन लगा ही रहता था, फिर उन्हें इस प्राकृत माया और मलिन नरदेहका कहाँ होश रहता ? औरंगजेबका बड़ा भाई दाराशिकोह इन्हें ही अपना पीर मानता था। मुल्ला-मौलवियोंको इस बातसे बड़ी चिढ़ थी कि एक मुसलमान फकीर हिन्दुओंके देवी-देवताओंको माने। फकीर सरमद जामामस्जिदकी सीढियोंपर पड़े रहते थे, उनका कोई घर-द्वार तो था नहीं। वे एक काली कम्बल रखते थे, किन्तु उसे ओढ़ते नहीं थे, नंगधड़ंग ही पड़े रहते थे।

एक दिवस औरंगजेबने उनसे उनके नंगे रहनेका सबब पूछा। वे जोरसे हँसकर बोले –'मूर्ख ! कहाँ नंगा हूँ ? खुदाने अपनी सारी नियामतके कपड़े तो मुझे पहना ही रखे हैं, तुझे नहीं दिखते तो मैं क्या करूँ ?' इसपर औरंगजेबने पूछा कि इस काली कम्बलको क्यों रखते हो? सरमदने उत्तर दिया –'यह तो तेरे कुकर्मोंसे काली हो गयी है। बेपर्द होना चाहता है तो इस कंबलको देख ले। ' कहते हैं कि ज्योंही सरमदने यह कहते हुए उस कंबलकी तहोंको उघाड़ा उसमें दारा, मुराद आदि भाइयोंके कटे हुए सिर औरंगजेबको दिखाई पड़े।

फिर भी मजहबी जुनूनके कारण संत सरमद धर्मान्ध औरंगजेबकी आँखकी किरकिरी बने ही रहे। वह सरमदकी रामभक्ति और हिन्दूपरस्तीको गवारा नहीं कर पा रहा था। उसने सिद्ध सन्त सरमदको मौतकी सजा दे दी। एक मोहतरम फकीरके लिये सजा-ए-मौत जैसी नापाक बातसे लोगोंके दिल तड़प उठे। हिन्दू-मुसलमान सभीके लिये यह दर्दभरी बात बरदाश्तके बाहर थी। लोगोंकी निगाहें नफरतसे भर गयीं। कुफ्रके नामपर सिद्ध सन्त सरमदको मारनेके लिये कोई जल्लाद ही तैयार नहीं हुआ। लोगोंमें इतनी उत्तेजना थी कि औरंगजेबको जगह-जगह सेना तैनात करनी पड़ी। काफी इनामका लालच देनेपर एक जल्लाद तैयार हुआ। जब संत सरमदके कत्लका हुक्मनामा काजीने ऐलान किया तो हमेशाके लिये जुदा होनेवाले शाह सरमदके कदमोंमें आखिरी सिज्दा अदा करनेके लिये तमाम लोग भी इकट्ठे थे। इस इकट्ठी भीड़के सामने शाही हुक्मके मुताबिक संत सरमदको कत्ल कर दिया गया।

जब संतका कत्ल किया गया उस समय असंख्य दर्शकोंके सम्मुख एक विलक्षण चमत्कार हुआ। शाही हुक्मके मुताबिक संत सरमदका सिर जब

यशोदानन्दन पीतवसन माधव मुरलीधर जय हे !

धड़से पृथक् किया गया तो धड़ने कटे सिरको अपने हाथमें उठा लिया। अपने ही सरको हाथमें लिये धड़ जामामस्जिदकी सीढ़ियोंपर चढ़ गया। उस समय इतना जोरका भूचाल आया कि दिल्ली शहर काँप उठा। वहाँ तमाशाबीनोंकी सारी भीड़ डरके मारे थर्रा उठी। उस [illegible]मेंं एक और फकीर था। उस फकीरने पुकार कर कहा– ओ सरमद ! यह इजहारे–तैश फकीरके लिये मुनासिब नहीं है। इतना सुनते ही सर सहित वह धड़ सीढ़ियोंसे नीचे उतरने लगा ओर जहाँ कत्ल किया गया था, वहाँ आकर धड़ जमीनपर गिर पड़ा। कहते हैं उसी जगह संत सरमदको दफना दिया गया। श्री याज्ञिकजी पू. गुरुदेवको निवेदन कर रहे थे कि यही वह जगह है और इसी जगह उनकी मजार है। पू.गुरुदेवको जो दिव्यानुभव हुआ है, वह संत सरमदकी भावगरिमाके कारण ही हुआ है। पू.गुरुदेवने महासिद्ध सन्त सरमदको प्रणाम किया। इस दिव्यानुभवके पश्चात् पू. गुरुदेव चाहने लगे कि संत सरमदकी जीवनगाथा प्रकाशमें आवे।

श्रीलखपतरायने, जो गोस्वामी चिम्मनलालजीकी रुग्णताके समय बहुत दिनोंतक कल्याण-कल्पतरुका कार्य देखते थे, आगे चलकर संत सरमदके जीवनवृत्तको बहुत ही परिश्रमसे लिखा। 'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति'ने यह अंग्रेजी भाषामें लिखा जीवनवृत्त पुस्तकाकाररूपमें प्रकाशित कराया है।

मथुरा तथा ब्रजयात्राके दिव्यानुभव

दिल्लीसे किञ्चित् विलम्बसे चलकर यात्राट्रेन ब्राह्ममुहूर्त्तके पूर्व ही मथुरा पहुँच गयी थी। पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज बिड़ला धर्मशालामें जो वृन्दावन एवं मथुराके मध्य है, ठहरे। पू.गुरुदेव तो ब्रजपुरमें प्रवेश हो रहे हैं, मात्र इस कल्पनासे ही दूसरे लोकमें चले गये थे। पू.गुरुदेवके चित्तमें तो नित्य वृन्दावन व्यक्त हो उठा था। अतः श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा इतना कहते ही कि "बाबा ! हम लोग अब ब्रजमें प्रविष्ट हो रहे हैं,– पू.गुरुदेवके मानसमें गोपों द्वारा विविध मंगल वाद्योंकी ध्वनि और आभीर सुन्दरियोंके मंगलगायनका उपक्रम प्रारंभ हो गया था। पू.गुरुदेवके मानसनेत्र निरीक्षण कर रहे थे–"स्वर्णिम

रविरश्मियोंके आलोकमें ब्रजपुरी जगमगा रही है। चतुर्दिक् कदलीस्तम्भ, द्वार-द्वारपर स्वर्णके मंगलघट, ध्वजा-पताकाएँ, बन्दनवार, पुष्पवितान-कलामर्मज्ञ गोपों द्वारा सजी-सजायी पल्लव-पुष्पमय ब्रजपुरी पू.गुरुदेवके भाव-नेत्रोंमें क्रमशः सुव्यक्त हो उठी थी। इस ब्रजपुरीको तो वे नित्य ही देखते हैं, उसीमें भावसे एक आभीरवधू बने वहाँ नित्य निवास भी करते हैं। प्रतिक्षण ही तो गोपराज श्रीनन्दराय की यह पुरी उन्हें नवनवायमान नूतन सुन्दर होकर ही दिखती है। कलामर्मज्ञ गोपगण प्रतिदिवस ही तो इस बृहद् वनका पुष्प-पल्लवोंसे श्रृंगार करते हैं, परन्तु विलक्षणता यही होती है कि प्रतिदिन ही इसकी आकृति नवीन सुन्दर हो जाती है। पू.गुरुदेवका रोम-रोम उल्लाससे भर जाता है। पू.गुरुदेव देख रहे हैं– मंगलगान करती हुई, विविध वेषभूषासे सज्जित, हाथमें मंगलद्रव्यपूरित थाल लिये दल-की-दल गोपसुन्दरियाँ नन्दभवनकी ओर आ रही हैं। इधर यशोदा मैया उमंगमें भरे गोपशिशुओंके साथ न जाने कहाँ-कहाँ उछलते -फिरते अपने नीलमणिको ढूँढ़नेमें व्यस्त है। उन्हें अपने पुत्रका स्नान-श्रृंगार भी तो करना है। बलरामजी तो न जाने कबसे स्नान-श्रृंगारकर सजे खड़े हैं। परन्तु नीलमणिकी स्वाभाविक चंचलता यशोदाको सभी दैनन्दिक कार्य दुरूहतासे ही करने देती है। ढूँढ़नेपर यशोदानन्दन अपने सखाओंके साथ हँसते और मन्त्रणा करते दिख ही जाते हैं। अनन्त वात्सल्यपूरित करोंसे ब्रजरानी पुत्रके महामरकत अंगोंमें उबटन लगाती है। फिर नन्दभवनके पिछवाड़े ही बहती 'यमुना'में स्नान कराने ले जाती है।

इधर तो पू.गुरुदेव अपने भावराज्यमें 'यमुना'का दर्शन करते होते हैं, इतनेमें ही पोद्दारजी उन्हें यमुनास्नान करानेके उद्देश्यसे कह उठते हैं – 'बाबा ! चलिये, यमुनास्नानके लिये चला जाय।'' श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे 'यमुना' पावन नाम सुनते ही पू. गुरुदेवमें विलक्षण कम्पोदय होने लगता है। श्रीपोद्दार महाराज किसी प्रकार उन्हें सम्हालते हैं। पू.गुरुदेव पूरे भ्रान्त हैं, उन्हें बाह्य जगत्का होश नहीं है, ऐसा समझते हुए वे उनका हाथ पकड़कर बिड़ला धर्मशालाके पिछवाड़े कुछ दूरीपर बहती 'यमुना'की ओर ले चलते हैं। पू. गुरुदेव एवं पोद्दार महाराज 'यमुना' स्नानको जा रहे हैं, ऐसा ज्ञांत होनेसे अनेक अन्य महानुभाव भी उनके साथ ही यमुनास्नानको चल पड़ते हैं। पू. गुरुदेवको अपना हाथ पकड़े पोद्दारजी दृष्टिगोचर होने ही बन्द हो जाते हैं।

उन्हें तो यही दिखता है कि त्रिभुवनमोहन सौन्दर्यसे सर्ववातावरणको स्निग्ध करते प्रियतम नन्दनन्दन ही उनका हाथ थामे उन्हें 'यमुना' घाटकी ओर ले जा रहे हैं। वे स्वयं भी अपने देहकी सुधि भूल जाते हैं। उन्हें अपने स्थानपर राधानुजा अनंगमंजरी (मञ्जुश्यामा) ही दिखती हैं। पू.गुरुदेव अपने आराध्य प्रियतम श्यामसुन्दरकी सौन्दर्यसुधाका पान करते उनसे सटे-सटे परम अनुगतकी तरह यमुनाकी ओर बढ़ते हैं।

पू.पोद्दार महाराजके साथे-साथ जो अन्य लोग भी चल रहे थे, वे भी पू.गुरुदेवको 'कुछ और' ही, उनकी भावाभिव्यक्तिके अनुरूप भिन्ने-भिन्न ब्रजजगत्के जीव ही दिख रहे थे। पू. पोद्दार महाराजने हाथ पकड़कर ही पू. गुरुदेवको यमुनामें डुबकी लगवायी। पू. गुरुदेव तो दूसरे ही राज्यमें थे। अपने प्राणप्रिय शिष्यकी भावदशा देखे-देखकर श्रीपोद्दार महाराजके नेत्र छलछल करने लगे। पू.गुरुदेवको तो यह भी ज्ञान नहीं था कि उन्हें धोती-वस्त्र भी कैसे लपेटना है , एवं पुरातन भीगे वस्त्रको भी उतारना है। उनके तो प्रणयसिन्धुमें आवर्त्त-पर-आवर्त्त उठ रहे थे। उन्हें दिख रहा था – "वे अपने प्रति अपने प्रियतमके प्रेमावेशकी विलक्षण झाँकी देखते हैं तो उनके नेत्र निर्झरकी तरह बहने लगते हैं, और उन्हें स्वेद, कम्प, आदि प्रेमविकार हो उठते हैं। श्रीपोद्दार महाराजके मनमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाका प्रेमावेश देख-देखकर विलक्षण आनन्दजन्य रोमाञ्च होता है। सहसा यमुना पुलिनमें स्नानार्थ और भी भीड़ आ जाती है। अचिन्त्य लीलामहाशक्ति समयोचित कार्यनिर्वाहके लिये पू. गुरुदेवका भाव शिथिल कर देती है। इस प्रकार तीर्थयात्राट्रेनका प्रथम प्रहर व्यतीत होता है।

मथुरा स्टेशनपर तीर्थयात्राट्रेनको मात्र दो दिवस ही रुकना था। दूसरे दिवस सायंकाल ही उसे प्रस्थान करना था। अतः बिड़ला धर्मशालामें तो पू. गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजका अति अल्पकालीन ही निवास रहा। कुछ ही कालमें सभी मोटरोंसे गोवर्धन परिक्रमार्थ चल पड़े। श्रीपोद्दार महाराजको गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा करनी ही थी। पू. गुरुदेव भी श्रीपोद्दार महाराज एवं यात्रियोंके सहित प्रथम दिवस ही गिरिराजकी पूरी परिक्रमा करके बिड़ला धर्मशाला लौट आये थे। सायंकाल अतिशय थके होनेके कारण वे भिक्षाके पश्चात् विश्राम करने लगे।

पू.गुरुदेव सदैव ब्राह्मबेलामें ही उठ जाया करते थे। किन्तु विगत दिवस श्रीगिरिराज गोवर्धनकी लम्बी परिक्रमा करनेके कारण लगभग सात बजेतक लेटे रहे। वसन्त ऋतु होनेके कारण सूर्योदय अभी हुआ ही था। पू. गुरुदेवने ज्योंही अपना कक्ष खोला कि एक सन्त चट-से उनके कमरेमें प्रवेश कर गये। प्रवेश होते ही उन्होंने कक्षकी भीतरसे अर्गला भी लगा ली। यह सर्वथा एक चकित करनेवाली बात थी।

पू.गुरुदेवकी भावदशा देखते हुए एवं तीर्थयात्राट्रेनमें आनेवाली भीड़से उन्हें बचानेके लिये श्रीपोद्दार महाराजने ऐसा नियम बना दिया था कि उनसे बिना अनुमति लिये कोई भी व्यक्ति पू.गुरुदेवके कक्षमें प्रवेश नहीं कर पावे। श्रीपोद्दार महाराजने श्रीभगतजी एवं श्री रामसनेहीजी नामक अपने दो अति विश्वस्त सेवकोंको पू. गुरुदेवके निवासका पहरेदार नियुक्त कर दिया था। ये दोनों सेवक सदा सावधान रहते थे, जिससे कि किसीके भी द्वारा कोई व्यवधान पू.गुरुदेवके जीवनक्रममें उपस्थित नहीं हो। इतनी सावधानीके उपरान्त भी ये सन्त पू.गुरुदेवके शयनकक्षमें प्रवेश पा गये, यह बात पू.गुरुदेवको अवश्य अटपटी लगी। बिना किसी विशेष रहस्यके इस प्रकारका साहस किसीको नहीं ही करना चाहिये।

भीतरसे अर्गला लगाकर वे संत हाथ जोड़कर पू.गुरुदेवके सम्मुख खड़े हो गये। विनम्रताके आधिक्यमें उनकी कमर कुछ झुकी हुई थी। घुटने भी कुछ-कुछ विनीत थे। संतजी गौरवर्णके थे, उनकी दाढ़ी शुभ्रवर्णकी थी, उनके मुखमण्डलसे शुद्ध सात्विकता छलक रही थी और तेज छिटक रहा था। उनका समग्र शरीर ही दिव्य तेजसे दिपदिपा रहा था। इतना ही नहीं, ज्योंही वे हाथ जोड़कर खड़े हुए उनके कपोलयुग्मपर स्वेद विन्दु इस शीतमें भी झलमल कर रहे थे। उनके नेत्र भी झर-झर अश्रु प्रवाहित करने लगे थे। पू. गुरुदेव इन महापुरुषकी इन उपर्लिखित अगणित प्रेमिल चेष्टाओंको अति सूक्ष्म पारखीकी तरह देख रहे थे। पू.गुरुदेवका हृदय भी आर्द्र हो रहा था।

पू.गुरुदेव समझ रहे थे कि यद्यपि इनके साथ रामसनेही, भगतजी अथवा कोई सुपरिचित व्यक्ति नहीं है, अतः निश्चय है कि ये पोद्दार महाराजकी अनुमति लिये बिना ही चले आये हैं। किन्तु फिर भी उनकी भावदशा एवं विनम्रतासे प्रभावित हो पू.गुरुदेव उनसे प्रश्न कर बैठे – "प्रभो ! क्या मैं

आपके साधुकलेवरका परिचित जान सकता हूँ ?''

पू. गुरुदेवके प्रश्नमें भी उनके अन्तस्तलमें प्रवाहित अनाविल प्रेम सिन्धुकी उर्मियाँ फूटी पड़ रही थीं।

वे संत भी प्रेममें विभोर थे। दोनों ओर मधुरातिमधुर प्रीतिवर्षा, दोनों ओर परमानन्दमें निमग्नता, दोनों ही परस्पर एक दूसरेपर रसप्लावन, रसवर्षा कर रहे थे। दोनों सन्तोंकी मुद्राओंमें, नेत्र-भंगिमाओंमें, रोम-रोममें, परम सात्विक विनय भरा था। समागत संत कहने लगे –'' प्रभो ! मैं तो भानुनन्दिनी किशोरीरानीका एक किंकर हूँ।आज निशाके द्वितीय प्रहरमें उनका स्वप्नमें आदेश हुआ – 'जाओ ! बिड़लामन्दिरमें जाकर श्रीराधाबाबा नामक मेरे परम प्रेमी सन्तके दर्शन कर आओ। वे मेरे निज जन हैं।' स्वप्नमें उनके संकेतसे ही मुझे आपका यह शयनकक्ष दिखलाया गया और दिशाका निर्देश भी हुआ कि किस प्रकार जाना है, और कैसे दर्शन करना है। स्वामिन् ! मैं तो अक्षरशः उनकी आज्ञा शिरोधार्यकर, जैसा उन्होंने निर्देश दिया, पथ बताया, उसके अनुसार चला आया हूँ। ''

यह सुनते ही पू.गुरुदेवके नेत्र आनन्दातिरेकसे रह-रहकर छलक उठे। उठते हुए प्रेमभावोंसे अन्तर्हृदय अत्यधिक मसृण हो गया। उनकी अञ्जलि बँध गयी है। ये सन्त न जाने कितनी दूरसे पैदल चलकर आये हैं। न जाने कितनी देरसे ये मेरे द्वारमोचनकी प्रतीक्षामें खड़े रहे होंगे ! अहा ! जिन्हें स्वयं श्रीराधारानी स्वप्नादेश दें, उनकी महिमाका क्या और कैसे बखान किया जाय ? श्रीकिशोरीरानीने इन्हें मेरे पास भेजा है, ये मेरे लिये तो किशोरीस्वरूप ही हैं। इनकी मैं क्या सेवा करूँ ? इस प्रकार मन-ही-मन अपनी निर्मलतम स्नेहराशिकी सहस्र-सहस्र धाराएँ प्रवाहित करते और उनसे उन सन्त महोदयको अभिषिक्त करते पू.गुरुदेव उनसे कहने लगे –''प्रभो ! नैं आपकी क्या सेवा करूँ ?'' पू.गुरुदेवके मुखसे तो मात्र इतने ही शब्द निकल पाये किन्तु उनकी अन्तर्भावराशिसे उन सन्तप्रवरपर असंख्य आशीर्वाद और मंगलकामनाएँ फूट पड़ीं ।

जिन श्रीराधारानीके नामके मात्र अग्रिम अक्षर 'रा'को सुनते ही रमावल्लभ श्रीकृष्ण अपनी सर्वप्रिय अनमोल भक्तिका दान कर देते हैं और 'धा' शब्दके श्रवणमात्रसे उसके सदा-सदाके लिये अनुचर – दास हो जाते हैं, उन

महा-महामहिमामयी किशोरीने इनको स्वयं अपने मुखसे आदेश देकर मेरे पास भेजा है, मैं अपने सौभाग्यकी सचमुच ही किन शब्दोंमें स्तुति करूँ ? यह मेरा परम पावन सौभाग्य है कि इनका मुझे दर्शन मिला। पू.गुरुदेवतो उपर्युक्त धारामें ही विचार कर रहे थे।

इधर उन सन्त प्रवरका मस्तक भी पू.गुरुदेवके चरणोंमें अति विनीत हो गया। " बस ! आपका दर्शन मिल गया, इससे अधिक और इसके अतिरिक्त ऐसी कौनसी निधि है, जिसकी मुझे कामना हो ।" मुखसे तो वे इतना ही बोल पाये, किन्तु उनकी मनोवाणी कितनी ही बातें गोपनरूपमें कहने लगीं – "आपके तो स्वप्न-जागरणका अणु-अणु ही श्रीराधामाधव हैं। आपकी जीवनचर्याका प्रमुख अंग ही श्रीकिशोरीरानीकी सुखसेज-सेवा है। आपके प्राणोंका आधार श्रीराधामाधवकी प्रीति है, श्रीकिशोरीरानीके क्षण-क्षणके सान्निध्य बिना आपका तो प्राणधारण ही संभव नहीं। आप तो उनके ही लीलामृत-सिन्धुमें आपाततः डूबे हैं। हमें तो यदा-कदा स्वप्नादिमें रानीकी छबिकी एक किरणभर प्राप्त होती है तो हम धन्य-धन्य हो उठते हैं, आपके तो सम्मुख वे साक्षात् नित्य विराजित रहकर अपना प्रत्यक्ष नेह-प्रवाह बहाती हैं। उनके सच्चिन्मय कुन्दनद्युति अंगोंसे लीलाका नित्य नवीन, नित नूतन पावन स्रोत क्षण-क्षण आपके हृदयमें झरता रहता है। आपके अन्तस्तलमें उसकी एक-एक बूँद एकत्रित होती अथाह सिन्धु बन बैठी है, उस लीलासिन्धुका तरंगायमान होना ही आपका देखना, हँसना, बोलना, खाना-पीना सर्वांग चरित्र है। वह अपरिसीम प्रेमप्रवाह, लीला-उच्छलन, आपके अन्तर्देशमें सीमित रह जो नहीं सकता, आपके श्वास-प्रश्वाससे बाहर लहराने लग जाता है। आपके शब्द चाहे कुछ भी हों, आपके तो अणु-अणुसे निरन्तर प्रीतिकी अनन्त धाराएँ दसों दिशाओंको परिव्याप्त करती रहती हैं।श्रीकिशोरीजीने जो आपकी महिमाका संकेत किया और उनके आदेशानुसार मैं आया, मेरा आपके चरणोंमें आना सार्थक हो गया। "

इन सन्तप्रवरके जो भी श्रद्धाभाव थे, उस भाव-प्रवाहको पू.गुरुदेव पूरा हृदयंगम कर लेते हैं। किन्तु मुखसे इतना ही पूछते हैं –" आप कहाँ निवास करते हैं ? "

समागत सन्तप्रवर उत्तर देते हैं –' मैं तो वृन्दावनमें ही रहता हूँ, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। भिक्षावृत्ति ही मेरे शरीरनिर्वाहका आधार है।'

पू.गुरुदेव पुनः जिज्ञासा करते हैं –' आप बाहर कबसे खड़े थे ?'

सन्त महोदय उत्तर देते हैं –" लगभग दो-ढ़ाई घण्टेसे खड़ा था। स्वप्नादेशके पश्चात् निद्रा टूट गयी। स्नानादिसे निवृत्त होकर बिड़लामन्दिरके लिये चल पड़ा। प्रातः ब्राह्मबेलामें चार बजे यहाँ आ गया था। तबसे प्रतीक्षातुर था, कब आपके पट खुलें और दर्शन लाभ हों। "

पू.गुरुदेव समझ गये कि इन सन्तका हृद्देश किशोरीरानीके परम रसमय प्रेम-स्रोतमें तन्मय हो चुका है। ये तो प्रेम-मन्दाकिनीकी सरस धारा-जैसे हैं, जो सघनवनकी ओटमें लुप्त हो जाती है और अनुकूल धरातलपर पुनः व्यक्त हो उठती है। पू.गुरुदेवके सम्मुख उन सन्त महोदयने भी अपने जीवनका सारा रसंमय रहस्य खोलकर रख दिया। वे सन्त यही कह रहे थे कि 'उनकी भावधारा एकरस नहीं रह पाती। कभी उद्दीपित हो उठती है और कभी लुप्तप्राय हो जाती है। जब भाव-रसधारा विलुप्त होती है तो वे 'राधा' नामसंकीर्त्तन करने लगते हैं। फिर उद्दीपनकी कोई-न-कोई वस्तु स्पर्श करती है और पुनः लीलाप्रवाह चल पड़ता है।

उन सन्त महोदयने आगे कहा कि 'बरसानेमें एक गृहस्थ सन्त हैं, उनका नाम है मोहिनीश्याम। ये अतिशय गुप्त सन्त हैं। बाह्यरूपसे इन्होंने अपनेको ऐसा बना रखा है कि कोई इनको पहचान ही नहीं सके, किन्तु ये किशोरीजीके गहरे प्रेममें छके परम कृपापात्र संत हैं। इनकी लीला-रसधारा निरन्तर एकरस स्वप्न-जागरण अविच्छिन्न प्रवाहित होती रहती है। यदि संभव हो तो आप इनसे अवश्य मिलें ।"

लगभग दो घड़ी ये सन्त महोदय पू.गुरुदेवके पास रहे होंगे। यह कालक्षेप ऐसा हुआ जिसमें पू.गुरुदेव और उन सन्त –दोनोंके प्रेमाह्लादकी सीमा नहीं थी। फिर उन्होंने जानेके लिये पू.गुरुदेवसे आज्ञा माँगी। पू.गुरुदेव उनको पोद्दार महाराजसे मिलाना चाहते थे, परन्तु उनको रोकना संभव नहीं था। पू.गुरुदेवने भी उनके जानेकी उत्सुकता देखकर उन्हें विदाई दे दी। वे अति शीघ्रतासे पू. गुरुदेवके कक्षसे बाहर हो गये। पू.गुरुदेव यह देखने के लिये कि ये किधरसे जाते हैं बिड़ला धर्मशालाकी छतपर चले गये। पू.गुरुदेवने देखा कि भावोन्मत्त दशामें अपने हाथ ऊपर किये हुए वे वृन्दावनकी ओर तीव्र गतिसे चले जा रहे थे। उनकी चालकी गति इतनी तेज थी कि उसे लगभग दौड़ना ही कहना चाहिये।

महासिद्ध सन्त श्रीमोहिनीश्यामजी

इस वर्तमान युगमें जहाँ कि वर्त्तमानकाल भारतीय संस्कृतिके त्यागमूलक आचारको ही सर्वथा नष्ट कर देनेपर तुला है , वैश्यकुलमें जहाँ जीवनका लक्ष ही अर्थोपार्जन-प्रधान रहता है, विलक्षण त्यागी पुरुषोंका जन्म होना आश्चर्यचकित कर देनेवाला तथ्य है।

यह सुनिश्चित है कि सन्तों-भक्तोंकी कोई जाति नहीं होती। किन्तु एक समय था जब भक्तिके आचार्योंमें उच्चवर्गीय ब्राह्मणोंका वर्चस्व रहा। आचार्य शंकर, आचार्य रामानुज, वल्लभ, रामानन्द, भक्तशिरोमणि चैतन्यदेव, परमत्यागी रामभक्त तुलसीदास, सूरदास, नन्ददास, हितहरिवंश, हरिदास, भक्त नरसी एवं इन सबकी सदियोंतक चलीं शिष्य एवं वंशपरम्पराएँ भी ब्राह्मणों द्वारा ही प्रतिष्ठापित रहीं। वैश्य जाति तो प्रायः अर्थोपार्जनरूप सांसारिक विषयोंके कूड़े-कर्कटसे ही भरी रही। वैश्योंको तो जन्मघुटीके रूपमें ही अर्थोपार्जनकी कला सिखाई जाती थी। हाँ ! वे कुए, बावड़ियाँ, धर्मशालाएँ, मन्दिर, अन्नक्षेत्र, प्याऊ, संस्कृत पाठशालाएँ, ब्रह्मभोज, यज्ञ, औषधालय आदि स्थापितकर अर्थदानके रूपमें समाजकी अवश्य सेवा किया करते थे, परन्तु इस सेवामें भी उनकी यशलिप्सा और नामार्जन करनेकी प्रवृत्ति ही प्रमुख रहती थी।

वैश्योंमें कतिचित् भी ऐसे भक्त उत्पन्न नहीं हुए जो प्रेममें तन्मय होकर मतवालोंकी तरह घर-बार, स्त्री-सुख, लोक-परलोक, हर्ष-शोक, मानापमान आदि सबका विसर्जन करके उस परमात्माके लिये परम व्याकुल हो उठे हों। भगवान्‌के वियोगमें जो जलसे अलग हुई मछलीके समान छटपटाने लगे हों, भक्तिमती गोपियोंकी भाँति जिनके प्राण विरह-वेदनासे व्याकुल हो उठे हों।

यह परमाश्चर्यकी ही बात थी कि इस कालमें वैश्यजातिमें उत्पन्न हुए दो परम प्रेमी भगवद्भक्त श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार और श्रीमोहिनीश्यामजी ऐसे जन हुए जिन्होंने अपने जीवनका परम एवं चरम लक्ष्य नित्य नूतन नीलनीरजकान्ति श्यामसुन्दर एवं कुन्दनरुचा श्रीराधारानीकी विश्वविमोहिनी प्रीति-माधुरीको स्वीकार किया और अपने हृदयमें प्रिया-प्रियतमकी तीव्रतम विरहाग्नि प्रज्वलित की । यह विरहाग्नि ऐसी नहीं थी कि बाहरसे इसे कोई

देख-जान सके। इसका बाह्य अनुभव होता ही नहीं। यह विरह-ज्वाला तो किसी महाभाग्यवान्‌के भीतर-ही-भीतर प्रज्वलित होती रहती है, और किसी दिन इससे उत्पन्न हुई वेदना जब सर्वथा असह्य होकर बाहर फूट पड़ती है तो उस विरले विरहीको प्रेममें पागल बना डालती है। उस समय वह अनन्य प्रेममें मतवाला भक्त ब्रजगोपियोंकी भाँति सब कुछ भूलकर उस प्राणाधिक मनमोहनके दर्शनके लिये दौड़ पड़ता है और अपनी सम्पूर्ण शक्ति, सारा उत्साह लगाकर उसको पुकारता है। बस, इसी अवस्थामें उसे भगवान्‌के दर्शन प्राप्त होते हैं। श्रीपोद्दार महाराजकी इसी दशाका द्योतक यह पद है:

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै एक तुही मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो हिवड़ो उझल्यौ आवै है ।।

श्रीमोहिनीश्यामजीकी यद्यपि कोई पदरचना तो उपलब्ध नहीं होती किन्तु उनके जीवनमें जब विरह-दशा उद्दीप्त हुई तो वे विकल होकर पागलकी तरह रोते थे। लेखक इन भक्तराजके घरमें अनेक बार गया है और इन सुदुर्लभ संतके परिवारसे लेखकके आत्मीयताके सम्बन्ध भी स्थापित हो गये थे।

श्री मोहिनीश्यामजीकी पत्नीने लेखकसे यही कहा था कि एक बार ये लाड़िलीजीके मन्दिर बरसानेमें सीढ़ियोंमें बैठे थे। वहींसे इनकी ऐसी पागल दशा हो गयी। अ.सौ.माताजी (श्रीभक्तराजजीकी पत्नी)की सुदृढ़ मान्यता थी कि इन्हें विकट ब्रह्मराक्षस प्रेतने आक्रान्त कर रखा है,जो बड़े-बड़े ओझाओंसे भी उतारा नहीं जा सका है। लेखक अ.सौ.पू.माताजीकी बातें सुनकर हँसने लगता था।

श्रीमोहिनीश्यामजीके पिताका नाम वनखण्डी था। ये कोसीकलाँ (ब्रजप्रदेश)के रहनेवाले थे और आज भी इनके परिवारकी वस्त्रकी दुकान वहाँ है। ये किसानोंको बोरकत भी करते थे और उधार वस्त्र भी देते थे। जब उपज-उगाही होती तो वे किसानोंसे व्याजसहित रकम ले लेते थे।

श्रीमोहिनीश्यामजी इतने गुप्त सन्त थे कि इनके परिवारका कोई भी व्यक्ति इन्हें भगवद्भक्त अथवा उच्च कोटिका सन्त नहीं मानता था। सभी उन्हें पागल ही मानते थे। बरसाना ग्राममें भी इनकी भगवद्भक्त जानकर कहीं कोई ख्याति नहीं थी। अतः इनकी साधनाका क्रम कबसे प्रारंभ हुआ, आदि कोई

बात इनके परिवारसे चेष्टा करनेपर भी ज्ञात नहीं हो सकी।

प्रथमतः लेखककी अपनी बातको किनारेकर हम पू.गुरुदेव श्रीराधा बाबाके प्रसंगपर आते हैं।

उपर्युक्त सिद्ध सन्तके द्वारा श्रीमोहिनीश्यामजीके दर्शनका पू.गुरुदेवसे आग्रह किये जानेपर पू.गुरुदेव विचारमें पड़ गये। वे इन सुदुर्लभ सन्तके दर्शनार्थ स्वयं जाना चाहते थे किन्तु उनके जानेका अर्थ था कि श्रीपोद्दार महाराज भी उनके साथ-साथ मथुरासे बरसाने जावें। यात्राट्रेन लगभग दुपहरीमें चार-पाँच घण्टे पश्चात् मथुरा स्टेशन छोड़ने वाली थी। अतः चार घण्टेकी अवधिमें पू.पोद्दार महाराजको ले जाना और पुनः वापस आना संभव ही नहीं था। इस विवशताकी स्थितिमें पू.गुरुदेवने भाई घनश्याम, जो ठाकुरस्वरूपसे पू.गुरुदेवको अनेकों बार परम उद्दीपित कर चुका था, उसे एवं श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल जो पू. पोद्दार महाराजके परिकर थे और यात्राट्रेनमें साथ आये थे, इन दोनों व्यक्तियोंको भेजनेका विचार किया। तुरन्त कारकी व्यवस्था की गयी और पू.गुरुदेवने ठाकुर घनश्यामसे कहा – "ठाकुर ! ये कृष्णजी और तुम दोनों मोटरगाड़ीसे जाओ। श्रीकृष्णजीको वृन्दावन, नन्दगाँव, बरसाने ले जाकर मुख्य-मुख्य मन्दिरोंमें देवदर्शन करा देना। अबतकके किसी भी तीर्थस्थानमें वे अपने सेवाव्रतके कारण नहीं जा पाये हैं। कम-से-कम ब्रजमें तो देवदर्शन कर लें। इसके अतिरिक्त तुम लोग बरसानेमें जाकर पता लगाना कि वहाँ कोई मोहिनीश्यामजी नामक संत हैं क्या ? यदि उनके घरमें तुम लोग जा पाओ तो उनके घरकी एक रोटीकी भिक्षा अवश्य लाना। वे एक महासिद्ध गृहस्थ संत हैं। बाहरके लक्षणोंसे कोई नहीं कह सकता कि वे उच्च कोटिके सन्त हैं। परन्तु वे वस्तुतः बृषभानुनन्दिनी राधाजीके परम कृपापात्र जन हैं।

पू.गुरुदेवका सन्देश पाकर भाई श्रीठाकुर घनश्याम, श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल एवं ठाकुरके श्रद्धालु अनुगत श्रीमनोहरजी मोटर गाड़ीमें वृन्दावनसे छटीकरा होते गोवर्धन और तब बरसाने-नन्दग्रामकी ओर अग्रसर हो गये। यद्यपि यह सन्देह था कि इन तीर्थोंमें मन्दिरोंके पट उन्हें खुले मिलेंगे अथवा नहीं, किन्तु पू. गुरुदेवकी कृपासे सभी मन्दिरोंके पट खुले मिल गये थे।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल यद्यपि तीर्थयात्राट्रेनमें सभी स्थानोंमें पू. गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजके साथ थे, परन्तु

उनके जिम्मे पू. गुरुदेवने यह सेवा लगा दी थी कि ज़िस डिब्बेमें पू. गुरुदेव राधाबाबा एवं पोद्दार महाराज यात्रा कर रहे थे, उसकी सुरक्षा एवं सम्हाल वे व्यक्तिगतरूपसे करें। इस सेवाव्रतके कारण जब श्रीपोद्दार महाराज यात्राट्रेनका डिब्बा छोड़कर अन्य यात्रियोंके साथ तीर्थोंमें दर्शनार्थ एवं स्नानादिके लिये जाते, श्रीकृष्णचन्द्रजी उस डिब्बेकी निगरानीमें स्टेशनपर ही रहते थे। इस सेवाव्रतमें निरत होनेसे वे जगन्नाथजी, रामेश्वरम्, द्वारका – कहीं भी दर्शनार्थ नहीं जा सके थे।

बरसाना पहुँचकर इस मंडलीने श्रीमोहिनीश्यामजीके बारेमें श्रीजीके मन्दिरके गोस्वामियों एवं बाजारमें सर्वत्र पूछताछ की, किन्तु इनको निराशा ही हाथ लगी। बहुत खोज करनेपर किसीने बतलाया – श्रीमोहिनीश्याम एक बाल-बच्चेवाले गृहस्थ वैश्य हैं, वे तो कोई सन्त नहीं, सिड़ी पागल हैं। उस व्यक्तिने मोहिनीश्यामजीका घर भी बतला दिया। उनकी रहनीको देखकर तो सभीको और भी आश्चर्य हुआ। जब उनसे भिक्षाकी याचना की गयी तो उन्होंने अपनी पत्नीसे कहकर रोटी-भिक्षा दिलवा दी। भिक्षा लेकर यह मण्डली पू. गुरुदेवके पास मथुरा स्टेशन लौट आयी। पू.गुरुदेवने श्रीमोहिनीश्यामजीके घरसे आयी भिक्षाको बड़े ही आदरसे मस्तकसे छुवाया और उसका एक कण अपने मुखमें डालकर शेष भिक्षा उन्होंने श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजीको दे दी। गोस्वामीजीने यद्यपि वे पूजादिकर्मसे निवृत्त नहीं हुए थे, फिर भी उस भिक्षाको पू. गुरुदेव राधाबाबाकी आज्ञा मानकर तुरन्त ही ग्रहण कर ली।

थोड़ा विषयान्तर कर रहा हूँ। पू.गुरुदेवकी वार्त्तासे हटकर श्रीमोहिनीश्यामजीकी जीवनकथापर पुनः आ रहा हूँ। मैं पू.गुरुदेवसे श्रीमोहिनीश्यामजीका वृत्तान्त सुनकर व्यक्तिगतरूपसे अकेला ही उनके घर गया था। मैं जब उनके घरपर उनके दर्शनार्थ गया तो वे अपने पहले तल्लेके छतपर बने कक्षमें सो रहे थे। वे भीषण गर्मीमें भी रजाई ओढ़े पड़े थे, और उन्होंने अपने पैरोंसे जूते भी नहीं उतारे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया और भिक्षाकी रोटी माँगी। उन्होंने अपनी बेटी राधाको पुकारा और एक रोटी देनेको कहा। मेरी इच्छा थी कि मैं उनके स्वयंके हाथसे ही वह रोटी ग्रहण करूँ। इसपर उन्होंने कहा कि मैं लघुशंका करने जा रहा हूँ। कुछ देर पश्चात् जब वे लघुशंका करके आये तो उन्होंने मूत्रसे भरे हाथोंसे वह रोटी मुझे दी। जब

मूत्रसे सने हाथोंसे भी मैंने वह उनकी रोटी अति श्रद्धापूर्वक अपने पास प्रसादवत् रखी तो अ.सौ.माताजी (मोहिनीश्यामजीकी पत्नी) छिः-छिः कर उठीं। मैंने बारबार पू.माताजीसे कहा कि आप विश्वास करें ये भूत-प्रेतग्रस्त नहीं हैं। ये बहुत ऊँचे महात्मा हैं। इसपर माताजीने कहा –" बेटा! तू इन्हें एक बार राधारानीके मन्दिर तो. ले जा। ये वहाँ जा ही नहीं सकते। हमने कितनी बार इन्हें राधारानीके मन्दिर ले जानेकी चेष्टा की है, किन्तु बस पौरकी सीढ़ीपर ही ये पागल हो जाते हैं, चीत्कार करने लगते हैं । इन्हें वापस लाना पड़ता है। इन्हें प्रेत मन्दिरतक चढ़ने ही नहीं देता। "

अ.सौ.माताजीसे आज्ञा लेकर मैं उनके पास घण्टों बैठा करता। वे मुझे अपने पास बैठा देखकर पूछते –" तुम कौन हो ? मेरे पास क्यों आते हो ? " इसपर मैं उन्हें यही उत्तर देता कि आप राधारानीके बहुत बड़े कृपापात्र हो– यह रहस्य मुझे मेरे गुरुदेवने बताया है। इसलिये आपके पास दर्शनार्थ आता हूँ। मैं उन्हें ब्रजरसके सुन्दर गीत सुनाता। किन्तु वे किसी गीतको भी पूरा नहीं सुनते। वे मुझसे ब्रजभाषामें ही बोलते थे। जैसे ही मैं गीतकी प्रथम पंक्ति गाता, वे मुझे मध्यमें ही टोक कर कहते –" तो तुम हमारे पास क्यों आये हो ? तुम ब्रजवासी तो हो नहीं।" मैं उन्हें पुनः गीत सुनाने लगता, किन्तु वे विक्षेप किये बिना रहते ही नहीं।

एक दिन मैंने उनसे कहा –"बाबा ! तुम मन्दिर क्यों नहीं जाते ? तुम्हें पौरपर पहुँचते ही उन्माद क्यों होने लगता है ? "

उस दिवस वे मुझपर दयालु हो उठे थे। उन्होंने उत्तर दिया – " भैया ! सचमुच ही मोहे एक भूत वहाँ दिखै है। वौ इतनौ सुन्दर है कि यदि मेरे लाखों आँखें होंयँ तो भी वाहै देखतौ ही रहूँ। भैया ! वायै देख मैं पागल होय उठूँ हूँ। और राधाजीके मन्दिरको तो वह पहरेदार है । जब जब वाय देखकर ही मेरो मस्तिष्क फिर जाय है तो आगै बढ़ूँ कैसे ? तुम्हीं बताऔ।"

फिर वे कहने लगे– " राधारानी तो मेरे पास ही आय जाय है। या खिरकीसे लालीको निजमहल सामने ही तो दीखै है। बस, यहींसे वे मो दीन-हीन पै कृपा करदैं हैं। "

वे मुझसे ब्रजभाषामें ही बोलते थे। परन्तु बहत ही आत्मीय हो गये थे। एक दिवस मैंने उनसे पूछा –" बाबा ! आपने अपने कपड़ानकी दुकान

सब ब्रजबासीनमें लुटाय दी, जो आवै वाहीकौं मुँह-माँग्यौ कपड़ा बाँदिवे लगे, यह आपने क्यों कियौ ? "

वे कहने लगे–" अरे भैया ! मोहे तो वा पहरेदारनें ही हुकुम कर्यौ थो, जो ये सब ब्रजवासी मेरे सखा हैं, कपड़ा पहरैंगे, बाँटि दै। अब बोल भैया, वो मोते अपने सखानके लिये माँगै तो मैं कहा कंजूसी करूँगो ? मैंने कह्यौ –"लैजा ! और वो ही सबकूँ दिलातो गयौ ! भैया, यामें मेरो कहा पाप है ?

घण्टों मैं उनके पास बैठा उनको देखता रहता और वे मुझे देखते रहते। अनन्य प्रेमीजनोंके पास बैठकर जब उनके प्रियतमकी चर्चा होती है तो उस समय संसार न जाने कहाँ चला जाता है ? प्रेमी भक्तोंके संगकी यही तो महिमा है।

श्रीमोहिनीश्यामजीका जब प्रेमसमुद्र उमड़ता था तो वे चेष्टा करनेपर भी बोल नहीं सकते थे, उनका कण्ठ रुक जाता था, शरीर पुलकित हो जाता था, उनके रोम-रोमसे प्रेमकी किरणें निकलकर उस कमरेमें निर्मल प्रेम-ज्योति फैला देती थी। उनके कमरेका वातावरण परम प्रेममय हो जाता था, वे प्रेमविह्वल होकर आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बहाने लगते। जब उनकी ऐसी दशा होती तो वे मुझसे कहते –" अब तुम चले जावौ। अन्यथा तुमकूँ हमारे घरवाले गरियावेंगे। "

श्रीमोहिनीश्यामजीकी सबसे छोटी पुत्री 'राधा'का विवाह दिल्लीके राजपालसन्स फर्मके किसी पार्टनरसे हुआ था। वह बालिका श्यामवर्णकी थी। उसे पतिका पूरा स्नेह नहीं मिल रहा था। मैंने उसे 'सौभाग्य-अष्टोत्तर-नामावलि'का पाठ बताया था। कुछ विलक्षण चमत्कार ही हुआ था कि उस पाठसे उस बालिकाको पूर्ण पति-प्रेम प्राप्त हो गया था। अतः अ.सौ. माताजी (मोहिनीश्यामजीकी पत्नी) मुझसे बहुत आत्मीय हो उठी थीं, वे घरके सभी रहस्य मुझे बता देती थीं।

श्रीमोहिनीश्यामजीके आठ सन्तानें थी। । सात पुत्री और एक पुत्र। माताजीने सातों बालिकाओंका अच्छे सम्पन्न घरोंमें विवाह किया था। दहेजमें भी पर्याप्त सम्पत्ति प्रत्येक बालिकाको दी थी।

एक दिवस मैंने मैयासे पूछ लिया था –"मैया ! जब बाबाने दुकान ही लुटाय दी तब तेरो घरखर्च कैसें चलै है ? तूने इतनी कन्यानकौ विवाह कहाँ

तै कियौ ? "

अ.सौ. माताजी बहुत ही सरल स्त्री थीं। कपट तो उन्हें छूकर ही नहीं गया था। वे मुझे अपने घरके एक गुम्हार(अन्तर्तल)में ले गयीं। उन्होंने वहाँ एक कच्ची जमीन दिखाई और कहा –"भैया ! यह गुम्हार देवता हमारौ निर्वाह करै है। तेरे बाबा तो पागल होय गये हैं। दुकान लुटाय दी, यहाँतक कोई रेहन-बन्धकवारौ इनके पास आज भी आय जाय और रोय दै तो वाहै तुरन्त सारी रकमकी भरपायीकी रसीद लिख देते हैं। अब भैया, इतनी सन्ताननकूँ मैं कैसें पालन करती ? "

उनके कहनेका तात्पर्य यही था कि जब उन्हें प्रथम पुत्रीके विवाहकी चिन्ता लगी तो उन्होंने बहुत मात्रामें गुड़ खरीदकर इस गुम्हारमें इस निमित्तसे रखवा दिया कि ग्रीष्म ऋतुमें जब गुड़में तेजी आवेगी तो बेचकर कुछ लाभ हो जायेगा और बच्चीके विवाहमें सुविधा हो जावेगी। गर्मीमें गुड़ पिघलकर ऐसा फैल गया कि उसे बेचनेके लिये गुम्हार ही खुदाना पड़ा। जब उस गुम्हारको खुदाया तो उसमें इतनी मोहरें निकल गयीं कि उससे पहली पुत्रीका विवाह सम्पन्न हो गया।

पू.माताजी कह रही थीं कि किसी स्रोतसे यह बात जब हमारे भाई-बन्धु, रिश्तेदारोंको पता चली कि गुम्हारमें हमें धन मिला है तो मकान पुराना पैतृक होनेके कारण उसे सबने मिलकर खुदाया किन्तु उनको एक भी मोहर नहीं मिली। किन्तु दूसरी कन्याके विवाहपर जब मैंने गुम्हारकी खुदाई की तो पुनः स्वर्णमोहरें मिल गयीं।

पू.माताजी मुझे कह रही थीं कि यह गुम्हार किसी अन्यको कभी एक पाई भी नहीं देता किन्तु जैसे ही मैं इससे कुछ भी आवश्यकतापर याचना करती हूँ, यह मुझे किसी-न-किसी कच्चे कोनेसे आवश्यक स्वर्णमोहरें दे देता है और मेरा गृहखर्च पूरी निश्चिन्ततापूर्वक निर्वाह हो जाता है। इसकी ही कृपासे मैंने सात-सात कन्याओंके विवाह किये हैं और इन कन्याओंके बच्चोंके भात, छूछक आदि सभी नेग पूरे किये हैं।

मैं माताजीके मुखसे उस गुम्हारकी महिमा सुन रहा था, और मेरे मानस-नेत्रोंमें भक्त नरसीके माहेरेकी घटना नाच रही थी। भगवान् भक्तका योगक्षेम कैसे निर्वाह करते हैं, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह गुम्हार था। वैसे

उस खण्डहर -से गुम्हारमें कोई ताला नहीं लगाता था, कोई वहाँ जाये , कुछ भी खोदे, माताजी अथवा मोहिनीश्यामजीके परिवारकी ओरसे कहीं कुछ भी निषेध नहीं था। किन्तु विलक्षण बात यह थी कि माताजीकी सब आवश्यकताएँ प्रचुररूपमें उस खण्डहरसे प्राप्त स्वर्णमुद्राओंसे पूर्ण हो जाती थीं।

श्रीमोहिनीश्यामजीकी मृत्यु भी एक विलक्षण रीतिसे हुई। एक साधु बरसानेमें तीस-चालीस वर्षोंसे रह रहा था। उसके निर्वाहका साधन था मात्र मधुकरी। ब्रजवासियोंके सूखे टूक खाकर ही वह जीवनयात्रा चला रहा था। अचानक उसे उदर-कैंसर होगया। उस कैंसरसे उसके उदरमें शूलकी तरह पीड़ा होती थी। वह साधु अपने रोगसे वैसे अपरिचित था और उसकी मान्यता यह थी कि सूखे टूक खानेसे ही उसे यह उदरपीड़ा होती है।

एक दिवस जब उसे अतिशय कष्ट हुआ तो उसने बरसानेको छोड़कर अपनी जन्मभूमिमें अपने परिवारमें जानेका निश्चय कर लिया। उसने सोचा कि परिवारमें उसे दाल-भात कच्चा भोजन मिल जायगा और उससे संभव है उसका यह उदरशूल निवृत्त हो जायगा। वह जब बरसानेकी ग्रामसीमा त्याग करने लगा तो उसके चित्तमें परिताप भी पर्याप्त मात्रामें हो उठा कि हाय ! चालीस वर्षकी उसकी धामवासकी साधना आज इस उदरशूलके कष्टसे और शरीर-सुविधाके मोहसे खण्डित हो रही है। साधु अतिशय वेदनामें श्रीराधारानीको उपालंभ देता हुआ रुदन करने लगा।

साधु सिसक–सिसककर एक ही बात कह रहा था कि उसे तो पूर्ण धिक्कार है कि वह इस नाशवान् शरीरके मोहवश बरसाना धाम छोड़ रहा है, परन्तु राधा बिटिया तू क्या अपने एक शरणागत को दाल-चावल, कच्ची रसोई भी नहीं खिला सकती, जिसके अभावमें उठे इस उदरशूलकी पीड़ावश उसे यह कदम उठाना पड़ रहा है।

साधु रोये जा रहा था, इतनेमें ही एक पन्द्रह वर्षकी बालिका उसे अपने पास खड़ी दिखी। बालिकाने पहले तो उसके रोनेका कारण जाना और तब यह कहा कि उसके पिता मोहिनीश्याम ग्राममें रहते हैं, उनके घर वह साधु चला जाय। वहाँ उसे दाल-भात, आदि जो भी भिक्षा वह चाहेगा, प्रतिदिन मिल जाया करेगी। वह बालिका कह रही थी कि वह साधु मोहिनीश्यामजीसे कह दे कि उसकी भिक्षाकी व्यवस्था करनेको उनकी पुत्री राधाने कहा है।

बालिकासे आश्वासन पाकर साधु सीधा मोहिनीश्यामजीके घर पहुँचा। संयोग ऐसा था कि उस दिन मोहिनीश्यामजीका सारा परिवार ही किसी पारिवारिक कार्यसे कोसीकलाँ चला गया था। वह परिवार पाँच-सात दिवस पश्चात् आनेवाला था। ऐसे अनेक अवसर होते थे जब परिवारको गृहस्थकार्यसे बरसाना ग्राम छोड़कर इधर-उधर होना पड़ता था। उस समय वे मोहिनीश्यामजीके लिये जल-पात्रोंमें पर्याप्त जल एवं पक्की पूड़ी बनाकर रख जाया करते थे। उनके शौचकी व्यवस्था ऊपर ही थी। मोहिनीश्यामजी नंग-धड़ंग, अस्त-व्यस्त रहते ही थे, नहाते तो वे वर्षोंमें थे, भोजन भी वे बहुत अल्प मात्रामें ही करते थे। वे तो रजाई ओढ़े सोये रहते थे। घरके मुख्य द्वारपर परिवारके लोग ताला लगा देते थे।

साधु जब श्रीमोहिनीश्यामजीका नाम लेकर पुकार लगाता आया तो घरके मुख्यद्वारपर तो ताला लगा था। इन्होंने ऊपरके पहले तल्लेके कमरेसे उस साधुकी पुकार सुनी तो वे छतपर उसकी पूरी बात सुनने चले आये। श्रीमोहिनीश्यामजी अधिकांश काल रात-दिवसके चौबीस घण्टोंमें लगभग बीस-बाईस घण्टे तो प्रतिदिन भावसमाधिमें ही पड़े रहते थे।

अपनी ही महिमामें स्थित स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र एवं उनकी प्रिया श्रीराधारानीके साथ ही श्रीमोहिनीश्यामजीका नित्य निवास था। श्रीमोहिनीश्यामजीको सदा साथ लिये प्रिया-प्रियतमकी नित्य लीला अखण्डरूपसे चलती रहती थी। इस चिन्मय दिव्य लीला-रसपानमें निरत श्रीमोहिनीश्यामजीको क्षुधा-पिपासा, शीत-उष्ण, सुख-दुख, हास्य-क्रन्दनका अनुभव नहीं-के-बराबर, बहुत ही अल्प होता था। अतः परिवारवाले भी उन्हें जड़भरतवत् मानकर उनकी शरीरसेवाकी पूर्णतया उपेक्षा कर देते थे।

हाँ ! तो भगवद्विधान ही था कि उस दिवस उन्हें कुछ बाह्य होश था। वे छतसे नीचे उतरे और साधुको अतिशय प्यारसे पिछवाड़ेका दरवाजा खोलकर, अपने कमरेमें ले आये। उस साधुने अपनी सारी व्यथा इन्हें कह दी। साथ ही यह भी कह दिया कि उनकी पुत्री राधा उन्हें पीली-पोखरपर प्रतिदिन ही भिक्षाका आश्वासन एवं निमंत्रण दे गयी है। उसने कहा है कि मेरे बाबासौं कहियो, वे चिन्ता नहीं करैं, रसोईके छींकेपै थालीमें उन्हें सब रसोई बनी-बनाई मिल जाया करैगी। श्रीमोहिनीश्यामजी साधुकी बात सुनकर चकित थे। उनकी

एक सबसे छोटी 'राधा' बेटी अवश्य थी, किन्तु वह तो दिल्ली अपने श्वसुरालमें थी। वह दिल्लीसे कैसे बरसाने आकर इन साधु-महात्माको आश्वासन दे गयी, यह बात भी उनकी समझके परे थी। फिर उनके लिये तो नमकीन पक्की पूड़ी अवश्य भोजनार्थ रखी है, दाल-भात, ताजी रोटी-सब्जी सूने घरमें किसने बनाकर रखी है ? उनकी कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था। वे साधुके बताये अनुसार रसोईघरमें छींकेतक गये भी। उन्हें आश्चर्य हुआ कि सचमुच ही वहाँ एक थालीमें सब सामग्री ताजी बनी रखी है। अब तो वे ठीक समझ गये कि यह सब राधारानी, उनकी आराध्याकी करतूत है। जैसे ही उन्हें बोध हुआ कि साधु सचमुच ही श्रीराधारानीका कृपापात्र है, वे उसे स्वयं अपने हाथसे भोजन कराने लगे। थालीमें भोजन-सामग्री तो पर्याप्त थी ही। साथ ही वे उस साधुके पेटमें जहाँ-जहाँ असह्य दर्द होता था, अपना वरद हाथ फेरते रहे। आश्चर्य यह हुआ कि उसी दिनसे साधुके पेटका वह शूलकष्ट जाता रहा और श्रीमोहिनीश्यामजीके पेटमें कैंसरके सभी लक्षण प्रकट हो गये।

एक महासिद्ध सन्तके इस प्राकृत शरीरके अवसानकी यह एक अति अवसादमयी भूमिका बन गयी। पहले-पहल तो लोगोंने उनके इलाजकी उपेक्षा की, किन्तु फिर उन्हें इलाजके लिये दिल्ली ले जाया गया। दिल्लीमें ही उनके शरीरका अन्त हुआ।

मैं बहुत काल पश्चात् जब मोहिनीश्यामजीके पुत्रसे बरसानेमें मिला तो वह मेरे गले लगकर बहुत कालतक रोता रहा। उस समय माताजी भी दिवंगत हो चुकी थीं। मैंने उससे उस गुम्हारके स्वर्णदानकी बात पूछी। वह यही कह रहा था कि पिताजीकी मृत्युके पश्चात् माताजीने सम्पूर्ण ब्रजवासियोंका ब्रह्मभोज कराया, उसमें लाखों रुपया खर्च किया। उन्होंने अपना भी जीवित खर्च साथ-साथ ही किया। उसके पश्चात् वे तीर्थयात्रामें निकल गयीं। वहाँ भी उन्होंने सभी तीर्थोंमें दान-पुण्य देनेमें कसर नहीं की। वे जबतक जीवित रहीं, दान देती रहीं। गुम्हारसे ही सारी अर्थप्राप्ति उन्हें होती रही। किन्तु उनकी मृत्युके पश्चात् अब गुम्हार मुझे तो कुछ भी नहीं देता। मैंने उस बालकसे पूछा,—" पिताजीकी मृत्युके समय उन्होंने कोई उद्गार कहे अथवा कोई वक्तव्य दिया था ? " उसने उत्तरमें यही कहा कि वे दिल्ली ले जानेका उग्र विरोध करते रहे। वे यही कहते थे कि उन्हें इस खिड़कीसे दूर नहीं किया जाय

जहाँसे उन्हें राधारानीके निजमहलके सिंहपौरके दर्शन होते हैं। बीमारीके समय वे इस खिड़कीको खुला ही रखते थे। हाँ ! मृत्युके समय उन्हें कोई कष्ट नहीं था। आन्तरिक आह्लाद उनके रोम-रोमसे प्रकाशित हो रहा था। वे यही कहते थे कि राधारानी स्वयं हाथ पकड़कर मोहिनीसखीको अपने प्रियतमसे अभिसारके लिए ले जा रही हैं।

दिल्ली ले जानेपर और मृत्युके पूर्वतक वे ये ही शब्द प्रायः अस्फुट रीतिसे बोलते रहते थे। उनके मूल शब्द तो उनके पुत्रको स्मरण नहीं रहे थे, उसने जो भाव प्रकट किये उसका हिन्दी भाषामें रूपान्तर निम्नप्रकारसे लेखकने किया है। ये उक्तियाँ स्वयं श्रीराधारानीकी ही होंगी, ऐसा अनुमान है। —" ब्रजजीवन ! इधर देखो ! आज मूर्तिमती मोहिनीसखी तुम्हारे अभिसारके लिये समुपस्थित है। मेरे इस धाममें इसका नित्य निवास रहा है। रमणीसुलभ लज्जावश यह तुम्हारे सम्मुख एकाकी आ नहीं रही थी। अब तो इसे तुम्हारा वियोग असह्य हो रहा था। अतः सर्वांग विभूषितकर मैं इसे तुम्हारे समक्ष लायी हूँ। हे मेरे वनचन्द्र ! एक बार इसपर दृष्टि डालकर इसके श्रृंगारको सफल कर दो। देखो तो ! तुम्हारे लिये इसे मैंने कैसा सजाया है ! पुन्नाग पुष्पोंका अवतंस और माधवी कुसुमोंकी माला, चम्पककी कंचुकी और अरुण क्षौम परिधानोंसे विभूषित अद्भुत शोभाका विस्तार करती यह तुम्हें अर्पित है। स्वीकार कर लो, नाथ ! "

इन भावभरे शब्दोंको अपनी ग्राम्य ब्रजभाषामें बोलते, अस्फुट उच्चारण करते, महासिद्ध सन्त मोहिनीश्यामजी इस मायावी जगत्को त्यागकर नित्य लीलाविहारीकी चिन्मय रासस्थलीमें प्रवेश पा गये।

इसी ब्रजयात्रामें पू.गुरुदेवका सूक्ष्म जगत्के महासिद्ध दो और संतोंसे मिलन हुआ था। पू.गुरुदेव अपने निवासमें बिड़ला धर्मशालामें ही विश्राम कर रहे थे। कोई विक्षेप न हो अतः ठाकुर घनश्याम और रामसनेहीजी उनके द्वारपालकी तरह नियुक्त थे। शिशिर ऋतु थी, अतः दोनों धूप सेवन करते बाहर बैठे थे। अचानक ठाकुर घनश्यामको दिखा कि एक साधु पू. गुरुदेवके निवासके द्वारपर खड़े हैं। उनके लम्बे भूरे केश हैं जो पीठपर कमरतक लहरा रहे हैं और उनके कान्तिमय गौर शरीरपर मात्र एक कटिवस्त्र है। पू.गुरुदेवने अपना कक्षका द्वार उन्मुक्त कर रखा है और हाथ जोड़े उन

महात्माके सम्मुख खड़े हैं। ठाकुरने रामसनेहीजीसे पूछा –"ये साधु कौन हैं और कहाँसे पू. गुरुदेवके पास पहुँच गये ?" रामसनेहीजीको तो वे साधु दिखे नहीं। इधर यह वार्ता इन दोनोंमें परस्पर हो ही रही थी कि ठाकुर उन महात्माजीका परिचय प्राप्त करने अग्रसर हो गये, किन्तु तबतक वे साधु वहीं विलीन हो गये थे। ठाकुर दादाने जब पू.गुरुदेवसे उन महात्माजीके सम्बन्धमें जिज्ञासा की तो पू.गुरुदेवने यह उत्तर दिया कि भाई ! एक नहीं, अन्तरिक्षगामी दो महात्मा मुझसे मिलने आये थे। ये कुसुमसरोवरमें रहते हैं, परम सिद्ध हैं और तुम्हारा शुभ सौभाग्य था कि इनमेंसे एकका तुम्हें दर्शन हो गया।

उज्जैनमें महाकालके दर्शन एवं पूर्वजन्मकी स्मृति

मथुरासे चलकर तीर्थयात्राट्रेन ७ फरवरीको उज्जैन पहुँची। इस नगरको उज्जयिनी या अवन्तिका भी कहते हैं। यह भी उक्ति सर्वत्र प्रचलित है कि यह पृथ्वीका नाभिदेश है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें महाकाललिंग यहीं है। इक्यावन शक्तिपीठोंमें यहाँ एक पीठ है। यहाँ सतीका कूर्पर(कुहनी) गिरा था। रुद्रसागर सरोवरके पास हरसिद्धिदेवीका मन्दिर है। वहीं यह शक्तिपीठ है जिसमें मूर्तिके स्थानपर केहुनीकी ही पूजा होती है। द्वापरमें श्रीकृष्ण-बलराम यहीं महर्षि सान्दीपनिके आश्रममें अध्ययन करने आये थे। उज्जयिनी बहुत वैभवशालिनी रह चुकी है। महाराज विक्रमादित्यके समय उज्जयिनी भारतकी राजधानी थी। यह सप्तपुरियोंमें एक पुरी है। यहाँ बारह वर्षमें एक वार कुम्भ लगता है। मध्यरेलवेकी आगरा-उज्जैन लाइनसे यात्राट्रेन निरे प्रातः उज्जैन स्टेशनपर पहुँची। यद्यपि कड़ाकेकी शीत थी, फिर भी स्टेशनपर पू. पोद्दार महाराज और पू. गुरुदेवके स्वागतमें एक विशाल जनसमुदाय प्रतीक्षा कर रहा था। 'कल्याण' पत्रिका और धार्मिक पुस्तकोंकी आध्यात्मिक-निधिके प्रणेता यशस्वी भक्तराज पोद्दार महाराज उनके नगरमें आ रहे हैं, यह जानकर लोगोंका हृदय अपार श्रद्धासे भरा हुआ था। इस धर्म-विभूतिका स्वागत करनेका सबके हृदयमें अतिशय उत्साह था। लोगोंने अपने हाथोंमें ढोलक-मजीरे,

झाँझ-करताल ले रखे थे और यात्राट्रेनके आगमनकी प्रतीक्षामें नामसंकीर्तन कर रहे थे। हरिनाम-संकीर्तनकी ऊँची ध्वनिसे दूर-दूरका वातावरण मुखरित हो रहा था। यात्राट्रेनके स्टेशनपर पहुँचते ही पुष्पमालाएँ लेकर लोग श्रीपोद्दार महाराजके डिब्बेकी ओर दौड़ पड़े। श्रीपोद्दार महाराजने गाड़ीसे उतरते ही अति विनयपूर्वक हाथ जोड़े सभीका स्वागत किया।

पू.गुरुदेवकी तो श्रद्धाभिभूत भीड़को देखते ही प्रयाग स्टेशनवाली दशा हो गयी थी। उनके लिये तो सम्पूर्ण दृश्य ही कृष्णमय हो गया था। वे तो अपने आराध्य श्रीकृष्णकी प्रत्यक्ष अनुभूतिमें इस प्रकार तन्मय हो गये कि उनकी बुद्धि ही निर्णयरहित बन गयी। पू. गुरुदेव ऐसी सृष्टिमें पहुँच गये जहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, अपितु श्रीकृष्णकी ही सच्चिन्मयी अंग-ज्योति अनन्त सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र एवं अग्नि बनी प्रकाशित होती रहती है। जहाँ न देश है, न काल है, न दिवस है, न रात्रि है; जहाँ न जन्म है, न मरण है, न ही जहाँ संरक्षण है, वहाँ तो एकमेव नील नीरदद्युति प्रियतम श्यामसुन्दर-ही -श्यामसुन्दर भरे हैं। जहाँ दुःख-सुख, अन्धकार एवं प्रकाश, हानि एवं लाभ, विलय एवं विकास कुछ भी नहीं है, मात्र श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं। जहाँ काम-क्रोध, लोभ-मोह, हर्ष-शोक, दम्भ-दर्प-द्रोह, संतोष और क्षमा, विवेक, विनय, आदि सारे भाव ही श्रीकृष्ण-दर्शनमें विलय हो जाते हैं। जहाँ ग्रहण एवं दान, स्तुति एवं निन्दा, मान-अपमान, सुन्दर-वीभत्स, तिक्त एवं मधुर, विष एवं अमृत, पतित एवं उन्नत, निर्धन-धनवान, अज्ञ-ज्ञानवान, बद्ध एवं स्वतंत्र, मुक्त एवं सम्बद्ध, समग्र इदमित्थं दृश्य ही श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हो गया था। पू.गुरुदेवकी इस दर्शनसे जो दशा हुई, वह शरीरगत तो थी ही नहीं, मात्र मनोगत थी। उसे तो वही धन्य-भाग्य-जन अनुभव कर सकता था, जो पू. गुरुदेवके मनसे अपने मनका तादात्म्य कर पाता। ऐसा पात्र अधिकारी तो श्रीपोद्दार महाराजके अतिरिक्त अन्य कोई था नहीं। यदि इस दर्शनका विन्दुमात्र भी कहीं किसीके मन-मानसमें छलक पड़ता तो उसकी समग्र चेतना ही प्रवाहित हो उठती और अचिन्त्य लीलामहाशक्ति उसके सम्मुख ऐसे विलक्षण सौन्दर्यका सिन्धु उच्छलित कर देती जिसका कहीं ओर था न छोर।

ज्ञानी एवं योगीगण जिन्हें निर्विशेष ब्रह्मानन्दस्वरूप मानते हैं, दास्यरतिमें रुचि रखनेवालोंके लिये जो परम पुरुष परमेश्वर हैं, नन्द-यशोदादि वात्सल्यरस

निमग्न जनोंके लिये जो उनके बालक मात्र हैं, जिन्होंने यम-नियमका सतत साधनकर अपने चित्तको एकाग्र कर लिया है, जो निर्विकल्प समाधिमें स्थित हो चुके हैं – इस प्रकारके समाहित-चित्त योगी भी अनेक जन्मोंमें अपार साधन-क्लेश वरण करनेपर भी जिनकी चरणधूलि-कणिकाका स्पर्श नहीं प्राप्त करते; वे श्रीकृष्णचन्द्र आज पू. गुरुदेवके नयनोंमें इतने भर गये थे कि उन्हें उनके सिवा कुछ भी अन्य नहीं दिख रहा था।

पू.गुरुदेवकी भावमयी स्थितिका अन्य किसीको भी परिचय भले ही न हो, किन्तु पोद्दार महाराजको तो था ही । अतः उन्होंने इनका हाथ पकड़ रखा था। उपस्थित जन-समुदायने देखा कि हमारे सामने तो साक्षात् प्रेमावतार ही खड़े हैं। चारों ओरसे जन-समुदाय पुष्पवर्षा कर रहा था। उस दिवस इतनी पुष्पवर्षा हुई कि सारा उज्जैन स्टेशन और पू.गुरुदेवसहित पोद्दार महाराज अधिकांशतया पुष्पोंसे ढ़ँक गये।

सर्वत्र भक्ति-भावना परिव्याप्त थी। स्टेशनपर श्रीगोस्वामीजीने अपने परम सुरीले कण्ठसे प्रभु-प्रार्थना एवं सुन्दर भक्ति-भावभरे पदोंका गायन किया। इसके पश्चात् सभी यात्रीगण श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा सहित क्षिप्रामें स्नानके लिये पैदल ही चल पड़े। भगवन्नाम-संकीर्तनमें झूमते, मस्त हुए छः सौ यात्री उज्जैनकी सड़कोंमें भक्तिकी गंगा बहा रहे थे । झाँझ, मँजीरे एवं ढोलकोंके वादन सहित सर्वत्र नामध्वनि गुंजायमान हो रही थी। असंख्य दर्शनोत्सुक जन-समुदाय भक्तिभावमें उमड़ रहा था। लोग गली-गली, घर-धरसे उमड़े आ रहे थे। और इस भक्ति-सरितामें मिलते जा रहे थे। उज्जैनमें मानो नवीन भक्तिकुम्भका प्रारम्भ हो गया था। उज्जैन रेलवे स्टेशनसे शिप्रा नदी लगभग चार किलोमीटर दूर बहती है। संयोजकोंने कुछ दूरी तक तो श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेवको जनसमुदायके मध्य संकीर्तन करते चलने दिया, पश्चात् एक मोटरकारकी व्यवस्थाकर उन्हें वाहनसे शिप्रातट पहुँचा दिया गया।

शिप्रातटतक पहुँचते-पहुँचते तो पू.गुरुदेव और भी भावोद्दीपित हो उठे थे। पौराणिक उल्लेख है कि शिप्रा भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुई नदी है, किन्तु आज ता पू.गुरुदेवको यही अनुभव हो रहा था, मानो शिप्राके जलके कण-कणमें श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण प्रवाहित हो रहे हैं। पू.गुरुदेव अत्यधिक

समुल्लसित चित्तसे जलके कण-कणमें अपने आराध्यको देख अति उत्साहपूर्वक डुबकी लगाते। कभी वे अपने परमाराध्यको पकड़नेके उद्देश्यसे अपने दोनों हाथोंसे बहते जलको आलिंगित करनेकी चेष्टा करते हैं। उनके नेत्र प्रेमसे छल-छल कर रहे हैं। उनके अधरोंपर मन्द-मन्द मुसकान थी।

शिाप्रामें स्नान कर चुकनेके पश्चात् पू.गुरुदेवका आन्तरिक भगवदावेश कुछ शिथिल हुआ। उसका कारण यही प्रतीत होता है कि वहाँ बहुत स्त्रियाँ भी स्नान कर रही थीं । कहीं भीड़में किसीके वस्त्रसे भी उनका किंचित् भी संस्पर्श नहीं हो जाय, इस अपने कठोर नियमके प्रति जागरूकताने ही उनकी वृत्तिको प्राकृतावेशमें जकड़ दिया। जैसे ही पू.गुरुदेव शरीराध्यासी हुए उन्हें उज्जैनसे सम्बन्धित अपने पूर्वजन्मकी अति पुरातन स्मृति हो आयी। पू. गुरुदेवने अनेकों बार ऐसा उल्लेख किया है कि उन्हें अपने विगत चार जन्मोंकी स्मृति है। पू.गुरुदेवका एक जन्म इस उज्जैनके राजपरिवारमें तब हुआ था जब यहाँ भोजराज महाराज विक्रमादित्यका राज्य था। उस समय शिप्रा नदीका कैसा प्रवाह था और उसके सुन्दर घाटोंकी क्या शोभा थी, यह सभी दृश्य स्नान करते समय पू.गुरुदेवके सम्मुख ज्यों-के-त्यों प्रकट होगये थे।

शिप्रास्नानके पश्चात् सभी यात्री भगवान् महाकाल-मन्दिरमें दर्शनार्थ चल पड़े । महाकालमन्दिरका प्रांगण विशाल है। यह सामान्य भूमिकी सतहसे कुछ नीचा है। इस प्रांगणके मध्यमें मन्दिर है। इस मन्दिरमें दो खण्ड हैं। प्रांगणकी सतहके बराबर मन्दिरका ऊपरी खण्ड है। इसमें जो भगवान् शंकरकी लिंगमूर्ति है, उसे ओंकारेश्वर कहा जाता है। ओंकारेश्वरके ठीक नीचे, नीचेके खण्डमें महाकाल-लिंगमूर्ति प्रतिष्ठित है।

महाकालेश्वर लिंगमूर्ति विशाल है और चाँदीकी जलहरीमें नाग-परिवेष्टित है। इसके एक ओर गणेशजी, दूसरी ओर माता पार्वतीजी एवं तीसरी ओर स्वामिकार्त्तिक हैं। यहाँ एक घृतदीप और एक तैलदीप अखण्ड-ज्योतिके रूपमें प्रज्ज्वलित रहता है।

मन्दिरके ऊपर प्रांगणके दक्षिण भागमें अनेक मन्दिर हैं। इनमें अनादिकालेश्वर तथा वृद्धकालेश्वरके मन्दिर विशाल हैं। महाकालमन्दिरके नीचे सभामण्डप है और उसके नीचे कोटितीर्थ नामक सरोवर है। सरोवरके

आर्श्व-पार्श्वमें छोटी-छोटी छतरियाँ हैं।

पू.गुरुदेवने ज्योंही महाकालमन्दिरमें प्रवेश किया, उन्हें प्रस्तरलिंगके स्थानपर कर्पूर-सदृश गौरवर्ण मनोहर तेजोमय भगवान् शंकरके साक्षात् दर्शन हुए। वे भगवान् अपने सर्वांगोंमें सर्पोंको आभूषणकी तरह धारण किये थे और कटिमें बाघम्बर लपेटे थे। अक्षमाल, डमरू, त्रिशूल एवं मुण्ड धारण किये चतुर्भुज भगवान् शिवके भाल पर त्रिपुण्ड्र एवं अर्धशशि सुशोभित था। वे पिंगल जटाजूटधारी भगवान् सिंहचर्मका आसन बिछाये षोडशदल-पंकजपर भगवती पार्वती सहित विराजित थे। उन त्रिनेत्र भगवान्के पाँच मुख थे। भगवती गंगा उनके मस्तकसे प्रवाहित हो रही थी और अनेकों देवता, गन्धर्व, किंन्नर, भूत-प्रेत सभी उनकी स्तुति कर रहे थे। चतुर्दिक् शिव-शिव, हर-हर की ध्वनि उत्थित हो रही थी। पू.गुरुदेव साक्षात् अनुभव कर रहे थे कि जहाँ भगवान् शंकर विराजित हैं, वहाँ ऐसी विलक्षण चिन्मय स्वरूपानन्दमयी शान्तिकी स्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही है जिसमें बड़े-बड़े आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण भी उसके एक कणसे सिक्त होनेके लिये लालायित हो उठें। पू.गुरुदेवको ऐसा अनुभव हो रहा था कि यहाँका अणु-अणु, कण-कण **'यत्परो नास्ति'** को पूर्णतया प्रमाणित कर रहा था। पू.गुरुदेव भगवान् महाकालकी महिमा और कृपापर मुग्ध हो उठे थे। वे मन-ही-मन रोम-रोमसे उच्चारण कर रहे थे– कृपा शिव, कृपा शिव।

दिनमें क्योंकि श्रीपोद्दार महाराजको श्रीमहाकालके मन्दिरमें प्रवचनके लिये आना था, अतः उन्होंने संकेतसे पू.गुरुदेवको शीघ्र ही दर्शन कर निवासमें चलनेकी प्रेरणा की। पू. गुरुदेवकी चेतना ही निवासमें पहुँचकर ऐसी हो गयी मानो उन्हें किसी अमृतपूरके प्रवाहमें निमज्जित कर दिया गया हो

ॐकारेश्वरमें सीतारामदास ॐकारनाथजीसे मिलन

उज्जैनसे यात्रा इन्दौर पहुँची। डा.श्रीनीरजाकान्त चौधरी देवशर्मा वैदिक वाङ्मय एवं पुरातन साहित्यके उद्भट विद्वान् उन दिनों इन्दौर ही रहते थे। ये मात्र विद्वान् ही नहीं थे, अपितु उच्चकोटिके भगवद्भक्त भी थे। श्रीपोद्दारजी जब यात्राके साथ इन्दौर आये तो उनकी श्रीचौधरीसे मिलनेकी इच्छा तीव्र हो उठी। श्रीपोद्दारजीके पास उनका जो पता था, उसीके सहारे पूछते-पूछते वे उनके घर पहुँचे। चौधरीजी तो अकस्मात् पोद्दारजीको अपने गृह आया देख हतप्रभ हो गये। उनका रोम-रोम एक अभिनव विशुद्ध स्नेहावेशसे परिपूरित हो उठा। श्रीपोद्दारजीको उन्होंने अपने स्निग्ध हृदयसे सटा लिया। उनके नेत्रोंमें पहले गीलापन आया, कण्ठ भर आया और दो-चार क्षणोंमें ही चौधरी अपनेको संवरित नहीं रख सके। अश्रुधारा उनके वयोवृद्ध आननके कपोलोंसे ढुलकती पोद्दारजीके मस्तकका अभिषेक करने लगी। श्रीपोद्दारजी वयोवृद्ध चौधरीजीके चरणोंमें अवनत हो चुके थे। श्रीचौधरीजी स्नेहावेशसे अर्ध-विक्षिप्त-से हो उठे थे। जो लोग पोद्दारजीके साथ थे, उन्हें यही लग रहा था कि चौधरीजी उमड़ते आनन्दके आवेगमें अपने शरीरका भान ही खो चुके हैं। कुछ काल तक दोनों सन्तोंका मिलन-जन्य अभूतपूर्व प्रेमावेश साथ-आये लोग देखते रहे। कुछ काल पश्चात् जब श्रीचौधरीजीका भाव कुछ शिथिल हुआ तो उन्होंने श्रीपोद्दार महाराजसे निवेदन किया कि बंगभूमिके गौरव अनन्तश्रीविभूषित पू. सीतारामदास ॐकारनाथजी महाराज इस समय ॐकारेश्वर तीर्थमें ही हैं। वे अपने निर्जन आश्रममें एकान्त तपमें संलग्न हैं उनके दर्शनार्थ अवश्य चलना चाहिये।

तीर्थयात्राट्रेनके निर्धारित स्थलोंमें ॐकारेश्वर तो था ही। उज्जैनसे सभी तीर्थयात्रियोंको इन्दौर होकर ॐकारेश्वर जाना ही था। यहाँ ज्योतिर्लिंगोंमें दो ज्योतिर्लिंग हैं – ॐकारेश्वर एवं अमलेश्वर । इन दोनोंको वैसे गणनामें तो एक ही माना जाता है, किन्तु दर्शनार्थियोंको दोनों लिंगोंके ही दर्शन करने चाहिये। नर्मदाके एक किनारे अमलेश्वर महादेवका मन्दिर है एवं दूसरे

किनारेपर मान्धाता टापूपर ॐकारेश्वर लिंग है। इस द्वीपपर महाराज मान्धाता ने भगवान् शंकरकी उपासना की थी। टापूका क्षेत्रफल लगभग एक वर्गमील है। यह एक पहाड़ी है। इसके एक ओर नर्मदाजी बहती हैं और दूसरी ओर नर्मदाजीकी ही एक धारा बहती है, जिसे लोग कावेरी कहते हैं। द्वीपके अन्तमें यह कावेरी धारा नर्मदामें मिल जाती है। इस मान्धाता द्वीपका आकार प्रणवसे मिलता जुलता है।

कहा जाता है विन्ध्यपर्वत अपने आधिदैवतरूपसे यहाँ पार्थिव लिंगके रूपमें और ॐकार-यंत्रके रूपमें, दोनों रूपोंमें, भगवान् शंकर– अपने इष्टदेवकी आराधना किया करता था। आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् जब उसके सम्मुख प्रकट हुए तब विन्ध्यने भगवान्‌से यहीं दिव्यरूपमें नित्य स्थित रहनेका वरदान माँगा। भगवान् शंकर तभीसे यहाँ ज्योतिर्लिंगरूपमें स्थित हैं। ॐकार यंत्रके रूपमें तो उनका इस ॐकारके ही आकारकी पहाड़ीपर ॐकारलिंग है और पार्थिव लिंगके रूपमें अमलेश्वर ज्योतिर्लिंग है।

श्रीपोद्दार महाराजके साथ ॐकारेश्वरतक श्रीनीरजाकान्त चौधरी भी आये थे। अतः सभीने नर्मदा स्नानकर पहले अमलेश्वर महादेवका दर्शन किया। पू.गुरुदेवने अमलेश्वर ज्योतिर्लिंगका श्रीगोस्वामीजीसे विशेष विधिपूर्वक पूजन कराया। वहींसे नौका द्वारा नर्मदाजी पार करके सभी लोग मान्धाता द्वीप पहुँचे। यहाँ घाटके पास नर्मदाजीमें कोटितीर्थ अथवा चक्रतीर्थ माना जाता है। यहाँ पुनः स्नान करके यात्री सीढियोंसे ऊपर चढ़कर ॐकारेश्वर मन्दिर पहुँचता है। श्रीॐकारेश्वर मन्दिरकी मूर्त्ति अनगढ है। यह मन्दिरके शिखरके ठीक नीचे नहीं होकर एक ओर हटकर है। मूर्त्तिके चारों ओर जल भरा रहता है। मन्दिरका द्वार छोटा है । ॐकारेश्वर मन्दिरमें सीढ़ियाँ चढ़कर दूसरी मंजिलपर जानेपर महाकालेश्वरलिंग एवं तीसरी मंजिलपर वैद्यनाथेश्वरलिंग है। पू.गुरुदेवने यहाँ भी श्रीगोस्वामीजीसे सविधि सांगोपांग पूजा करायी।

तीर्थयात्री लोग जब स्नान-पूजादिमें निरत थे, श्रीपोद्दार महाराज, पू. गुरुदेव एवं चौधरीजीको लेकर महासिद्ध सन्त पू.श्रीसीतारामदास ॐकारनाथजी के दर्शनार्थ चल पड़े। श्रीसीतारामदासजीका आश्रम मान्धाता पहाड़ीपर ही ॐकारेश्वर मन्दिरसे थोड़ी दूरीपर है। वह परम निर्जन स्थलपर है।

श्रीपोद्दारजी पू.गुरुदेवके सहित उस आश्रममें ही उनसे मिलने पहुँचे।

उस समय वे दीर्घावधिका मौन लिये हुए थे। वे लगातार दिनमें दस-बारह घण्टे समाधिमें ही डूबे रहते थे। यह समाधि ही उनका मौन कहलाती थी। इतने एकान्तनिष्ठ महात्माका सर्वजनसमुदायसे मिलने-जुलनेका तो प्रश्न ही नहीं था।

पू.गुरुदेव एवं पोद्दार महाराज जब उनके निकट पहुँचे तो वे सचमुच ही बाह्यज्ञानरहित अवस्थामें डूबे हुए थे। बहुत कालतक उनके शिष्योंने जब 'जय सीताराम-सीताराम'की नामध्वनि की तो वे किंचित् प्राकृत जगत्को पकड़ पाये। उस समय उनके एक परम अनुग्रह-प्राप्त शिष्यने उनके कानमें मुख लगाकर उन्हें श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके आगमनका समाचार दिया। श्रीराधाबाबा एवं पोद्दार महाराजका नाम सुनते ही श्रीसीतारामदासजीको विलक्षण'कम्प' नामक सात्विक भावोदय हो उठा। कुछ कालतक तो वे झंझावातमें जैसे पीपलका पत्ता काँपता है, कम्पित होते रहे। उसके पश्चात् धीरे-धीरे उन्होंने अपने नेत्र ऊँचे किये। पू.गुरुदेव और पोद्दार महाराजको देखकर वे किंचित् मुसकाये। ओह ! महासिद्ध सन्तोंकी कैसी लीला है। श्रीसीतारामदासजीने पू.पोद्दार महाराजमें क्या देखा, इसे तो उनका सिद्ध मन ही जाने। हाँ ! बाह्य खड़े लोगोंने यही देखा कि श्रीसीतारामदासजी पू.पोद्दारजीके स्वागतमें उठना चाह रहे थे, परन्तु अपने आसनसे उठ नहीं पा रहे थे। वे कुछ बोलना चाह रहे थे, किन्तु भीतरकी चित्तकी विलक्षण आनन्दमयी स्थिति उन्हें गूँगा किये थी। शब्द उनके मुखसे बाहर फूट नहीं रहे थे। वे नयन उठाकर श्रीपोद्दारजीको देखना चाह रहे थे किन्तु उनके नयन भीतरी मनके चिन्मयाविष्ट रहनेके कारण बाह्य दृश्य देखनेमें असमर्थ हो रहे थे। उन्होंने किसी प्रकार अपनी अंजलिमें कुछ तुलसीदल एवं एक पुष्पमाला, जो उनके आराध्य भगवान्को पहनाई हुई थी, उठायी और श्रीपोद्दारजीकी अंजलिमें समर्पित कर दी। बस, इतनी ही क्रिया उनका बाह्य शरीर किसी प्रकार कर पाया और वे पुनः समाधिके विलक्षण सच्चिदानन्दमय सोपानोंपर चढ़गये। उनके पास रहनेवाले एक दो सेवक सीताराम-सीताराम, सीताराम-सीताराम नामध्वनि करने लगे। पुनः उन्हें कुछ कालतक उसी प्रकार परम सात्विक कम्पोदय होता रहा और फिर उनका बाह्यावेश जाता रहा।

तीर्थयात्रासे लौटकर पू.गुरुदेव जब लेखकके सम्मुख अपनी यात्राके

विलक्षण अनुभव कभी-कभी कृपाकर सुनाते थे तो उन्होंने कहा था कि उनको जब श्रीपोद्दार महाराजके साथ ॐकारेश्वरमें श्रीसीतारामदासजी ॐकारनाथजीके दर्शन हुए थे, उस समय उन्हें उनके रूपमें साक्षात् वनवासी वेषमें श्रीसीतारामजीके ही दर्शन हुए थे। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि श्रीसीतारामका युगल स्वरूप ही इन महासिद्ध सन्तके रूपमें जगत्में महामंगलमयताकी अशेष धारा प्रवाहित कर रहा है।

उदयपुर एवं चित्तौड़में पू. गुरुदेव

खँडवासे तीर्थयात्राट्रेन सीधी चित्तौड़गढ़ पहुँची । चित्तौड़गढ़ भारतवर्षका महान् सांस्कृतिक तीर्थ है। पू. गुरुदेव कह रहे थे कि त्याग एवं बलिदानके जो शुद्ध परमाणु उन्हें चित्तौड़के वातावरणमें दृष्टिगोचर हुए, वैसे राजस्थानकी तो बात ही क्या, समग्र भारतमें कहीं देखनेको नहीं मिले। चित्तौड़की भूमिका कण-कण पूर्ण पवित्र एवं बलिदानी है। पू.गुरुदेव यहाँके चार ऐतिहासिक स्थानोंमें बहुत ही उद्दीपित हो उठे। प्रथम स्थान तो चित्तौड़का दुर्गद्वार ही था जहाँ जयमल और फत्ताके बलिदान-स्मारकस्थल हैं। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि भक्ति चाहे भगवान्के प्रति हो, अथवा देश किंवा राज्यके प्रति; भक्ति तो भक्ति ही है; शुद्ध त्यागमयी सर्वोत्सर्गमूलक भक्ति श्रीकृष्ण जिस किसीके भी हृदयमें देखते हैं, वे उसका आदर करने हेतु प्रकट हो ही जाते हैं। हमारी दृष्टिमें राजा, देश, भगवान् तीन वस्तुएँ प्रथक् हो सकती हैं, किन्तु भगवान्की दृष्टिमें तो सब कुछ वे-ही-वे हैं, अतः भक्तिका शुद्ध भाव जहाँ भी, जिसके भी प्रति किसीमें प्रकट हुआ कि उसके भोक्ता बने श्रीकृष्ण स्वयंको ही ऋणी मान लेते हैं।

पू.गुरुदेवको चित्तोड़गढ़में सर्वाधिक उद्दीपित करनेवाला द्वितीय स्थान था –पन्नाधायका महल। पन्नाधायके रूपमें उन्हें माँ यशोदाकी ही स्फूर्ति होती रही। उनकी चालमें उन्मत्तता आ गयी। वे अपने प्रियतम श्रीकृष्णके सम्मुख भावोन्मत्त हुए मचल उठे –'प्राणवल्लभ ! तूने पूतना-जैसी विषपायिनीको मातृगति दी है, यह परमोत्सर्गमयी धाय भले ही तेरे प्रति समर्पित नहीं हो पायी हो, किन्तु इसका समर्पण तो था सौ-टंच ही। जगज्जननी महावात्सल्यवती

यशोदा मैया भी तो तेरी धाय ही थी। जिस वात्सल्यभावसे उन्होंने अपनी कोखजात पुत्रीका वलिदान देकर भी तुम्हारा पालन किया, ठीक उसी प्रकार अपने कोखजात पुत्रका बलिदान देकर इस पन्नाधाय द्वारा एक राजकुमारको वात्सल्यदान देना क्या उसकी तुलनामें भावदृष्टिसे न्यून है ? परमार्थकी उत्कृष्टताको यदि एक ओर रख दें और विशुद्ध भावराशिका मूल्यांकन किया जाय तो पन्नाधाय भी उसी उत्कृष्ट भावराशिकी छायाकी संग्राहक होगी ही। पराये राजकुमारकी रक्षार्थ अपने निजके कोखजात पुत्रका बलिदान देकर उसने चिन्मय जगत्की वात्सल्य-धाराका संस्पर्श तो किया ही है ! प्रियतम ! दयानिधि ! फिर वह तुम्हारी हेतुरहित कृपाकी अधिकारिणी क्यों नहीं हो ?'

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि पन्नाधायको लेकर उनका बहुत दिनोंतक श्रीकृष्णसे विवाद चलता रहा; अन्ततः श्रीकृष्णको उनका आग्रह मानना ही पड़ा। पन्नाधाय भगवान् श्रीकृष्णके नित्य लीलालोकमें मातृगति पा ही गयी। पू. गुरुदेवके दृष्टिपथमें भगवती योगमायाने यह दृश्य उपस्थित कर दिया कि "पद्मरागरचित पीढ़ेपर ब्रजरानी यशोदा बैठी हैं, उनके निकट अपने श्याम-गौर कमनीय अंगोंसे सौन्दर्य बिखेरते हुए श्रीकृष्णचन्द्र एवं बलराम प्रांगणमें खेल रहे हैं। उनका यह खेल एक खंभकी ओटमें खड़ी एक दासी (पन्नाधाय) देख रही है। चंचल श्रीकृष्णचन्द्र एवं बलरामकी तो दिनचर्या ही है, निरन्तर खेलना; तथा उस दासी(पन्ना)का भी एक ही कार्यक्रम रहा है—अनुराग-सूत्रमें बँधी-बँधी निरन्तर इन चपल श्याम-गौर आभीर राजकुमारोंकी सँभाल वह करती रहे, इनकी त्रिभुवन-मनमोहिनी शोभा देख-देखकर अपना तन-मन न्यौछावर करती रहे।

पू.गुरुदेवके चित्तको चिन्मय भावालोड़नमें डुबानेवाला तीसरा स्थान था —वह जौहरस्थल जहाँ महारानी पद्मिनीके नेतृत्वमें हँसते-हँसते बत्तीस हजार सती ललनाओंने धधकती अग्निज्वालाओंमें अपने जीवनका उत्सर्ग कर दिया था। भगवती अघटन-घटना'-पटीयसी योगमायाने उनकी दृष्टिके सम्मुख यह समग्र ऐतिहासिक घटना ज्यों-की-त्यों व्यक्त कर दी, जो सैकड़ों वर्ष पूर्व घटित हुई थी और इतिहासके गर्भमें समा गयी थी। पू.गुरुदेवके तपोपूत मनमें विशुद्ध सात्विक करुणाका ऐसा उन्मादी स्रोत उद्वेलित हुआ कि वे अपने प्राणाराध्य जीवनसर्वस्व प्रियतम श्रीकृष्णसे झगड़ ही पड़े। । " अनुसूया-जैसी

इन सतियोंपर तुम हे प्राणपति, यदि कृपा नहीं करोगे, तो इनका आदर कौन करेगा ? इन सभी पावन स्त्रियोंका अनादिकालीन माया-भ्रम तुम निवारण करो, निश्चय ही करो और इसी क्षण करो। वे प्रीति-हठ कर बैठे थे।श्रीकृष्ण हँसते हुए-से उनसे बोल उठे– "हे मुण्डितकेश साधु महाराज ! तुम्हारी बलिहारी है। मेरी अनन्त कृपाशक्तिका प्रवाह इसी क्षण सर्वत्र बहा दो न ! और फिर रसाविष्ट स्वरमें अतिशय प्रीतिमें भरकर कह उठे – "प्राणेश्वरी ! मैं तो सदा-सदासे तेरी चरणरजका किंकर हूँ, तुम्हारी जैसी रुचि हो, वही विधान करो न ! हे मंगलमयी ! तेरी रुचि ही में तो मेरी पूरी रुचि है।"

पू.गुरुदेवने स्पष्ट-स्पष्ट प्रत्यक्ष देखा –"वहाँउस जौहर-कुण्डमें जलीं असंख्य सती स्त्रियोंके अंगोंका दुर्धर्ष तेज असंख्य कोटि मार्त्तण्डके समान, एक-लक्ष-दल-समन्वित परम दिव्य चिन्मय पद्मके ऊपर आरूढ हो गया है। और तब वह विचित्र पद्म आकाशमें स्थिर हो गया है। वहीं उसी ज्योतिपुञ्ज पद्मके पार्श्वमें ही व्यक्त हुए हैं – महामरकत-द्युति श्रीकृष्ण ! वह ज्योतिमय पद्म तब मिल जाता है उन महामरकत-द्युतिमें । पू.गुरुदेवकी तो एक अनिर्वचनीय अवस्था हो गयी थी। उनका शरीर अपने प्रियतमके प्रेमावेशमें काँपने लगता है। वे मरकत-द्युति श्रीकृष्ण अत्यन्त निकट आकर उनसे अति प्रेमभरे स्वरोंमें बोल उठते हैं –"प्राणेश्वरी ! मेरा सब खेल तुम्हारी रुचिके अनुरूप हो गया न ? " पू.गुरुदेव विस्फारित नेत्रोंसे अपने प्रियतमकी ओर देखते रह जाते हैं, कुछ भी उत्तर नहीं दे पाते। पू. गुरुदेवकी अब खड़े रहनेकी सामर्थ्य भी नहीं रहती । वे उस जौहर-भूमिमें धम्म-से बैठ जाते हैं। फिर तो प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी युगल भुजाओंको उनकी ग्रीवामें डालकर उनके सम्मुख ही मन्द-मन्द मुसकाने लगते हैं। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि प्रियतम प्राणवल्लभके अरुण अधरोंपर यह हँसी उनकी "साधुबाबा.. .." कहकर यह मेरा विनोद उड़ानेकी भंगिमा, वस्तुतः उनकी स्वभावसुलभ क्रिया नहीं थी। यह तो उनकी अघटन-घटना-पटीयसी योगमायाशक्तिका विलास था जो मेरी रुचिपर अपनी अनन्त कृपाका मुझे दान कर देनेके निमित्त इस समय मेरे प्राणपतिके अधरोंमे प्रकट हुई थीं और उनके अन्तरालसे बोल और मुसका रही थीं।

पू.गुरुदेवको रसोच्छलित करनेवाला चौथा स्थल था – चित्तौड़गढ़में महलमें बना मीराबाईका श्रीगिरिधर गोपालका मन्दिर। यह वही मन्दिर था,

जहाँ मीराने राणाके द्वारा भेजा गया विषका प्याला तुलसीदल डालकर भगवान्‌को समर्पित कर दिया था और वह अमृत हो गया था। इसी चित्तौड़में भक्तरानी कर्णावतीका वह निवास भी था जिसके उपवनमें उसे मार डालनेके लिये राजा मानसिंहकी योजनासे शेर छोड़ा गया था और रानी कर्णावतीने उस शेरकी नृसिंहदेवके रूपमें पूजा की थी।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि दीवानी मीराबाईके सम्पूर्ण महलमें ही ऐसी भक्ति-विह्वलता और भाव-विभोरता भरी थी कि मुझे यही अनुभव हो रहा था कि मैं मानो नवपल्लवोंसे परिशोभित वृन्दाकाननमें ही आ गया था। इस दिव्यातिदिव्य मन्दिरमें मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी किशोरमूर्ति थी। चित्तौड़गढ़के प्रशासनिक अधिकारीसे पू.गुरुदेवने प्रश्न किया कि क्या ये ही श्रीमीराबाईके परमाराध्य गिरिधरगोपाल हैं ? उस समय उन प्रशासकीय अधिकारीने पू.गुरुदेवको यही बतलाया कि भक्तिमती मीराबाई जिनकी उपासना करती थीं , वे विग्रह तो वस्तुतः उदयपुरके राजमहलमें हैं। वे विग्रह श्रीराणापरिवारकी निजी सम्पत्ति हैं। हाँ ! हो सकता है कि यदि आप लोग अनुमति लें तो आपको उनके भी दर्शन मिल जायें।

इस समय पू.गुरुदेवको श्रीबाँकेबिहारी भटनागर नामक उन सन्तकी भी स्मृति हो आयी जिन्हें बृन्दावनमें भक्तिमती मीराके प्रत्यक्ष दर्शन होते थे। श्रीबाँकेबिहारीजीने जब मीराबाईसे पोद्दार महाराजकी आध्यात्मिक स्थितिके सम्बन्धमें प्रश्न पूछा तो मीराबाईने उनसे यही कहा था कि श्रीपोद्दारजीका सूक्ष्म शरीर सर्वथा सर्वांशमें प्रियाजी राधारानीका स्वरूप हो गया है।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि शताधिक वर्ष हो गये किन्तु भक्तिकी निर्मल तरंगें चित्तौड़के धरातलको अबतक प्लावित कर रही हैं। भक्तिकी विलक्षण महिमा कैसी विशुद्ध, अगाध एवं अपरिसीम है !

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज यात्राट्रेनमें चित्तौड़गढ़से उदयपुर जाने ही वाले थे। दूसरे दिवस उनका मुकाम उदयपुर ही था। प्रशासकीय अधिकारियोंके सौहार्द एवं सहयोगसे बात बन गयी । श्रीपोद्दार महाराजके साथ पू.गुरुदेव उदयपुरके राजमहलमें श्रीविग्रहके दर्शनार्थ पहुँचे। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी एवं कुछ और लोग भी उनके साथ थे। ओह ! पू.गुरुदेवकी तो उस परम आकर्षक विग्रहको देखते ही

दूसरी ही दशा हो गयी थी। उनके सम्मुख तो वह श्रीविग्रह था ही नहीं, एक अभिनव रसमाधुरीसे पू.गुरुदेवके मन एवं इन्द्रियोंको आप्लावित करते खड़े थे साक्षात् नीलसुन्दर, उनके प्राणाराध्य । पू.गुरुदेवके स्मृतिपटलपर मीराबाईकी अनेक पद-रचनाओंकी पंक्तियाँ उभर आयीं ।

मोहन प्यारा आज्यो म्हारै देस।।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस ।
कहो कसूँभी सारी पहराँ, कहो तो भगवा भेस ।
आवाँ आवाँ कह गया प्रीतम, कर गया कौल अनेक ।
गिणताँ- गिणताँ घिस गयी म्हारी आँगलियाँ री रेख ।।

यद्यपि श्रीविग्रह छोटी आकृतिमें था, किन्तु पू.गुरुदेवको उस श्रीविग्रहकी विशाल आँखें नवकमलके समान दिख रही थीं। पू.गुरुदेवके नेत्रोंकी पलकें स्थिर थीं और एक परम मनोहर छविने उन्हें पूर्णरूपेण मुग्ध कर लिया था। यही दशा श्रीपोद्दार महाराजकी थी।

"ओह ! बिम्बफलके सदृश अधर हैं, उनपर मन्द मुसकान छायी है। सजल जलदके-से अंग हैं, कटिपर अत्यंत सुन्दर पीताम्बर राजित है। अहा ! ये सचल भी हैं, चिन्मय हैं, मात्र अचल मूर्त्ति नहीं हैं। मधुर सुन्दर मतवाली झूमती इनकी चाल है। चरणोंमें मञ्जीर एवं नूपुर हैं, नवरत्न-काञ्ची-विभूषित कटिदेश है। काञ्चीसे रुनझुन-रुनझुन शब्द हो रहा है। गलेमें सुन्दर वनमाला है। पूर्ण शशधर-जैसे सुन्दर मुखपर कुञ्चित केश-कलाप सुशोभित है। यह कुन्तलराशि ऐसी प्रतीत होती है मानो असंख्य कृष्ण-भ्रमर एक मनोहर नील अरविन्दपर टूट पड़े हों।"

पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव दोनोंके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु ढलकने लगे। वे अपने-अपने आराध्यकी छवि उस श्रीविग्रहमें निरखते भावविभोर थे। उस श्रीविग्रहके दर्शनसे उनका मन भरता ही नहीं था। बार-बार जैसे वह विग्रह उन्हें समाकर्षित कर उनका मन-चित्त-सर्वस्व जैसे आकर्षित कर रहा हो।

इस प्रकार पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज अपने-अपने भावसिन्धुमें लहराते भरे-नयन उस श्रीविग्रहसे विदा ले रहे थे। उसी समय इन दोनों विभूतियोंको राजमहलके अन्तःपुरमें पधारनेका निमन्त्रण मिला।

श्रीपोद्दार महाराजका बीकानेर-राजमाता श्रीमती सुदर्शनादेवीजीसे तो

राखीबन्द धर्मभाईका नाता था, किन्तु उदयपुर राज्यपरिवारसे उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। श्रीराणावंशकी वन्दनीय माता-बहिनोंकी ओरसे यह अनुरोध प्रकट किया गया कि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजका आशीर्वाद उन्हें अवश्य-अवश्य प्राप्त हो। पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दारजी भीतर राजमहलमें गये। महारानीजीका आग्रह था कि श्रीराधाबाबा एवं पोद्दारजी उनके यहाँ दूध, फल, मेवा आदि कुछ अवश्य ग्रहण करें। पू.गुरुदेव तो मात्र एक बार ही भिक्षा करते थे और अभी तो उनकी दैनिक अर्चा ही नहीं हुई थी। वे तो त्वरामें सीधे श्रीविग्रहके दर्शनार्थ ट्रेनसे चले आये थे। राजपरिवारका अतिशय आग्रह देखकर श्रीपोद्दार महाराजने थोड़ी मेवा अवश्य जेबमें डाल ली एवं पू.गुरुदेव की भिक्षाके लिये फल अवश्य बँधवाकर उनके द्वारा भेजे गये।

उदयपुरके पास ही श्रीनाथद्वारा है। उदयपुरसे सीधे नाथद्वारा ही जानेकी योजना थी । वहीं भगवान् श्रीनाथजीके दर्शनोपरान्त पू.गुरुदेवको भिक्षा भी करनी थी । उनके साथ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी वहीं जाकर अपनी आवश्यक पूजा-अर्चा कर भगवत्प्रसाद पाने वाले थे। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी आदि अनेक वैष्णव भी उनके साथ वहीं अपनी-अपनी मर्यादा एवं आचारके साथ भगवत्प्रसाद लेनेवाले थे। अतः श्रीपोद्दार महाराज एवं सभी लोग वहाँसे मोटरगाड़ियोंमें नाथद्वारा प्रस्थान कर गये।

कृपावतार श्रीनाथजी

कृपावतार श्रीनाथजी

बात सन् १९५५ ई.की है। विगत अनेक वर्षोंसे यह मेरा नियम ही था कि लगभग रात्रिको तीन बजेसे मैं पू.गुरुदेवकी कुटिया (निवास)पर आकर उन्हें ब्रजरसके उनके संचयित 'पद' गायनकर सुनाया करता था। पू.गुरुदेवने मुझे एक तानपूरा मँगा दिया था और उसीके स्वरमें स्वर मिलाकर प्रतिदिन ही पद-संकीर्तन गायन होता था। पू. गुरुदेव तो अपनी कुटियाके भीतर ही मछहरी लगाकर लेटे रहते थे, उनकी कुटीका द्वार उढ़का रहता था, और बाहर एक काष्टकी चौकीपर मेरा गायन चलता था। यह गायन लगभग ढाई-तीन घण्टे अनवरत होता था, और पू.गुरुदेवकी कृपासे ऐसा आनन्द आता था कि काल क्षणोंमें ही व्यतीत हो जाता था। हाँ ! इस पद-गायनमें एक अष्टछापके पदकी मैं प्रायः प्रतिदिन ही आवृत्ति किया करता था। चतुर्भुजदासजी रचित इस पदका माहात्म्य है कि यदि कोई प्रति दिवस एक वर्ष पर्यन्त इसकी आवृत्ति करे, तो उसे भगवान् श्रीनाथजीके दर्शनोंका सौभाग्य अवश्य मिलता है।

कुछ दिनों पूर्व ही मुझे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने, उन्हें एक रात्रि हुए श्रीनाथजीके दर्शनोंका प्रसंग सुनाया था।उस रात्रि उन्हें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी भी एक हृष्ट-पुष्ट शुभ्रवर्णकी धेनुके सहित प्रत्यक्ष दिखे थे। वह प्रसंग सुनकर मेरे भावुक मनने श्रीनाथजीके दर्शनोंका संकल्प सँजो लिया था। पू.गुरुदेवने जब मेरे सम्मुख श्रीनाथजीकी शोभा, उनके मुखारविन्द, उनकी अंग-भंगिमा, उनके स्वरूप-माधुर्यका प्रत्यक्ष देखा विवरण सुनाया तो मुझे विवश होकर उनके सम्मुख यह स्वीकार करना पड़ा कि मैं तो अपने जीवनकालमें कभी श्रीनाथजीके दर्शनार्थ नाथद्वारा गया ही नहीं, मैं कैसे उनके अनुभवको सत्यापित करूँ ?

हाँ ! उस दिवस अवश्य मुझे यह लगन लग गयी थी कि सर्वसमर्थ श्रीनाथजी ही ऐसा संयोग संघटित करदें जिससे मेरा गुरुदेवसे शरीरसंग छूटे भी नहीं और श्रीनाथजीके दर्शन भी हो जावें। और इसी संकल्पको लेकर मैंने प्रति दिवस ही पू.गुरुदेवके सम्मुख इस अष्टछापके चतुर्भुजदासजी-रचित पद-गायनका नियम ले लिया था। एक और विलक्षण बात यह हुई कि अबतक पू.गुरुदेवने भी श्रीनाथजीके विग्रहका दर्शन नहीं किया था। उन्हें जब श्रीनाथजी

ने मानसिक रूपसे अपना स्वरूप दर्शन कराया तो पू. गुरुदेव अपनी अनुभूतिका मिलान किसी श्रीनाथजीके विग्रहके प्रत्यक्षदर्शीसे करवाना चाहते थे। उन दिनों ऐसा कोई श्रीनाथजीके विग्रहका प्रत्यक्षदर्शी वहाँ था भी नहीं, जो पू. गुरुदेवकी सूक्ष्म अनुभूतियोंकी अपने प्रत्यक्ष दर्शनसे परिपुष्टि कर सके। अतः पू. गुरुदेवने भी मेरे द्वारा संकेतित इस चतुर्भुजदास रचित पदका पाठ चुपचाप मुझे बिना कहे ही स्वयं भी प्रारंभ कर दिया। उनकी भावना इतनी ही थी कि इस पाठसे श्रीपोद्दार महाराजका श्रीनाथद्वारा जानेका कोई संयोग संघटित हो जाय तो वे भी श्रीनाथजीके स्वरूपका दर्शनकर अपनी अनुभूतिको स्वयं सत्यापित कर लें।

यह अष्टछापका पद निम्नलिखित हैः—

गोवर्धनवासी साँवरे हो लाल ! तुम बिन रह्यौ न जाय ।
ब्रजराज लड़ैते लाडिले हो लाल! तुम बिन रह्यौ न जाय ।
बंक चितै मुसकायकै हो लाल ! सुन्दर वदन दिखाय ।
लोचन तड़पैं मीन ज्यौं लाल ! पल-छिन कल्प बिहाय ।।
सप्तक सुर बंधान सौं लाल ! गिरि चढ गैयाँ बुलाय ।
गाय बुलाई धूमरी नेक ऊँची टेर सुनाय ।।
दृष्टि परे जा दिवस तैं लाल ! तब तैं रुचै न आन ।
रजनी नींद न आवई मोहे बिसर्यो भोजन-पान ।।
दरसनकौं नयना तपैं लाल ! वचन सुनन कों कान ।
मिलिबे कौं हियरा तपै , मेरे जीके जीवन प्रान ।।
पूरण ससिमुख देखि कैं लाल! चित चौंट्यौ वाही ओर ।
रूप सुधारस पान कैं लाल ! सादर कुमुद चकोर ।।
मन अभिलाषा है रही लाल ! लगत न नयन निमेष ।
इकटक देखूँ भाँवते ! प्यारो नागर नटवर भेष ।।
लोकलाज कुल वेदकी लाल ! छाँड्यौ सकल विवेक ।
कमल कली रवि ज्यौं बढै लाल! छिन-छिन प्रीति विशेष ।।
कोटिक मन्मथ वारने लाल ! देखत डगमगी चाल ।
युवती जन मन फन्दना लाल ! अम्बुज नयन विशाल ।।
कुञ्जभवन क्रीड़ा करौ लाल! सुख निधि मदनगोपाल ।
हम श्रीबृन्दावन मालती तुम भोगी भ्रमर भूपाल ।।

यह रट लागी लाडिले लाल! जैसे चातक मोर ।
प्रेम नीर बरखा करौ लाल ! नव घन नन्दकिशोर ।।
युग-युग अविचल राजिये लाल ! यह सुख शैल निवास ।
श्रीगोवर्धनधर रूप पैं बलि जाय चतुर्भुजदास ।।

(भावार्थ)

हे शतश्रृंग-समन्वित गोवर्धन-परिसरके वासी श्यामलवपु नीलमणि ! अब तो तुम्हारे बिना रहा ही नहीं जाता । हे ब्रजराज नन्दबाबाके लड़ैते ! सचमुच ही अब तेरा वियोग मुझसे नहीं सहा जाता। हे प्यारे ! किञ्चित् अपनी बाँकी चितवनसे मंद मुसकान बिखेरते हुए मेरी ओर एक बार निहार लो न ! और अपने त्रिभुवनमोहन सुन्दर मुखको मुझे दिखा भर दो ! प्यारे ! मेरे नेत्र जल-विहीन मीनकी तरह तुम्हारे वियोगमें तड़प रहे हैं। एक-एक पल– पलक गिरानेका कालमान भी काटना मेरे लिये कल्पोंके समान दूभर हो रहा है।

संगीतके सातों स्वरोंको बाँधकर हे मेरे प्यारे मोहन ! तनिक वेणु तो बजा दो। सुहावनी श्रुतियाँ लगाकर गीतोंकी बन्दिशमें तनिक मधुर-मधुर कुछ गान कर दो न! फिर तो जिस किसी कर्णरन्ध्रमें वह स्वर प्रवेश करेगा वह एक दिव्य रसका आस्वाद पा जावेगा और तुम्हारे प्रेममें पागल हो जायगा। तुम्हारी विश्वजन-मनोमोहिनी मुरलीके मधुर स्वरोंमें इतनी मादकता है कि जिस किसीके कर्णरन्ध्रमें एक बार भी वह स्वर प्रवेश कर जाता है, उसीको तुरन्त पागल बना देता है।

हे प्यारे ! जब तुम्हारी गायें हरित् तृणोंकी लालसामें प्रलोभित हुईं धीरे-धीरे एक-से-एक सुन्दर तृणसंकुल भूमिके अंशोंको चरती हुई वनमें प्रवेश कर जाती हैं, और इतनी दूर चली जाती हैं कि अपने पालकवर्ग – तुम्हारे सखाओं और तुम्हारी स्वयंकी दृष्टिसे भी सर्वथा ओझल हो चुकती हैं, उस समय तुम्हारे सखाओंके मुखपर तो चिन्ता और भयकी स्पष्ट रेखाऐं अंकित हो जाती हैं, किन्तु उस समय भी तुम्हारे अरुणिम अधरोंपर वही मधुर मन्द मुसकान और तुम्हारे नेत्रसरोजोंमें वैसी ही उत्फुल्लता नाचती रहती है। अपने सखाओंको चिन्तित देख तुम अपने स्थानपर खड़े अवश्य हो जाते हो। बस, इसके अतिरिक्त कोई परिवर्तन तुम्हारे अन्दर नहीं होता। हाँ ! तुम्हारे नेत्र किञ्चित् चंचलताका प्रकाश अवश्य करते हैं– किसी भयसे नहीं, अपितु अपने सखाओं को उद्विग्न देखकर उनकी उद्विग्नता हर लेनेके उद्देश्यसे ।

और फिर अपने सखाओंके मन, प्राण, इन्द्रियोंको शीतल करते हुए तुम उस गिरि गोवर्धनकी चोटीपर हरित् तृणोंके लहलहातें पुञ्जोंपर चरण रखकर चढते हुए उस तमाल-मूलके समीप जा पहुँचते हो और उस तमालकी शाखाओंपर आरूढ़ हुए हे रसिक ! अत्यन्त रसीली बोलीमें तुम गायोंमें से एक-एकका नामोच्चारण करते, पुकारने लगते हो। जब धूमरी, धौरी, कारी, कजरारी कहकर तनिक ऊँची टेरसे पुकारते हो, उस समय वे सभी गायें दौड़ी-दौड़ी तुम्हारे चतुर्दिक् आकर तुम्हें घेर लेती हैं ।

हे प्यारे ! तुम्हारे विश्वमोहन सौन्दर्यकी एक क्षीण-सी झाँकी मुझे जबसे हुई है, तबसे मुझे कोई भी सांसारिक वस्तु रुचिकर नहीं लगती। विषयजन्य मन्द रसोंको विस्मृतकर मैं एक चिन्मय अलौकिक रसके आस्वादमें डूबा रहता हूँ। उस समय यह तुच्छ पार्थिव विलास-रस सम्पूर्णरूपसे विनष्ट होकर मेरे चित्तकी सब-की-सब वृत्तियाँ एक भाव, एक लक्ष्य, एक ही गतिसे प्रवाहित होने लगती हैं। मुझे न तो रात्रिमें निद्रा आती है, न दिनमें चैन पड़ता है। मुझे अन्न-जलकी भी सुधि नहीं रहती, फिर लज्जा-संकोच, धैर्य-गांभीर्य, कुल-मान, लोक-परलोककी चिन्ता करनेका तो प्रश्न ही नहीं।

हे मेरे जीवनके जीवन ! एक ऐसी विरहाग्नि मेरे मन-शरीरको धक्-धक् जलाती रहती है जिसकी व्यथाका मैं क्या कहकर वर्णन करूँ ? किसी प्रकार तुम्हारे मधुर वचन– दो बोल कानोंको सुनाई पड़ जावें, किसी प्रकार तुम्हारी एक साँवरी-सलोनी सुन्दर झाँकी नेत्रोंको हो जाय, कहीं एक क्षणके लिये मेरा हृदय तुम्हारा आलिंगन-स्पर्श प्राप्त कर ले – इस कामनाकी अग्निमें मेरे नेत्र, कान, हृदय, रोम-रोम जलता रहता है। यह एक ऐसी ज्वाला है जो कभी शान्त होती ही नहीं, यह ज्वाला तभी शान्त होगी जब मेरा सारा 'अहं' ही जलकर राख हो जायगा और वह मेरे ध्वंस की राख तुम्हारे चरणोंमें समर्पित होकर तुम्हारे चरणोंकी धूलि बन जायगी।

हे प्यारे ! करोड़ों चन्द्रमाओंको लजानेवाला तुम्हारा मोहन मुखड़ा जिस दिनसे मुझे दिखाई पड़ा है, उस दिवससे मेरा चित्त उस रूपराशिपर इस भाँति लुब्ध हुआ है जैसे कि चींटी मधुसे चिपटती है। मेरे चिर तृषित नेत्र अब उस अनूप रूपमाधुरीका पान करनेको ऐसे लालायित हो उठे हैं जैसे कुमुद और चकोर होते हैं। हाय ! कब तुम्हारा मुखचन्द्र अपनी विश्वमोहिनी चटकीली चाँदनीसे मेरे हृदयको सुधापूर करेगा !

हे मेरे प्यारे ! अब तो हदयमें ऐसी लालसा – शुभेच्छा उदय हो गयी हैं कि एक निमेष भी मन तुम्हारे बिना नहीं लगता। वह तुम्हारे मिलनकी उत्कण्ठामें उन्मत्त हो उठा है। तुम्हें शीघ्र पानेके लिये मेरे प्राण उड़ने लगते हैं । बस, चित्त एक ही लालसा करता है कि सभी अन्य स्मृतियाँ विलुप्त होकर मेरे मन-प्राणोंमें तुम – मेरे नागर नटवरवेषधारी ही बचे रहो। मेरे नेत्र तुम्हींमें टकटकी लगाते रम जावें।

अब तो लोक-लाज, कुल-मान, लोक-परलोक, धैर्य-धर्म, वेद-मर्यादा एवं मेरा सब विवेक ही विलुप्त हो उठा है। सभी कुछ छोड़ा नहीं , स्वतः ही छूट गया है। संसारके प्रिय-से-प्रिय पदार्थोंको तृणवत् त्यागकर चित्त तुम्हारी ही ओर लग गया है। अब तो जैसे कमलकी कलियाँ रविके उदय होनेपर स्वतः विकसित अभिवृद्ध होती हैं, वैसे ही तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम क्षण-क्षण विकासको प्राप्त हो रहा है।

जब तुम गोचारणके लिये सखाओंके सहित नन्दभवनसे वनकी ओर जाते हो और पुनः वनसे गायोंको चराकर लौटते हो, उस समय तुम्हारी मत्त गजराजकी-सी अतिशय प्रेमभरी चाल देखती हुई हम गोपियाँ तुमपर कोटि-कोटि कामदेव न्यौछावर कर देती हैं। प्यारे ! उस समय श्रीदाम तुम्हारे उत्तरीय अम्बरका छोर पकड़े रखता है और सुबल तुम्हारे दक्षिण स्कन्धपर हाथ रखे होता है। ये दोनों उस समय तुम्हारे असंख्य सखाओंका प्रतिनिधित्व किये रहते हैं। प्रत्येक सखाको उस समय यही अनुभव होता है कि सुबल तो मात्र एक क्षणके लिये ही तुम्हारे वाम पार्श्वमें आया था, शेष समय तो वह स्वयं ही अपने कन्नूके पार्श्वमें चल रहा है। अहा ! उस समय तुम्हारे कोटि-कोटि मनोज-तिरस्कारी विशाल कमलनेत्रोंकी शोभाको देखती हम निहाल हो उठती हैं। हम सभी युवतीगणोंका मन तुम्हारे नेत्र-सरोजोंकी शोभाके फंदेमें फँस जाता है।

हे प्राणप्रियतम ! गिरिपरिसरमें कैसे सुन्दर-सुन्दर सघन कुञ्ज हैं, उनमें हे सुखनिधि ! तुम हमारे संग परम रसमयी क्रीड़ा करो न ! इस वृन्दाकाननकी हम मालती लताएँ हैं और तुम रसप्रेमी भ्रमर-सम्राट् हो। हे भूदेवी (वृन्दादेवी)के पालक, बिचारा कामदेव भी तुम्हारे सम्मुख एक गौके तुल्य ही तो है जिसे अपने सौन्दर्य, माधुर्य एवं कमनीयता की तृणराशि तुम खिलाते हो, और उसका पालन-संवर्धन करते हो।

हे प्राणवल्लभ ! अब तो चित्तमें एकमात्र यही चाहनाकी रट लगी है कि जैसे चातक पिहू-पिहू करता अपने प्रियतम मेघको पुकारता रहता है, मयूर अपने घनश्यामको देखकर नाच उठता है, उसी प्रकार मैं तुम्हें ही पुकारता रहूँ, तुम्हारे लिये ही नाचता रहूँ। हे नवघनसुन्दर साँवरे प्राणधन ! अपने प्रेम-नीरकी वर्षा कर दो न !

हे प्रियतम ! इस अनंत सुखराशि गिरिशैलपर तुम अविचल अपना निवास बनाये रखो । तुम्हारे इस गोवर्धनधारी रूपपर मैं चतुर्भुजदास बारम्बार बलिहारी जाता हूँ।

इस चतुर्भुजदासजी-रचित पद-पाठका माहात्म्य सचमुच ही प्रकट हुआ और एक विलक्षण चमत्कार घटित हुआ। वर्ष भरके भीतर ही पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज तीर्थयात्राट्रेनके आयोजनके कारण श्रीनाथजीके दर्शनार्थ नाथद्वारा पहुँच गये।

पू.गुरुदेव जब उदयपुरसे नाथद्वारा पहुँचे उस समय श्रृंगारके दर्शन खुले थे। पू.गुरुदेवके सम्मुख तो साक्षात् श्रीनाथजी ही खड़े थे। वहाँ पार्थिव विग्रह कहाँ था ? ये तो वही श्रीनाथजी थे जिन्होनें पू. गुरुदेवको गोरखपुरमें दर्शन दिये थे। परमानन्दसिन्धुमें निमग्न होकर उनकी अपनी धारणाने उनके अपने ही मानस-पटलपर श्रीनाथजीका जो अद्भुत सौन्दर्य चित्रांकित किया था, वही आज श्रीनाथद्वाराके मन्दिरमें एक अनन्त असीम अनिर्वचनीय सुन्दर मूर्ति बना उनके सम्मुख प्रत्यक्ष था। अहा ! कैसा अभिनव सुन्दर मुखकमल था ! पू. गुरुदेव दर्शन करते ही इतने तन्मय हो उठे कि कुछ समयके लिये तो उनका बाह्यज्ञान सर्वथा ही लुप्त हो गया। वे एक अभूतपूर्व आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो गये । वे जिधर दृष्टि उठाते हैं उन्हें मन्दिरका गर्भगृह सर्वत्र ही सर्वदिशाओंमें दृष्टिगोचर होने लगता है, और उस गर्भगृहमें एक हाथ ऊपर उठाकर सम्पूर्ण मायावैभवको छत्रवत् अपनी कनिष्ठिका अँगुलीमें धारण किये श्रीनाथजी खड़े दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

पू.गुरुदेव प्रत्यक्ष देखरहे थे – "शास्त्रोंमें वर्णन तो गिरिराज गोवर्धनको धारण करनेका आता है, परन्तु उन्हें जो स्पष्ट दर्शन हो रहा है उसमें तो सम्पूर्ण त्रिगुणात्मिका माया ही श्रीनाथजीके एक उन्नत उठे हाथकी अँगुलीपर नृत्य करती विधृत है और दूसरे हाथको जो वे अपनी कटिमें रखे

हैं उसमें अनादि-अनन्तकालीन सम्पूर्ण भक्तसमुदायको वे अपनेसे लपेटे-सटाये हैं। उनकी मुष्टिका जो कटिपर रखी है उसमें समग्र अप्राकृत गुणराशि एवं भक्ति बँधी है। उनके परम आकर्षणशील नेत्रोंमें प्रीतिमद छलक रहा है और उस मदभारसे अतिशय चंचल नेत्र झुके, निमीलित हैं। उनके तमाल तरु-पल्लवों-से बिम्बवर्णी अधर अतिशय मीठी मुसकानसे रंजित हैं, हेतुरहित अपार कृपा उनपर नर्त्तन कर रही है एवं परम उज्ज्वल दसनछटा उन्हें ज्योतित कर रही है। अहा ! मानो वर्षणोन्मुखी जलधरके नवांकुर हों, ऐसे मृदु, सुचिक्कण, स्निग्ध, परम आकर्षणशील उनके कपोल मलय चन्दन, केसर एवं कस्तूरीकी चित्रकारीसे रंजित हैं। नीलकान्तमणिके अंकुरोंके सदृश उनके कानोंमें धृत कुण्डलोंकी परमोज्ज्वल द्युति उन्हें दमका रही है। श्रीनाथजीके चिबुकमें एक विलक्षण ज्योतिर्मान वज्रमणि (हीरा) जटित है जिसकी ज्योति कोटि-कोटि रविद्युतिको हतप्रभ कर दे रही है। उसके सम्मुख शशि एवं नक्षत्रमण्डली तो अस्तप्राय ही है। उनके वक्षस्थलपर भगवती लक्ष्मी स्वर्णरेखाके रूपमें अंकित हैं किन्तु उस अनन्तश्रीको उन्होने चतुर्दिक् गुञ्जाहार पहनकर समाच्छादित कर रखा है। मानों वे उद्घोष कर रहे हों कि ब्रजमें मेरी लीला मात्र अनुराग- प्रधान ही होगी, वहाँ ऐश्वर्यका प्रकाश सर्वथा ही मुझे अवांछित है।

ठीक इसी प्रकार उनके परम सुचिक्कण नीलमणि सदृश वक्षपर रत्नखचित अनेकों मणियोंके हार शोभा पा रहे हैं, किन्तु उन सबके ऊपर वे तुलसिरचित वनमाला धारण किये हैं। जिसकी गंधपर मदमत्त भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। श्रीनाथजी प्रभुकी अनन्त शोभाको देख-देखकर श्री स्वयं मूर्त्तिमती हो नृत्य कर रही है और उस नृत्यपर उनकी कटिपर बँधी करधनी रुणन्-रुणन् शब्द करती ताल दे रही है। अहा ! श्रीनाथ प्रभुकी चाल मत्त गजराजके तुल्य है और वे जब वृन्दाविपिन की वीथियोंमें प्रेमभरे डोलते हैं तो उस समय ठीक ऐसा अनुभव होता है मानो नव घनघटा अपने निज जनोंपर करुणा-वर्षा करने उमड़ चली हो। उस समय उनकी कटिपर विधृत पीताम्बर चपलाके समान फहराता है, और अपने भक्तोंके हृदयका अंधकार तत्क्षण ही विनष्ट कर देता है। उस समय उनके चरणोंकी शोभा क्या कहकर बखान की जाय, उनके चरण तो साक्षात् कृपाके जहाज तुल्य हैं जिन्होंने असंख्य पतितोंका उद्धार किया है।

पू.गुरुदेव श्रीनाथजीका दर्शन करते-करते इतने भावाभिभूत हो उठे थे कि उनके शरीरमें पर्याप्त शिथिलता परिव्याप्त हो उठी। पू. गुरुदेव मन्दिरके किनारे पर्याप्त समयतक निश्चेष्ट खड़े रहे।

पू. गुरुदेव श्रीनाथजीके दर्शनकर अपने निवासस्थानपर चले गये। पू. गुरुदेवका निवास एकान्तमें तीर्थयात्रियोंसे सर्वथा पृथक् रहता था एवं वहीं उनकी भिक्षा गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीकी पत्नी बनाया करती थी।

उस दिवस पू.गुरुदेव भिक्षाकर कुछ घण्टे विश्रामको चले गये।

काँकरोलीके द्वारकाधीश

श्रीनाथजीसे मोटरके रास्ते काँकरोली ग्यारह मील है। पू.गुरुदेव जैसे ही काँकरोली मन्दिर प्रांगणमें पहुँचे, दर्शन खुलनेमें किञ्चित् विलम्ब था। उनके लिये एक स्थानपर आसन लगा दिया गया। इस स्थानसे रायसागरकी शोभा वे देखने लगे। पू.गुरुदेव उत्थापनके समय काँकरोली पधारे थे। मन्दिरमें कीर्त्तनियाजी कीर्त्तन कर रहे थे। पू.गुरुदेवकी तो यह दशा थी कि किसी भी अनुभूति-सम्पन्न संतकी रसमयी लीलावाणी सुनी कि जैसे सिन्धुकी तरंगें चन्द्रबिम्बको देखकर उछाल लेने लगती हैं, उसी प्रकार उनके भावसमुद्रमें उनके प्राणप्रियतम श्रीकृष्णकी लीलाएँ उच्छलित होने लगती थीं। उनके कानोंमें पद-कीर्त्तनकी शब्दावली प्रवेश कर रही थी–

मुरली अधर धरैं, आवत हरि हरैं- हरैं
गावत रसिक तान सुरभी संग लीने।
मोरपिच्छ शीश मुकुट, मकराकृत कुण्डल छवि,
वैजयन्तीमाल अंग चंदन चरचीने।।
काछिनी कटि नूपुर, निपट वचन अटपटे,
नटवर वपु ग्वाल संग, शोभित रसभीने।
गोविन्द प्रभु गिरिवरधर ग्वालिनि विथकित रहि
धावत मुख वारिजपर, मधुकर दृग कीने।।

पू.गुरुदेव तो पदगायन सुनते ही दूसरे ही लोकमें पहुँच गये। उनके लिये रायसागर गोवर्धन गिरि परिसरका एक परम रमणीय सरोवर बन गया था। उन्हें खुली आँखों दिख रहा था –

"उनके प्रियतम नीलसुन्दर सदाकी भाँति गोचारणकर पुनः गोकुलकी ओर लौट रहे हैं। अहा ! वही त्रिभुवनमोहन सौन्दर्य है, वही मधुरातिमधुर श्रृंगारमयी अंग-भंगिमा, क्षीरसिन्धुकी उमड़ती तरंगोंके समान गायोंके झुंड-के-झुंड उनके आगे-आगे चल रहे हैं। परमानन्दमें निमग्न क्रीड़ापरायण गोपशिशुओंका समाज है। अग्रज बलराम संगमें हैं। अपनी बंकिम चितवनसे वनस्थलीकी शोभा निहारते हँसते-हँसाते, अपनी वंशीकी मधुर स्वरलहरीसे वृन्दाकाननको रसप्लावित करते झूमते हुए वे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। चलते-चलते नवतृणास्तीर्ण वनभूमि आ जाती है। वहीं एक परम रमणीय सरोवर है। सरोवरके संन्निकट मनोहर नव तृणांकुरित तृणराजि है, यह तृणराजि सरोवरके जलका सांन्निध्य पाकर सान्द्र-स्निग्ध बन गयी है। इसी परम सुन्दर वन्य भू-भागपर ही तो आज श्रीकृष्णचन्द्रने सम्पूर्ण दिवस गोचारण किया है। देखो न ! अपनी-अपनी गौओंको पृथक्कर सभी गोपशिशु उन्हें सरोवरका जल पिलाकर तृप्त कर रहे हैं। कितनी दूर-दूरसे ये गायें चरकर आयी हैं। प्यास तो उन्हें लगी ही थी। श्रीकृष्णचन्द्रको, उनके सखाओंको भी प्यासकी अनुभूति तो हो ही रही है। अतः सभी गायें सरोवरमें उतर रही हैं। जल पान कराकर उन्हें गोकुलकी ओर घेरकर ले चलना जो है। देखो, मधुमंगल, सुबल, तोक, श्रीदाम, बलदाऊ और वरूथप – सभी तो जलाशयके तीरपर गायोंका झुण्ड बना रहे हैं।" सरोवरके दर्शन मात्रसे उद्दीपित हुए पू.गुरुदेव अपने लीलाजगत्में डूब-उतरा रहे थे कि किसीने उनका ध्यान यह सूचना देकर भंग कर दिया कि मन्दिरमें दर्शन खुल गये हैं।

पू.गुरुदेव दर्शन खुलनेकी सूचना मिलते ही अपने गैरिक वस्त्र समेट श्रीद्वारकाधीश मन्दिरके गर्भगृहकी ओर चले। मन्दिर-प्रांगणमें पर्याप्त भीड़ थी। पू.गुरुदेवको किसी भी महिलाके संस्पर्शसे बचाते हुए एक सुविधाजनक स्थानपर दर्शनार्थ खड़ा कर दिया गया। मन्दिरके पट खुलते ही पू.गुरुदेवको एक विलक्षण ही दृश्य दिखने लगा।

"अरे ! अरे ! मैं तो किसी कल्पान्तरमें पहुँच गया हूँ। यह तो महाराज अम्बरीषका महल है। काँकरोली ग्रामके स्थानपर यह तो अतुलनीय ऐश्वर्य-सम्पन्न, परम वैभवमय राजा अम्बरीषका राजमहल है। महाराज अम्बरीष की जय हो ! अहा ! वे कैसे विलक्षण भगवद्भक्त हैं !

इन्होंने अपने मनको भगवान्‌के चरणारविन्दयुगलमें, वाणीको भगवद्यशगानमें, कानोंको भगवत्कीर्तिके श्रवणमें, नेत्रोंको मुकुन्दमूर्त्तिके दर्शनोंमें, नासिकाको भगवच्चरणारविन्दमें चढी तुलसीमालाकी दिव्य गन्धमें, रसनाको भगवत्प्रसादके स्वादमें, चरणोंको भगवद्धामकी परिक्रमामें, अपने मस्तकको भगवच्चरणारविन्दकी प्रणतिमें, और अपने समग्र कर्म सर्वात्मा, सर्वस्वरूप भगवान्‌के चरणारविन्दमें समर्पित कर दिये। ये अपने हृदयमें अनन्त प्रेमका दान करनेवाले श्रीहरिका नित्य निरन्तर दर्शन करते रहते हैं। इस प्रकार भक्तियोग और प्रजापालनरूप स्वधर्मके द्वारा वे भगवत्सेवामें निरन्तर अपनेको संलग्न किये रहते हैं। तभी न उनके मस्तकपर भगवान् अच्युतके वरद हस्तके तुल्य उनका सुदर्शन चक्र निरन्तर स्थित रहता है। पू.गुरुदेव मन्दिरके गर्भगृहमें राजा अम्बरीषके दर्शनकर कृतार्थ हो रहे थे। पू.गुरुदेव देख रहे थे कि भक्तराज अम्बरीषजीके पासमें भगवान् द्वारकाधीशजीकी सेवामें उनकी पत्नी भी खड़ी हैं। वे भी उन्हींके समान धर्मशील, संसारसे पूरी विरक्त एवं भक्तिपरायण हैं।

पू.गुरुदेव बादमें कह रहे थे कि भक्तराज महाराजा अम्बरीष और उनकी अ.सौ. भक्तिमती पत्नीका भाववलय इतना पवित्र है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि भी उनके भाव-पावित्र्यके सम्मुख फीके पड़ जाते हैं। यह विलक्षण महिमा भगवद्भक्तिकी है। घोर तपस्या, योग, ज्ञान सब भक्तिके सम्मुख इसीलिये तुच्छ हैं।

पू.गुरुदेव अपनी आन्तरिक आस्थाको अभिव्यक्त करते हुए कह रहे थे कि आज भी यदि कोई सच्ची भगवद्भक्तिका आश्रय ले तो उसपर भक्तराज अम्बरीषके तुल्य भगवत्कृपाकी अभिव्यक्ति संभव है। हममेंसे जो चाहे अपने मानसको तदाकार बनाकर अखण्ड विश्वास और निश्छल अनुरागके सहारे भगवान्‌से अपना नाता जोड़ सकता है।

पू.गुरुदेवने जब श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीको अपनी भक्तराज अम्बरीषके दर्शनकी अनुभूति कुछ दिवस पश्चात् बतलायी तो उन्होंने यह रहस्य उनके सम्मुख उद्घाटित किया कि वल्लभ सम्प्रदायमें तो यह पूर्वसे ही प्रचलित मान्यता है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी द्वारा यही कहा गया है कि ये भगवान् श्रीद्वारकाधीशजीके विग्रह महाराज अम्बरीषके सेव्य हैं।

श्रीनाथजीके मंगलादर्शन

द्वारिकाधीश मन्दिरसे रात्रिकालीन विश्रामके लिये पू.गुरुदेव पुनः श्रीनाथद्वारा ही पधार गये थे। यही योजना थी कि श्रीपोद्दार महाराजके सहित प्रातः श्रीनाथजीके मंगला-आरतीके दर्शन किये जावें एवं तब आगे प्रस्थान किया जाय। यात्राट्रेन श्रीनाथद्वारासे पुष्करतीर्थके दर्शनार्थ अजमेर जाने वाली थी। उसके पश्चात् गुजरातमें यात्राका प्रवेश निर्धारित था।

पू.गुरुदेव जब प्रातः श्रीनाथजीके दर्शनार्थ ब्राह्ममुहूर्त्तमें ही चले तो वहाँ लाउडस्पीकरसे 'यमुनाष्टक' स्तोत्रपाठ सुनाया जा रहा था। जैसे ही यमुनाष्टककी ध्वनि **'नमामि यमुनामहं सकल सिद्धि हेतुं मुदा'**पू. गुरुदेवको कर्णगोचर हुई, उनकी दृष्टि ही बदल गयी।

" ओह ! यह आम्रपंक्ति, यह कदम्बश्रेणी ! उन्हें प्रतीत हो रहा था, यह तो नन्दभवनके अग्रिम भागपर स्थित कल्पतरुकानन है। यह भूमि नहीं, यह तो चिन्तामणिका विशाल आस्तरण है। सामने गोपसुन्दरियाँ हैं – नहीं, नहीं, यहाँ तो अगणित महालक्ष्मियाँ अवतरित हुईं हैं। इनकी वाणी संगीतमयी है, इनका गमन नृत्यमय है; यहाँका तो आकाश ही चिन्मय है। ये नक्षत्रावलि चिदानन्दमय हैं। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध – ओह ! ब्रजेन्द्र नन्दरायकी यह पुरी तो पूर्ण सच्चिदानन्दमयी ही है। इस प्रकार पू.गुरुदेव एक अनिर्वचनीय अनुभूति करते हुए, विस्फारित नेत्रोंसे गगनचुम्बी मणिसद्मोंकी ओर निहारते हुए धीरे-धीरे चलकर श्रीनाथजीके मुख्यद्वारतक पहुँच गये। हवेलीके प्रथम द्वार (पिरोल)पर प्रहरी लकुट लिये खड़ा था। साम्प्रदायिक लोगोंमें संन्यासियोंके प्रति विशेष सम्मान नहीं रहता, किन्तु न जाने क्यों प्रहरीने तत्क्षण ही पू. गुरुदेवको चरणोंमें गिरकर प्रणाम किया।

'कल्याण'पत्रके सम्पादकके नाते श्रीपोद्दार महाराजका यश चारों ओर प्रशस्त था अतः तत्कालीन आचार्य गोस्वामी श्रीगोविन्दलालजी महाराजके विशेष आदेशसे मन्दिरके प्रशासक अपनी पत्नी सहित स्वागतमें खड़े थे। पू. गुरुदेवकी दृष्टिमें तो कोई प्रशासक था ही नहीं , न ही वहाँ श्रीनाथजीका मन्दिर ही था। श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवका हाथ पकड़े थे और उन्हें यही अनुभव हो रहा था – अपनी अग्रजा भगिनी– श्रीराधारानीके संग वे तो

नन्दभवनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनको उस दिवस श्रीनाथजी दिखे ही नहीं। उन्हें तो यही अनुभव हो रहा था, मानो मेरे यावज्जीवन ध्यानकी मूर्त्ति आज मूर्त्त होकर नन्दभवनमें विराजित मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दे रही है। "अहा ! इन अरुण अधरोष्ठोंकी अरुणिम कान्तिसे कुन्दपंक्ति-सदृश दन्तावलिपर भी कैसी लालिमा-सी छायी है ! " पू.गुरुदेवके बाहर जो दृश्य था, वही उनके अन्तर्हृदयमें भी विराजित था। पू. गुरुदेव उस छविपर तन्मय हो गये। वे प्रेमरसमें डूबते ही चले गये। उनके सम्मुख मन्दिरमें स्थित खड़ी उनके प्रियतम आराध्य नीलमणिकी मूर्तिसे निर्गत हास्य-किरणोंने उनके प्रेम-मसृण मनको आत्मसात् कर लिया था।

पू.गुरुदेव जब निश्चेष्ट होने लगे तो श्रीपोद्दार महाराजने उन्हें सम्हालकर भीड़से हटाकर एक ओर खड़ा कर दिया। श्रीराधेश्यामजी भगत उनके पार्श्वमें खड़े किसी स्त्री दर्शकसे उनका संस्पर्श घटित न हो जाय इसकी सावधानी बरत रहे थे।

पू.गुरुदेव दीर्घकालतक निश्चेष्ट, बाह्यज्ञानशून्य रहे। बहुत काल पश्चात् उन्होंने गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कहा ' " यह कहना बहुत ही कठिन है कि श्रीनाथजीकी अहैतुकी कृपा किसको कब कहाँ उठाकर ले जायगी।

पुष्कर तीर्थमें

तीर्थयात्राट्रेनसे लौटकर मुझसे एक दिवस पू.गुरुदेव कह रहे थे कि पुष्करके सबसे बड़े तीर्थ होनेका कोई प्राकृत कारण तो मैं नहीं जानता, किन्तु इतना जानता हूँ कि कोई भी तपोनिष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मचर्यपूर्वक सौ वर्षोंतक लगातार अग्निहोत्र करे उस समय उसके तेजोवलयमें जितनी पवित्रता संग्रहीत होगी, उससे अधिक पावित्र्य यह पुष्कर तीर्थ मात्र एक रात्रिके निवासमें व्यक्तिको प्रदान कर देता है। साधारण व्यक्ति यह समझ नहीं सकते कि ऋषियोंने क्यों अपने पावित्र्यको संग्रहीतकर अनेक ऐसे तीर्थस्रोत निर्माण कर दिये हैं , जो अपने अनवरत पावित्र्यदानसे विश्वका अशेष मंगल कर रहे हैं।

जैसे प्रयाग तीर्थराज हैं वैसे ही पुष्कर भी तीर्थराज हैं। पुष्करकी महिमा पंचतीर्थोंमें भी है। ये पाँच तीर्थ, जिनकी महिमा सर्वपुराणोंमें अभिहित है, निम्न हैं– (१)पुष्कर, (२) कुरुक्षेत्र, (३)गया (४) गंगा एवं (५) प्रभास (द्वारकापुरी)। इसी प्रकार पाँच परम पवित्र सरोवरोंमें भी पुष्करका नाम है। ये पाँच सरोवर हैं –(१)मानसरोवर (कैलास) (२) पुष्कर (३)बिन्दुसरोवर (सिद्धपुर) (४)नारायण सरोवर (कच्छ) एवं (५) पम्पा सरोवर (हासपेटके पास अनागन्दीसे २ मील)।

पुष्करका मुख्य मन्दिर ब्रह्माजीका है। वह सरोवरसे थोड़ी ही दूरीपर है। ब्रह्माजीकी प्रतिमा चतुर्मुखी है। इसके दाहिनी ओर सावित्रीदेवी एवं बायीं ओर गायत्रीदेवीका मन्दिर है। पुष्कर सरोवरसे सरस्वती नदी निकलती है जो आगे जाकर लूनी नदीके नाम से जानी जाती है।

यात्राट्रेन श्रीनाथद्वारासे सीधी अजमेर पहुँची थी। पू.गुरुदेव पुष्कर सरोवरसे स्नान करके सीधे ब्रह्माजीके मन्दिर गये जो वहाँका मुख्य मन्दिर है। वे जैसे ही मन्दिर प्रांगणमें पहुँचे उन्हें ब्रह्मविमोहन लीलाकी स्मृति होने लगी। जब कि अघासुरमोक्षके दर्शनसे स्वर्गलोकके वासी देवगण आनन्दमत्त हो उठे थे, और उनके शंख, मृदंग, दुंदुभि आदिके नादसे जय-जयकी तुमुल ध्वनिसे, श्रीकृष्णगुणस्तवनकी मधुर स्वरलहरीसे, दिग्-दिगन्त पूरित हो चुके थे। सत्य लोक भी उस सर्वतोमुखी जयध्वनि-निनादसे वंचित नहीं रहा था। फलतः चतुर्मुख ब्रह्मा सत्यलोकसे नीचे उतर आये थे और उस समय होनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रके उन्मुक्त बाल्यविहारके दर्शनसे उनके आठों नेत्र शीतल हो गये थे।

पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि आज भी ब्रह्माजीके नेत्रोंमें श्रीकृष्णदर्शनकी यह लालसा छलक रही है। जैसे सन्निपातके रोगीकी तृषा शान्त नहीं होती, जल पीनेसे उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है, वैसे ही श्रीकृष्ण लीलारसपानसे स्रष्टाके एक बार शीतल हुए नेत्र आज भी ऐसे अतृप्त हैं कि उन नेत्रोंमें, उस रसपानकी लालसा उत्तरोत्तर प्रबल होती ही जा रही है।

पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे मानो ब्रह्माजी उनके आगमनपर अत्यन्त हर्षित हैं। उन्होंने चतुर्मुख स्रष्टाके चरणोंमें अतिशय श्रद्धासे मस्तक नवा दिया। पू.गुरुदेवको उसी समय अतिशय गंभीर ध्वनिमें श्रीब्रह्मदेवकी परम पूत

वाणी सुनाई पड़ी – संन्यासिन् ! जो तीनों लोकोंमें किसी भी उपायसे किसीके द्वारा भी वशमें किये नहीं जा सकते, वे परात्पर श्रीकृष्ण तुम्हारे द्वारा कोई विशेष साधन न करनेपर भी प्रायः वशमें हैं। उसका कारण है, तुम्हारी उन परात्पर श्रीकृष्णके प्रति कैतवरहित निर्मल प्रीति। यद्यपि मेरे द्वारा निर्मित इस जगत्के प्रवाहमें, एक नहीं, अनेकों उत्कृष्टतम भक्त हो चुके हैं, जो साधनकी चरमोत्कर्ष दशाको प्राप्त हो चुके हैं, किन्तु फिर भी वे तुम्हारे एवं इस भक्त पोद्दारवपुके तुल्य भगवल्लीला-रससुधामें निमग्न नहीं ही हो पाये। तुम्हारी तो जीवनकी धारा ही उनके लीलासिन्धुमें पूर्णतया निमग्न हो चुकी है। इसीके परिणामस्वरूप तुम्हें भगवान् सच्चिदानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति अनन्य निजत्वभावनाकी प्राप्ति हुई, उससे उद्भूत उनके मुखारविन्द-दर्शनकी असीम एवं अदम्य उत्कण्ठा, और तब उनका दर्शन एवं विशुद्ध प्रीतिका अभ्युदय तुम्हारे अन्तःकरणमें हो गया। संन्यासिन् । तुम एवं तुम्हारे साथ आया यह प्रेम-वैशिष्ट्यकी सर्वोच्च भूमिपर आसीन, वैश्यकुलसंतारक पोद्दारवपु – दोनोंके मिलनसुखको पाकर आज मैं चतुर्भुज धन्य हूँ। देखो ! मेरे साथ ये मेरे चारों मानसपुत्र सनकादि भी तुम्हारे आगमनसे हर्षातिरेकमें भरे हैं।

पू.गुरुदेवने अपने मानस नेत्रोंसे स्पष्ट देखा कि उनके सम्मुख सनत, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार–विलक्षण भक्तिपूत तेजसम्पन्न चारों पाँच वर्षके ऋषिबालक अति समीप खड़े उन्हें हाथ उठाकर आशीर्वाद दे रहे हैं।

पू.गुरुदेव परम पितामह ब्रह्माजीके साक्षात् दर्शन और स्नेहभरी वाणी सुनकर कृतकृत्य हो गये। उनके हृदयकी भक्ति पानीकी तरह बहकर पितामहके चरणोंका प्रक्षालन करने लगी। चतुर्मुख ब्रह्माके अनन्त अपरिसीम वत्सल भाव-ऐश्वर्य के दिव्यातिदिव्य चिन्मय दर्शन पाकर पू.गुरुदेव विमुग्ध-से हो उठे। वे बार-बार देवाधिदेव पितामह एवं सनकादिके चरणोंमें लंबित होकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। उनके अन्तस्तलमें श्रीचतुरानन वेदगर्भके प्रति एक अनिर्वचनीय भक्तिभावपूर्ण श्रद्धाका स्रोत उमड़ चलता है। अपनी क्षुद्रताकी अनुभूति और चतुर्मुखके वात्सल्यजन्य गुणदर्शनसे उनमें विशुद्ध दैन्यका प्रादुर्भाव हो उठता है। वे उठते हैं और पुनः पितामहके चरणोंमें निपतित होकर निष्पन्द-से हुए ध्यानस्थ हो उठते है। ब्रह्माजीके मन्दिरमें पू.गुरुदेवकी यह भावमयी वन्दनाको पर्याप्त समयतक तो श्रीपोद्दार महाराज देखते रहते हैं, फिर

वे ही उन्हें झकझोरकर जगाते हैं और कहते हैं –'बाबा, पर्याप्त विलम्ब हो रहा है, अभी तो अनेक मन्दिरोंके दर्शन करने शेष हैं।' पू. गुरुदेव यद्यपि भावोंके गम्भीर स्तरोंमें निविष्ट थे, किन्तु श्रीपोद्दार महाराजकी अचिन्त्य अन्तर्प्रेरणासे धीरे-धीरे उठ बैठते हैं। उनके समस्त अंग एक शुद्ध सात्विक शान्तिसे शिथिल हो रहे थे । किसी प्रकार वे देहको सँभालकर उत्थित हुए। उन्होंने हाथोंसे अपने अश्रुपूरित नेत्रोंको पौंछा और श्रीपोद्दार महाराजकी ओर दृष्टि उठायी। श्रीपोद्दार महाराजके नेत्रोंमें एक मुसकान आयी और उन्होंने पू. गुरुदेवका हाथ अपने हाथमें ले लिया।

पू.गुरुदेव ब्रह्माजीके मन्दिरसे शक्तिपीठ गायत्रीमन्दिर भी गये। सावित्री मन्दिरकी चढ़ाई ऊँची थी अतः श्रीपोद्दार महाराजकी शरीरकी अस्वस्थता को देखते हुए, वहाँ जाना स्थगित कर दिया गया।

गायत्री शक्तिपीठ एक पहाड़ीपर है। पहाड़ीकी चढ़ाई यद्यपि सावित्री मन्दिरसे तो कम है, किन्तु सीधी दुरूह है। पू.गुरुदेव गायत्रीदेवीकी महिमाके सम्बन्धमें कह रहे थे कि यह क्षेत्र शक्तिके इक्यावन पीठोंमें से एक है और यहाँ सतीका मणिबन्ध गिरा था। गायत्री वेदजननी हैं, वेदात्मा हैं। चारों वेदोंके बीज केवल एक गायत्री मंत्रमें निहित हैं। ये प्रातः रक्तवर्णा, ब्रह्माजीका रूप धारण किये रहती हैं, उस समय ये हंसारूढा रहती हैं, इनकी चार भुजायें होती हैं। मध्याहमें ये ही नील वर्ण धारणकर हरिरूपा होती हैं। उस समय उनका वाहन गरुड़ और चार भुजाएँ रहती हैं । अनन्त विश्व ब्रह्माण्डोंका इनसे ही पालन होता है। सायंकाल ये ही श्वेत वर्ण धारणकर वृषभ वाहनमें शिवरूप हो जाती हैं। उस समय इनकी दस भुजाएँ रहती हैं और पाँच मुख होते हैं। इनके नेत्रोंमें परम करुणा एवं सरसता भरी रहती है। इनका श्वेत वर्ण स्फटिकके समान समुज्वल होता है और मुक्तिदान करना इनका मूल स्वभाव होता है। गायत्रीदेवीकी जो त्रिकाल उपासना करे, उसे भक्तिभावकी प्राप्ति निश्चय ही होती है, ऐसा श्रीसेठजी जयदयालजी गोयनकाका स्वयं अनुभूत मत है। गायत्री मंत्र दुःख, दुर्गति एवं दुर्मतिको दूर करनेका अमोघ उपाय है।

गायत्री शक्तिपीठ जिस पहाड़ीपर स्थित है, उस पहाड़ीके पथके प्रारंभमें ही पुष्कर तीर्थकी भूमि प्रसिद्ध भगवान् वाराहकी जन्मस्थली है। यहीं भगवान् वाराह ब्रह्माजीके नासाछिद्रसे उत्पन्न हुए थे। जैसे भगवान् श्रीराम एवं

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मस्थली होनेसे क्रमशः अयोध्या और मथुराका विशद माहात्म्य है, उसी प्रकार भगवान् वाराहकी प्राकट्यस्थली होनेसे पुष्कर तीर्थ मुक्तिदायक क्षेत्र है। यहाँके पुरातन विशाल वाराह मन्दिरको तो मुसलमानी बादशाहीके समय नष्ट कर दिया गया था, किन्तु अब उसी स्थानपर नया मन्दिर बना दिया गया है।

आदितीर्थ धर्मारण्य सिद्धपुरमें भगवान् कपिलके दर्शन

पू.गुरुदेव प्रायः कहा करते थे कि भगवान् ऋषभदेव एवं भगवती कपिलमाता देवहूतिका पर्यवसान ज्ञानकी सातवीं भूमिकामें स्थित होकर हुआ था। वे माता देवहूतिकी यदा-कदा बहुत ही प्रशंसा किया करते थे। एक दिवस मैंने गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे प्रश्न किया कि जबसे पू.गुरुदेव तीर्थयात्राट्रेनसे लौटकर आये हैं वे माता देवहूतिकी इतनी प्रशंसा एवं स्मृति बराबर क्यों करते हैं ? उन्होंने उत्तरमें मुझे यह रहस्य प्रकटकर सुनाया था कि जब तीर्थयात्रा धर्मारण्य सिद्धपुरमें थी तो पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाको महर्षि कर्दम एवं जगज्जननी माता भगवती देवहूतिके दर्शन हुए थे।

जैसे पितृश्राद्धके लिये गया प्रसिद्ध है, उसी तरह मातृश्राद्धके लिये आदितीर्थ धर्मारण्य प्रसिद्ध है। कपिल माता देवहूतिकी तपस्थली होनेसे यह श्रीस्थल भी कहलाता है।

श्रीगोस्वामीजीने मुझे सुनाया था कि जब पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा बिन्दुतीर्थ पर स्नान कर रहे थे उसी समय उन्हें महर्षि कर्दमके दर्शन हुए थे। यह बिन्दुतीर्थ सरस्वती नदीके किनारेसे १ मील दूर स्थित है। यह चालीस फुट चौरस कुण्ड है और इसके चतुर्दिक् पक्के घाट बँधे हैं । उस समय पू.गुरुदेव बिन्दुसरोवरके दक्षिणी घाटपर स्नान कर रहे थे। सहसा उन्हें एक दिव्य संन्यासीके दर्शन हुए। वे अतिशय तेजस्वी पुरुष परम अन्तर्मुखी वृत्ति धारण किये, परम शान्त अवस्थामें दक्षिणी घाटमें बैठे थे। उनको देखनेसे पू. गुरुदेवको स्पष्ट अनुभव हुआ कि ये दिव्य लोकोंके वासी हैं और सम्पूर्ण भूतोंमें

मात्र अपनी आत्माको ही देखते हुए इस घाटमें आसीन हैं। ये समग्र रागद्वेषसे रहित सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्तिसे सम्पन्न आदर्श संन्यासी महापुरुष हैं। पू. गुरुदेवने उन्हें प्रणाम किया। पू.गुरुदेवने जब उन परम महापुरुषसे उनका परिचय पूछा तो उन्होंने कहा–" मेरा नाम महर्षि कर्दम है।" उस समय उनके रोम-रोमसे विलक्षण ज्ञान, पवित्रता एवं वैराग्य फूट रहा था तथा उनके मुख-मण्डलपर परम शान्ति विराजमान थी। महर्षि कर्दम पितामह ब्रह्माकी छायासे उत्पन्न विलक्षण योगशक्ति-सम्पन्न पुरुष हैं तथा ब्रह्माजीके समान ही पवित्र, तेजस्वी एवं योगी पुरुष हैं।

पू.गुरुदेवको उन्होंने आदेश दिया कि यहाँ इस विन्दुसरोवरसे थोड़ी दूरीपर एक पुरातन बावली है। आप वहाँ अवश्य जावें एवं स्नान करें। यह कहकर महर्षि कर्दम अन्तर्धान हो गये।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने गोस्वामीजीको जो उनके पास ही खड़े स्नान कर रहे थे, बुलाकर पूछा –"गोस्वामीजी ! अभी आपको इस दक्षिणी घाटपर हम लोगोंसे थोड़ी ही दूर किसी संन्यासीके दर्शन हुए क्या ?" गोस्वामीजीने कहा– मेरा तो ध्यान स्नान एवं मध्याह सन्ध्यापर केन्द्रित था, अतः मैंने तो किसी संन्यासीको यहाँ नहीं देखा।

पू.गुरुदेवने कहा–अभी-अभी यहाँ महर्षि कर्दम उपस्थित थे, वे मुझे आदेश देकर गये हैं कि यहाँसे थोड़ी ही दूरीपर एक पुरानी बावली है, वहाँ आप अवश्य स्नान करें। इस आदेशके अनुसार पू. गुरुदेव, श्रीगोस्वामीजी एवं कुछ अन्य पुरुषोंके सहित ज्ञानवापी पहुँचे। पू.गुरुदेव वहाँ स्नान करते-करते अचानक बाह्यज्ञानशून्य होने लगे। श्रीगोस्वामीजी मुझे कह रहे थे कि ज्ञानवापीमें पू.गुरुदेवको माता देवहूतिको उपदेश देते हुए भगवान् कपिलके दर्शन हुए थे। पू.गुरुदेवको बाह्यज्ञानशून्य दशामें बहुत कालतक स्थित देखकर श्रीपोद्दार महाराजको सूचित करके बुलाया गया। श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवको बहुत प्रयत्न करके प्रकृतिस्थ कराया।

पू.श्रीगोस्वामीजीने मुझे बताया कि पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजसे अपनी अनुभूतिकी चर्चा कुछ इस प्रकार कही थी –" माता देवहूति एवं भगवान् कपिलके दर्शन जिस समय उन्हें हो रहे थे, उस समय सारा आकाश देवताओं और ऋषि-मुनियोंसे भरा था। वे सभी उन दोनों माता-पुत्रका दिव्य

स्तुतियोंसे स्तवन कर रहे थे। समस्त वातावरणमें कल्प-प्रसूनोंकी अनवरत वर्षा हो रही थी। पू.गुरुदेवकी घ्राणेन्द्रियाँ इन प्रसूनोंकी दिव्य सुवाससे पूरित हो उठीं। उनकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ एक अभिनव आनन्दके पूरमें निमग्न हो गयीं। मन उस दर्शन-सुखमें डूबकर अपनी सत्ता ही खो बैठा।''

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा कह रहे थे कि मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं सभी कर्मेन्द्रियाँ पहले तो इस आश्चर्य-दर्शनसे इतनी चंचल हो उठीं मानो इनमें निहित समग्र शक्तियोंका किसीने अपहरण कर लिया हो, पर फिर वे इस भाँति शान्त हो गयीं कि मानो उनका सम्पूर्ण अस्तित्व ही सदाके लिये लुप्त हो गया हो। एक जड़ स्पन्दनहीन पुत्तलिकावत् उनकी दशा हो गयी।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि भगवान् कपिल इतने ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न थे कि जहाँ वे अपनी माता देवहूतिको उपदेश दे रहे थे , उस स्थलमें निराविल ज्ञान ही ज्ञान, **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'एकमेवाद्वितीयम्'** ही चारों ओर बिखर रहा था। इस अमित ज्ञानराशिका पान करती माता देवहूतिके नेत्र भरे-भरे थे। वे तो यही अनुभव कर रही थीं कि श्रुतियोंको ब्रह्ममें हाथ-पैर, मुख-वाणीकी उपलब्धि नहीं हुई, किन्तु आज उन्हें (माता देवहूतिको)**'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता'** इस काननमें वही ब्रह्म अपने पुत्रके रूपमें उपदेश करता दृष्टिगोचर हो रहा है। जो अपरिच्छिन्न ज्ञानस्वरूप है, अनन्त है, एकमेव अद्वय निर्धारित हो चुका है, वही परात्पर उन्हें अपनी भक्ति एवं प्रकृति-पुरुषके विवेकका उपदेश कर रहा है।

मैंने श्रीगोस्वामीजीसे यह भी प्रश्न किया कि माता देवहूतिको भगवान् कपिलने जो-जो उपदेश किया यह भी पू.गुरुदेवके श्रवण-गोचर हुआ ही था; क्या उसका कुछ संक्षिप्त-सा वर्णन भी उन्होंने किया था ? श्रीगोस्वामीजीने इसके उत्तरमें यही बतलाया कि माता देवहूतिको भगवान् कपिल द्वारा जो अनर्गल विशुद्ध ज्ञान एवं ज्ञानोत्तरा भक्तिका उपदेश हो रहा था, वह मात्र वाणीके द्वारा बोलकर प्रवचन मात्र नहीं था। भगवान् कपिलदेव उस ज्ञानमें पूर्णतया सम्प्रतिष्ठित थे और उस अनन्त अपरिसीम उद्वेलित ज्ञानसिन्धुकी संग्राहिका माता देवहूति उस सिन्धुमें निर्बाध संतरण कर रही थीं। ब्रह्मज्ञानका नेत्रोंसे, रोम-रोमसे जैसा वितरण इस कपिलावतारमें हुआ, वैसा सम्प्लावन इससे पूर्व किसी अवतारमें व्यक्त नहीं हुआ। पू.गुरुदेवको इसी अपरिसीम

ज्ञानसिन्धुका कुछ क्षणोंतक ही दर्शन हो पाया, फिर तो उनका मन, बुद्धि एवं सभी इन्द्रियाँ उसमें विलुप्त ही हो गयीं।

द्वारकाधाममें

सिद्धपुरसे तीर्थयात्राट्रेन मेहसाणा होती हुई, सुरेन्द्रनगर एवं वहाँसे द्वारका स्टेशन पहुँची। इसे गोमती द्वारका भी कहते हैं। द्वारकाके पश्चिम-दक्षिणमें एक बृहद् खाल है, जिसमें समुद्रका जल परिपूर्ण रहता है। इसे गोमती कहते हैं। यह कोई नदी नहीं है। इसीके कारण तीर्थका नाम गोमतीद्वारका प्रसिद्ध है। गोमतीकी ओरसे ५६ सीढ़ी चढ़नेपर रणछोड़रायका मन्दिर मिलता है। यह मन्दिर परकोटेके भीतर है। मन्दिर सात मंजिला और शिखरयुक्त है । इसमें चारों ओर द्वार हैं। श्रीरणछोड़रायजीके मन्दिरपर पूरे ४० गजके एक थानकी ध्वजा उड़ती है। इसे चढ़ाते समय महोत्सव होता है। विश्वकी यह सबसे बृहत् ध्वजा है।

मन्दिरमें मुख्य पीठपर श्रीरणछोड़रायजीकी श्यामवर्ण चतुर्भुज मूर्ति है। निश्चित् दक्षिणा देनेसे मूर्तिका चरणस्पर्श भी किया जा सकता है। द्वारक.की भगवान् रणछोड़रायकी मूल मूर्तिको तो बोडाणा भक्त डाकोरजी लेगये थे। उनके द्वारा मूर्ति ले जानेपर छः मासतक मन्दिर बिना मूर्तिके सूना ही रहा था। तब द्वारकाके पुजारियोंको आदेश हुआ कि जो मूर्ति लाडवा ग्रामके पास मिले वही मूर्ति मन्दिरमें विराजित कर दी जाय। यह मूर्ति वही है जो लाडवा ग्रामके पास मिली थी। यह मूर्ति रणछोडरायजीके मन्दिरमें आज भी प्रतिष्ठित है।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा पोद्दार महाराज एवं यात्रियोंके सहित गोमतीमें स्नान करके जब रणछोड़रायजीके मन्दिरमें दर्शन करने गये तो पू.गुरुदेवको वहाँ त्रिविक्रम वामन भगवान्के साक्षात् दर्शन हुए। उस समय वे सुतल लोकमें राजा बलिके द्वारपालके वेषमें थे। भगवान् वामनकी कृपामूर्तिके दर्शनकर पू. गुरुदेवके नेत्र छलछला आये थे। वे अपनी इस अनुभूतिको जब यात्रासे लौटनेपर गोरखपुरमें मुझे सुना रहे थे तो उनके नेत्र भगवान्के कृपावत्सल स्वभावके चिन्तनस्वरूप प्रेमाश्रु बहाने लगे थे।

पू. गुरुदेव मुझसे कह रहे थे कि भगवान्की कृपा समग्र तर्कोंसे अतीत

है। तर्कके द्वारा भगवान्‌की असमोर्ध्व कृपाका हेतु ढूँढ़ना संभव ही नहीं। विधाताके द्वारा जगत्‌में एक-से-एक विस्मयजनक वस्तुएँ सृष्ट हुई हैं, किन्तु भगवान्‌की अचिन्त्य हेतुरहित कृपा-जैसी विस्मयजनक कोई भी दूसरी वस्तु कहीं संभव ही नहीं। राजा बलिकी ऐसी कोई साधना नहीं थी जिससे वे स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप भगवान्‌के दर्शन पा सकते। शरीरसे किया हुआ बड़े-से-बड़ा तप, दान, पुण्य कर्म उत्तमोत्तम प्राकृत गति ही दे सकता है। किसी भी बड़ी-से-बड़ी साधनाके फल भगवान् हो ही नहीं सकते। वेदगर्भ ब्रह्माकी सृष्टिमें ऐसी कोई वस्तु निर्मित ही नहीं हुई है जिसका अवलम्ब करके भगवान्‌की प्राप्ति की जा सके। कृपा-परवश हुए वे अपनी स्वप्रकाशिका शक्तिसे ही किसीके नेत्रगोचर होते हैं। जो स्थूल नहीं, अणु नहीं; क्षुद्र नहीं, महान् नहीं; घन नहीं, द्रव नहीं; छाया नहीं, तम नहीं; वायु नहीं, आकाश नहीं; जो रूप-रस-गन्ध नहीं, कर्ण-वाणी-मन नहीं – इस प्रकार समस्त अपरमात्म मायिक पदार्थोंका निषेधकर ब्रह्मका प्रतिपादन करने वाली श्रुतियोंके द्वारा जिनके सच्चिदानन्दस्वरूपका संकेत भर प्राप्त होता है, महाराज बलिने उनकी हेतुरहित कृपाके बलपर ही तो उनके अपरिसीम ऐश्वर्यसमन्वित रूपके दर्शन प्राप्त किये। दर्शन ही नहीं, भगवान्‌ने अपने चरणकमल बलिके मस्तकपर स्थापित कर दिये। जो बलि जन्मसे महा अहंकारी, खल और कुमार्गगामी असुरकुलमें जन्मा था, कैसी आश्चर्यकी बात है कि भगवान् उसके सेवक–द्वारपाल बन गये।

पू.गुरुदेव बता रहे थे कि सुतल लोकमें भगवान् ज्योंही बलिके किलेदार हुए, राजा बलि एवं उनके सभी अनुयायी असुर उन महामहिम प्रभुकी संन्निधिके प्रभावसे मलिन विकारोंसे रहित हो गये थे। राजा बलि एवं उनकी सुतल लोककी सारी प्रजा ही भगवान्‌की कृपासे क्षुधा-पिपासाकी प्राकृत माँगसे सर्वथा मुक्त हो चुकी थी। वहाँ उन सभी असुरोंके ही नहीं, चराचर समुदाय सभी पशु-पक्षियोंके भी मलिन विकार शान्त हो गये थे। एक क्षुद्र चींटीसे ले कर हाथी पर्यन्त सभी जीवोंके प्राणोंमें भक्तिविह्वल परा शान्तिका साम्राज्य छाया रहता था। उनके मनोंको काम मन्थन नहीं करता, क्रोध इन्द्रियोंको जलाता नहीं, लोभ सम्मोहित नहीं करता था। इस भगवान् वामनके सुसंरक्षित लोकमें एक भी अशुभ विकृतिकी गन्धमात्र भी नहीं थी। घोर रजोगुण-प्रधान

असुरोंमें परस्पर वैरवृत्तिका उदय ही नहीं होना एक आश्चर्य ही था। इस सुतल लोकमें भगवान् वामनका ऐसा प्रभाव था कि मनुष्य-व्याघ्र, बिड़ाल-मूषक, सर्प-नकुल, आदि परस्पर शत्रुभावपरायण प्राणिवर्ग भी परस्पर स्नेहके सूत्रमें बँधे निरन्तर मित्रभावका अवलम्बनकर वहाँ निवास करते थे। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि सुतल लोकका सारा जीव-समुदाय भगवान्को वहाँ नित्य ही हाथमें गदा लिये खड़ा देखता और इस परमातिपरम कल्याणकारी भगवद्दर्शनजन्य परमानन्दमें मग्न रहनेके कारण उन सभीके समग्र कर्मबन्धन नष्ट हो गये थे।

भगवान् वामनके दर्शनसे पू.गुरुदेवका रोम-रोम आनन्द-विह्वल हो उठा। फिर तो उनमें एक अभूतपूर्व उत्कण्ठा जागी और वे भगवान् वामनके चरणनखचन्द्रका संस्पर्श करनेके लिये दण्डवत् प्रणत हो गये। सचमुच ही इस प्रकार विह्वल होकर भगवान्के चरण-सरोजोंमें प्रणत होनेका सुख कितना निराला है –इसे तो वे भक्त ही अनुभव कर सकते हैं, जिन्हें ऐसा सौभाग्य मिला होता है।

बेटद्वारकामें पू.गुरुदेव

गोमती द्वारकासे २० मील पूर्वोत्तर कच्छकी खाड़ीमें एक छोटा द्वीप (बेट) होनेसे ही इसे बेटद्वारका (द्वारका द्वीप) कहते हैं। ओखासे नौका द्वारा समुद्रकी खड़ी पार करके बेट द्वारका पहुँचना पड़ता है। द्वीपमें एक विशाल चौकमें तीन महल दुमंजिले एवं पाँच महल, तीन मंजिलके हैं। द्वारमेंसे सीधे पूर्वकी ओर जानेपर श्रीकृष्ण भगवान्का महल मिलता है। इसमें पूर्वकी ओर प्रद्युम्न एवं मध्यमें रणछोड़जी और उनके दूसरी ओर त्रिविक्रम (तीकमजी) वामन भगवान्का मन्दिर है। इस मन्दिरके आगे एक ओर पुरुषोत्तमजी, माता देवकी तथा माधवजीके मन्दिर हैं। कोटके दक्षिण पश्चिमकी ओर अम्बाजी एवं पूर्वमें गरुड़ मन्दिर है। रणछोड़जीके महलके समीप सत्यभामा एवं जाम्बवतीजीके मन्दिर हैं। पूर्वकी ओर साक्षीगोपाल और उत्तरकी ओर रुक्मिणी एवं राधाजीके मन्दिर हैं।

पू. गुरुदेवके कानों 'श्रीकृष्ण भगवान्का महल' – ये शब्द पड़ते ही वे अपने भावजगत्में तन्मय हो जाते हैं। पू.गुरुदेवको श्रीकृष्णमहलमें एक ओर आसन लगाकर बैठा दिया जाता है, परन्तु वे शान्त, निष्पन्द बैठे हैं। दर्शनार्थी

लोग दर्शन करके आ-जा रहे हैं परन्तु वे तो बैठे हैं, सो, बैठे ही हैं। लोग श्रीपोद्दार महाराजको सूचना देते हैं, वे आते हैं। वे अपने हाथसे पू.गुरुदेवको जल पिलाते हैं, तब किंचित् चेतना आती है। उन्हें पोद्दार महाराज श्रीकृष्ण स्वरूपमें दिखते हैं, अतः एक बार तो वे भ्रमित हो ही जाते हैं कि यह सत्य है या उनका मनोराज्य है ? अवश्य ही निर्णय होनेमें विलम्ब नहीं होता। श्रीपोद्दार महाराज उनका हाथ पकड़े-पकड़े सभी मन्दिरोंमें दर्शनार्थ ले जाते हैं। श्रीपोद्दार महाराज द्वारा पू.गुरुदेवको काष्ठवत् हाथ पकड़कर यद्यपि ले जाया जा रहा है, किन्तु वे तो मुग्ध, संज्ञाविहीन, अर्धबाह्यज्ञानवृत्तिमें हैं। उन्हें अपनी सत्ताका, जगत्का अनुसन्धान कभी तो होता है, कभी होता ही नहीं। उन्हें तो मात्र 'श्रीकृष्णचन्द्रके महल'की ही स्मृति है। उन अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र और उनके महलके विलक्षण दर्शनोंमें, उसके सौन्दर्यसिन्धुकी उच्छलित उत्ताल तरंगोंमें अहंतास्पद अपने आपका, ममतास्पद पोद्दार महाराजका एवं बाह्य जगत्का अस्तित्व कभी तो उनके सामने से विलुप्त हो जाता है, और कभी शनैः-शनैः प्रकट होने लगता है। जैसे मृत्युके उस पार पहुँचे प्राणीमें पुनः नवजीवनका संचार हो और पुनः वह संज्ञाविहीन मूर्च्छित हो जाय, इसी भाँति कभी तो उनकी इन्द्रियोंमें क्रियाशीलता आती है और फिर लुप्त हो जाती है। उनके सामने वृन्दाकाननके कुञ्जान्तर्गत 'श्रीकृष्णका महल' है। राजाधिराज द्वारकाधीशसे तो उनका प्रयोजन ही कहाँ है ?

"अहा ! क्या कहना है, सुपक्व सुमधुर फलभारसे अवनत हुई राशि-राशि वृक्षावली, रंग-बिरंगे सुरभित कुसुमोंका आभरण धारणकर तरुश्रेणीको वेष्टित किये लता-वल्लरियाँ, इनपर आसन डाले चित्र-विचित्र विहंगमोंका कल गान, सर्वत्र मन्द-मन्थर पवनका शीतल संस्पर्श– और इन सबके मध्य, इन सबसे आवृत उन्नत शिखर –सब कुछ कितना विस्मयजनक है !

आकाशसे बरसती मेघकी जलधारा कहीं भी गिरे, सागरकी ओर ही प्रवाहित होगी और इस बरसती मेघकी जलधाराके रूपमें सागर ही जैसे धराको रसाप्लावित करने उमड़ता है, ठीक वैसे ही प्राकृत मायाजगत्का समग्र आधिभौतिक अथवा आधिदैविक ऐश्वर्य श्रीकृष्णचन्द्रके चारु चरणसरोजोंसे ही उद्भूत होता है और उनमें ही पर्यवसित होता है। और श्रीकृष्णधाम (महल)के रूपमें उन श्रीकृष्णचन्द्रके चारु चरणोंकी सन्धिनी शक्ति ही तो

अभिव्यक्त है।

श्रीपोद्दार महाराज बारबार पू.गुरुदेवको उद्बोधन करते हैं – "बाबा ! यह श्रीप्रद्युम्नजीका विग्रह है, इन्हें प्रणाम करें। यह त्रिविक्रम भगवान् वामनका विग्रह है, ये देवकी माता हैं, ये वसुदेवजी हैं, यह माधवजीका मन्दिर है। यह अम्बाजीकी मूर्त्ति है, ये गरुड़जी हैं। "

पू.गुरुदेवके सामने तो एक ही सत्य प्रत्यक्ष है। मेरे प्राणप्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र ही अनन्त रूपोंमें अनन्त उपासकों द्वारा अपने-अपने भावोंसे आराधित होते हैं। सबके मूल स्वरूप ये ही हैं। सबके स्तवनका पर्यवसान मात्र उनमें ही है।

श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको सत्यभामा एवं जाम्बवतीके महलमें, पूर्वकी ओर साक्षीगोपाल मन्दिरमें, उत्तरमें रुक्मिणीजीके मन्दिरमें, जाम्बवती मन्दिरके पूर्व गोवर्धननाथजीके मन्दिरमें ले जाते हैं। पू. गुरुदेवको तो सर्वत्र सभीमें एक ही परम तत्वमयी चिज्ज्योतिभरी दृष्टिगोचर हो रही है– वह है श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीअंगोंकी नवनीरद-कान्ति।

श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवको शंखोद्धार तीर्थ ले जाते हैं। यहाँ शंख-सरोवर और भगवान् शंखनारायणका मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं श्रीकृष्णने शंखासुरको मारा था। शंखनारायण भगवान्के मन्दिरमें दशावतारोंकी भी मूर्त्तियाँ हैं। श्रीपोद्दार महाराज शंखासुरके उद्धारकी बात पू.गुरुदेवके कानोंमें श्रवणगोचर करानेको तीव्र ध्वनिमें कहते हैं, पू. गुरुदेवके नेत्रोंमें तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलानुक्रमणिका ही नाच उठती है। वे सोचने लगते हैं –"सचमुच जैसे जवजलधर विचार नहीं करता उच्च-नीचका, मलिन-पवित्रका, सर्वत्र समानभावसे बरसकर वह ग्रीष्मका ताप शमित कर देता है, वैसे ही ये श्रीकृष्ण जलधर भी कहाँ देखते हैं उज्ज्वल, तमोमय भावोंकी ओर; समान भावसे सबपर बरस रही है इनकी लीलासुधाकी, करुणामृतकी मधुर धारा। बालघातिनी पूतनाको मातृगति, महानिर्दय बकासुर, अघासुरके संसरणका अन्त, इसी प्रकार शंखासुरको भी अपना नित्य आयुधत्व-दान समान कृपावर्षणके ही तो निदर्शन हैं। इससे पूर्व मत्स्य-कूर्म-नृसिंह-वामनादि रूपोंमें प्रभुकी कृपाका ऐसा अयाचित दान कहाँ किसे मिला था ? यह तो इन नवनीरदकान्ति नव जलधर श्यामल रूपका ही मानो निजस्व है ! बस,बस, यही है ! नाथ !

तुम्हारा यह नव मेघश्यामल विग्रह ही मेरा सार-सर्वस्व है, मेरा अणु-अणु सिक्त हो जाय इसकी अनोखी श्यामछटासे ।''पू:गुरुदेवके अन्तर्मनका यही भाव उनके मुखसे बाहर भी अस्फुट शब्दावलीमें प्ूट पड़ता है।

श्रीपोद्दार महाराज अपने शिष्य पू.गुरुदेवकी अकल्पनीय उच्च भावभूमि देख-देखकर मुसकाने लगते हैं।

जूनागढ़ गिरनार पर्वतमें

गिरनार अत्यंत पवित्र पर्वत है। इसका एक नाम रैवत गिरि भी है। श्रीबलरामजीने यहाँ द्विविदको मारा था। श्रीकृष्णचन्द्र जब द्वारकामें थे, तब यह पर्वत यादवोंकी क्रीड़ाभूमि था। योगियोंकी यह अत्यन्त सम्मान्य तपोभूमि है। भगवान् दत्तात्रेय यहाँ गुप्तरूपसे नित्य निवास करते हैं। सौराष्ट्रके श्रेष्ठतम भक्त नरसीमेहताका जूनागढ़में ही जन्म हुआ था। राजकोटसे वेरावल लाइनपर ६३ मील दूर जूनागढ़ स्टेशन है। नगरमें पूर्वमें गिरनार पर्वत है।

पू.गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजके साथ जैसे ही जूनागढ़ नगरमें पहुँचे, सर्वप्रथम वे श्रीनरसीमेहताके घरमें गये। यहाँ नरसीमेहताके आराध्य भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शन करते ही वे रससिन्धुमें डूब गये। अहा ! भक्त नरसीके प्रति भगवान्का कैसा अगाध भक्तवात्सल्य था। पू. गुरुदेवके प्राण प्रेमावेशसे स्पन्दित होने लगते हैं। भगवान्के अनन्त यशको बारंबार स्मरण करनेकी लालसा उनमें हिलोरें लेने लगती हैं –'' हाय ! अनन्त-अनन्तकालतक श्रीकृष्णचन्द्रका यह भक्त-निर्वाहक रूप मेरे प्राणोंका आधार रहे, वे प्रीति-प्रतिपालकके रूपमें ही मेरे प्राणोंमे समाये रहें।'' – यही अभिलाषा पू. गुरुदेवके रोम-रोममें झंकृत होने लगती है।

पू.गुरुदेवके मनमानसमें लीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्रका सेठ साँवलशाह वाला रूप मंथन करने लगता है। किसी अचिन्त्य प्रेरणावश श्रीनरसीमेहताका जन्मसे लेकर उनके शाश्वत गोलोक-प्रवेशतकका सारा जीवनचरित्र उनके सामने चित्रपटकी रीलकी तरह व्यक्त हो उठता है। पू.गुरुदेव चकित हो उठते

हैं। महाभाग नरसीके साथ प्रभुने साँवरिया सेठ बनकर भक्त-वात्सल्यका जैसा प्रकाश किया है, वैसा तो अन्य किसी अवतार अथवा किसी भी रूपमें देखनेको ही नहीं मिलता। सेठ नरसीके मनोरथ पूर्ण करनेके लिये भगवान्‌ने क्या नहीं किया ? वे मन-ही-मन अपने प्राणपतिके निर्मल स्वभावपर न्यौछावर हो उठते हैं। " प्रभो ! आप अनन्त भक्तवत्सल हैं। आपके प्रीतिदानका, आत्मीय स्वभावका, आपके वात्सल्यका, पार नहीं। आपके कर्म विचित्र और पूर्ण पवित्र हैं। आपका यह श्रीकृष्ण-विग्रह अपने भक्तोंकी ही अभिलाषामयी अभिव्यक्ति है। यह भला पंचभूतोंकी रचना कैसे संभव है ? यह तो अप्राकृत विशुद्ध सत्वमय है। किन्तु यह विरुद्ध धर्माश्रयत्वको स्वीकारकर अंजार ग्राममें नानी बाईका माहेरा भरने भी आता है। यह श्यामलदास सेठ बनकर भक्तोंकी हुण्डी भरपायी भी करता है। फिर भला इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी अनन्त महिमाको कोई तात्विकताकी कसौटीपर कैसे कसे ? एक ओर जहाँ रसराज-महाभावरूपमें आप नित्य विराजित हो, दूसरी ओर प्राकृत मायामय जगत्‌में भक्तोंके लिये कैसी-कैसी विचित्र प्राकृत लीलायें कर बैठते हो, भला, आपको कोई किसी भी कसौटीपर कैसे कस पावेगा ? सर्वथा स्वच्छन्द आप और आपकी भक्तपरवश लीला जो है !

इसीलिये प्रभो ! मैं तो उनको ही धन्य-धन्य मानता हूँ जो भक्तराज नरसीमेहता जैसे किसी भोले-भाले निर्मल विश्वासी भक्तके द्वारका आश्रय लेते हैं, श्वानवत् ऐसे भक्तोंका द्वार जो क्षण भर भी नहीं छोड़ते, अव्यग्र चित्तसे भक्तोंके आश्रयमें निवास करते हुए जो सन्तोंके साथ घटी हुई आपकी अनुग्रहमयी लीलाओंके साक्षीवत् दर्शन करते हैं। आपके हेतुरहित विलक्षण प्रेममय चरित्रोंसे जिनका आपपर अटूट-अमोघ विश्वास पुष्ट होता है; उस विश्वासमें पुलकित उनका रोम-रोम परम कृतज्ञतासे भरा आपके नाम, रूप, लीलागानमें डूबा रहता है। आपके भक्त-परवश चरित्रोंको सुन-सुनकर आदरकी भावनासे उनकी अञ्जलि बँध जाती है। प्रेमावेशसे 'हरे ! नारायण! जगत्पते!' की कृतातासे भरी पावनतम नामध्वनि उनके मुखसे निकल पड़ती है। उनका अन्तर्मन आपके यशकी निष्ठासे पूर्ण छलकता रहता है। वे काय-मनो-वाक्यसे आपकी लीला-कथाओंको ही अपने जीवनका सार-संबल बनाये रखते हैं। उनके प्राण-धारणका अवलम्ब आपके पावन चरित्र और यश ही होते हैं। सन्तोंका द्वार वे किसी भी संपत्ति-विपत्तिमें नहीं छोड़ते। अतः उन सन्तोंके

निकट रहने वालोंको आपकी चर्चा अतिशय सुलभ रहती है। जीवनका प्रत्येक क्षण उनका आपके यश-गान, यश-श्रवण और यशके चिन्तन-मननमें ही व्यतीत होता है। हे अजित् ! आप ऐसे आपके यश-कीर्त्तन करने वालोंके द्वारा सदा जीत लिये जाते हो। अन्य कोई साधन न कर केवल आपकी ओर कृपाकी याचनामें जीवन बितानेवालोंसे आप वशीकृत हो जाते हो। धन्य है, भक्तराज नरसीमेहता और उनपर हुई आपकी वात्सल्य राशिकी वर्षा ! धन्याति-धन्य हैं वे भक्त जो नरसी-चरित्रका अनवरत गुणगान कर रहे हैं।

पू.गुरुदेवने उसी समय निर्णय कर लिया कि वे 'भक्तराज नरसीका माहेरा' नामक मारवाड़ी भाषामें लिखित गेय पद्यरचना गोरखपुर जाते ही प्रकाशित करवावेंगे और उसका अनुवाद आंग्लभाषामें शुद्ध रूपमें करवावेंगे। इसीके फलस्वरूप पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने तुरन्त ही श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको बुलवाया और उन्हें अपने मनकी बात बतलायी। पू.गुरुदेवने कुछ काल वहीं बैठकर श्रीगोस्वामीजीसे भक्तराज नरसीके विलक्षण दो पद सुने। वे पद भी यहाँ दिये जारहे हैं।

{पद संख्या १}

(श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने निम्नलिखित पदको राग खम्माचमें गाया था)

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।।टेक।।
सकल लोक माँ सहुने वन्दे, निन्दा न करे केणी रे ।
वाच काछ मन निर्मल राखै , धन-धन जननी तेणी रे ।।१।।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेने मात रे ।
जिव्हा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झालै हाथ रे।।२।।
मोहमाया व्यापै नहीं जेने,दृढ वैराग्य जेना मन माँ रे।
रामनाम सूँ ताली लागी, सकल तीरथ तेना तन माँ रे।।३ ।।
बण लोभी ने कपटरहित छे , काम क्रोध निवार्या रे।
भणै नरसैयो तेना दरसण करताँ कुल एकोतर तार्या रे।।४।

{पद संख्या २}

भूतल भक्ति पदारथ मोटूँ ब्रह्मलोक माँ नाहीं रे।
पुण्य करी अमरापुरी पाम्या, अन्त चौरासी माहीं रे।।
हरि ना जन तो मुक्ति न माँगे, माँगे जन्म-जन्म अवतार रे।

नित सेवा नित कीर्तन उत्सव, निरखे नन्दकुमार रे।।
भरतखण्ड भूतल में जन्मी, गोविन्द ना गुण गाया रे।
धन धन रे एनाँ मात पिता ने, सफल करी निज काया रे।
धन बृन्दावन धन ए लीला, धन ए ब्रजना बासी रे।
अष्ट महासिधि आँगण ऊभी मुक्ति छे एमनी दासी रे।।
ए रस नो स्वाद शंकर जाणै, कै जाणै शुक जोगी रे।
कोई एक जाणै ब्रजनी गोपी, भणै नरसैयो भोगी रे।।

जूनागढ़ स्टेशनसे लगभग तीन मील दूर इन्द्रेश्वर शिवमन्दिर है। यहाँतक यद्यपि सड़क है किन्तु मार्ग वनका है। कहते हैं, यही वह स्थान है, जहाँ अपने बड़े भाई द्वारा घरसे निकाल दिये जानेपर भक्त नरसी'मेहताने कुछ काल व्यतीत किया था। उन्हें बड़े भाई एवं भावजने तो घरसे निकाल दिया ही था, अतः चलते-चलते वे सर्वसंतापहारी भगवान् भोलेनाथकी ही शरणमें आये। इस इन्द्रेश्वर शिवालयके निकट जलाशयमें उन्होंने स्नान किया और वनके बिल्वपत्र एवं पुष्पोंसे भगवान्‌की पूजा की। उनका यही निश्चय था कि चाहे अन्न-जलके बिना प्राण चले जावें, अब भगवान् शंकरका दर्शन पाये बिना यहाँसे नहीं ही हटूँगा।

भक्तराज नरसीमेहताकी दृष्टिमें शिवलिंग पत्थर तो था नहीं, अपितु साक्षात् कैलासपति थे। यहाँ रात्रिमें आज भी हिंस्र पशु आते हैं, अतः उन दिनों तो उनका पूरा भय था। श्रीनरसीमेहता भगवान् औढ़रदानीके शरणमें जमीनपर सिर टेके अनवरत सात दिन भूखे-प्यासे पड़े रहे। दिवसके पश्चात् रात्रि आती और रात्रिके पश्चात् दिवस आकर चला जाता। किन्तु वे अपनी श्रद्धा और संकल्पसे लेश मात्र भी विचलित नहीं हुए।

इस प्रकार सात दिनकी तपस्यासे कैसासपतिका आसन डोल गया। सातवें दिवस आधी रातके पश्चात् भगवान्‌ने नरसीको दर्शन दिये।

पू. गुरुदेव इस मन्दिरके दर्शनके सम्बन्धमें कह रहे थे कि अधिकांश शिवमन्दिरोंमें जहाँ भगवान् नर्मदेश्वरकी प्रतिमा प्रतिष्ठित नहीं होती, तमोगुण आच्छन्न रहता है। किन्तु भक्तराज नरसीकी प्रथम उपासनास्थली होने के कारण इस स्थानमें उन्हें द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका-सा तेजोवलय सर्वत्र व्याप्त दृष्टिगोचर हुआ। यह लिंग आज भी ऊपरसे फटा है और इसपर शिखर स्थापित नहीं है।

जूनागढ़में मुख्य तीर्थ तो गिरनार पर्वतकी चढ़ाई है। गिरनारकी पूरी यात्रा जैन एवं सनातनी दोनों ही समान श्रद्धासे करते हैं। हजारों सीढ़ी चढ़कर यह यात्रा की जाती है। पू.गुरुदेवने भी सभी यात्रियोंके सहित यह यात्रा की थी ।

डाकोरके रणछोड़राय

पश्चिम रेलवेकी आनन्द गोधरा लाइनपर आनन्दसे लगभग २०मील दूर डाकोर नगर है। पू.गुरुदेवने यात्रियों सहित यहाँ आकर गोमती सरोवरमें स्नान किया। यह तालाब लगभग चार फर्लांग लम्बा एवं एक फर्लांग चौड़ा है। पू. गुरुदेवने यहाँ तैरना प्रारंभ कर दिया था।

स्नान करके पू.गुरुदेव रणछोड़रायजीके दर्शन करने गये। श्रीरणछोड़रायका मन्दिर विशाल है और सामने खुला चौक है। मध्यमें ऊँची बैठकमें मन्दिर है। मन्दिरमें मुख्य पीठपर श्रीरणछोड़रायजीकी चतुर्भुज मूर्त्ति पश्चिमाभिमुखी खड़ी है। श्रीरणछोड़रायजीके चरण-स्पर्श सबके लिये सुलभ हैं। लोग उत्तर द्वारसे भीतर आकर चरणस्पर्श करके दक्षिणद्वारसे बहिर्गत हो जाते हैं।

पू.गुरुदेवके सम्मुख डाकोरनाथजीकी जो छवि प्रकाशित हुई वह वर्णनातीत थी। पू.गुरुदेव उत्तर द्वारसे गर्भगृहमें प्रविष्ट हुए थे और उनके एकान्त दर्शन एवं व्यक्तिशः पूजनमें कहीं कोई बाधा उपस्थित नहीं हो, अतः पण्डोंने यात्रियोंको कुछ कालके लिये बाहर ही निरुद्ध कर दिया था। गर्भगृहमें श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवके सहित पूजन कर रहे थे। पू. गुरुदेव तो संन्यासी थे, अतः साक्षीवत् खड़े थे, पूजनका सम्पूर्ण कार्य तो पू.पोद्दार महाराज अपने परिवार सहित अपने हाथों सम्पन्न करवा रहे थे।

जैसे ही पू. गुरुदेवकी दृष्टि भगवान्‌के अपूर्व शोभासम्पन्न चरणोंपर पड़ी, वे विलक्षण प्रेम एवं आनन्दमें सराबोर हो उठे। श्रीपोद्दार महाराजने पासमें खड़े गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कहा कि वे श्रीराधाबाबाको एक किनारे खड़ाकर सम्हालें। कहीं भावोद्दीपनवश भीड़में इन्हें सम्हालना कठिन नहीं हो जाय।

पू.गुरुदेवकी दृष्टिमें तो भगवान्‌के अरुण चरणोंकी अँगुलियोंके दस

नख इस प्रकार शीतल ज्योत्स्नासे दिपदिपा रहे थे, मानो चन्द्रमाके टुकड़े मन्दिरभूमिमें बिखरे पड़े हों। ओह ! जवापुष्पके समान भगवान् गदाग्रजके लाल-लाल चरणतलोंमें चक्र, अर्धचन्द्र, अष्टकोण, त्रिकोण, यव, आकाश, छत्र, कलश, शंख, गोष्पद, स्वस्तिकादि चिह्न कैसी शोभा पा रहे हैं। भगवान्के चरणकमलोंमें परम मनोहर रत्नजटित नूपुर कैसे फब रहे थे। लावण्ययुक्त परम मनोहर दोनों घुटनोंकी चमक तो पीताम्बरके आच्छादनके उपरान्त भी प्रकट हो रही थी। इन्हें देखकर सभी भक्तों, पार्षदोंका मन मुग्ध हो रहा था। ओह ! भगवान्के दोनों उरु अपनी अप्रतिम छविसे मनोहर कदली-स्तम्भोंकी शोभाको परास्त कर रहे थे। वर्त्तुल नितम्बभाग सुधासम्भृत कमलके समान मादक था। इन नितम्बोंपर कन्दर्प स्वयं मोहित था।

पू.गुरुदेवके सामने रणछोड़राय श्रीकृष्णकी जो शोभा अभिव्यक्त हो रही थी, उसे देख-देखकर वे विमुग्ध थे। गदा,शंख, चक्र और कमल धारण किये चारों भुजाओंकी कैसी विलक्षण शोभा है। सभी आयुध ऊर्ध्वरूपमें धृत हैं। भुजाओंमें केयूर एवं कंकण शोभा पा रहे हैं। रक्तकमलके समान लाल-लाल करतलोंमें भी विविध चिह्न हैं। वक्षस्थल तो मानो लावण्यका घर ही है। मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ, विद्युत्के समान चमचम करती स्वर्णरेखा, उनपर धवल हंसोंके समान स्वच्छ वर्णकी मुक्तामाला, फिर सर्वोपरि वैजयन्ती, साक्षात् लक्ष्मी इस सौन्दर्यपर मुग्ध है। ग्रीवा कैसी मधुर और आकर्षक है ! ठोढ़ी विविध हास्यरसकी छटासे अत्यन्त मधुर एवं प्रकाशयुक्त प्रतीत हो रही है। कण्ठदेशमें अनमोल रत्नोंसे खचित गलपट्ट आभूषण धारण किये हैं। अहा ! रणछोड़राय भगवान् द्वारकाधीश श्रीकृष्णकी सदा ही जय हो !

ललित त्रिभंग मुद्रामें खड़े वे अभी भी अपने ब्रजविहारकी स्मृतिको जागृत किये हैं। पू.गुरुदेवकी दृष्टि भगवान् रणछोड़रायके चरणोंसे धीरे-धीरे ऊपर उठती प्रभुके मुखारविन्दकी शोभापर मँडराने लगती है। भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनके मुखचन्द्रको और उनके प्रेमभरे नेत्रोंके दर्शन करते-करते तो पू. गुरुदेव अप्रतिम उच्छलित प्रेमसिन्धुमें बह उठते हैं। उनके हृदेशमें ऐसी भाव-विह्वलता उद्दीप्त होती है, जिसका वर्णन संभव ही नहीं है। वाग्वादिनी तो इसके एक अल्प-से अंशका भी चित्रण करनेसे रही। "भगवान् श्रीकृष्ण तो उनके प्रियतम हैं, वे हम सभीको छोडकर यहाँ द्वारका आ बसे हैं। अब इनसे वे कैसे अपने नेत्र चार करें ? एक विचित्र-से मानका भाव पू.गुरुदेवके मनमें

उत्थित होकर उन्हें मुखदर्शनसे निवृत्त कर देता है। शील-संकोचवश उनके नेत्र मुँद जाते हैं, मन स्तम्भित हो जाता है। यंत्र-परिचालित -से उनके चरण मन्दिरसे बाहर भागनेको उद्यत हो उठते हैं। उन्हें भावावेशमें लगता है –"अपनी अग्रजा राधा भगिनीको छोड़ कहाँ चली आयी वह वहाँ एकाकिनी ? ये तो द्वारकाकी वीथियाँ हैं ! यहाँ उसका प्रयोजन ही क्या है ? हाय ! वह एकाकिनी विरहिणी उनकी बहन ! उससे विलग वह कैसे हो गयी ? यह अन्ततः हुआ कैसे ? कौन उसे ब्रज-गिरिपरिसरसे यहाँ लाया ? उनकी बुद्धि कुण्ठित-सी होकर जड़ होने लगती है। तत्क्षण ही उन्हें हृदयमें ऐसी वेदना होती है, मानो प्राण ही छूट जावेंगे। परन्तु इसी क्षण श्रीपोद्दार महाराज पूजा सम्पन्नकर उनके पास चले आते हैं। पू.गुरुदेवको श्रीपोद्दार महाराज दिखते नहीं । उन्हें तो उनकी अग्रजा राधा ही दृष्टिगोचर होती है। उन्हें ऐसी सान्त्वना मिलती है, मानो तृषित चातकपर स्वाति मेघने निर्मल जल वर्षा कर दी हो। जैसे विरहाग्निकी भीषण ज्वालासे धक्–धक् जलते पुष्प-पल्लवमय मनोहर उद्यानमें किसीने सुधासिन्धु प्रवाहित कर दिया हो। पू. पोद्दार महाराज जैसे पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भावोंसे पूर्णतया परिचित हों –उनका हाथ पकड़कर खींचते, आकर्षित करते-से उन्हें भीड़से बचाते एकान्त कोनेमें ले जाते हैं। अतिशय मधुर वाणीमें उन्हें सम्बोधितकर कहते हैं –"बाबा ! अपनेको तो अपना बृन्दावन ही भला ! यहाँ अपना प्रयोजन ही क्या है ? ये तो राजमहल हैं ! कहाँ कालिन्दीका निर्मल तट, कदम्ब और गिरिकानन और कहाँ ये वैभवमय प्रासाद ? यह सब स्वप्नवत् है। ऐसे ही दिख रहा है। मात्र मायाजन्य खेल है ।"

पू.गुरुदेव अभी भी पूरे भावदशामें भरे हैं। वे मानो अपनी अग्रजा राधारानीसे जिज्ञासा कर रहे हों –इस प्रकार वे नेत्र उठाकर श्रीपोद्दार महाराज द्वारा खींचे, लिये जाते हुए भी उनके मुखकी ओर देखने लगते हैं। उनका रोम-रोम जैसे उनसे प्रश्न कर बैठता है –बहिन ! आखिर यह अन्त्यन्त आश्चर्यमयी असंभव घटना हुई तो कैसे ? प्रियतम प्राणवल्लभ यदि वृन्दावनसे मथुरा और मथुरासे द्वारका चले भी आये, तो मैं और तू दोनों विरह दावानलकी उत्तप्त लपटोंमें भस्म हो जातीं ! किन्तु हम दोनों समग्र ब्रजप्रदेश, गिरिपरिसर, समग्र सखीसमुदायको छोड़, इतनी दूर यहाँ द्वारकाके राजमहलोंमें आ कैसे गयीं ? क्या हमारे प्राणवल्लभ प्रियतम श्यामसुन्दर

तंत्रविज्ञानके इतने पण्डित हैं कि विरहज्वालासे जलते ब्रजसे हमें यहाँ पलक झपकते ही उठा लाये ? क्योंकि जो कुछ किया है वह तो सबका सब हमारे प्राणवल्लभने ही किया है ! उन्हींकी अचिन्त्य महाशक्तिके प्रभावसे ही हम पलक झपकते बिना अपनी रुचि एवं चेष्टाके ब्रजसे यहाँ द्वारका आ गयीं। परन्तु मैया यशोदा, महाराज नन्दराय आदि सब हैं कहाँ ? उनके बिना हम यहाँ कैसे रह पावेंगी ? प्रियतमने तो हद ही कर दी ! यह तो परम विचित्र बात हो गयी ! हम सब तो अतिशय भीषण विरहज्वालासे चीत्कार कर रही थीं, फिर अपने-आप वहाँसे यहाँ कैसे चली आयीं ?

पू.गुरुदेवके भावसंसारके प्रश्नोंका श्रीपोद्दार महाराज क्या उत्तर दें ? वे मात्र मुसका उठते हैं। श्रीपोद्दार महाराजकी वह मुसकान पू.गुरुदेवको पुनः अपने ब्रजभूमिके संसारमें स्थापित कर देती है। श्रीकृष्णचन्द्रकी अखण्ड स्मृति उनके मनमें जाग उठती है और उनमें उनके प्रत्यक्ष संयोगकी पुनः भावना प्रबल हो उठती है। अपने प्रियतमको अपने भावप्रदेश ब्रजमें ही देख वे अप्रतिम भावसिन्धुमें बह उठते हैं।

बम्बईमें तीर्थयात्राट्रेन

बम्बईमें श्रीपोद्दार महाराजका दीर्घकालतक निवास रहा है। अतः स्वाभाविक ही था, समग्र मारवाड़ी समाजने उनका पूरे उल्लास और हृदय खोलकर स्वागत किया। तीर्थयात्राट्रेनके संग उन्हें बम्बई आया देख स्टेशनपर ही अपार जनसमूह एकत्रित था। श्रीपोद्दार महाराजका बम्बईमें बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम था। उन्हें अपने अनेक पुराने मित्रोंसे मिलना था। पू.गुरुदेव तो सिंहानियाबाड़ी, भुलेश्वरके एक कमरेमें परम एकान्तिक परिवेशमें थे। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी उनके साथ थे ही। बहुत आवश्यक लोगोंसे मिलनेके उपरान्त शेष समय वे श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीसे ब्रजरसके पदगायन-श्रवणमें निरत हो गये थे। श्रीपोद्दार महाराजके स्वागत-सत्कार, सत्संग-प्रवचन तथा उनके जुलूस आदिमें उनका मित्रोचित उत्साह अवश्य था, किन्तु वे अपने आन्तरिक भावोच्छलनजनित उल्लासमें इतने डूबे थे कि उन्हें बाह्यावेशके

लिये अवकाश ही अत्यल्प था।

श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीसे उनका पदगायन-श्रवण कार्यक्रम पूर्वतः ही निर्धारित हो गया था। उनके निवासकक्षके द्वार भीतरसे बन्द थे। शौचादिके लिये ही वे कमरेसे बाहर आते थे। इस बीच यदि कोई उनसे मिलने आता तो वह कागजपर लिखी अपने नामकी पुर्जी दरवाजेकी सन्धिमेंसे भीतर डाल देता था। जब एक पदगायन सम्पूर्ण होकर दूसरा प्रारम्भ करना होता तो उस सन्धिकालमें पू. राधाबाबा वह चिट पढकर समागत व्यक्तिसे या तो तुरन्त ही मिल लेते अथवा उसे मिलनेके लिये भविष्यमें कोई समय निर्धारित कर देते थे। उनकी भिक्षा रात्रिमें ९-१०बजे होती थी और भिक्षाके उपरान्त मात्र दो घण्टे विश्रामके पश्चात् सम्पूर्ण रात्रि वे श्रीवल्लभलालजीसे पदगायन ही सुनते थे। वे केवल अपनी परमावश्यक पूजा-अर्चनाके लिये एक-सवा घण्टेका अवकाश प्रातः लेते थे। जल पीना आदि कार्य भी उनके इस पदगायनके मध्य ही सम्पन्न होते थे। मैं यहाँ दो ब्रजरसके पदोंका मात्र एक प्रसंग प्रस्तुत कर दे रहा हूँ। प्रथम पद एक उपालम्भका पद है, जिसे श्री वल्लभलालजी गोस्वामीने पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको सुनाया था–

(पद)

गारी मत दीजो मो गरीबनीको जायौ है।।टेक।।
जितौ तो बिगार कियौ, आनि कहौ मोसों तुम,
मैं तो काहू बातनमें नाहीं तरसायौ है।।
दधिकी मटुकी भरी आँगनमें आनि धरी
तोल-तोल लीजो भटू जेतो जाको खायौ है।
सूरदास प्रभु प्यारे निमिष न हूजे न्यारे,
कान्ह जैसो पूत मैं तो पूरे पुन्यन पायौ है।।

पू.गुरुदेव राग बिलावलमें गाये गये इस सूरदासजीके पदको श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीके मुखसे हवेली संगीतकी बंदिशमें सुन रहे हैं और उनके हृदयमें उद्वेलित भावसिन्धुकी उत्ताल तरंगोंने उन्हें किसी अलौकिक चिन्मय धाम गोकुलमें नन्दभवनके मध्य पहुँचा दिया है। यशोदारानीको अपने पुत्र श्रीकृष्णचन्द्रकी करतूतोंका उलाहना देने यूथ-की-यूथ ब्रजगोपियाँ नन्दभवन आई हैं।

पू.गुरुदेव इस समग्र लीलाके प्रत्यक्ष साक्षी हो रहे हैं। वे मञ्जुश्यामाके

भावदेहमें अपनी बड़ी बहन – श्रीमती राधारानीके संग यशोदारानीके निमन्त्रणपर श्रीकृष्णके अशेष मंगलके उद्देश्यसे भोजन-निर्माणके लिये प्रातः ही नन्दभवन आये हैं एवं गोपियोंकी यह उपालंभ-वार्त्ता श्रीमती नन्दरानीके बगलमें आसीन होकर श्रवण कर रहे हैं।

"सारे ब्रजपुरमें यह समाचार विद्युत्‌की तरह घर-घर फैल गया है– यशोदानन्दन आभीर सुन्दरियोंके घर-घर जाकर अनके भवनोंमें मनमानी क्रीड़ा करते हैं। वे अपने सखाओंके संग अपनी इन्द्रनीलद्युति अंगोंकी शीतल किरणोंसे गोपियोंके नवनीत भण्डारोंको उद्भासित करते है, निरे ब्राह्ममुहूर्त्तमें। कभी-कभी गहन निशामें भी वे अपनी नवजलधरकान्तिसे पुरवीथियोंको सिक्त करते उनके गृहोंमें पहुँच जाते हैं। अपने परम रमणीय बालचापल्यका प्रकाश करते वे दधि, दुग्ध, नवनीत जो भी इनके गृहोंमें संचित मिल जाता है, उसे अपने सखाओंमें लुटा देते हैं, गोरस पात्रोंको तोड़-फोड देते हैं, गो-गोवत्सोंको बन्धनमुक्त कर देते हैं, गोपशिशुओंको चिकुटी काटकर रुलाकर भाग जाते हैं। भीतर अवस्थित रहकर आनन्द-वितरण करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र आज स्वयं रसवश हुए आनन्दोपभोगके लिये चञ्चल हो रहे हैं। उनकी उद्धत मधुर चेष्टाओंके दर्शन कर-करके आभीर सुन्दरियाँ आनन्द-विवश हो जा रही हैं। अपने लड़ैतेको आनन्दित करनेके लिये वे यदा-कदा रोषका नाट्यकर उन्हें रोकना भी चाहती हैं, तो बोल नहीं पातीं, उनका कण्ठ आनन्दसे सर्वथा रुद्ध हो जाता है।

"अचानक इन ब्रजसुन्दरियोंके मनमें एक बात उठ आती है– श्रीकृष्णचन्द्रकी इन चञ्चल चेष्टाओंका आस्वादन हम सभीको तो प्राप्त हो रहा है, हम सभी आनन्दमें डूब-उतरा रही हैं; पर ब्रजरानी तो इस सुखसे वञ्चित ही रहती हैं। नीलमणि अपने घरमें तो अधिकांश रहते भी नहीं, और रहते हैं तो ऐसी उद्धत चेष्टा नन्दरानीके भयसे करते नहीं। बस, इस विचारके उदय होते ही ये सभी गोपियाँ मन-ही-मन कार्यक्रम स्थिर कर लेती हैं – उलाहनेका मिस लेकर हम सभी ब्रजरानीके पास जावें एवं नीलमणिकी प्रत्येक चेष्टाका वर्णनकर ब्रजरानीको भी परमानन्द-सिन्धुमें निमग्न कर दें। अस्तु, सन्ध्याके समय यह स्थिर निश्चय होता है कि जिसके यहाँ जो-जो भी ब्रजरानीके पुत्रने औद्धत्य किया है, उसका प्रकाश उनके सम्मुख उपालंभके रूपमें निरे प्रातः ही किया जाय और यदि उस समय कहीं स्वयं श्रीकृष्ण ही वहाँ किञ्चित्

संकुचित, किंवा भयग्रस्त हुए दिख जावें तो उनकी उस अभूतपूर्व शोभाका पानकर कृतकृत्य भी हुआ जाय। जो हो, निशा आती है, एवं निशाका अवसान भी होता ही है। गोपसुन्दरियाँ तो सारी रात जागती ही रही हैं। उन्हें निद्रा आयी ही नहीं। यदि किसीको क्षण भरके लिये तन्द्रा-सी हुई तो उस समय भी स्वप्नमें उन्हें अपने उलाहने देने जानेका ही दृश्य दिखाई पड़ता है।

प्रातः समीरका स्पर्श पाते ही सभी गोपसुन्दरियाँ उठ खड़ी होती हैं। आवश्यक कर्मसे निवृत्त हो, विविध मनोहर श्रृंगारोंसे सज्जित हुईं, वे दल-की-दल नन्द-प्रासादकी ओर चल पड़ती हैं। देखते-ही-देखते उनसे नन्दप्रांगण भर जाता है। उनके आभूषणोंकी झनकारसे समस्त प्रासाद मुखरित होने लगता है। ब्रजरानी परम उल्लाससे सभीका स्वागत तो अवश्य कर रही हैं, परन्तु उन्हें अत्यन्त विस्मय है कि सर्वथा अनिमन्त्रित आज इतनी गोपसुन्दरियाँ अचानक उनके घर इस समय प्रातः-ही-प्रातः कैसे एकत्र हुई हैं। गोपसुन्दरियोंके लिये एक आश्चर्य यह भी है कि प्रत्येकको यह अनुभव हो रहा है कि मैं नन्दरानीके अत्यन्त समीप बैठी हूँ।

इधर श्रीकृष्णचन्द्र भी आज ब्रजरानीकी गोदमें ही बैठे हैं। वे सुवर्ण की कटोरीमें मेवा खा रहे हैं। नन्दरानी अपने नीलमणिके मुखचन्द्रकी ओर निहारती हुईं उन्हें मेवा खाता देख रही हैं।

यथायोग्य पहले सबका क्षेमकुशल पूछकर नन्दरानी उनसे उनके भवनमें प्रातः-ही-प्रातः आनेका कारण पूछती हैं। बस, सब गोपियोंके एक समूहकी जो एक अग्रणी गोपी है वह बोल उठती है –" ब्रजरानी क्या बताऊँ, तुम्हारे इस छोटे-से बालककी अभी कुमार वयस् है; किन्तु इसका भविष्य हमें तो बहुत ही उच्छृंखल, लबार होता दिखता है। भला, देखो ! अभी तो यह एक छोटा-सा पौधा है, इसमें मात्र दो पत्ते ही लगे हैं, जब अभीसे यह सम्पूर्ण भवनको प्रकम्पित कर दे रहा है, तो भविष्यमें तो न जाने यह क्या करेगा ? अरी महर ! अभी तो इसकी शक्तियाँ विकसित ही नहीं हुई हैं, फिर भी यह सम्पूर्ण ब्रजपुरको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेकी सामर्थ्य रखता है। तब जिस समय यह पौधा विशाल शाखा-पत्र-पुष्प-फल-समन्वित वृक्षके रूपमें परिणत होगा– तुम्हारा नीलमणि यौवनमें प्रवेश करेगा – उस समय महर, ये क्या करेगा ? ब्रजपुरकी कैसी दुर्दशा होगी, सोचकर चिन्ता हो उठती है।"

यह कहकर वह गोपसुन्दरी मौन हो जाती है। इससे अधिक वह भला

क्या शिकायत करती ?

यशोदारानी अपने नीलमणिपर लगा इतना बड़ा लांछन सुनकर स्तब्ध हैं। इतनेमें दूसरे समूहसे एक गोपी बोल उठती है—नन्दरानी ! मुझसे सुनो । मैं इस परम धृष्ट चंचलमति तेरे पुत्रकी करतूतें खोलती हूँ। यह देखो, कैसा भोला-भाला तेरे पास बैठा, मेवा कुतर रहा है, और कनखियोंसे हमें बैठा-बैठा निहार रहा है। नन्दरानी ! आज सम्पूर्ण ब्रजमें अधिकांश स्थानोंमें गोदोहन हो ही नहीं रहा। गायोंके थनोंमें दूध यह तेरा नटखट रहने ही नहीं देता। अकेला नहीं, दल-के-दल बालकोंको साथ लेकर यह हमारे घरोंमें गोदोहनसे पूर्व ही निरे ब्राह्ममुहूर्त्तमें पहुँच जाता है। वहाँ जाकर चुपचाप जितने बछड़े होते हैं, यह सबकी रस्सी खोल देता है। हम सब इसकी करतूत जान ही नहीं पातीं। समाचार पाकर हमारे गोप दौड़ते हैं तबतक तो बछड़े दूध पी चुके होते हैं। यह ऐसा चालाक है कि सबके सोये रहनेपर ही ऐसे कार्य किया करता है। जब कोई इसे देख लेता है तो ऐसा भोला मुख बनाकर हँस देता है कि जैसे कुछ नुकसान ही नहीं हुआ हो। कहता है— 'चाचा ! मैं वत्सपालक हूँ। रोज इन बछड़ोंको अपने हाथों कोमल घास तोड़-तोड़कर खिलाता हूँ, तुम लोग इनकी माताओंका दूध निकालकर इन्हें बुभुक्षित छोड़ देते हो। क्या इन्हें एक दिन भी मैं इनकी माताओंका दूध भरपेट नहीं पिलाऊँ ?' इसकी हँसीमें ऐसी मोहिनी है कि हमारा क्रोध वहीं शान्त हो जाता है। परन्तु जब यह इतना उदार बनता है, तो तेरे घरमें यह सब करतूत क्यों नहीं करता ? यदि यह प्रति दिवस ही ऐसा करेगा तो मेरी सास इसे भला गाली क्यों नहीं देगी ? जब मेरी सास इसे निपूते, कलमुँहे ! – कहकर गाली देती है तो यह तुरन्त ही उत्तरमें कहता है कि 'अरी बुढ़िया ! मेरे तो इतनी संतानें होंगी कि उनसे पूरा नगर भर जायगा। ' ऐसा कहते हुए हँसकर भाग जाता है।

अब तीसरे दलकी अगुआ गोपी कह उठती है – अरी ब्रजराज-महिषी ! ब्रजमें तो तुम्हारा राज्य है, तुम मालकिन हो, नीलमणि तुम्हारा पुत्र है, हम सब यह जान-समझकर नीलमणिको जितना खा सके, खिलानेमें प्रसन्नता ही अनुभव करती हैं, यह तुम भी जानती हो, परन्तु यह स्वयं तो खाता ही नहीं। हम जब मनुहार करती हैं तो यह सीधा उत्तर देता है –" री, क्या मेरे घरमें नवनीतकी कमी है, मेरी मैया क्या मुझे प्रीतिसे खिलाती नहीं है, जो

तेरे घरका खाऊँ ? ब्रजरानी ! अब भला हम इसे क्या कहें ? परन्तु इसके साथ तो सहस्रों वानर-दल पीछे-पीछे चलते हैं, इसके सखाओंकी भी गिनती नहीं। वे सब भरपेट खालें, इससे भी इसे सन्तुष्टि कहाँ ? यह तो सर्वथा अदृष्टपूर्व, अश्रुतपूर्व अपहरणकलाका प्रकाशक जो है ! चौर्यकलाका तो यह आचार्य बन गया है। यह हमें सुना-सुनाकर कहता है – 'इस गोपसुन्दरीके गृहके नवनीत, दधि सुस्वादु नहीं हैं, भावहीन हैं, यह फूहरी है, इसे माखन बिलौना आता ही नहीं, इसके घरका माखन, वानर एवं कूकर भी नहीं खाते। सर्वथा बेस्वाद इसका माखन जो है ! और इस प्रकार कहता हुआ यह हमारे घरके जितने नवनीत-दधि-दुग्ध-भाण्ड यत्नसे सुरक्षित रखे होते हैं, जो, जहाँ मिलते हैं, सबको फोड़ डालता है; हमारी गलियोंमें नवनीत-दधि-दुग्धकी धारा बह चलती है। अब हम तो भले ही तेरे लिहाजसे कुछ न कहें, हमारी सास, हमारी ददियासास तो तुझे एवं इसे,साथ ही तेरे सारे पुरखोंके लिये गालियों की झड़ी लगाये बिना मानेंगी नहीं। ।

वात्सल्यरस-घनमूर्त्ति ब्रजेश्वरी यशोदा इन गोपियोंकी सभी बातें विस्मय एवं विभ्रममें भरी सुनती जाती हैं, किन्तु अन्तिम गाली देनेकी बात सुनते ही वे भय एवं आशंकासे काँप उठती हैं। उनके मुखकी उत्फुल्लता जाती रहती है। निराशाभरी आँखोंसे वे ब्रजपुरन्ध्रियोंकी ओर देखती हुईं मन-ही-मन विचारने लगती हैं – "ओह ! यह मेरा नीलमणि अतिशय चंचल है, अत्यन्त साहसी है, भय तो इसे छू ही नहीं गया है, यह किसीसे तनिक डरता भी नहीं ! हाय ! कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? पता नहीं, वृद्ध गोपियोंकी दुराशीषसे इसका कोई अमंगल ही हो जाय ! दुर्दैव क्या कर बैठे ! "यह विचार आते ही अत्यंत दुःखभारसे उनके नेत्र निमीलित हो जाते हैं । वे उन ब्रजगोपियोंके सम्मुख अति दीन हो उठती हैं और विनय कर बैठती हैं।

"बहिनों ! ओह !! इस मेरे नन्हे-से नीलमणिको तुम गाली मत देना। यह मुझ गरीब गूजरीकी कोखसे जन्मा मेरे प्राणोंका सार-सर्वस्व है। ओह ! तुम्हारी सास, बूढ़ी ददिया सासके मैं पाँव पूजूँगी। यह तो अनेकों बार श्रीनारायणदेवकी कृपासे साक्षात् यमराजकी छाया छूकर लौट-लौटकर आया है, इसके लिये अमंगलसूचक किसी वाणीको मुखसे निःसृत मत होने देना, बहन ! मैं गरीबनी तुम्हारे चरण छूती हूँ।"

"देखो बहिनों ! तुम्हारे घरोंमें यह जितना बिगाड़ करे, तुम मुझसे

कहो, मेरे घरमें आँगनमें दधि, दूध, नवनीतके असंख्य माट रखे हैं, तुम तोल-तोलकर अपनी स्वेच्छासे अपनी सब क्षति पूरी करलो। मैंने तो इसे कभी किसी बातके लिये नहीं टोका है कि यह अपने सखाओंको मेरे घरमें खानेके लिये नहीं लावे। यह मेरा प्राणोपम पुत्र मुझे न जाने कितने जन्मोंके पुण्योंके फलोदयसे तो प्राप्त हुआ है, मेरी तो एक यही कामना है कि यह मेरे नेत्रोंके सामनेसे कभी दूर नहीं हो। ''

श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी अपनी अतिशय सुरीली बन्दिशमें उपरोक्त पदगायन कर रहे थे एवं पू. गुरुदेवके नेत्रोंसे बहती अश्रुओंकी लोर उनके कपोलोंको भिगो रही थी। बम्बईका भूलेश्वर स्थित पंचायतबाड़ीका कमरा पू. गुरुदेवकी दृष्टिसे सर्वथा ओझल हो गया था, और वहाँ नन्दभवन प्रकट हो गया था। उनके सम्मुख असंख्य गोपियोंके दल वहाँ खचाखच भरे थे। गोपियाँ एक-एककर उनके घरोंमें श्रीकृष्ण कैसे-कैसे क्या-क्या कर चुके हैं, – आदिसे अन्ततक घटनाओंका विवरण उलाहनेके रूपमें यशोदा मैयाको सुना रही थीं। और यशोदारानी सबसे उनका वृत्तान्त सुन-सुनकर अंजलि बाँध-बाँधकर क्षमा माँग रही थीं। वे अपने इष्टदेव भगवान् नारायणके चरणोंमें अपने पुत्र कृष्णचन्द्रकी रक्षाके लिये प्रार्थना भी कर बैठती थीं। बार-बार उनके मुखसे 'नारायण-नारायण' शब्द फूट पड़ रहे थे।

इसी भावमें पदका विराम हो जाता है और श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी दूसरा पद चयन करने पुस्तक देखने लगते हैं।

अहा ! श्रीकृष्णका गुणगान तो मन्दाकिनीकी उस सरस धाराके तुल्य है, जो किसी स्थलपर सघनवनकी ओटमें विलुप्त हो जाती है, और फिर आगे जाकर अनुकूल धरातल पाकर पुनः व्यक्त हो जाती है। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी एक पद समाप्त होनेपर कुछ काल रुकते हैं, फिर किसी दूसरे पदको पढ़ते हैं, उन्हें उद्दीपनका कोई-न-कोई भाव किसी पदमें दिखाई पड़ जाता है, बस, वे उस चरित्र-चित्रणका पद भावमें भरकर गाने लगते हैं। पू. गुरुदेवके ऐसे रसमय समाजको जिसमें सभी उच्चकोटिके भावप्रवण व्यक्ति हैं, भला, भव-जंजाल स्पर्श करे भी तो कैसे करे ? पू. गुरुदेव अपने निजजनोंमें बहिरंग दृष्टि होने जो नहीं देते !

स्वयं पू.गुरुदेवका मानस तो नित्य डूबा है सत्व-रज-तमोमयी प्रकृतिसे अत्यन्त परेके जगत्में । वे तो उस भावजगत्के प्राणी हैं, जहाँ प्राकृत

सृजनका कम्पन उद्वेलित नहीं करता, जहाँ संहारकी छाया छूती नहीं, वे तो अपनी ही महिमामें स्थित अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके साथ ही नित्य स्थित हैं, और अपने भावशरीरसे उनकी नित्य लीला अखण्डरूपसे देखते रहते हैं। उनके इस लीलादर्शनमें दूध, दधि, मेवा, चोरी, खाना-खिलाना, लुटाना, वितरण करना, सुख-दुख, हास्य-क्रन्दन, उपालम्भ और अमंगलकी चिन्ता सब सच्चिदानन्दकी लोल लहरियाँ हैं। इन लहरोंका रस लेते हुए पू.गुरुदेव अपनी हेतुरहित कृपावश यदा-कदा प्रापंचिक जगत्में रहनेवाले श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी, श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी जैसे भाग्यवान् जीवोंपर भी इन लहरोंकी एक-दो फुहारें बिखेर देते हैं। उनकी कृपासे ही श्रीवल्लभलालजीका मन भी तरंगायित हो उठता है और झूम-झूमकर मस्त हो गाने लगता है–

आवत बने कान्ह गोपबालक संग ,
नेंचुकी खुर-रेणु छुरित अलकावली।
भौंह मन्मथ चाप वक्र लोचन बाण,
सीस सोभित मत्त मोर चन्द्रावली।।
उदित उडुराज सुन्दर शिरोमणि वदन
निरखि फूली नवल युवति कुमुदावली ।
अरुण सकुचत अधर बिम्बफल उपहसत,
कछुक प्रकटित होत कुन्द दसनावली।
श्रवण कुण्डल तिलक भाल बेसर नाक
कण्ठ कौस्तुभ मणी सुभग त्रिवलावली।
रत्न हाटक जटित उरसि पदकन पाँति
बीच राजत सुभग झलक मुक्तावली।
वलय कंकण बाजूबन्द आजानु भुज
मुद्रिका करतल विराजित नखावली।
क्वणित कर मुरलिका मोहित अखिल विश्व
गोपिका जन मनसि ग्रथित प्रेमावली।
कटि क्षुद्र घण्टिका जटित हीरामणी
नाभि अंबुज वलित भृंग रोमावली।
धाय कबहुँक चलत भक्त हित जानप्रिय
गण्डमण्डित रुचिर श्रमजल कणावली।

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या
301-400
तक

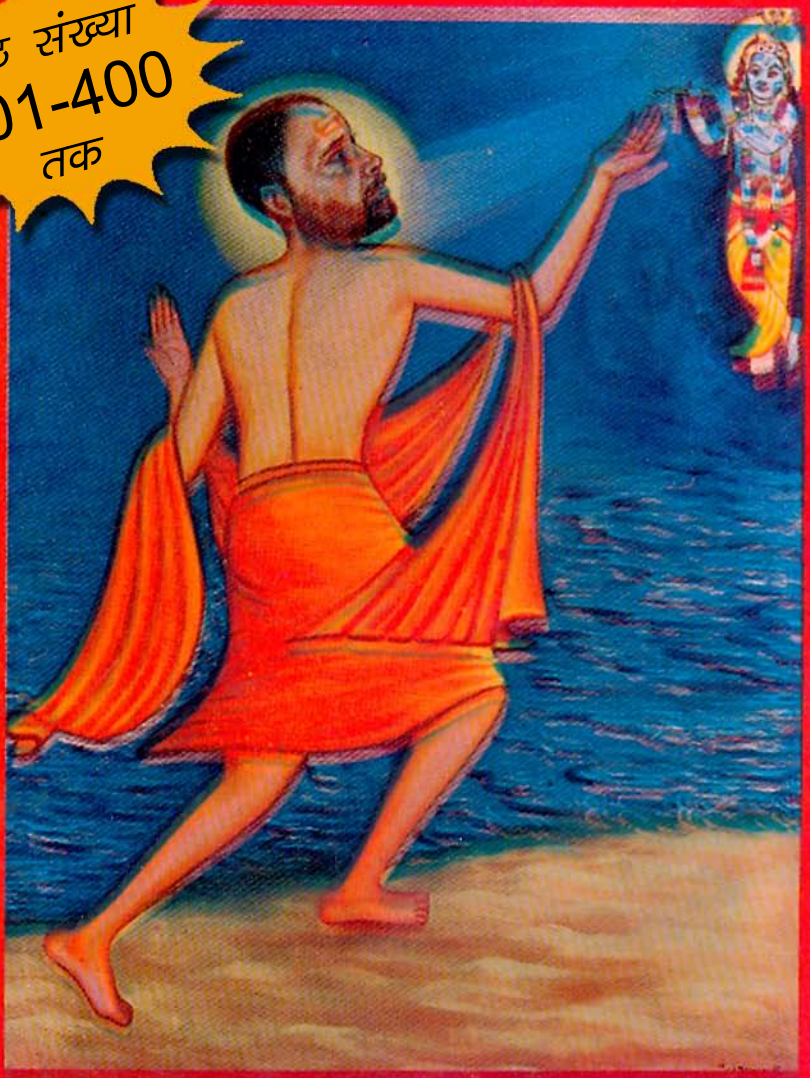

साधु कृष्णप्रेम

पीत कौशेय परिधान सुन्दर अंग
चलत नूपुर बजत गीत शब्दावली।
हृदय कृष्णदास गिरिवरधरन लालकी
चरणनखचन्द्रिका हरत तिमिरावली।।

ओह ! पदगायनकी प्रथम पंक्तिको सुनते ही पू.गुरुदेवके भावसंसारमें एक क्षणमें ही जो दृश्य चल रहा था, वह विलुप्त होकर दूसरा ही दृश्य उदय हो जाता है। अबतक तो वे अपने आराध्य बाल्यलीलाविहारी नन्दनन्दनको माँ यशोदाके क्रोड़में मेवा खाते देख रहे थे। ब्रजरमणियों द्वारा अपनी चंचल चौर्यचेष्टाओंका बखान सुनते हुए उनके परमाराध्य बालकृष्ण अपनी शिशुसुलभ कनखियोंसे किंचित् संकुचित, किंचित् भय-आशंकित अपनी माताकी भंगिमाओंको पढ़नेमें उलझे थे,– "भला, मैया इन उपालंभ देने आयीं गोपियोंके कथनपर कितना विश्वास कर रही है, और कहीं मुझे दण्डित करनेका विचार तो नहीं कर रही – उनका मन क्षण-क्षण इन्हीं आशंकाओंसे ग्रस्त है। यशोदा-क्रोड़-विराजित बाल्यलीलाविहारी पू.गुरुदेवके आराध्यके अतिशय मनोहर मुखपर इन सभी भावोंकी स्पष्ट छाया उभरती थी और उससे उनकी छवि और भी मनोहर हो जा रही थी। पू.गुरुदेव कहाँ तो उस बाल सौन्दर्यको निरखनेमें निरत थे और कहाँ एक क्षणमें ही उन्हें इस पदकी पंक्तियोंने वनचारणसे लौटते अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी कैशोर छविमें विभोर कर दिया। इस तुरन्तके भावपरिवर्तनसे अवश्य ही उन्हें एक झटका तो लगा और वे श्रीवल्लभलालजी गोस्वामीकी ओर देखकर किंचित् मुसकाये भी, किन्तु श्रीवल्लभलालजी उनकी मुसकानका अर्थ समझनेकी चेष्टा करें, इसके पहले ही वे इस पदगायनकी 'वाह-वाह' कर ऐसी प्रशंसा कर बैठे कि पद-गायक अपनी भूलको पहचान ही नहीं पाया और सब सहज हो.गया।

पू. गुरुदेव तो पलक झपकते ही नन्दभवनसे सीधे पहुँच गये हैं, बृन्दावन-वन-श्रीके पार्श्वमें। उनके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र सखा-परिवेष्टित असंख्य गोशावकोंके साथ वनसे ब्रजमें लौटनेकी त्वरामें हैं। वे गोवत्सोंका आह्वान करने लगते हैं, उन्हें वनसे लौटानेकी चेष्टा कर रहे हैं। 'श्रीदाम रे ! भैया सुबल ! देख आज कितना विलम्ब हो चुका ! सूर्य कितनी तेज गतिसे अस्ताचल की ओर भाग रहा है। अतिशय शीघ्रता कर, अन्यथा मैया न जाने कितनी चिन्ता कर उठेगी !'

लीलाविहारीका निदेश पाते ही वनको "हैओ ! हैओ !! अरे, रे, रे ! की ध्वनिसे निनादित करते सखागण राशि-राशि गोवत्सों और नेचुकी (गोवत्साओं)को हाँकने लगते हैं। अहा ! वेणुनाद, श्रृंगनाद, परस्परकी क्रीड़ा, नृत्य-गीत आदिका क्रम भी चल ही पड़ता है। इस आनन्दप्रवाहमें चलते-चलते वनकी सीमा भी समाप्त हो जाती है और गोपशिशु एवं गोवत्सोंके संग श्रीकृष्ण ब्रजमें प्रवेश करते हैं। गोपियाँ अपने-अपने घरोंकी छतपर चढीं उनकी शोभा देख रही हैं – "अहा ! वनसे लौटते उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी शोभा गोपियोंको बछड़ियोंकी खुरोंसे उड़ती धूलिसे सनी घुँघराली केशराशिमें कितनी मनमोहक लग रही है। उनकी लीलायुक्त चढ़ी हुई भौहें उन्हें ऐसी लगती हैं, मानो साक्षात् कामदेवने अपने हाथमें धनुष ग्रहण कर रखा हो, एवं कमनीय कटाक्षवर्षा करते तीखे नेत्रोंके बाण उस धनुषमें चढ़ा रखे हों। उनके शीशपर मत्त मयूरकी चन्द्रावली मुकुटके स्थानपर सुशोभित है। ओह ! माधुर्य एवं लावण्यके अपरिसीम सागर प्रियतम श्यामसुन्दरके मुखसे जो कान्तिकी अमृत किरणें फूट रही हैं, उससे ऐसा लगता है मानो पूर्व गगनमेंसे उडुराज उदय हो रहा है, और उसकी शोभा निरख-निरख नवयौवनवती कामिनियाँ कुमुदिनीके समान हर्षित एवं प्रेमसे विकसित हो रही हैं। उनके मंद सकुचाते लाल-लाल अधर इतने सरस हैं मानो दो बिम्बफल विकसित हुए मुसका रहे हों और उनके मध्य कुंद कलियोंकी-सी दसनावली किंचित् प्रकट हो जा रही हो। ओह ! दोनों कान स्वभावसे ही मनोहर हैं, विविध मणिजटित मकराकृत कुण्डलोंसे वे और भी भले लगते हैं, चमकते हुए ललाटपर चन्दनकी खौर और कुंकुमका तिलक अत्यंत शोभा पा रहा है। गरुड़की चौंचके समान नुकीली नासिकाके अग्रभागमें मुक्ताफलकी बेसर लटक रही है, और कितना लावण्य भरा है इस कण्ठमें। कण्ठदेशमें कौस्तुभमणि सुशोभित है और चारों ओर सुभग मुक्ता एवं मणियोंकी त्रिवलावली त्रिलोकीको मोहित कर रही है। वक्षस्थल तो मानों लावण्यका आकर है, उरस्थलमें रत्न एवं स्वर्णजटित पदक और मध्यमें सुभग मोतियोंकी लड़ें और उनकी झलक शोभाको द्विगुणित कर रही है। रक्तकमलके समान लाल-लाल करतलोंमें मुद्रिका राजित हैं और घुटनोंतक लटकती हुई दोनों भुजाओंमें बाजूबन्द, केयूर एवं कंकण शोभा पा रहे हैं। हाथोंमें नखोंकी अवली तो द्रष्टाके चित्तको बरबस आकर्षित कर लेती है। हाथोंमें वे मुरली लिये हैं और कभी-कभी उसे अधरोंसे सटाकर बजा देते

हैं, उस मुरलीवादनका यह चमत्कार होता है कि अखिल विश्व विमुग्ध हो उठता है एवं गोपीजनोंके मनमें प्रेमभावकी असंख्य मालायें गुँथ जाती हैं। कटि अत्यन्त मनोमोहक है और उसपर जो करधनी पहने हैं उसमें अत्यन्त छोटी-छोटी घंटिकायें लगी हैं। करधनी हीरामणियोंसे जड़ित है। उदर अत्यन्त लावण्यमय है और उदरमें नाभि कमलके सदृश विकसित है; फिर उसपर रोमावली भृंगोंकी पंक्तिकी शोभा दरसा रही है। वे अपने भक्तोंका हित देखकर दौड़ पड़ते हैं, उस समय उनके सुधासम्भृत कमलके समान कपोलोंपर रुचिर श्रम-सीकर -- स्वेदके कण प्रकट हो जाते हैं। उनके श्रीअंगोंमें पीताम्बरका परिधान झलमलाता रहता है और स्वयं कंदर्पको भी मोहित करने वाली चालसे जब वे चलते हैं तो उनके चरणोंमें संलग्न नूपुर सुमधुर गीतोंके स्वरोमें झनझनाते हुए बज उठते हैं। प्रियतम प्राणवल्लभ गिरिधारीकी चरणोंकी अंगुलियोंके नख चन्द्रमाओंके समान ज्योतिर्मान हैं और उनसे अज्ञानान्धकार समूल विनष्ट हो जाता है।"

ओह ! पू.गुरुदेव भी अपने भावशरीरसे अपनी अग्रजा राधारानीके साथ एक महलकी छतपरसे बहिन मञ्जुश्यामाके रूपमें ब्रजकी वीथियोंमें से गुजरती इस अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी गोवत्सोंके साथ आवनी-लीलाको प्रत्यक्ष देख रहे हैं। उनके प्रियतम नीलसुन्दरने उनकी ओर एक दृष्टि फेंककर अपने अधरोंपर बंशी रखकर स्वर भरना आरंभ कर दिया है। उनका यह स्वर कितना उन्मादी है –इसे ब्रजके कीट-पतंग-भृंगतक जानते हैं। उनको घेरे झूमते-चलते सखागण, छतों और अटारियोंपर चढ़ी सखियाँ , झरोखों और गवाक्षोंसे निहारतीं गोपरमणियाँ – सभी तो बह चले, बह चलीं इस बंशीके मधुमय प्रवाहमें। इसी प्रवाहमें पूरे डूबे पू.गुरुदेव कैसे महाभाग्यवान् हैं कि प्रत्यक्ष देख रहे हैं –अत्यन्त स्पष्ट प्रत्येक गायका नाम उनके प्रियतम नीलसुन्दरके वंशीछिद्रोंसे झरता जा रहा है, और वे गायें भी उसी क्रमसे गोष्ठकी ओर संचालित होती जा रही हैं, और दूसरी ओर गोपशिशुओंके संगीतमें नीलसुन्दरकी अद्भुत महिमा, भूरि-भूरि प्रशंसा व्यक्त हो रही है तथा उन-उन भावोंसे परिभावित वे शिशु तदनुरूप विविध भंगिमाओंका प्रकाश करते हुए नाचते चल रहे हैं। पू.गुरुदेव देख रहे हैं – कितनी देर लगती गोष्ठ पहुँचनेमें ; बस, यह रहा सामने नन्दभवनका तोरणद्वार और उनके प्रियतम गोष्ठमें प्रविष्ट हो रहे हैं।

अस्तु, पू.गुरुदेवके प्राणपति तो अपनी जननीके भुजपाशमें जा बँधते हैं और जननी उन्हें लेकर अन्तःपुरकी ओर चल पड़ती हैं; किन्तु पू.गुरुदेवके भावशरीरपर तो एक विचित्र-सा शील-संकोच और लज्जाका आवरण आ जाता है। वे तो कुलवधू हैं, किसीकी परिणीता हैं, इसलिये वे कैसे नन्दभवनमें चली जावें ? यंत्र-परिचालित-से पू.गुरुदेव मंजुश्यामा भावमें अपनी अग्रजा राधाके संग महलकी छतसे नीचे लौट आती हैं, अपने-अपने शयनकक्षमें। उनकी अग्रजा राधा अतिशय श्रान्त शय्यामें लेट जाती हैं। वे उपधान व्यवस्थितकर उनका मस्तक उसपर निविष्टकर देती हैं और चरणोंमें उसी शय्यापर बैठ, व्यजन डुलाने लगती हैं। श्रीराधारानीके नेत्र निमीलित हो जाते हैं, परन्तु इससे क्या हुआ ? नीलसुन्दर तो उनके नेत्रोंकी पलकोंके भीतर अवस्थित उनके सम्मुख मुसकाते प्रकट हो ही जाते हैं।

पंचायतबाड़ी भूलेश्वरमें पू.गुरुदेवका प्राकृत शरीर नेत्र निमीलित किये, श्रीवल्लभलालजीके पदगायनके भावमें पूरा डूबा, बाह्य-ज्ञान-विरहित स्थित है। श्रीवल्लभलालजी गोस्वामी ठीक समझ रहे हैं कि उनके पू.राधाबाबा इस समय कहाँ चले गये हैं। वे कुछ क्षण तो शान्त रहते हैं। फिर पुनः हारमोनियम लेकर गा उठते हैं –

पावे कौन लिखे बिन भाल ।
काहूकौं षटरस नहिं भावत, कोउ भोजनकों फिरत बेहाल ।
तुम देख्यौ हरि अंग माधुरी, मैं नहिं देखे कैसे गोपाल ।
जैसें रंक तनक धन पावत, ताहीमें वह होत बेहाल ।।
तुममें, मोहिमें इतनो अन्तर धन्य धन्य ब्रजकी तुम बाल ।
सूरदास प्रभुकी तुम संगिनि, तुमहिं मिले मोहि मिले गोपाल ।।

(भावार्थ)

अरे, भाई ! बिना प्रारब्धके कौन अनमोल वस्तु पाता है ? किसीको तो छहों प्रकारके व्यंजन उपलब्ध रहते हैं, और फिर भी वे उसे अच्छे नहीं लगते और कोई दो सूखे टुकड़ोंको भी नहीं पाकर बेहाल रहता है। तुम(पू.श्रीराधा बाबा) निरन्तर अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी अंगमाधुरी निरखनेमें डूबे रहते हो, और मैं जानता ही नहीं कि भगवान् (गोपाल) कैसे हैं ? जैसे अतिशय गरीब व्यक्तिको तनिक-सा धन मिल जाता है, तो वह उसे पाकर बेहाल हो जाता है,

वैसे ही तुम तो अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी एक झाँकी पाकर ही बेसुध हो उठे हो। मुझमें तुममें इतना ही अन्तर है, हे ब्रजकी बाला (श्रीराधाबाबा)तुम तो भगवान् श्रीकृष्णके नित्य संगी हो और हमारा यही सौभाग्य है कि तुम हमें मिल गये हो। हम तो तुम्हारे मिलनको ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन तुल्य ही समझ रहे हैं।

बम्बईसे नासिक(पञ्चवटी)

नासिक-त्र्यम्बक क्षेत्र भारतके प्रमुख तीर्थोंमें है। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें त्र्यम्बकेश्वरकी गणना है। यहीं पञ्चवटीमें भगवान् श्रीरामने बनवासका दीर्घकाल व्यतीत किया। यहीं श्रीजानकीका रावणने हरण किया। गोदावरी नदी भारतवर्षकी सात पवित्र नदियोंमें से एक है। उसका उद्गम भी यहीं है। प्रति बारहवें वर्ष जब बृहस्पति सिंह राशिमें होते हैं, नासिकमें कुम्भपर्व होता है। बृहस्पतिके सिंहस्थ होनेपर पूरे वर्षभर यहाँ गोदावरी-स्नान महापुण्यप्रद माना जाता है।

नासिक और पञ्चवटी वस्तुतः एक ही नगर हैं। इस नगरके मध्यसे गोदावरी बहती है। गोदावरीके दक्षिण तटपर जो नगरका मुख्य भाग है, उसे नासिक कहते हैं और गोदावरीके उत्तर तटपर जो भाग है, उसे पंचवटी कहा जाता है। गोदावरीके दोनों तटोंपर देवालय हैं। श्रीपोद्दार महाराज एवं सभी यात्री लोग पंचवटीमें ही ठहरे थे। पू.गुरुदेव श्रीपोद्दारजीके साथ पंचवटी पहुँचकर गोदावरी स्नान करने गये। गोदावरीमें जब पू.गुरुदेव श्रीरामकुण्डमें स्नान कर रहे थे उस समय उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। पू.गुरुदेव देख रहे थे कि भगवान् श्रीराम सीताविरहमें सचमुच ही साधारण मनुष्योंकी तरह व्याकुल और दुखी हैं। श्रीरामजीके दुखको भुलानेके लिये यद्यपि वनकी अधिदेवीने काननको अभिनव साजसे सज्जित किया है, किन्तु काननकी शोभा श्रीरामजीके प्रिया-विरहको सहस्र गुनी अभिवर्धित कर दे रही है।

पू.गुरुदेवको भगवान् श्रीरामके विलाप-शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे। वे कह रहे थे – हे सीते ! आज वासन्ती-श्री तुम्हारा अभिनन्दन कर रही है, इसकी ओर निहारकर इसकी सेवा स्वीकार कर लो ! तुम्हें इस वनमें आया देख ही तो यह सर्वांग-विभूषित होकर तुम्हारी सेवार्थ आयी है। यह तुम्हें अन्वषण करती मेरे संग-संग भ्रमण कर रही है। देखो तो सही, तुम्हारे लिये आज इसने अपनेको कितना सुन्दर सजाया है। पुन्नाग पुष्पोंका तो इसने

अवतंस धारण किया है और माधवी कुसुमोंकी माला। बकुल-निर्मित हार पहना है, और अपने ललाटमें पलाश पुष्पोंसे सिन्दूर-रचना की है। इसके वक्षस्थलपर चम्पककी कञ्चुकी सुशोभित है। कटिदेश अशोकके अरुण परिधानसे विभूषित है। हे सीते ! तुम कहाँ हो ? हा ! गुणोंकी खान जानकी ! हा, रूप-शील-गुण-निधान पवित्र सीते ! तुम मुझसे निलायन-क्रीड़ा क्यों कर रही हो ? यह लुका-छिपीका कौतुक त्याग दो। हे पक्षियों ! हे पशुओं ! हे भ्रमरदल ! तुम मुझे सीताका पता बताओ, न !

पू.गुरुदेव जिस समय भगवान् श्रीरामका यह विरह-विलाप सुन रहे थे और उनकी इस विलक्षण अप्राकृत लीलाका दर्शन कर रहे थे, उस समय उनके मनमें एक जिज्ञासा जाग्रत हो उठी थी। पू.गुरुदेव सोच रहे थे कि सिद्धान्तकी बात यह है कि भगवान् श्रीराम सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं। अब यदि सर्वज्ञता-शक्तिको अपने पास रखे हुए भगवान् श्रीसीताजीकी इस प्रकार खोज कर रहे हैं, तो यह वे नाट्य मात्र कर रहे हैं। अन्वेषणका कार्य उनका मात्र एक दम्भ है। और यदि भगवान् श्रीराम नहीं जानते हैं और फिर सीताजीको खोजते हैं, तब यह खोजना एक वास्तविकता है, पर फिर भगवान्‌में सर्वज्ञताका अभाव है, और यदि भगवान्‌में सर्वज्ञता-शक्तिका अभाव सिद्ध हो जाता है, तो उनकी भगवत्ता ही बाधित हो जाती है।

पू.गुरुदेवको उस समय श्रीरामका जो प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था उस समय श्रीराम विरहावेशमें इतने विभोर थे कि उन्हें अपनी, अपने भ्राता लक्ष्मणकी, सीता, एवं उसके अन्वेषणकी कुछ भी स्मृति नहीं रही थी। विरहकातर भगवान् श्रीराम लक्ष्मणसे ही पूछ बैठते हैं कि " मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, हम इस वनमें क्यों आये हैं, यहाँ स्थान-स्थानपर हमारे भटकनेका प्रयोजन क्या है ? पू.गुरुदेवने मुझे अपनी तद्विषयक अनुभूतिका एक सांगोपांग संस्कृत श्लोक सुनाया था –

कोऽहं ब्रूहि सखे स एव भगवानर्थः सखे राघवः।
के यूयं बत नाथ नाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः।।
कान्तारे किमिहास्महे बत सखे देव्या गतिर्मृग्यते ।
का देवी जनकाधिराजतनया हा जानकि क्वासि हा।।

पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख अपनी यह जिज्ञासा रखी कि सीताहरणके पश्चात् भगवान् श्रीराम द्वारा जो श्रीसीताजीका अन्वेषण हुआ, वह

वास्तविकता थी या अभिनय ? इतना सत्य है कि श्रीरामजीमें सर्वज्ञता-शक्ति थी। यदि श्रीराम सर्वज्ञ नहीं होते तो वे सीताजी बनी दक्षकुमारी सतीको कैसे पहचान लेते और यह कैसे कह देते कि "माता ! आज आप अकेली यहाँ कैसे हैं, भगवान् शंकरको कहाँ छोड़ आईं ?" – यह प्रकट करता है कि भगवान्‌में सर्वज्ञता-शक्ति थी। और यदि सर्वज्ञता-शक्ति थी तो फिर भगवान्‌का सीताजीके अन्वेषणके लिये किया गया सारा प्रयास मात्र अभिनय था और सुग्रीव-मैत्री आदि लीलाएँ दम्भ थीं।

इसके उत्तरमें श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवसे पूछा कि क्या आप मेरे कथनपर विश्वास कर लेंगे ? पू.गुरुदेवकी स्वीकृति मिलनेपर श्रीपोद्दार महाराज कहने लगे कि 'न तो भगवान् श्रीरामका सीतान्वेषण अभिनय है और न ही उनकी सर्वज्ञता-शक्तिमें कहीं न्यूनता आती है। सत्य तो यह है कि यह भगवान्‌का विरुद्ध-धर्म-गुणाश्रयत्व है। यह विरुद्ध-धर्म-गुणाश्रयत्व ही जीवकी भगवान्‌से भिन्नता प्रकट करता है। मानवीय मनके या शरीरके, तथा भगवदीय मनके या शरीरके कार्य-व्यापार एक-से लगनेवाले होकर भी सर्वथा भिन्न हैं।' श्रीपोद्दार महाराजका पू.गुरुदेवको यह सटीक एवं यथार्थ उत्तर था। इसी बातको श्रीपोद्दार महाराजने ब्रह्मसम्मोहनके प्रसंगके द्वारा भी पू.गुरुदेवके सम्मुख स्पष्ट किया –"एक वर्षके लिये जब श्रीनन्दनन्दन सभी गोपबालकोंके रूपमें परिणत हो गये तो इन बालकोंमें सर्वज्ञता शक्तिका कहाँ प्रकाश हुआ था ? दूसरे, इन बालकोंमें श्रीकृष्णके समान अनन्त बल, अनन्त ज्ञान, अनन्त धर्म भी प्रकाशित नहीं ही हुआ था ! वे सभी सर्वलोकमहेश्वर भी नहीं थे, यद्यपि थे सभी श्रीकृष्ण। तो यही उनका विरुद्ध-धर्म-गुणाश्रयत्व है जो उनकी शक्तियोंको असीम एवं ससीम, युगपत् (एक साथ) प्रकाशित करता है। श्रीपोद्दार महाराज कह रहे थे कि भगवान्‌के लीलारहस्यको इसीलिये प्राकृत बुद्धिसे दक्षकुमारी सती भी नहीं समझ पायीं। जबकि अप्राकृत मन-बुद्धि रखनेके कारण भगवान् शिवजी सर्वथा सन्देहरहित थे। जन्म-मरणधर्मा मानव ही नहीं, देवताओं तकका मन प्राकृत होता है। किन्तु नर-लीला-रत भगवान्‌का मन अप्राकृत होता है। भगवदीय दिव्य लीलाओंके रसास्वादनके लिये अप्राकृत मनकी आवश्यकता होती है। अप्राकृत मनकी प्राप्तिके पश्चात् ही मानव विशुद्ध रूपसे रस ले पाता है और तभी समझ पाता है भगवल्लीलाके तत्वको।

पण्ढरपुर

महाराष्ट्रका पण्ढरपुर प्रधान तीर्थ है। महाराष्ट्रके सन्तोंके आराध्य हैं – श्री पण्ढरीनाथ। वारकरी सम्प्रदायके लोगोंकी श्रद्धाका तो यह प्रमुख तीर्थस्थल है। एकादशीको यहाँ अधिक लोग आते हैं। भक्तराज पुण्डरीक तो इस धामके प्रतिष्ठाता हैं। इनके अतिरिक्त तुकारामजी, नामदेव, सन्त राँका-बाँका, नरहरिजी आदि सन्तोंकी यह निवासभूमि रही है। पण्ढरपुर चन्द्रभागा नदीके तटपर है, जिसे भीमा भी कहते हैं।

पण्ढरपुर पहुँचकर पू.गुरुदेव चन्द्रभागा नदीमें स्नान करने पहुँचे, किन्तु वहाँ चन्द्रभागा तीर्थपर एक चबूतरेपर विष्णुपद भगवान्‌के चरणचिह्नोंके दर्शन करते समय उन्हें भक्तिमती जनाबाई, सन्त एकनाथजी, नामदेव, भक्त ज्ञानेश्वरजी एवं सन्त तुकारामजी सभीके समवेत दर्शन हुए। इसी प्रकार श्रीविट्ठल मन्दिरमें प्रवेश करते समय श्रीचोखामेला एवं नामदेवजीकी समाधिपर उनकी अवस्था विचित्र हो गयी थी। पू.गुरुदेव श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको इन स्थानोंका अनुभव बतलाते समय कह रहे थे कि " गोस्वामीजी ! सिद्ध सन्तोंपर कालका किसी भी प्रकारका प्रभाव नहीं रहता। सन्तोंका सिद्ध देह चिन्मय होता है, वे कालातीत होते हैं, कालाधीन नहीं। "

"साधारण लोगोंके मनमें कालकी धारणा यही जगती है कि कौन संत पूर्वके हैं और कौन पश्चात्‌के। वे सन्तोंके जीवन-चरित्र पढ़ते हैं तब भी वे जन्मके बाद बाल्य, कैशोर, यौवन, प्रौढ़ता, वार्धक्य, स्थविरता – इन सब क्रमबद्ध अवस्थाओंमें हुए उनके जीवनपर ही दृष्टि रखते हैं। वे समझते हैं कि उनके प्राकृत देहके पंचत्व-विसर्जनके साथ उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया, किन्तु वे नहीं समझते कि मात्र देह ही कालके अधीन है, मात्र अनित्य वस्तुमें ही सृष्टिसे विनाश पर्यन्त इस प्रकार एक क्रमकी धारा लक्षित होती है। संत देहातीत होते हैं, अतः कालातीत होते हैं। उनपर कालका किसी प्रकारका प्रभाव नहीं रहता। सन्त नित्य तत्व हैं। जैसे भगवान् नित्य हैं, उसी प्रकार भगवत्कृपा भी नित्य है। सन्त भगवत्कृपाका ही प्राकृत जगत्‌में प्रकाश होते हैं। जो नित्य है, वह वस्तु सर्वदा ही एक भावसे विद्यमान रहती है। उसमें कभी भावान्तर नहीं होता। "

"गोस्वामीपाद ! उदाहरणके लिये आपको समझा रहा हूँ – जैसे श्रीकृष्णकी बाललीलामें वे बालरूपमें प्रकाशमान हैं, पक्षान्तरमें अपनी कैशोर लीलामें वे नित्य किशोर हैं; उनका बालभाव जैसे नित्य है, उसी प्रकार उनका किशोर भाव भी नित्य है। लौकिक देह जैसे बालभावसे किशोरभावमें परिणत होता है, तदनुरूप अलौकिक श्रीकृष्णदेह बालसे किशोरभावमें परिणत नहीं होता। उनके बाल और किशोर देह, दोनों ही युगपत् विद्यमान हैं और दोनों ही नित्य हैं। श्रीकृष्णका बालदेह पूर्वकालीन है और किशोरदेह परवर्त्तीकालका – ऐसा नहीं कहा जा सकता। बालकृष्ण गोपाल सहस्र कल्पातीत होनेपर भी बालक ही रहेंगे, वे किशोर अथवा युवक हो ही नहीं सकते। इसी तरह श्रीकृष्ण ही जहाँ जनाबाई, सन्त एकनाथजी, नामदेव, योगेश्वर भक्त ज्ञानदेव एवं तुकारामका रूप धारण किये हैं तो वे सहस्र कल्पोंके बीत जानेपर भी इसी रूपमें रहेंगे।"

पू.गुरुदेव मुझे गोरखपुरमें बादमें बतला रहे थे कि पण्ढ़रपुरमें सन्त तुकारामजीने उनसे कहा कि वे ही श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें घोर कलिकालसे जगत्का उद्धार करने अवतरित हुए हैं।

मैंने उनसे उनके इस कथनपर जिज्ञासा की कि बाबा ! मैंने सुना है, राजस्थानके कोई नाथ सम्प्रदायके सन्त टूँटियानाथजीने देह त्यागकर श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें जन्मग्रहण किया है। कोई कहते हैं कि श्रीहनुमानजीका श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें अंश-प्रकाश है। अब आप तुकारामजीकी बात कह रहे हैं, वस्तुतः इन सभी उक्तियोंमें सत्य तथ्य क्या है ?

पू.गुरुदेवने इसका मुझे सांगोपांग उत्तर दिया था। वे कहने लगे – देख ! यह सूर्य चमक रहा है, किन्तु इसमें ऊर्जाका स्रोत कहाँ-कहाँसे आ रहा है, यह हम सभीसे ही नहीं, स्वयं इस सूर्यसे भी अज्ञात है । जो सूर्य हमारे विश्वका है, उससे असंख्य गुना अधिक विस्तारयुक्त एवं शक्तिशाली अनगनित सूर्य इस ब्रह्माण्ड में हैं। हमारे सूर्यमें उन सभीकी आंशिक ऊर्जा प्रवाहित तो होती ही है। अब यदि ब्रह्माण्डका कोई सूर्य कहे कि मेरी ऊर्जा इस पृथ्वी मण्डलके सूर्यमें प्रवाहित हो रही है, तो इसमें असत्य क्या है ? और एक ही नहीं, यदि अनेकों सूर्योंका यह कथन हो कि हम सभी इस सूर्यके प्रकाशमें हेतु हैं, तब भी उनकी उक्ति सत्य ही तो होगी।

पू.गुरुदेवका कथन था कि पृथ्वीके जितने महासागर हैं, उनके नाम

तटोंके कारणसे हैं। समुद्र तो सर्वत्र एक ही है। कन्याकुमारीके समुद्रतटपर यदि कोई दक्षिण दिशाकी ओर मुख करे तो उसे हिन्द महासागर दृष्टिगोचर होगा किन्तु वही व्यक्ति यदि उसी स्थानपर खड़ा होकर पूर्वकी ओर दृष्टि करले तो वही समुद्र बंगालकी .खाड़ी कहलावेगा, और पश्चिमकी ओर मुख करते ही वही समुद्र अरब सागर कहलावेगा। समुद्र तो एक ही है, अरब देश तो भूखण्ड है। बंगाल भी भूखण्डका ही नाम है। अब भूखण्डोंसे समुद्रके जलका क्या सम्बन्ध ? किन्तु जब मानसून उठेगा तो कोई भी यही कहेगा कि बंगालकी खाड़ीसे मानसून उठा है। अब बंगालकी खाड़ीमें ही जब हिन्द महासागरका जल प्रवाहित हो रहा है, और हिन्द महासागर कहे दे कि सुरसरि जो हिमालयसे निकली है, उसमें मेरा जल है तो इसमें असत्य कथन कहाँ है ?

ठीक, इसी प्रकार श्रीभीमराजनन्दन पोद्दार महाराजमें जो सन्तत्वका प्रकाश है वह तो अहैतुकी भगवत्कृपाका अवतरण है। वह भगवत्कृपा श्रीतुकारामजी, ज्ञानेश्वरजी, आदि महाराष्ट्रके सन्तों किंवा महाप्रभु चैतन्यादि बंगालके सन्तों, नरसी मेहता आदि गुजरातके संतों, आलवार आदि तमिल सन्तों, सूरदासादि पूर्ववर्त्ती सभी ब्रजभक्तोंमें भी कार्यरत रही है। अब यदि अपने वात्सल्यसे कोई भी पूर्ववर्त्ती सन्त कहे कि मैं ही इस स्फुल्लिंगमें अग्निके रूपमें दहक रहा हूँ तो उसमें आपत्ति और असत्य क्या है ?

इसी प्रकार हनुमानजी, सालासरके बालाजी महाराज हैं। वे भी महासिद्ध रामभक्त ही हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि हनुमानजीकी कृपासे ही संतप्रवर तुलसीदासजीको भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। यह भी सत्य है कि श्रीपोद्दार महाराज जब-जब सालासरमें बालाजी (हनुमानजी)के दर्शन करने जाते हैं, तो बालाजी (हनुमानजी) महाराज उन्हें कोई-न-कोई अप्राकृत चिन्मय पुष्प, किंवा प्रसाद अपने वात्सल्यवश अवश्य प्रदान करते हैं। अतः वे भी उनपर प्रवाहित कृपामें हेतु तो हैं ही।

फिर श्रीपोद्दार महाराज और सन्त श्रीतुकारामजीके विचारोंमें भी साम्य है ही।

(१)(**उपास्य**) – श्रीतुकारामजी पाण्डुरंग विट्ठल अर्थात् गोपालकृष्णके उपासक रहे और श्रीपोद्दार महाराज भी भगवान् श्रीकृष्णके ही उपासक हैं।

(२)(**सत्शास्त्र**) – श्रीतुकारामजीके तुल्य श्रीपोद्दार महाराजके भी मुख्य

उपासनाग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत रहे। सनातनधर्म-प्रतिपादक वेद-शास्त्र-पुराणोंको भी वे दोनों ही पूर्ण मान्यता देते थे, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें भी इन दोनोंकी आस्था थी ही।

(३)**(ध्येय)** – अभेद-भक्ति, अद्वैत-भक्ति अथवा मुक्तिके परेकी ज्ञानोत्तर भक्ति श्रीपोद्दार महाराज एवं श्रीतुकारामजी दोनों का समान ध्येय है। श्रीतुकारामजीके सिद्धान्तमें अभेदको सिद्ध करके संसारमें प्रेमसुख बढ़ानेके लिये भेदको भी अभेद कर रखना है। वे ज्ञान एवं भक्तिकी एकरूपताके उपासक हैं और कहते हैं कि जो भक्ति है, वही ज्ञान है और वे ही विट्ठल भगवान् हैं।

(४)**(साधन)** – श्रीतुकारामजी एवं श्रीपोद्दार महाराज दोनों ही नव॥ भक्ति, अखण्ड नाम-स्मरण एवं निरपेक्ष हरिकीर्त्तनको ही भगवत्प्राप्तिका मुख्य साधन मानते हैं।

(५)**(मुख्य मंत्र)** – श्रीहरिके अनन्त नाम सभी स्मरणीय हैं, यह श्रीतुकारामजीका भी सिद्धान्त है और विष्णुसहस्रनामपर भी श्रीपोद्दार महाराज एवं संत तुकारामजी दोनोंकी ही आस्था है।

(६)**(आदि गुरु)** – भगवान् हरि-हरमें दोनों ही महापुरुष पूर्ण अभेद दृष्टि रखते हैं।

(७)**(आदर्श सन्त)** – नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, अर्जुन, उद्धव आदि सन्त श्रीपोद्दार महाराजके भी आदर्श रहे हैं।

(८)**(महाव्रत)** – एकादशी एवं महाशिवरात्रि, कृष्णजन्माष्टमी आदि में व्रत रखना, दोनों सन्तोंमें समान आचरण दृष्टिगोचर होता है।

(९)**(महातीर्थ)** – गंगा, गोदावरी, यमुना, काशी, द्वारका, जगन्नाथादि महातीर्थक्षेत्रोंमें दोनोंकी समान श्रद्धा है।

(१०)**(वर्ज्य)** – परधन, परनिन्दा, मद्य-मांसका त्याग एवं काया-वाचा-मनसा ब्रह्मचर्य और अहिंसाव्रत पालनीय है – यह दोनोंका सदाचार है।

(११)**(आचार)** – जिसका जो वर्ण-धर्म, जाति-धर्म, आश्रय-धर्म, एवं कुल-धर्म हो, उसका वह अवश्य पालन करे और शास्त्रोक्त विधि-निषेधपर अडिग रहे। जो कुछ कर्म करे, वह भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये हो। यह दोनों ही का प्रधान आचार रहा।

(१२)**(परोपकार व्रत)** – सन्त, गो, विप्र, एवं अतिथियोंको पूज्य मानना

और कथनी एवं आचरणकी एकतापर विश्वास करना, गलेमें तुलसीकी माला अवश्य धारण करना – ये सभी सिद्धान्त श्रीतुकारामजी एवं पोद्दार महाराजमें समान ही थे।

(१३)(**'सर्वं विष्णुमयं जगत्'**) – इस सिद्धान्तको हृदयंगम करके जो कुछ भी दृश्य है, उसे भगवान् मानकर प्रणाम करना, एवं इस उदार तत्वको ध्यानमें रखकर समता एवं दयाका व्यवहार सबके साथ करते हुए तन-मन-वाणीसे सबकी सेवामें तत्पर रहना, ये भी दोनोंका यावज्जीवन सेवाकर्म रहा।

इस प्रकार श्रीपोद्दार महाराज एवं सन्त श्रीतुकारामजीमें बहुत ही अंशोंमें सिद्धान्तोंमें साम्यता रही। हाँ, श्रीपोद्दार महाराज आगे जाकर भगवान् राधा-माधवकी मधुर लीलाओंमें डूब गये, यह उनकी विशेषता हो गयी।

किष्किन्धामें

पण्ढरपुरसे तीर्थयात्राट्रेन हॉसपेट स्टेशन पहुँची। हॉसपेटसे बस द्वारा सभी यात्री हम्पीके प्राचीन मन्दिरोंके दर्शनार्थ पहुँचे। यह पुरातनकालमें हिन्दूराज्य विजयनगरकी राजधानी रही। यहाँका प्रसिद्ध भगवान् शिवका विरूपाक्ष मन्दिर है, जिसे हम्पीश्वर मन्दिर भी कहते हैं। विरूपाक्ष मन्दिरके पिछले आँगनमें एक मण्डपमें स्वामी विद्यारण्यकी समाधि है। यहाँ श्रीमाधवाचार्य (विद्यारण्य स्वामी)की मूर्त्ति भी है। पू.गुरुदेव यहाँ आकर विलक्षण भावस्थितिमें लगभग आधे घण्टे बैठे रहे।

हम्पी ही पूर्ववर्त्तीकालमें किष्किन्धाके रूपमें प्रख्यात था। यहाँ स्थान-स्थानपर पहाड़ियाँ हैं और उनमें अधिकांश बड़ी-बड़ी चट्टानोंकी ढेरी मात्र हैं। इन चट्टानोंके भीतर अनेकों गुफायें हैं। इन हजारों मनकी चट्टानोंको इतने व्यवस्थित ढंगसे रखना आश्चर्यकी ही बात है। कहा जाता है कि श्रीहनुमानजी तथा वानरोंने भगवान् श्रीरामके निवासके लिये इस प्रकार चट्टानें रखकर गुफायें बनायी थीं।

विरूपाक्ष मन्दिरसे चार मील पूर्वोत्तर माल्यवान् पर्वत है। इसके एक भागका नाम प्रवर्षण गिरि है। इसीपर स्फटिकशिला मन्दिर है। हॉसपेटसे यहाँतक सीधी सड़क आती है। मोटर-बससे सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-लक्ष्मणने वर्षाके चार महीने यहाँ व्यतीत किये थे।

यहाँसे थोड़ी दूरीपर ऋष्यमूक पर्वत है। यहाँ तुंगभद्रा नदी धनुषाकार

बहती है। पहाड़ीके नीचे श्रीराम मन्दिर है। यहाँ श्रीराम, श्रीसीताजी एवं लक्ष्मणजीके मन्दिर हैं।

श्रीराममन्दिरके पासकी पहाड़ीको मतंग पर्वत भी कहते हैं। यह ऋष्यमूकका ही एक भाग है। इसी शिखरपर मतंग ऋषिका आश्रम था, ऐसा कहते हैं। तुंगभद्राके आगे गन्धमादन पर्वतके शिखरतक जानेकी राह है।

तुंगभद्रा पार होनेपर लगभग आधे मीलपर अनागुंदी ग्राम है। इसीको प्राचीन किष्किन्धा कहते हैं। यहाँ बालीकी कचहरी है। कुछ आगे सप्त ताल-वेधका स्थान है। यहाँ एक शिलापर भगवान् रामके बाण रखनेका चिह्न है। इस स्थानके सामने तुंगभद्राके पार बालिवधका स्थान कहा जाता है। यहाँ श्वेत शिलाएँ बिखरी हैं, जिन्हें लोग बालीकी हड्डियाँ कहते हैं। तुंगभद्राके उसी पार तारा, अंगद, एवं सुग्रीव नामक तीन पर्वतशिखर हैं। यहाँ हनुमान पहाड़ी भी है।

अनागुंदी ग्राम जाते समय पश्चिममें दो मीलपर पम्पा सरोवर है। यह एक छोटा-सा सरोवर है। इसी पर्वतपर शबरीगुफा भी है। पम्पा सरोवरसे एक मील दूर अञ्जनी पर्वत है। कहते हैं श्रीहनुमानजीकी माता अञ्जनीका यहीं निवास था।

कालहस्ती

दक्षिण भारतमें भगवान् शंकरके जो पञ्चतत्व लिंग माने जाते हैं, उनमेंसे कालहस्तीमें वायुतत्व लिंग है। यहाँ ५१ शक्तिपीठोंमेंसे एक शक्तिपीठ भी है। यहाँ सतीका दक्षिण स्कन्ध गिरा था।

यहाँ स्वर्णमुखी नदी बहती है। नदीके पार तटपर ही कालहस्तीश्वर मन्दिर है। नदीतटके पास ही एक पहाड़ी है, उसे कैलास गिरि कहते हैं। भगवान् नन्दीश्वरने कैलासके तीन शिखर जो पृथ्वीपर स्थापित किये, उन्हींमेंसे यह एक है। पहाड़ीके नीचे उससे सटा हुआ कालहस्तीश्वरका विशाल मन्दिर है।

मन्दिरके मुख्य स्थानपर भगवान् शंकरकी लिंगमूर्त्ति है। यह वायु-तत्त्वलिंग है। पुजारी भी इसका स्पर्श नहीं करते। मूर्त्तिके पास स्वर्णपट्ट स्थापित है। उसीपर माला आदि चढ़ाई जाती है। इस मूर्त्तिमें मकड़ी, सर्पफण,

हाथीके दाँतोंके चिह्न स्पष्ट दीखते हैं। कहा जाता है, सर्वप्रथम मकड़ी, सर्प एवं हाथीने यहाँ भगवान्‌की आराधना की थी। उनके नामपर ही श्रीकालहस्तीश्वर यह नाम पड़ा है। {श्री (मकड़ी), काल (सर्प), हस्ती (हाथी)से श्रीकालहस्तीश्वर नाम पड़ा है।}

यात्रासे गोरखपुर लौटनेके उपरान्त पू.गुरुदेव मुझे बता रहे थे कि लोग इसपर विश्वास नहीं करते कि भगवान् विश्वनाथ काशीमें मरनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको तारकमंत्र देकर मुक्त कर देते हैं, परन्तु यह बात सर्वांशमें सत्य है। कालहस्तीमें पू.गुरुदेव जब स्वर्णमुखी नदीमें स्नान कर रहे थे, तो उस समय नदी किनारे ही एक श्वान मृत्युमुखमें पड़ा अन्तिम श्वास गिन रहा था। पू.गुरुदेव उसके सम्मुख कुछ कालके लिये खड़े हो गये। सहसा उन्हें अनुभव हुआ मानो आश्वं-पार्श्वका सम्पूर्ण क्षेत्र ही एक विलक्षण चिन्मय विशुद्ध सत्वसे भर गया है। वे शान्त होकर घटनाक्रमपर विचार कर ही रहे थे कि उनके सम्मुख भगवान् शंकर प्रकट हो गये, उन्होंने उस मृतप्राय श्वानको जो दाहिना कान पृथ्वीपर सटाये पड़ा था, अपने आप घुमाकर बायें करवट किया और दाहिने कानके छिद्रमें महातारक राममंत्र सुनाया। पू.गुरुदेव अनुभव कर रहे थे कि भगवान् शंकरके रोम-रोमसे विलक्षण रामनाम-ध्वनि निस्सृत हो रही थी। कुछ ही कालमें उस श्वानके प्राणपखेरू उड़ गये। कृपावतार भगवान् शंकर पू. गुरुदेवपर दृष्टिपातकर मुसकाये और तब अन्तर्धान हो गये। पू. गुरुदेवने जब यह अपना अनुभव श्रीपोद्दार महाराजको सुनाया, तो वे गंभीर होकर कहने लगे – " बाबा ! मुझे भी काशीमें अनेक बार मरणासन्न लोगोंको मुक्ति देते भगवान् शंकरने दर्शन दिये हैं। मेरे अनेक स्वजनोंने जिनकी मृत्यु काशीमें हुई है, 'वे भगवान् शंकरकी कृपासे मुक्त हो रहे हैं,' ऐसा मरणोत्तर प्रकट होकर भी अपना अनुभव कहा है।"

पू.गुरुदेव मुझे कह रहे थे कि कालहस्तीमें कण्णप्प पहाड़ीके ठीक सामने दूसरे सिरेपर एक पहाड़ी है, उसपर दुर्गा मन्दिर है। यह स्थान इक्यावन शक्तिपीठोंमेंसे एक है, किन्तु आजकल उपेक्षित हो गया है। आजकल बहुत कम लोग इसके दर्शन करने जाते हैं। किन्तु यदि कोई इसके दर्शन करे, तो वह मृत्युके पूर्व निश्चय ही विरक्त होकर ज्ञानी हो जाय। मन्दिरमें देवीकी मूर्त्ति बहुत ही जीवन्त एवं प्रभावोत्पादक है। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि ऐसी ज्ञानप्रसू जीवन्त प्रतिमा उन्हें देखनेमें ही नहीं आयी। सुवर्णरेखा नदीपर

मोटर-बसोंके आनेके लिये जो पक्का पुल बना है, उसके समीप ही एक गलीमें होकर कुछ गंज आगे जानेपर पहाड़ीपर जानेका मार्ग मिल जाता है। मार्ग साधारण-सा ही है। पहाड़ीके ऊपर एक घेरेके भीतर छोटा-सा मन्दिर है।

कालहस्तीश्वर मन्दिरके पास ही एक पहाड़ी है, कहते हैं, इसी पहाड़ीपर अर्जुनने तपस्याकर भगवान् शंकरसे पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। वहाँ ऊपर जो शिवलिंग है, वह अर्जुनके द्वारा प्रतिष्ठित है। पीछे कण्णप्पने इस शिवलिंगका पूजन किया, इसलिये उसका नाम कण्णप्पेश्वर हो गया। पहाड़ीपर जानेके लिये सीढ़ियाँ नहीं हैं, किन्तु थोड़ी ही दूर ऊपर जाना पड़ता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं होती। ऊपर एक छोटा-सा घेरा है। घेरेके भीतर मन्दिरमें कण्णप्पेश्वर विराजित हैं।

पू.गुरुदेवने मुझे शिवभक्त भीलकुमारकी कथा भी सुनाई थी, जिसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् साक्षात् प्रकट तो हुए ही, इस भीलको हाथ पकड़कर सशरीर अपने साथ शिवलोक ले गये।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि प्राचीन कालमें दो भीलकुमार वनमें आखेट करने आये थे। उनमेंसे एकका नाम नील और दूसरेका फणीश था। उन्होंने वनमें पहाड़ीपर इस लिंगमूर्त्तिको देखा। पूर्वजन्मोंके संस्कारवश नील उस मूर्त्तिमें सच्चिन्मय भगवान्‌को जीवन्त देखने लगा। उस समय यहाँ घनघोर वन था, और हिंसक व्याघ्रादि वन-पशुओंका अतिशय बाहुल्य था। उस महाभाग्यवान् भील नीलको तो मूर्त्ति प्रस्तरकी दिख नहीं रही थी, जबकि उसके साथी फणीशको वह मात्र प्रस्तर प्रतिमा ही दृष्टिगोचर हो रही थी। अब नीलने ठान ली कि वह इस एकान्त निर्जन वनमें स्थित इस मूर्त्तिकी रक्षा करेगा, और लौटकर अपने घर नहीं जायगा, तो फणीशने उसको बहुत समझानेकी चेष्टा की। जब नील अपने हठसे डिगा ही नहीं तो फणीश उसे छोड़कर घर लौट गया।

नील धनुष बाण लेकर रात्रिभर मूर्त्तिका इसलिये पहरा देता रहा कि कोई वनपशु भगवान्‌को कष्ट न दे। प्रातः वह आखेटके लिये वनमें चला गया। दोपहरीमें आखेट करके वह वनसे लौटा। उसके एक हाथमें तो रक्तसे सने बाण एवं धनुष थे, दूसरे हाथमें भुने मांसका दोना था। उसके पास जल लानेके लिये कोई पात्र तो था नहीं, अतः उसने अपने मुखको जलपात्र बनाकर उसमें जल भरा हुआ था। उसने अपने बालोंमें पुष्प एवं बिल्वपत्र

खौंसे हुए थे। दोनों हाथ रिक्त नहीं होनेसे भीलकुमार नीलने अपने पैरमें पहनी मूर्तिपर चढ़े बिल्वपत्र तथा पुष्प हटाये। मुखके जलसे कुल्ला करके भगवान्‌को स्नान कराया। बालोंमें लगे पुष्प मूर्त्तिपर चढ़ा दिये तथा भुने मांसका दोना भोग लगानेके लिये रख दिया। पश्चात् वह स्वयं धनुष-बाण लेकर मन्दिरके बाहर पहरा देने लगा।

दूसरे दिवस सबेरे जब नील जंगलमें गया हुआ था, मन्दिरकी परम्परागत पूजा करने वाले पुजारी आये। उन्होंने मन्दिरपर चढा भुने मांस खण्डोंका दोना देखा। उन्हें बहुत दुख हुआ। नीचेसे जल लाकर उन्होंने पूरा मन्दिर स्वच्छ किया, और तब पूजा करके चले गये। उनके जानेपर नील वनसे लौटा। उसने अपने ढंगसे पहले ही दिनके समान पूजा की। दूसरे दिन फिर पुजारियोंको जब मन्दिर दूषित मिला तो वे छिपकर अपराधीका पता लगाने बैठ गये।

भीलकुमार नील उसी प्रकार मुखमें जल लेकर, केशोंमें बिल्वपत्र एवं पुष्प खौंसकर, मुखमें जल भरकर आया। उसने अपने पैरोंसे भगवान्‌के ऊपर चढ़े पत्र-पुष्पोंको हटाया। इस बार पत्र-पुष्प हटानेपर उसे भगवान्‌के कमलदलके समान चिन्मय नेत्र दिखाई पड़े। किन्तु यह देखकर उसका हृदय अत्यन्त ही द्रवित हो उठा कि भगवान्‌का कमलदलके समान सुन्दर एक नेत्र घायल है, और उसमेंसे रक्तधारा बह रही है। भीलकुमारने अपने मुखमें भरे कुल्लेके जलसे भगवान्‌के नेत्र धोये, किन्तु वह रक्तप्रवाह बन्द ही नहीं हुआ। अब तो क्रोधके मारे नीलने वह भुने मांसका दोना तो भगवान्‌के सम्मुख भूमिपर रख दिया और धनुषमें बाण चढ़ाकर भगवान्‌को आघात पहुँचाने वालेको ढूँढ़ने निकला। जब उसे आसपासमें ऐसा कोई भी हेतु नहीं मिला, तो वह जड़ी-बूटियोंका ढेर ले आया। उसने अपनी जानी-पहचानी अनेक जड़ी-बूटियोंका लेप करके भगवान्‌के घायल नेत्रोंका उपचार करना चाहा। किन्तु सभी प्रकारके उपचार करनेपर भी भगवान्‌के नेत्रका रक्तप्रवाह बन्द नहीं हुआ। सहसा नीलको समझमें आया कि वृद्ध भील कहते हैं कि – "मनुष्यके घावपर मनुष्यका ताजा चमड़ा लगा देनेसे घाव शीघ्र भर जाता है।" भोले नीलको यही उचित लगा कि भगवान्‌के नेत्रके घावपर अपने नेत्र लगानेसे संभव है, उनका घाव भी भर जाय और भगवान्‌की दृष्टि भी सांगोपांग हो जाय। उसने बिना हिचक बाणकी नोक घुसाकर अपनी एक आँख निकाल ली और मूर्त्तिके नेत्रपर रखकर उसे

दबा दिया। मूर्त्तिके नेत्रसे रक्त बहना बन्द हो गया। पुजारी जो छिपकर इस भोले भीलकी यह सब क्रिया देख रहा था, उसके इस बलिदानको देखकर दंग रह गया।

भगवान् तो जब अपने भक्तकी परीक्षा लेने चलते हैं तो पूरी ही परीक्षा लेते हैं। उन्होंने ऐसा खेल किया कि अब उनके दूसरे नेत्रसे भी रक्त बहने लगा। भक्त नीलको तो औषध मालूम हो ही चुकी थी। नीलने भगवान्के उस रक्त बहाते नेत्रपर अपने पैरका अँगूठा रखा, जिससे कि वह अपना दूसरा नेत्र बाणकी नोकसे निकालनेपर अन्धे होनेकी दशामें भी उस स्थानको पा सके। इस बार जैसे ही अपने बाणकी तीखी नोक उसने अपने दूसरे नेत्रमें लगायी कि मन्दिर विशुद्ध सत्वपूर्ण प्रकाशसे भर गया। भगवान् शंकर साक्षात् प्रकट हो गये। उन्होंने नीलका हाथ पकड़ लिया। भीलकुमार नीलको भगवान् अपने साथ शिवलोक ले गये। भीलकुमार नीलका नाम उसी समय कण्णप्प हो गया। तमिलमें 'कण्ण' नेत्रको कहते हैं।

पू.गुरुदेव कह रहे थे भगवान् आदि शंकराचार्यने भक्त कण्णप्पकी प्रशंसामें निम्न श्लोक रचना की थी –

मार्गावर्तित पादुका पशुपते रंगस्य कूर्चायते।
गण्डूषाम्बुनिषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेकायते।।
किंचिद् भक्षितमांसशेषकवलं नव्योपहारायते।
भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते।।

(श्रीमद्भगवद्पाद आदिशंकर कृत शिवानन्दलहरी ६३)

रास्तेमें फैंकी हुई किसी अन्य व्यक्तिकी पादुका ही भगवान् शंकरके अंग झाड़नेकी कूची बन गयी, आचमन (कुल्ले)का जल उनका दिव्याभिषेक हो गया और स्वयं खाकर शेष बचा भुना मांसका ग्रास ही उनका नैवेद्य बन गया। अहो ! भक्ति क्या नहीं कर सकती ? इसके प्रभावसे एक जंगली भील भी भक्तश्रेष्ठ बन गया।

तिरुपति बालाजीमें

वेंकटाचल पूरा पर्वत ही भगवत्स्वरूप माना जाता है। तिरुपतिका अर्थ है – तीनों लोकोंके श्रीमान्, श्रेष्ठ पति भगवान् वेंकटेश्वर। यह भारतका सबसे समृद्ध मन्दिर है। तिरुमल्लै पर्वतपर ही भगवान् वेंकटेश्वरका निवास है। तिरुमल्लैका भी यही अर्थ है कि जहाँ त्रिलोकीके श्रीमान् श्रेष्ठ स्वामी निवास करते हैं। अल्लै शब्द 'आलय'का वाची है। वस्तुतः यह शेषशैल सात पहाड़ियोंका एक समूह है, जो आदि शेषका स्वरूप माना जाता है। साक्षात् भगवान् शेष ही पर्वतके रूपमें यहाँ स्थित हैं। यहाँ भगवान् तिरुपति बालाजी 'शेष-शैलशिखामणि'के नामसे प्रख्यात हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामी इस पवित्र पर्वतपर कभी चरण नहीं रखते थे, अतः वे अपनी हथेली एवं घुटनोंपर कपड़े लपेटपर उन्हींके बल चलकर शैलके ऊपर पहुँचते थे। अब तो श्रद्धाका अभाव होनेसे लोग मोटर गाड़ियोंमें दर्शनार्थ जाते हैं।

बालाजी पर्वतपर पैदल जानेका मार्ग ७ मीलका है। इसमें पाँच मील पर्वतकी कठिन चढाई है। पू.गुरुदेव एवं पोद्दार महाराज इस स्थलपर पहुँचे जहाँ पैदल जानेका मार्ग प्रारंभ होता है। यहाँ एक सुन्दर सरोवर है जिसे कपिलतीर्थ कहते हैं। कपिलतीर्थ सरोवरके तटपर दोनों ही मोटरसे उतरकर एक स्थलपर शान्त बैठ गये, एवं ध्यानस्थ हो गये। इस सुन्दर सरोवरमें श्रीशैल पर्वतपरसे ही जलधारा गिरती है। सरोवरमें पक्की सीढ़ियाँ बनी हैं। चारों कोनोंपर चार स्तम्भोंमें 'चक्र'के चिह्न अंकित हैं। कुछ काल पश्चात् दोनों ने ही शेषाद्रिकी दिशामें दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि सिरपर लगायी। यात्रियोंने यहाँ कपिलेश्वर मन्दिरके दर्शन भी किये।

पू.गुरुदेवने शेषशैलपर पहुँचकर सर्वप्रथम स्वामिपुष्करिणी नामक विस्तृत सरोवरमें स्नान किया। कहते हैं, यह वैकुण्ठधामकी क्रीड़ापुष्करिणी है। ऐसी कथा है कि वाराह अवतारके समय भगवान् वाराहके आदेशसे गरुड़जी वैकुण्ठसे इस पुष्करिणीको वेंकटाचलपर भगवान् वाराहके स्नानार्थ ले आये थे। इस पुष्करिणीपर स्नान करते समय पू.गुरुदेवका दृश्य एकदम परिवर्तित हो गया और उनके सम्मुख चिन्मय वृन्दावन प्रकट हो गया। पू. गुरुदेव देख रहे थे –

"चतुर्दिक् शुक-पिकादि कलकण्ठ विहंगमोंकी काकलीसे स्थल मुखरित

हो रहा है। नव घन मेघोंको अपने स्नेहमें उमड़ता देख पृथ्वी रोमाञ्चित पुलकित है। प्रियतम श्यामसुन्दर नव-नव निकुञ्जस्थलीकी ओर, लता-पल्लवजालसे आवृत वनस्थलीकी शोभा दिखाने अपनी प्रियाको संकेत देकर बुला रहे हैं। किन्तु प्रिया राधा उनसे किंचित् पृथक् एक कदम्ब वृक्षके नीचे मणिखचित आलवालपर विराजित हैं। उन्हें चतुर्दिक् दल-के-दल मृग-मयूर घेरे हैं। प्रिया राधा अति ललकभरी इन मृग-मयूरोंको ही आलिंगन कर-करके स्नेहदान दे रही हैं। प्रिया जब प्रियतम द्वारा अनेकशः संकेत एवं आमंत्रण देनेपर भी मुसकाकर वन-भ्रमणका निषेध कर देती हैं, तो प्रियतम उनके पार्श्वमें ही आकर बैठ जाते हैं। प्रियाके पार्श्वमें प्रियतम श्यामसुन्दरके आ जानेपर मृग एवं मयूर चौकड़ी भरते उनसे किंचित् दूरीपर चले जाते हैं। प्रियाके पास आकर बैठ जानेपर भी प्रियतम श्यामसुन्दरकी इस कुञ्जसे उस कुञ्जकी ओर, कभी सुदूर बहती यमुनाके तटसे वनकी ओर, और कभी पुनः वनसे कालिन्दीकूलकी ओर, कभी कासारोंमें विकसित पद्मवनोंकी ओर, और कभी गिरिराज गोवर्धनके चरणप्रान्तमें जानेवाले तरु-लतामण्डित सुरम्य पथकी ओर जा रही है। प्रियतम बार-बार मनुहार कर-करके प्रियाको वनमें ले आना चाहते हैं, किन्तु प्रिया वहीं आसीन मृग-मयूरोंकी ओर देख रही हैं, मुसका रही हैं एवं प्रियतमके साथ वन-भ्रमणको उद्यत नहीं हो रही हैं। प्रिया-प्रियतमको कदम्ब वृक्षके नीचे आसीन देखकर, उनका सान्निध्य पाकर विहंगमोंकी काकली सारस्वत वीणासे निस्सृत सुमधुरतम संगीतकी मूर्त्तिमान् रागिणी ही बन गयी है। वनमें तरुशाखाओंसे लिपटी लता-वल्लरियाँ तो नित्य ही पवन-संचारित होनेपर स्पन्दित होती हैं, किन्तु आज तो प्रिया-प्रियतमको अपने मध्य पाकर सचमुच ही वे उल्लासभरी नृत्य कर रहीं हैं। यह तो वृन्दावनकी धराका स्वभाव ही है कि उसपर अतिशय कोमल अंकुरराशि स्फुटित रहती ही है, किन्तु आज तो सत्य-सत्य ही वृन्दाकाननको धारण करनेवाली धराकी अधिष्ठात्री प्रिया-प्रियतमके चरणस्पर्शसे रोमाञ्चित ही हो रही है। वे गायन, नर्त्तन, पुलकोद्गम आदि कविकी कल्पना, अथवा किसी लेखक द्वारा प्रयुक्त काव्यशास्त्रके अलंकारिक रूपक नहीं हैं, ये तो चिदानन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी ह्लादिनी महाशक्ति प्रिया श्रीराधारानीके चरणस्पर्श **और उनकी प्रेमभरी दृष्टि-निक्षेपके कारण वृन्दावनके चराचरपर व्यक्त होनेवाले स्वाभाविक परम सत्य परिणाम हैं। प्राकृत नेत्र-मन भले इन्हें देख नहीं सकें**

– इनका अनुभव नहीं कर पावें, किन्तु प्रियाप्रियतमके कृपाकणसे पूत हुए दिव्यशक्तिविशिष्ट पू.गुरुदेवके नेत्रोंके लिये तो ये नित्य सत्य हैं। पू.गुरुदेव देख रहे हैं, वृन्दाटवी सचमुच ही इस समय एक अभिनव गान, नृत्य, एवं पुलकोद्गम आदि अगणित आनन्द-अनुभावोंसे परिपूर्ण हो गयी है। अरण्यका अणु-अणु अपनेमें न समाते हुए आनन्दको विभिन्न अनुभावोंसे व्यक्त कर रहा है।

पू.गुरुदेव स्नान करने आये थे, स्वामिपुष्करिणी सरोवरमें, और उस तरंगित सरोवर एवं उसके आसपास शेषशैलका परम शुद्ध सात्विक वातावरणका प्रभाव उन्हें कहाँ-से-कहाँ उड़ा ले गया। पू.गुरुदेवको शेषशैलशिखामणिका यह धाम अपने प्रियतम नीलसुन्दरके गिरि गोवर्धन शैलके कुञ्जावासोंमें निलीन-विलीन कर गया।

यह तो सत्य ही है कि प्राकृत मनसे अप्राकृत वस्तुकी प्राप्ति असंभव है। माया-जगत्के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धसे मायातीत जगत्के शब्द,स्पर्श, रूप, रस, गंध सर्वथा भिन्न हैं; मायाजगत्की ज्ञानेन्द्रियोंसे वे सर्वथा अग्राह्य हैं; इन इन्द्रियोंकी वहाँ गति नहीं। पू.गुरुदेवका शरीरगत मन तो प्राकृत ही था, बुद्धि भी प्राकृत ही थी, और मायाजगत्की वस्तुकी गति मायातीत चिन्मय राज्यमें असंभव थी, अतः पू.गुरुदेवकी ज्ञानेन्द्रियों, मन एवं बुद्धिने स्वयंको उस व्यक्त अप्राकृत चिन्मय वृन्दावनके दृश्यमें विलीन-निलीन कर दिया। इसका साधन तो उनके प्रिया-प्रियतम और महासिद्ध रसिकशिरोमणि सन्त श्रीपोद्दार महाराज (श्रीहनुमान प्रसादजी पोद्दार)की कृपा ही थी। जहाँ पू.गुरुदेव श्रीराधा बाबाके मनकी समाप्ति हुई, वे अपना होश खो बैठे। प्राकृत काल तो अपनी नियमित गतिसे चल ही रहा था। जब बहुत विलम्ब होने लगा और श्रीपोद्दार महाराजको बालाजी भगवान्के दर्शनोंके लिये भीतरसे पुजारियोंका बुलावा आ गया तो उन्होंने पू.गुरुदेवकी खोज की। लोगोंने पू.गुरुदेवकी अलौकिक भावाविष्टताकी सूचना उन्हें दी। वे पू.गुरुदेवके निकट आकर वे उन्हें देखने लगे। उन्होने देखा कि उनका संन्यासी शिष्य तो साँपकी केंचुलीकी तरह हो गया है।। जैसे केंचुलीमें मुख, आँख, नाक आदि सभीके चिह्न ज्यों-के-त्यों रहते हैं किन्तु साँप नहीं रहता, इसी प्रकार पू.गुरुदेवका शरीर तो ज्यों-का-त्यों है, शरीरका श्वास-प्रश्वास, प्राणोंका आवागमन यथावत् है, किन्तु उसमें पू.गुरुदेव स्वयं नहीं हैं। श्रीपोद्दार महाराज कुछ कालतक जलमें कटितक खड़े पू.

गुरुदेवको देखते रहे, और समझ गये कि वे वहाँ होकर भी वहाँ नहीं हैं। भाव-सरिताके आप्लावनने सरोवरकी संज्ञा पहले वाली नहीं रहने दी है। वह सरोवर प्रिया-प्रियतमकी रसधारामें विलीन हो गया है। उसकी संज्ञा बदल गयी है। वे मन-ही-मन गुनगुना उठे –

विधि भाजन ओछो रच्यौ हो, लीला-सिन्धु अपार।
उलटि मगन तामैं भयौ हो, अब कौन निकासनहार।।

पू.पोद्दार महाराजमें कुछ ऐसी विशिष्ट शक्ति थी कि वे किसीको भी भावसिन्धुमें डुबा भी सकते थे, और किसी डूबेको किनारेपर भी ला सकते थे। वे पू.गुरुदेवके पास जलमें चले गये और कटितक जलमें खड़े पू.गुरुदेवके कन्धेको पकड़कर इस प्रकार प्रेमसे हिलाकर कहने लगे – "बाबा ! श्रीशैल-शिखामणि भगवान् वेंकटेशके दर्शनार्थ चलना है न ? वे प्रतीक्षा कर रहे हैं, आपके आगमनकी।"

बस, पू.गुरुदेवकी 'मञ्जुश्यामा-भावमयी-अहंता" जो चिन्मय वृन्दावनमें अपनी अग्रजाके पार्श्वमें वृन्दावनके गोवर्धन गिरिशैलमें भ्रमण कर रही थी, शेषशैलमें पंचभूतात्मक श्रीराधाबाबा नामक शरीरमें आ गयी। साँप, मदारीकी वीणके स्वरोंके आधीन चलने लगा। पू.पोद्दार महाराजकी उपस्थितिमें ही पू. गुरुदेवने शीघ्रतापूर्वक सूखे वस्त्र पहने, और गीले वस्त्र धोकर श्रीराधेश्यामजी भगतने साथ ले लिये और शीघ्रतापूर्वक सभी श्रीशैलशिरोमणि भगवान्के दर्शनार्थ चल पड़े।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि " अप्राकृत राज्यके अवतरणका एकमात्र उपाय महज्जनशरणागति है, यदि मैं पूर्णरूपेण श्रीमहारसिक सिद्धसन्त पोद्दार महाराजको आत्मसमर्पण नहीं करता, तो मुझे मेरी साधनासे कदापि यह स्थिति प्राप्त नहीं होती। किन्तु श्रीपोद्दार महाराजके हेतुरहित अनमोल प्यारने मुझे सब कुछ दिया। उनके समान महान् उदारता मैंने कहीं नहीं देखी। लोगोंकी तो उनसे माँग ही भगवान्की नहीं है, संसारकी ही है। किन्तु यदि किसीकी माँग बृन्दावनके पावन प्रेमदेशकी हो जाय तो वे इतने उदार हैं कि सर्वथा अनधिकारी होनेपर भी उसकी कामना अवश्य पूरी कर देंगे। वे ऐसे परमोदार सन्त हैं कि किसीकी भी आशा आजतक उन्होंने खण्डित नहीं की है। उनकी कृपापर निर्भर हो जाओ, वे निश्चय, निश्चय आशा पूर्त्ति कर ही देंगे।

नियमानुसार तो स्वामिपुष्करिणी स्नानके पश्चात् वाराह भगवान्के

दर्शन करके ही भगवान् वेंकटेशके दर्शनार्थ जाना चाहिये, किन्तु श्रीपोद्दार महाराज आदि सभी यात्री निर्धारित समय होनेसे पहले ही भगवान् बालाजीके विश्वरूप दर्शनार्थ चल पड़े। भगवान्का विश्वरूप दर्शन प्रभातकालमें ही होता है। वैसे बालाजीका मन्दिर तीन परकोटोंसे घिरा है। इन परकोटोंमें गोपुर बने हैं, जिनपर स्वर्णकलश स्थापित हैं। स्वर्णद्वारके सामने तिरुमहामण्डपम् नामक मण्डप है। एक सहस्र स्तंभमण्डप भी है। मन्दिरमें प्रथम सिंहद्वारको पडिकावलि कहते हैं। प्रथम एवं द्वितीय द्वारके मध्यकी प्रदक्षिणाको सम्पंगि-प्रदक्षिणा कहते हैं। इसमें 'विरजा' नामक एक कूप है। मुख्य मन्दिरमें श्रीबालाजीके चरणोंके नीचे जो विरजा नदी है, उसीकी धारा इस कूपमें आती है। इसी प्रदक्षिणामें एक 'पुष्पकूप' भी है। श्रीबालाजी भगवान्को जो तुलसीपत्र-पुष्पादि चढ़ते हैं, वे किसीको नहीं दिये जाते, वे सब इसी कूपमें डाले जाते हैं। केवल वसन्त पञ्चमीके दिन तिरुञ्चानूरमें भगवती श्रीपद्मावती देवीको भगवान्के चढे पुष्प अर्पित किये जाते हैं।

द्वितीय द्वारको पार करनेपर जो प्रदक्षिणा है, उसे विमान प्रदक्षिणा कहते हैं। श्रीपोद्दार महाराजको पण्डा प्रत्येक स्थानके महत्वका परिचय देते हुए प्रत्येक मन्दिरमें ले जा रहा था। पू.गुरुदेवका हाथ पकड़े पोद्दार महाराज उन्हें खींचे लिये जा रहे थे, किन्तु उनकी दशा विचित्र थी। 'विरजा' नाम सुनते ही वे तो गोलोकमें पहुँच जाते हैं। लेखककी लेखनीमें कहाँ सामर्थ्य है कि पू.गुरुदेवके भाव-वैभवके दृश्योंका चित्रण कर सके ! चित्रण तो दूर रहा, लेखकके तो मनकी कल्पना भी वस्तुतः पू.गुरुदेवके उस सर्वथा अतुलनीय चिदानन्दमय श्रीसौन्दर्यकी कणिकामात्रको भी छू नहीं पाती। लेखक तो पू. गुरुदेवकी वाणीको ही इतस्ततःसे संग्रहकर एक आनुमानिक शब्दचित्र प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहा है। वह इतना ही जानता है और अच्छी प्रकारसे निश्चयपूर्वक सत्यप्रतिज्ञ हो कह सकता है कि उस चिदानन्दमय श्री-सौन्दर्यकी अनुभूति होती है और हुई है श्रीपोद्दार महाराज और पू.गुरुदेवको। भूतकालमें भी अनेक महाभाग सूरदासादि कवियोंको अवश्य उसकी अनुभूति हुई होगी, उसकी छाया ही सही इन महाभागोंके मनमें अवश्य अवतरित हुई होगी, तभी उस छायाके क्षुद्र अंशको शाखाचन्द्रन्यायसे ही सही, उस अनुभूत सत्यको आनन्द-विकम्पित कण्ठसे वे अपनी पदावलियोंमें गायन कर चुके हैं। लेखक भी अपनेको परम कृतकृत्य अनुभव करता हुआ मात्र आनुमानिक शब्दचित्र ही

लिख रहा है –

"अहा ! गोलोककी कैसी मरकत मणिमय, मणिचूर्णसम अकृत्रिम भूमि है ! इस भूमिमें पू.गुरुदेव 'विरजा' शब्द सुनते ही विरजा नदीका दर्शन करने लगते हैं। अहा ! मणिचूर्णकी तरह प्रद्योतित भूमिमें बहती 'विरजा'की कैसी विलक्षण शोभा है ! उसके चतुर्दिक् स्वर्णमय गुल्मलताएँ और द्रुमसमूह परिशोभित हैं, कहीं स्वर्णकी ही वीथियाँ बनी हैं। जहाँ स्वर्णमय भूमि है तो मरकत मणिमय वल्लरियाँ और गुल्मतरुपंक्तिकी छटा है और जहाँ पद्मराग-रचित भूमि है, तो उसपर स्फटिक एवं स्वर्णनिर्मित गुल्म-लता-वृक्षसमूह विराजित है। अहा ! स्फटिक-वाटिकाओंकी क्या ही शोभा है, उसमें पद्मरागकी लताएँ, गुल्म एवं तरुराजियाँ झूम रही हैं।

पू.गुरुदेवके कानोंमें न तो यात्रियोंका कोलाहल प्रवेश कर पा रहा है, न ही पण्डेकी तीर्थमहिमाकी शब्दावली। वे तो श्रीपोद्दार महाराजका हाथ पकड़े उनके द्वारा नियंत्रित शरीरसे जहाँ वे ले जाते, जा रहे थे। उनका न तो दृश्य ही प्राकृत था और न शरीर ही प्राकृत। श्रीपोद्दार महाराज भी अधिकांशतः उन्हें बृषभानुनन्दिनी – अपनी अग्रजा भगिनी राधाके रूपमें भी दिखते थे।

ओह ! विलक्षण वैभवमयी ब्रजेन्द्रपुरी अपनी ओर-छोरविहीन महिमासे पू.गुरुदेवके हृदयको आलोकित कर रही थी।

अब पू.पोद्दार महाराज एवं सभी यात्री क्रमशः भगवान्‌के मन्दिरके सामने स्वर्णमण्डित स्तम्भके समीप पहुँचे। तीसरे द्वारके भीतर भगवान्‌के गर्भगृहके चारों ओर प्रदक्षिणा है। उसे वैकुण्ठ प्रदक्षिणा कहते हैं। यह केवल पौष शुक्ला एकादशीको खुलती है। अन्य समय यह मार्ग बन्द रखा जाता है। स्वर्णमण्डित स्तम्भके आगे तिरुमहमण्डप है। इस सभामण्डपके द्वारपर जय-विजयकी मूर्त्तियाँ हैं।

जगमोहन मन्दिरके भीतर चार द्वार पार करनेपर पाँचवे द्वारके भीतर श्रीबालाजीकी पूर्वाभिमुखी मूर्त्ति है। भगवान्‌की श्रीमूर्त्ति श्यामवर्णकी है। ये शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये खड़े हैं। यह मूर्त्ति लगभग सात फुट ऊँची है। भगवान्‌के दोनों ओर श्रीदेवी तथा भूदेवीकी मूर्त्तियाँ हैं। भगवान्‌को भीमसेनी कपूरका तिलक लगता है। भगवान्‌के तिलकसे उतरा यह चन्दन यहाँ प्रसाद रूपमें बिकता है। यात्री उसे अंजनके काममें लेनेके लिये ले जाते हैं।

श्रीबालाजीके श्रीविग्रहमें एक स्थानपर चोटका चिह्न है। उस स्थानपर

दवा लगायी जाती है। कहते हैं, एक भक्त प्रतिदिन नीचेसे भगवान्‌के लिये दूध ले आता था। वृद्ध होनेपर जब उसे आनेमें कष्ट होने लगा, तब भगवान् स्वयं जाकर चुपचाप उसकी गायका दूध पी आते थे। गायको दूध न देते देख, उस भक्तने एक दिन छिपकर देखनेका निश्चय किया। जब सामान्य मानववेषमें आकर भगवान् दूध पीने लगे, तब उन्हें चोर समझ भक्तने डंडा मारा। उसी समय भगवान्‌ने प्रकट होकर उसे दर्शन दिया और आश्वासन दिया। वही डंडा लगनेका चिह्न मूर्तिमें है।

पू.गुरुदेवको समग्र मन्दिर ही ब्रजपुरका नन्दभवन दृष्टिगोचर हो रहा था और गर्भस्थ भगवान् वेंकटेश्वरकी मूर्त्ति नन्दभवन-स्थित नन्दबाबा आराध्य भगवान् नारायणकी मूर्त्ति दिख रही थी। पू.गुरुदेवका तो प्रत्यक्ष दृश्य यही था – " पुरका प्राचीर इन्द्रनीलमणि निर्मित है, मरकतमणि-रचित गृहावली हैं, आच्छादन (छत) सुवर्णमय है, स्तम्भोंका निर्माण प्रवालसे हुआ है, द्वारसमूह पद्मरागमणिके हैं। सर्वत्र मणिदीपोंकी पंक्तियाँ जगमग-जगमग कर रही हैं। कोटि-कोटि गोराशि विभिन्न आभूषणोंसे विभूषित होकर गोष्ठमें खड़ी हैं; कोटि-कोटि गोवत्स-समूह ब्रजके आनन्दकलरवसे प्रभावित होकर उछल रहे हैं। अहा ! नन्दभवन स्थित श्रीनन्दरायका नारायणमन्दिर कैसा विलक्षण है ! उसमें भगवान् नारायणके श्रीविग्रहका सौन्दर्य कैसा विलक्षण है !" पू.गुरुदेवको तो भगवान् वेंकटेश्वरके श्रीविग्रहमें नन्दबाबाके आराध्य, सम्पूर्ण गोकुलके ईश्वर भगवान् नारायणके प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे थे। उनके नेत्र मँडरा रहे थे, कभी तो श्रीमन्नारायणके मकर कुण्डलज्योतिसे उद्भासित अमल कपोलोंपर, कभी सुघड़ नासापुटोंपर, कभी सुन्दर कमलनेत्रोंपर, कभी घनकृष्ण कुञ्चित केशराशिपर।

अहा ! पिसे हुए काजलके समान सुचिक्कण भगवान्‌का श्रीविग्रह है। उनके श्रीअंगोंसे जो कान्तिकी किरणें फूट रही हैं, वे मरकतमणिकी आभाको हेय बना दे रही हैं। अहा ! भगवान् नारायण माधुर्य एवं लावण्यके अपरिसीम सागर जो हैं ! उनके श्रीअंगोंमें पीताम्बर झलमला रहा है। वक्षस्थलपर रंगबिरंगी बनमाला तो है, सर्वोपरि तुलसी मालाकी शोभा सर्वजयी है। अंग-अंगपर रत्नजटित आभूषण शोभा पा रहे हैं। लम्बी घुँघराली केशराशिसे विविध प्रकारका सुवास प्रसरित हो रहा है। केशपाश विभिन्न पुष्पमालाओंसे ग्रथित सुशोभित है। चमकते ललाटपर भीमसेनी कपूर और केसरका श्रीयुक्त रामानुजी

तिलक है। गरुड़की चोंचके समान नुकीली नासिका है। अहा ! अग्रभागमें मुक्ताफल कैसा सुशोभित है। दोनों कान विविध अनमोंल मणिजटित मकराकृति कुण्डलोंसे कैसे भले लगते हैं।

पू.गुरुदेवकी दृष्टि जब भगवान्‌के लावण्ययुक्त मुखारविन्दपर पड़ी, तो कोटि-कोटि शशधरोंकी कान्ति बिखेरनेवाले उस मुखको देखते ही उनमें भक्तिभावकी धारा उत्ताल ज्वारके रूपमें लहरा उठी। प्रबल भक्तिभावनावश उन्होंने न तो भगवान्‌के मणि-मुक्ताहार-सुशोभित कण्ठहारकी ओर देखा, न ही उनकी आजानुलम्बित केयूर-कंकण-अलंकृत भुजाओंको। पू.गुरुदेवकी दृष्टि तो भगवान्‌के शेष सभी अंगोंकी चमत्कारी शोभाका उल्लंघन करती सीधी जपापुष्पके समान लाल-लाल चरणतलोंमें बिछ गयी। अहा ! अनेक चिह्नोंसे युक्त एवं रत्नजटित नूपुरोंसे मण्डित भगवान्‌के चरणतल पू.गुरुदेवके हृदयको विलक्षण कान्तिसे परिस्नात करने लगे। पू.गुरुदेवके अन्तःकरणको चक्र, अर्धचन्द्र, अष्टकोण, त्रिकोण, यवादि चिह्नोंसे झरती पावनतम ज्योतिने विलक्षण प्रेम एवं आनन्दसे सराबोर कर दिया।

ओह ! मेरे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाका पू. पोद्दार महाराजकी कृपासे कैसा मानस निर्माण हो गया है। वहाँ मायावी जगत् एवं उसके विकार तो प्रवेश हों, इसकी संभावना तो है ही नहीं, वैकुण्ठाधिपति भगवान् नारायण भी वहाँ ब्रजराज नन्दबाबाके आराध्य होकर ही प्रवेश पा सकते हैं। वे भी वहाँ ब्रजराज नन्दबाबाके आराध्य होकर ही प्रवेश पा सकते हैं। वे भी वहाँ ब्रजके प्रेमराज्यसे भिन्न अपनी पृथक् सत्ता लेकर प्रवेश नहीं पा सकते। धन्य है राधाबाबा ! धन्य हैं उनके गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराज !!

नन्दलालसों मेरौ मन मान्यौ कहा करैगौ कोय री।
हौं तो चरनकमल लपटानी, होनी होय सो होय री।।

रमणाश्रममें

तिरुपतिधामसे यात्रा अरुणाचल पहुँची। अरुणाचल भगवान् चन्द्रशेखरका महान् क्षेत्र है। साक्षात् भगवान् शंकर ही यहाँ पर्वत रूपमें प्रकट होकर अरुणाचल नामसे प्रसिद्ध हैं। यह क्षेत्र शिवभक्तोंके लिये सुमेरु, कैलास, तथा

मन्दराचलसे भी अधिक माननीय है ।

दक्षिणके पञ्चतत्त्वलिंगोंमें अग्निलिंग अरुणाचलमें माना जाता है। इस पर्वतको तमिल भाषामें तिरुवण्णमलै कहा जाता है। कालहस्तीकी नदीतटकी पहाड़ीके समान ही भगवान् नन्दीश्वरने यहाँ भी अरुणाचलम्में कैलासका एक शिखर स्थापित किया – ऐसी पौराणिक मान्यता है। इस पर्वतको साक्षात् शिवस्वरूप मानकर शिवभक्त इसकी परिक्रमा करते हैं। पर्वतके चारों ओर परिक्रमा मार्ग बना है। कार्तिक पूर्णिमाके दिन पर्वतके शिखरपर एक शिलापर मनों कपूर जलाया जाता है। कपूरकी ऊँची अग्निशिखा पर्वतशिखरपर घण्टों उठती रहती है। उस अग्निशिखाको ही भक्त समुदाय भगवान् शंकरका अग्नितत्त्व लिंग मानकर पूजा करता हैं। कार्तिक पूर्णिमा ही यहाँका विशेष पर्व है और उस दिन यहाँ भक्तोंकी बहुत बड़ी भीड़ होती है। लोग समूचे अरुणाचल पर्वतकी परिक्रमा करते हैं। और नीचेसे उठती अग्निशिखाके दर्शनकरके उसे प्रणाम करते हैं। जहाँ शिलापर कपूर जलता है, वहीं एक शिलामें भगवान्के चरणचिह्न अंकित हैं।

अरुणाचल पर्वतके नीचे पर्वतसे लगा अरुणाचलेश्वर भगवान्का विशाल मन्दिर है। इस मन्दिरका गोपुर दक्षिण भारतका सबसे चौड़ा गोपुर कहलाता हे। निजमन्दिरमें पाँच द्वारोंके भीतर शिवलिंग प्रतिष्ठित है । भगवान् अरुणाचलेश्वरके निज मन्दिरके उत्तरमें श्रीपार्वतीजीका बहुत बड़ा मन्दिर उसी घेरेमें है। इस मन्दिरमें अनेक द्वारोंके भीतर श्रीपार्वतीजीकी भव्य मूर्ति प्रतिष्ठित है।

तिरुवण्णमलै, अरुणाचलकी परिक्रमामें ही महर्षि रमणका आश्रम है। वर्तमान युगके सन्तोंमें श्रीरमण महर्षि बहुत ही प्रसिद्ध रहे हैं। इन्होंने अरुणाचल पर्वतके अनेक स्थानोंमें जो इनके साधनास्थल रहे, इनके चित्र स्थापित हैं। श्रद्धालु यात्री पर्वतकी कठिन चढ़ाईका श्रम उठाकर भी इन स्थानोंके दर्शन करने जाते हैं। महर्षिका आश्रम नीचे सड़कसे लगा हुआ है। महर्षि रमण भी शक्तिके सिद्ध उपासक रहे और उनकी पूजित देवीकी भव्य मूर्ति उनके आश्रममें मुख्य मन्दिरमें प्रतिष्ठित है। मुख्य मन्दिरमें जहाँ महर्षिकी उपास्य मूर्ति स्थापित है, उसके पास ही आश्रमके घेरेमें ही एक स्थानपर महर्षिके निर्वाणका स्थान तथा दूसरे कमरेमें उनकी समाधि है। दूर-दूरके यात्री आश्रमका दर्शन करने आते हैं। यहाँ दर्शनार्थियों तथा साधकोंके ठहरने

आदिकी उत्तम व्यवस्था है।

पू.गुरुदेव जब रमण महर्षिकी समाधिपर गये तो उन्हें महर्षि तो सर्वथा ही विस्मृत हो गये और उनके स्थानपर श्रीकृष्णके रासमण्डलसे अन्तर्धान होनेका दृश्य सम्मुख आ गया। मनहीमन श्रीमद्भागवतके रास-पंचाध्यायीके इस श्लोककी उनमें स्फुरणा और आवृत्ति होने लगी –

अन्तर्हिते भगवति सहसैव ब्रजांगनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्।।
गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्ताता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः।।
गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः।।
गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम्।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्।।

पू.गुरुदेवके चित्तमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी विरहाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। पू.गुरुदेवके नयनोंसे इस समय ऐसा अश्रुपात हुआ कि उनके वस्त्र आर्द्र हो गये। पू.गुरुदेवको इस प्रकार यात्रीगणोंके मध्य अश्रु बहाता देखकर उनके अनन्य सेवक भगतजी उन्हें संवरित करनेकी बहुत ही चेष्टा करने लगे, किन्तु पू.गुरुदेवका अश्रुपात तो अवरुद्ध होनेका नाम ही नहीं ले रहा था।

अपनी भावदशाको स्वयं भी संवरित करनेमें असमर्थ पू.गुरुदेव समाधिके पास ही आँखें बन्दकर बैठ गये। उनका हृदय विरहाग्निसे जल रहा था। प्रियतम प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरकी मत्त गजराजकी-सी गति, मधुर, मन्द, मादक उनकी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोन्मादकारी प्रेमालाप, नव-नव लीलाओं एवं माधुर्यरसभरी भावमयी मुद्राओंने उनके चित्तको हरण कर लिया था। चतुर किशोरकी चाल, हास्य, विलास, चितवन, भाषण आदिमें पू.गुरुदेवका मन ऐसा समाहित हुआ कि वे जलहीन मत्स्यकी तरह आन्तरिक भावमें तड़पने लगे।

पू.गुरुदेवका हृदय तो अपने प्रियतमके साक्षात् दर्शन और उनके श्याम कलेवरकी द्युतिसे उद्भासित हो उठा था। उनके हृदयसे शरीराध्यास-जन्य त्रिताप विषज्वाला न जाने सर्वथा ही विलुप्त हो गयी थी। अब वहाँ तो प्रियतमाध्यास ही सर्वत्र सुधाका प्रसरण कर रहा था। अहा ! विरह और

स्मृतिजन्य मिलन दोनोंके समागमसे पू.गुरुदेव विलक्षण दशाको प्राप्त हुए धारावत् अश्रुविमोचन कर रहे थे। अपने प्रियतम नीलसुन्दरके अपने पार्श्वसे अन्तर्धान हो जानेके कारण वे गजपतिविहीन करिणियोंकी तरह आर्त्त विलाप भी कर रहे थे, साथ ही, अपने प्रियतमकी प्रगाढ़ सघन स्मृतिमें डूबे उनको प्रत्यक्ष अपने सम्मुख मुसकाता भी देख रहे थे। "अहा ! प्रियतम नीलमणिके श्याम कलेवरपर कटिदेशको आवृत करता पीताम्बर कैसा सुशोभित है।" सुविस्तीर्ण वक्षस्थलपर स्वर्णाभ दक्षिणावर्त्त श्रीवत्स चिह्न तो मानो पू.गुरुदेवको अपने प्रियतमके आलिंगनपाशमें बँध जानेका प्रतिपल आह्वान कर रहा था। वे सोच रहे थे –" कैसी नवजलधरके समान सरस श्यामलता भरी है, इनके अंगोंमें ! सौन्दर्यका तो निर्झर ही झर रहा है, इनके अंगों-प्रत्यंगोंसे। कैसी नयनसुखद सुकुमारता है, इनमें ! ओह ! फिर ये निष्ठुरतापूर्वक हम सभीको छोड़कर क्यों अन्तर्धन हो गये ? क्या इतना सुन्दर, मधुर, सरस प्रेमी भी इतना निष्ठुर होना संभव है ? अहा ! मेरा बाह्य एवं आन्तरिक सम्पूर्ण दृश्य सभी तो इनकी श्यामद्युतिसे उद्भासित है ! फिर मेरे चित्तमें उनका ऐसा सुखद दर्शन होते हुए भी विरहजन्य विषम विषज्वाला धू-धूकर क्यों प्रज्वलित है ?

ओह ! मृदु हास्यसमन्वित कितना सुन्दर इनका मुखकमल है ! कमलकोषसे भी अधिक सुकोमल इनके अरुण चरण हैं। फिर इन सुकोमल चरणोंसे ये इस सघन कंटकाकीर्ण पथरीले वनमें कहाँ खो गये ?

कभी पू. गुरुदेवके हृदयमें भावदर्शनजन्य प्रियतम-मिलनका भाव आलोकित होता, और कभी विरह-तिमिरका घन आवरण पूर्वकी भाँति उनके हृदयमें छा जाता। इसी भावमें उनके अश्रुका प्रवाह अवरुद्ध नहीं हो पाता। मिलनजन्य दर्शनमें सुखके अश्रु प्रवाहित होते, एवं विरहजन्य अदर्शनमें विरह उन्हें अश्रुसिक्त करता रहता। उनका भावोद्रेक इतना अधिक था कि लगभग आधे घण्टेतक अनर्गल अश्रुप्रवाहसे उनकी हिचकी बँध गयी थी।

वहींपर आश्रमकी ही कोई श्रद्धालु भाग्यवती महिला खड़ी-खड़ी उनकी भावदशा देख रही थी। आजतक उसे ऐसा संन्यासी देखनेको नहीं मिला था। वैसे महर्षि रमण उच्च ज्ञानभूमिमें प्रतिष्ठित सन्त थे। उनके आश्रममें वेदान्तकी ही शुष्क चर्चा अधिक होती थी। अतः वहाँ ऐसे अतिशय भावुक मनके सुकोमल हृदय संन्यासी आते भी कैसे ?

उस महिलाके मनमें तो पू. गुरुदेवके प्रति वात्सल्यधारा इतनी सघनरूपमें

उमड़ रही थी कि वह उन्हें स्पर्श करने जा रही थी, किन्तु पू. गुरुदेवकी सेवामें खड़े सेवकोंने उसे पू.गुरुदेवके नियमकी स्मृति दिलाकर निषेध कर दिया।

आधे घण्टेके पश्चात् पू.गुरुदेवका भाव किञ्चित् प्रशमित हुआ। पू. गुरुदेव अपने नेत्रों और कपोलोंको पौंछते हुए खड़े हो गये। तब पू.गुरुदेवसे उस महिलाने आंग्ल भाषामें कहा –'मेरे योग्य क्या आप कोई सेवा बतलायेंगे ?''

पू.गुरुदेवको तो वह महिला साक्षात् जगज्जननी भगवती आद्याशक्ति ही दिख रही थी। वे क्या उत्तर देते ? उनके मुखसे इतना ही निकला – 'माते ! मैं यहाँके लिये नवीन व्यक्ति हूँ, यहाँपर जो-जो दर्शनीय स्थल हैं, वे आप मुझे अवश्य दिखादें।'

उस महिलाने पू.गुरुदेवके इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया। वे अनवरत आधे घण्टेतक पू.गुरुदेवके संग घूमती-फिरती रहीं तथा उन्होंने वहाँके सभी महत्वपूर्ण स्थलोंसे पू.गुरुदेवका आन्तरिक परिचय कराया। उस महिलाके सरल व्यवहार एवं सेवाभावकी पू.गुरुदेवके मनपर गहरी छाप पड़ी थी।

त्रिचिनापल्ली, श्रीरंगम् एवं जम्बुकेश्वरमें

त्रिचिनापल्ली (त्रिची)का शुद्ध नाम है– तिरुचिरापल्ली। वैसे मुख्य नगर त्रिचिनापल्ली है और तीर्थक्षेत्र है श्रीरंगम्। इसका प्राचीन संस्कृत नाम त्रिशिरः पल्ली है। त्रेतायुगमें रावणका भाई त्रिशिरा हुआ था। वह इस क्षेत्रका अधिपति था। वह बहुत महान् शिवभक्त हुआ है। भगवान् रामने खर एवं दूषणके सहित इसका भी वध किया था। त्रिचिसे श्रीरंगम् आठ मील दूर है।

यहाँका मुख्य मन्दिर गणेशजीका है। यहाँसे डेढ़ मील दूर नगरके उत्तर भागमें कावेरी नदी बहती है। कावेरीके पास ही २३५ फुट ऊँची पत्थरकी एक चट्टान ऐसी लगती है जैसे विशाल नन्दी नगरके मध्य स्थित हो। कहते हैं कि नन्दीश्वरने दक्षिण भारतमें जो कैलासके तीन शिखर स्थापित किये थे,

उसमें तीसरा शिखर यहाँ है। इसे इसीलिये दक्षिण-कैलास कहा जाता है।

यहाँके प्रसिद्ध गणेशमन्दिरमें ही जो शिवलिंग है, उसे 'ता मानवर' कहते हैं। पू.गुरुदेवने जब ता मानवर शिवके अर्थकी जिज्ञासा की तो पता चला कि 'माता बननेवाले प्रभु' ही इसका अर्थ है। कहा जाता है कि कोई वृद्धा शिवभक्त महिला, जो इस लिंगकी प्रति दिवस पूजा करती थी, अपनी पुत्रीके प्रसवके समय उसकी ससुराल जा रही थी। मार्गमें कावेरी नदीपर बहुत बाढ़ थी, अतः वह नदी-किनारे ही भगवान्का स्मरण करती प्रतीक्षा करती रही। नदीका पूर उतरनेपर जब वृद्धा अपनी पुत्रीके घर पहुँची तो उसका प्रसव सम्पन्न हो चुका था। भगवान् शंकर इस वृद्धाका रूप रखकर प्रसवमें सहायता करने पहले ही यथासमय पहुँच गये थे। इस शिवलिंगको संस्कृतमें मातृभूतेश्वर लिंग भी कहते हैं। यह आकारमें अति विशाल एवं श्याम वर्णका है।

यहाँ भगवती पार्वतीका नाम 'सुगन्धि-कुन्तला' है। पू.गुरुदेवको भगवतीका दर्शन करते समय इस मन्दिरमें ऐसी दिव्य सुगन्ध व्याप्त प्रतीत हुई, जिससे उन्हें यह तथ्य प्रत्यक्ष हो गया कि पार्वतीका श्रीविग्रह परम उद्दीप्त है। पू. गुरुदेव कहते थे कि इस घोर नास्तिक युगमें भी दक्षिणके मन्दिरोंमें प्रायः देवप्रतिमाएँ आज भी जाग्रत् और उद्दीप्त हैं।

शिव एवं पार्वतीके दोनों ही मन्दिरोंमें यहाँ भारतीय शिल्पका अद्भुत कौशल देखनेको मिलता है। पू.गुरुदेव तो वास्तुशास्त्रके पण्डित थे, अतः वे कह रहे थे कि काञ्चीके वरदराज मन्दिरमें, कोटितीर्थके समीप मण्डपमें, मदुराके मीनाक्षी मन्दिरमें, सुन्दरेश्वर मन्दिरके घेरेमें और यहाँ शिवमन्दिरमें उन्हें ऐसी विलक्षण वास्तुकलाके दर्शन हुए जो अद्भुत है। यहाँ पत्थर काटकर ऐसी जंजीर बनायी गयी है जो अपनी कड़ियोंमें घूम सकती हैं। पहाड़के शिखरपर गणेशजीका मन्दिर है। यद्यपि मन्दिर आकारमें लघु है किन्तु गणेशजीकी मूर्त्ति अत्यन्त भव्य एवं परम जीवन्त है। भाद्रपदमें गणेशचतुर्थीके दिन यहाँ मेला लगता है, एवं महोत्सव मनाया जाता है।

———————

श्रीरंगक्षेत्र

गणेशमन्दिरसे उतरकर कावेरी पुल पार करके श्रीरंगद्वीपमें पहुँचना होता है। गणेशमन्दिरसे श्रीरंग डेढ़ मील दूर है। श्रीरंगको चारों ओरसे कावेरीने घेरा हुआ है, अतः इसे श्रीरंगद्वीप कहते हैं।

श्रीरंगमन्दिरसे पाँच मील ऊपरसे कावेरी दो धाराओंमें पृथक् हुई है और लगभग बारह मील मन्दिरसे आगे जाकर परस्पर पुनः मिल गयी है। कहते हैं बहुत पुरातन कालमें कावेरीमें ऐसी बाढ़ आयी थी कि भगवान् श्रीरंगकी मूर्त्ति हजारों वर्षोंतक कावेरीके दाबमें रेतमें डूबी पड़ी रही। उसके सैकड़ों वर्ष पश्चात् किसी भक्तको भगवान्ने स्वप्नादेश दिया, तब जाकर श्रीविग्रहका प्राकट्य हुआ और तब चोल राजाओंने इस विशाल मन्दिरका निर्माण कराया। यह श्रीरंगद्वीप सतरह मील लम्बा और तीन मील चौड़ा है। कावेरीकी उत्तरधाराको कोलरून (कोल्लिडम्) तथा दक्षिण धाराको कावेरी कहते हैं। श्रीरंगमन्दिरका ही विस्तार २६६ बीघेका कहा जाता है। इतना विस्तृत मन्दिर भारतमें दूसरा नहीं है।

श्रीरंगजीका निज मन्दिर सात प्राकारोंके भीतर है। इन प्राकारोंमें छोटे-बड़े १८ गोपुर हैं। यहाँ एक सहस्र स्तम्भमण्डप हैं, जिनमें ९६० स्तम्भ हैं। यहाँ एक गरुड़मण्डप है, जिसमें बहुत बड़ी गरुड़जीकी मूर्त्ति है। आगे एक चबूतरेपर स्वर्णमण्डित गरुड़स्तम्भ है। जैसे तिरुपति बालाजीमें स्वामिपुष्करिणी सरोवर है, इसी प्रकार यहाँ गोलाकार चन्द्रपुष्करिणी सरोवर है। यहाँ लक्ष्मीजीको 'श्रीरंगनायकी' नामसे पुकारा जाता है। लक्ष्मीजीके मन्दिरके सामने 'कम्बमण्डप' है। तमिल महाकवि 'कम्ब'ने अपनी 'कम्ब रामायण' सर्वप्रथम यहीं भगवान् श्रीरंगको सुनायी थी।

पू.गुरुदेव महाकवि कम्बके इस मण्डपके सम्मुख बहुत कालतक नेत्र मूँदे स्थिर खड़े रहे। महाकवि कम्बकी समाधि कहाँ है ? पू.गुरुदेवने अनेक लोगोंसे जिज्ञासा की थी। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि महाकवि कम्ब वाल्मीकिके अवतार थे,– यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु इतना कह सकता हूँ कि महर्षि वाल्मीकिके समान भगवान् श्रीरामकी किसी एक कल्पकी लीला उनके सम्मुख अवश्यमेव प्रत्यक्ष हुई थी। उनकी रामायणका एक-एक शब्द मंत्रवत् अनुभूत लीलाका प्रकाश करता है।

श्रीरंगजीके निजमन्दिरका शिखर स्वर्णमण्डित है। निज मन्दिरमें, शेष शय्यापर शयन किये श्यामवर्ण श्रीरंगनाथजीकी विशाल चतुर्भुज मूर्त्ति दक्षिणाभिमुख स्थित है। भगवान्‌के मस्तकपर शेषजीके पाँच फणोंका भव्य छत्र है। बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंसे मण्डित यह मूर्त्ति परम भव्य है। भगवान्‌के समीप श्रीलक्ष्मीजी एवं विभीषण बैठे हैं। श्रीदेवी, भूदेवी आदिकी उत्सवमूर्त्तियाँ भी यहाँ हैं।

श्रीरंग भगवान्‌का पू.गुरुदेव जब दर्शन कर रहे थे, उस समय उनके सम्मुख भगवान् नारायण प्रत्यक्ष प्रकट हो गये थे। पू.गुरुदेवने उनसे अपनेसे जुड़े अनेक लोगोंसे घटित कुकर्मोंको क्षमाकर उन्हें भगवत्प्रीति प्रदान करनेकी कृपा करनेकी प्रार्थना की। पू..गुरुदेव भगवान् नारायणसे यही प्रार्थना कर रहे थे कि "इन सब मायामुग्ध मुझसे जुड़े जीवोंकी मनकी मलिन चादर कितनी ही मलिन है, यह मलिनता चाहे अत्यधिक घनी ही क्यों न है, चाहे वह कितनी ही पुरानी भी है, और उनसे बार-बार पापोंकी ही आवृत्ति हो रही है, परन्तु उस मलिनताको धो डालनेमें आपकी कृपावारिको क्या विलम्ब लगेगा ? आपकी कृपाकी शक्ति तो अमोघ, असीम है। वह तो इन सब मुझसे जुड़े पापियोंको पापमुक्त ही नहीं, रससे सिक्त भी कर ही सकती है ।"

पू.गुरुदेव अपने सम्मुख व्यक्त प्रभुसे कह रहे थे – "प्रभो ! यद्यपि यह सत्य है कि आप उन सबसे अकृत्रिम आत्मसमर्पण चाहते हैं। आपका स्वभाव है कि आपको कृत्रिमता प्रिय नहीं, और मुझसे जुड़े सभी प्राणी कपटसे भरे हैं। उनमें कृत्रिमताके प्रति पूरा आकर्षण है। प्रभो ! यह भी सत्य है कि जिनमें भगवत्कृपाके अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तु या व्यक्तिके लिये कुछ भी स्थान है, वे आपकी कृपाके संग्राहक नहीं हैं। किन्तु नाथ ! वे मुझसे किसी भी प्रकार थोड़े-बहुत जुड़े होनेसे तटपर तो आ ही गये हैं। अब आपकी कृपासागरकी लहरें उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र बहा ले जायें, डुबाकर उनके सभी अहंकारको चूर्ण-विचूर्ण कर दें। प्रभो ! नेत्रज्योतिहीन व्यक्ति भला क्या जाने कि आपकी सच्चिदानन्दमयी रूपमाधुरीकी अद्भुत छवि कैसी होती है ! ये सभी व्यक्ति मायामें अन्धे होनेसे ही एक फतिंगेकी तरह भीषण भवतापमें दग्ध होनेको मचल रहे हैं। आप अपनी हेतुरहित महत्कृपासे इन्हें इन्द्रियातीत दिव्य नेत्र प्रदान कर दीजिये, जिससे ये उस अतीन्द्रिय भगवदीय सौन्दर्यका दर्शन प्राप्त कर लें और तब इन सभीके जीवनसे महामाया-मोहकी निशा सदा-सदाके लिये मिट जाय। प्रभो ! मैं विनय करता हूँ सृजन-संहारमयी दुर्निवार मायासे मात्र

आपकी कृपा ही इनकी रक्षा कर सकती है। प्रभो ! आप तो साक्षी हैं कि आपके पुत्र कामदेवने शिव-समाधिभंग करते समय अपने प्रभावका तनिक-सा विस्तार किया तो ऋषियों, मुनियोंतकके धैर्य-धर्म, ज्ञान-वैराग्य, संयम-सदाचार, जप-तप, आदिका बाँध छिन्न-भिन्न हो गया था और सभी विकट रूपसे वासना-विवश हो गये थे।

भये कामबस जोगीस तापस पाँवरन्हिकी को कहे।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे।।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्माण्ड भीतर कामकृत कौतुक अयं।।

प्रभो ! फिर इस घोर कलिकालमें ये बिचारे कामज कीड़े मायाग्रस्त हैं, तो इनकी विवशता भी तो है। प्रभो ! कृपा करें, आप अपने कामदेवके रूपको पूर्णतः विनिन्दित करने वाले दिव्य सच्चिदानन्द रूपकी एक झाँकी इन्हें दिखा दीजिये, जिसपर कोटि-कोटि कामदेव न्यौछावर हैं, जो अनुभवातीत है, स्वमहिमा ही जिसका वासस्थान है। कृपा कर दीजिये, प्रभो ! इसी क्षण ऐसा विधान घटित हो जाय, कृपासमुद्रका ऐसा विलक्षण अभूतपूर्व हेतुरहित ज्वार उठे, बस, सभी अधिकारी-अनधिकारी कृतकृत्य हो जायें, कृपा-कृपा, प्रभु-कृपा !'

पू.गुरुदेव आँचल फैलाकर भगवान् नारायणके सम्मुख दैन्यकी मूर्त्ति बने अपनेसे जुड़े जनोंके लिये कृपाकी भिक्षा माँग रहे थे – अचानक उनके पार्श्वमें ही उनके आराध्य प्रियतम श्रीकृष्ण व्यक्त हो गये। पू. गुरुदेवके कानोंमें अतिशय मधुर, अतिशय रसमयी ध्वनि गूँज उठी – "प्राणेश्वरी ! क्या मेरे पास तेरे लिये कुछ भी अदेय है ?"

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि मेरे प्रियतमकी वाणी इतनी प्रीतिभरी रसमयी थी कि बस, मैं उस वचनमाधुरीमें ही पूरा डूब गया। कहाँ तो मेरे सम्मुख भगवान् नारायणका ऐश्वर्यमय स्वरूप अभिव्यक्त हो रहा था और मैं उनसे भक्तिभावमें भरा अपनेसे जुड़े मायाग्रस्त जीवोंके कल्याणकी प्रार्थना कर रहा था, और कहाँ मेरे प्राणनाथकी वाणीने मुझे ऐसे प्रेमके रसमें डुबोया कि श्रीरंगक्षेत्र मेरे लिये रसमय वृन्दावन बन गया।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि सुन्दर भगवान् नारायण भी हैं, सुन्दर भगवान् राम भी हैं, परन्तु नन्दनन्दनकी रूप-माधुरी, प्रेम-माधुरी, कृपा-माधुरी तो

अतुलनीय है। प्रियतम श्रीकृष्णने पू.गुरुदेवसे कहा – 'प्राणेश्वरी ! जब रामावतारके समय मेरे चरणोंके संस्पर्शसे पत्थर बनी अयोध्या तर गयी, तो जिन तेरे चरणोंका प्रेममें भरा मैं संवाहन-संलालन करता हूँ, उन चरणोंमें जिसने एक बार भी अपना मस्तक झुका दिया है, उसके कल्याणकी चिन्ता तू क्यों करती है ? वह तो मेरा चिन्त्य विषय है।''

पू.गुरुदेव मुझसे इस सब विषयपर चर्चा करते प्रेमसे छके कह रहे थे – '' भैया ! तुममेंसे किसीको भी अनुमान हो ही नहीं सकता कि मेरे प्रति मेरे प्रियतमका प्यार कैसा अतीन्द्रिय मादक है। जब भी कभी किसी दिवस तुम इस सृजन-संहारमयी सृष्टिसे अत्यतीत भावराज्यमें प्रवेश पाओगे, तभी तुममें ऐसी योग्यता आवेगी कि मेरे प्राणवल्लभ प्राणेश्वरका अथ-इति-रहित प्रेम मेरे प्रति कैसा है और कैसे प्रेमके गहनोदधिमें वे मुझे सतत निमग्न रखते हैं, इसे जान सकोगे। अभी तो तुम मेरे इन शब्दोंको ही सुन लो कि उनके एक वाक्यने ही मेरे भीतर प्रीतिकी ऐसी अद्भुत एवं इतनी अनन्त लहरें तरंगित कर दीं कि मैं उनके प्यारमें सराबोर सब कुछ ही विस्मृत कर गया। 'मैं कहाँ हूँ, कौन हूँ, किस हेतुसे यहाँ हूँ, यह कौन देश है – मुझमें कोई स्मृति ही नहीं रही। मेरे प्राणवल्लभके अतिशय मादक प्रेमभरे वक्तव्यने कैसा प्रेम मेरे हृदयमें उछाला, वह वाणीका विषय ही नहीं है। मेरा तो दृश्य ही दूसरा हो गया –

''एकान्त सुमन-सेजपर हम दोनों आसीन हैं। रसराज महाभावमें डूब रहे हैं और महाभाव रसराजमें डूब रहा है। जब मैं उनमें (रसराजमें) पूर्णतया डूबने लगती हूँ, तो उनकी इच्छा होती है कि मुझ डूबी हुईको वे बाहर निकालें और जब वे पूरे मुझमें डूबने लगते हैं तो मेरी इच्छा होती है कि मैं उनको पूरा बाहर निकाल लूँ, और सागरके अतल तलमें पूरे डूबे हुएको बाहर निकालकर तटपर बैठा दूँ। जब वे पूरे डूबते हैं, तो मेरे अंगोंपर उनके अंग अति रसमयरूपमें पूर्णतया ढरने लगते हैं। उस समय उनकी श्यामलता विलीन होती हुई कञ्चनवर्णाभा प्रकाशित करने लगती है। मैं समझती हूँ कि अब वे मेरे पूरे रूपको ग्रहणकर राधा ही हो जावेंगे। मेरी अति लम्बित केशराशि उस समय शनैः-शनैः विलक्षण भावप्रवणतासे लघु होती जाती है और मेरे कञ्चनवर्णी अंगोंमें श्यामलता प्रकाशित होने लगती है। मैं उनके अंगोंमें उस समय ढर रही होती हूँ। वे मुझे 'राधा' ही रखनेको आतुर हो उठते हैं। वे मेरा श्रृंगार करने लगते हैं। जैसे ही वे मेरा श्रृंगार प्रारंभ करते हैं, मेरे

अंगोंमें शीघ्रतासे प्रारंभ होता अस्तित्व-परिवर्तन रुक जाता है। वे मुझको श्यामसिन्धुमें डूबी हुईको भी बाहर निकाल लेते हैं। इसी प्रकार जब मेरे अंगोंपर वे ढरे होते हैं और मुझे लगता है कि उनकी केशराशि अतिशय रसमय भावसे लम्बित होती जा रही है, तो मैं उनके कपोलोंमें, वक्षस्थलमें चित्ररचना करने लगती हूँ। जैसे ही मेरी दृष्टि उनके कपोलों, अधरों और वक्षस्थलमें सन्निहित होती है और मेरे कर- सरोज उनपर चित्र-रचना प्रारंभ करते हैं, उनमें होता परिवर्तन स्थगित हो जाता है।''

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि '' भैया ! भावके सागरमें डूबते हुए, लहराते हुए युगल प्रिया-प्रियतमकी वार्त्ताका रस कैसा होता है, वह रंग क्या होता है, उसे वाणीकी सीमामें आबद्ध भला कौन कर सकता है ? उस दिवस श्रीरंग भगवान्के सम्मुख प्रार्थना करते-करते ही प्रियतम श्रीकृष्णकी वाणी सुनते ही न तो मैं स्थूल जगत्में रह पाया, न ही स्थूल जगत् मेरे सम्मुख रह पाया। उस समय आँखें खुली भले ही रही हों, परन्तु जगत्का दृष्टिगोचर होना सर्वथा ही बन्द हो गया था। कोई कहेगा कि बाबा आँखें खोले टुकुर-टुकुर देखते तो थे, परन्तु उसे क्या पता कि बाबाकी नेत्रेन्द्रियाँ जगत्रूपी अपने विषयको ग्रहण ही नहीं कर रही हैं। उस समय जैसा भावोद्वेलन था, उसे तो मैं ही समझ सकता हूँ। मुझे उसी भावदशामें ही पोद्दार महाराज भीड़से बचाकर किसी प्रकार ले गये।''

श्रीरंगम्के विग्रहके सम्बन्धमें पू.गुरुदेव कह रहे थे कि वह श्रीनारायणका साक्षात् चिन्मय विग्रह स्वयं भगवान्ने ब्रह्माजीको प्रदान किया था, इसलिये यह भगवान्का विभवावतार है। वैवस्वत मनुके पुत्र इक्ष्वाकुने कठोर तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे विमानके सहित श्रीरंगजीकी यह मूर्त्ति प्राप्त की। तभीसे यह मूर्त्ति इक्ष्वाकुवंशीय नरेशोंकी कुलाराध्य रही। इनकी आराधनाके फलस्वरूप ही इक्ष्वाकु वंशमें रामावतार हुआ था।

त्रेतायुगमें चोलराज धर्मवर्मा अयोध्यानरेश महाराज दशरथके अश्वमेध यज्ञमें आमंत्रित होकर पधारे। उस समय वहाँ उन्होंने श्रीरंगजीका दर्शन किया। उनका चित्त भगवान्के श्रीविग्रहमें ऐसा समाकृष्ट हुआ कि वे श्रीरंगजीको प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे। उन्हें सर्वज्ञ ऋषियों-मुनियोंने तपसे यह कहकर निवृत्त किया कि 'श्रीरंगजी तो स्वयं वहाँ पधारनेवाले हैं।''

लंकाविजयके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्यामें

राज्याभिषेक हुआ। राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें प्रभु सबको मुँहमाँगी वस्तुएँ प्रदान कर रहे थे। श्रीविभीषणजीने विदा होते समय इक्ष्वाकुवंशके कुलाराध्य भगवान् श्रीरंगके विग्रहकी याचना की। उदार-चक्रचूड़ामणि भगवान् रघुनाथजीने यह मूर्त्ति विभीषणको विमान सहित प्रदान कर दी।

विभीषण इस दिव्य विग्रहको लेकर लंकाकी ओर चला। उस समय देवताओंने प्रार्थना की कि भगवान् लंका नहीं जावें। लंका जानेके मार्गमें विभीषणने कावेरीके इस द्वीपमें चन्द्रपुष्करिणीके तटपर इस मूर्त्तिको रख दिया, और स्वयं नित्यकर्म, स्नान-संध्यामें लग गये। नित्यकर्मसे निवृत्त होकर ज्योंही विभीषणने विमान उठानेकी चेष्टा की तो विमान उनसे हिल ही नहीं पाया। उस समय श्रीरंगजीने प्रत्यक्ष प्रकट होकर विभीषणजीसे कहा – "विभीषण ! तुम खिन्न मत होओ। यह कावेरीका मध्यद्वीप वैकुण्ठवत् परम पवित्र है। राजा धर्मवर्माने मुझे प्राप्त करनेके लिये यहाँ कठोर दीर्घकालीन तप भी किया है। ऋषिगण उसे मेरे यहाँ आगमनका आश्वासन भी दे चुके हैं। इसलिये मेरी इच्छा यहीं रहनेकी है।"

विभीषण लौट गये। वे प्रति दिवस ही लंकासे श्रीरंगजीका दर्शन करने यहाँ आने लगे। एक दिवस जब वे वेगपूर्वक लंकासे रथमें आ रहे थे, धोखेमें उनके रथसे एक ब्राह्मण कुचला जाकर मर गया। इसपर यहाँके ब्राह्मणोंने विभीषणको पकड़ लिया और उसे मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। क्योंकि विभीषणको भगवान् श्रीरामजी कल्पान्ततकके लिये अमर रहनेका वरदान दे चुके थे; विभीषण मरे नहीं, तब ब्राह्मणोंने उसे एक भूगर्भस्थित स्थानमें बन्द कर दिया।

भगवान् श्रीरामको देवर्षि नारदजीने यह समाचार अयोध्यामें दिया। भक्तवत्सल भगवान् पुष्पकविमानमें अयोध्यासे यहाँ पधारे। ब्राह्मणोंने विभीषणको अपराध बताकर दण्ड देनेके लिये प्रभुके सम्मुख समुपस्थित किया। भगवान् श्रीरामने कहा – 'ब्राह्मणों ! ये तो मेरे सेवक हैं और सेवकका अपराध तो स्वामीका ही अपराध माना जाता है। इन्हें आप लोग छोड़ दें और मुझे दण्ड दें।' ब्राह्मण प्रभुका भक्तवत्सल स्वभाव देखकर द्रवित हो गये। विभीषणका छुटकारा हो गया। तबसे विभीषणजी प्रतिदिन श्रीरंग भगवान्का दर्शन करने अलक्षित रूपसे यहाँ आते हैं।

जम्बुकेश्वरमें तेजोद्दीप्त भगवती जगदम्बाका दर्शन

दक्षिण भारतके पञ्चतत्वलिंगोंमें जम्बुकेश्वरको जलतत्वलिंग माना जाता है। श्रीरंग मन्दिरसे इसकी दूरी मात्र एक मील पूर्व ही है। यह श्रीरंग मन्दिरसे भी पूर्वका ऐतिहासिक स्थल है। श्रीरंगजीके आगमनके पूर्व यहाँ जम्बुकेश्वर भगवान् विराजित थे। श्रीजम्बुकेश्वर मन्दिरका विस्तार भी सौ बीघेसे अधिक ही है। इसमें तीन आँगन हैं। यहाँ भी एक मण्डप है, जिसमें चार सौ स्तम्भ हैं, 'तेप्पाकुलम् नामका सरोवर है, जिसमें झरनेसे जल आता है। यहाँ सहस्र स्तम्भमण्डप भी है। उसके पास भी एक छोटा सरोवर है।

श्रीजम्बुकेश्वर लिंग एक जलप्रवाहके ऊपर स्थापित है। लिंगमूर्त्तिके नीचेसे बराबर जल ऊपर आता रहता है। निजमन्दिरमें जल भरा रहता है। अनेक बार उससे बाहर तक भी जल भर जाता है। जल निकलनेके लिये मार्ग बना है, जिससे मन्दिरमें भरा जल बाहर निकाला जाता है। जलके ऊपर मूर्त्तिके मात्र ऊपरी भागके दर्शन होते हैं। शेष मूर्त्ति जलके भीतर ही रहती है।

जम्बुकेश्वर मन्दिरके पीछे एक चबूतरेपर जामुनका एक प्राचीन वृक्ष है। इसी वृक्षके कारण मन्दिर तथा शिवलिंगका नाम जम्बुकेश्वर पड़ा है।

ऐसा कहा जाता है कि आदिशंकराचार्यने यहाँ बहुत दिनों निवासकर भगवान्‌की आराधना की थी। जम्बुकेश्वर मन्दिरके प्रांगणमें बायीं ओर एक फाटक है। उससे भीतर जानेपर भगवती जगदम्बाका मन्दिर मिलता है। पू. गुरुदेव जब भगवती जगदम्बाके दर्शन करने गये, तो उन्हें भगवतीका निज मन्दिर विलक्षण चिन्मय तेजसम्पन्न दृष्टिगोचर हुआ। सर्वत्र व्याप्त यह तेज इतना उद्दीप्त था कि उन्होंने अपने साथ आये सभी व्यक्तियोंको भीतर जानेसे एक बार मना कर दिया।

भीतर जानेपर पू.गुरुदेवने पाया कि आज भी यह देवीविग्रह परम जाग्रत् और तेजोद्दीप्त है। पू.गुरुदेव द्वारा बादमें पुजारीसे जिज्ञासा करनेपर उसने यह रहस्य बताया कि 'पुरातन कालमें यह मूर्त्ति इतनी उग्र थी कि इसके गर्भगृहमें प्रवेश करते ही प्राणीकी मृत्यु हो जाती थी। अतः इस मूर्तिकी पूजा भी करनेका किसीको साहस नहीं होता था। भगवान् आदिशंकराचार्य

जब इस स्थानपर आराधनार्थ आये तो उन्होंने माँ जगदम्बाके उग्र तेजको शान्त करनेके लिये उनके कानोंमें दो हीरकजटित श्रीयंत्रके कुण्डल पहना दिये और सम्मुख गणेशजीकी मूर्ति स्थापित कर दी। सम्मुख पुत्रकी मूर्ति होनेसे अब माँका उग्रतेज वात्सल्यवश सौम्य हो गया है।''

प्रारम्भमें इस स्थानमें जामुनका घोर वन ही था। यहाँ एक तेजस्वी ऋषि तपस्या करते थे, और भगवान् शंकरकी आराधना किया करते थे। उनका नाम भी जम्बू ऋषि हो गया था। उनकी तपस्यासे प्रसन्न एवं अभिभूत हुए साक्षात् भगवान् शंकर शिवलिंगके रूपमें यहाँ नित्य स्थित हो गये। अब ऋषि तो अधिकांशतः ध्यानस्थ रहते। यहाँ मन्दिर तो था नहीं, मात्र स्वयंभू लिंग प्रतिष्ठित था, जिसपर अनवरत जामुनवृक्षोंके पत्ते गिरते रहते थे। भगवान्‌को इन पत्तोंसे ढँक जानेसे बचानेके लिये एक मकड़ी भगवान्‌के ऊपर जाला तान देती थी, जिससे जामुनके पत्ते ऊपर ही अटक जाते और भगवान्‌का ज्योतिर्मय श्रीविग्रह उनसे ढँकजानेसे बच जाता। इधर भगवान्‌का अभिषेक करने एक हाथी भी प्रतिदिन अपनी सूँडमें जल भरकर लाता और भगवान्‌पर जलधारा चढ़ाता। किन्तु इससे मकडीका जाला टूट जाता था। इस प्रकार दोनोंमें वैर हो गया। एक दिन हाथीने जब जलधारासे अभिषेक करने अपनी सूँड बढ़ायी तो हाथीकी सूँडमें मकड़ी घुस गयी। इस प्रकार दोनोंकी ही मृत्यु हो गयी। क्योंकि दोनोंके भाव शुद्ध थे, अतः भगवान् शंकरने दोनोंको ही अपने निज जनके रूपमें स्वीकार कर लिया।

श्रीजम्बुकेश्वर मन्दिरके सामने स्तम्भमें यह कथा अंकित है।

———————

श्रीविल्लीपुत्तूरमें भगवती गोदासे तादात्म्य

श्रीविष्णुचित्तस्वामीकी जन्मस्थलीपर पहुँचते ही पू.गुरुदेवको ऐसा अनुभव होने लगा मानो मैं ही यहाँ पूर्वजन्ममें भगवती गोदाके रूपमें जन्मा था। भगवती आण्डाल (गोदाम्बा)का वह बालजीवन उनकी आँखोंमें प्रत्यक्षवत् प्रकट हो गया।

"तेरह वर्षकी वह कन्या 'गोदा' विष्णुचित्तस्वामीकी प्राणोंकी एक मात्र निधि थी। वह जब अपने गृहमें स्थित श्रीरंगनाथजीका दर्शन करती तो सात्विक भावोंका उसमें इतना प्रबल उन्मेष होता कि जड़िमा भावसे उसके अंग अवश हो जाते।"

" वह नित्य ही श्रीरंगनाथजीके निकट-से-निकट चली जाती और नयन मूँदकर प्रतिदिन भाव करती कि श्रीरंगनाथ उसे भुजपाशमें बाँध रहे हैं। कभी वह प्राणोंकी अप्रतिम ललकसे श्रीरंगनाथकी मूर्त्तिको अपने अंकमें धारण कर लेती। उस समय उसे ऐसा मिलन-सुख अनुभव होता जिसका वर्णन वाणी द्वारा होना ही असंभव है। उसके पिता देखते कि उनकी पुत्री प्रति दिवस ही ऐसा करती है। वे एक अतिशय मर्यादी भक्त थे। उनके आराध्य रंगनाथ उनकी दृष्टिमें इतने पवित्र थे कि किसी मानवीके मांसल देहसे इस प्रकार मिलन, संस्पर्श, उन्हें असह्य था। उन्होंने अपनी पुत्रीको बहुत समझानेकी चेष्टा की, किन्तु निषेध करनेपर भी उनकी पुत्री मानती नहीं थी एवं गत दिवसकी अपेक्षा और अधिक उत्साह एवं प्रेमसे पुनः श्रीरंगनाथके विग्रहको अपने बाहुपाशमें बाँध ा लेती थी। इस बालिकाके रोम-रोममें श्रीरंगनाथजीके प्रति प्रीतिकी ऐसी लहर परिव्याप्त होती थी, जिसकी झाँकी प्राकृत बुद्धिसे शास्त्रीय मर्यादाओंमें बँधे उसके पिताकी कल्पनामें भी कभी होनी असंभव थी। बालिकाकी अपने प्रियतम एवं सर्वस्व श्रीरंगनाथसे मिलन-समाधि नित्य नूतन सुखमयी होती और कितने ही कालतक चलती रहती।

श्रीविष्णुचित्तस्वामी अपनी बालिकाको अनेकानेक शास्त्रीय बातें समझाते, भगवान्के श्रीविग्रहसे किस प्रकार मर्यादायुक्त व्यवहार करना चाहिये, इसकी शिक्षा देते, किन्तु उसके भावप्रवाहमें क्षणभरके लिये भी कभी कोई अन्तर नहीं

होता।

श्रीरंगनाथ उसके मन-प्राणोंमें बस गये थे। वह निरन्तर ही परमाकुल नेत्रोंसे श्रीरंगनाथके विग्रहाको निहारा करती। एक दिवस उसके पिताने सोचा कि इसे भगवान्‌की किसी ऐसी सेवामें उलझादें, जिससे यह उन्हें आलिंगन करनेकी कुचेष्टासे निवृत्त हो जाय। उनके भगवान् तो इतने पूत थे कि मानवकी गन्दी श्वाससे अपवित्र होते थे। वे तो उनकी सेवा करते समय जब उनके निकट होते तो अपने श्वास-प्रश्वासपर भी यथासंभव निग्रह रखते थे। वे भला अपनी पुत्रीकी ऐसी अमर्यादित उच्छृंखल क्रियाको कैसे सह पाते, परन्तु निरुपाय थे। अतः उन्होंने बालिकाको भगवान् श्रीरंगनाथकी पुष्पवाटिकासे पुष्पचयन करने और भगवान्‌के लिये माला निर्माण करनेकी सेवा सौंप दी। वे सोच रहे थे कि भगवान्‌की वनमालाके लिये पुष्पचयन एवं वनमालाके ग्रंथनमें उनकी बालिकाको तीन-चार घण्टेका समय तो लगेगा ही, तबतक वे अपनी समग्र श्रीविग्रहकी पूजा सम्पन्नकर मन्दिरका पट बन्दकर उसमें ताला लगा देंगे। इस प्रकार बालिका भविष्यमें ऐसी कोई उद्धत चेष्टा नहीं कर पावेगी। यही उनकी योजना थी। हाँ ! बालिकाके मनोरथके रक्षार्थ वे बालिका द्वारा निर्माण की हुई माला अवश्य श्रीरंगनाथके श्रीविग्रहको अर्पण कर देंगे।

बालिका गोदाने अपने पिताजी द्वारा प्रदत्त भगवान् श्रीरंगनाथकी वनमाला-निर्माणकी सेवा अति उत्साहसे स्वीकार कर ली और प्रथम दिवस ही जब उसने वनमाला निर्माणकर अपने पिताको सौंपी, तो पिता विष्णुचित्तस्वामी अपनी पुत्रीकी कलाकृति और मालारचना-कौशलको देखकर अत्यधिक प्रभावित हो उठे। अब तो प्रति दिवस ही यह वनमाला-निर्माणकी सेवा गोदा ही करने लगी।

गोदा प्रतिदिन ही निरे प्रातःकाल उठकर सचैल मस्तकपर्यन्त स्नान करती और तब गीले वस्त्रोंसे ही खुले बाल पुष्पवाटिकामें प्रवेश कर जाती। वह ज्योंही वाटिकामें प्रविष्ट होती उसे तो भगवान् रंगनाथ वहाँ उसकी प्रतीक्षा करते दृष्टिगोचर होते। अहा ! गोदाम्बानायक श्रीरंगनाथका मस्तक रत्नजटित मनोहर स्वर्णमुकुटसे मण्डित होता। उसपर मयूरपिच्छ लहराता होता। उनकी मनोहारी घुँघराली अलकोंसे ऐसा सुवास प्रसरित होता कि गोदाम्बा तो बेसुध ही हो जाती। अब तो श्रीरंगनाथ उसको गलेसे लगाये, उसके साथ ही पुष्पचयन, ग्रन्थन भी करते। जैसे ही माला गुँथती, स्वयं रंगनाथ उस मनोहारी

वनमालाको पहले अपने हाथसे गोदाके केशपाशमें सज्जित कर देते। फिर एकंटक देखते कि कितनी मनमोहक बन गयी है, इससे उनकी प्रिया गोदाकी चूड़ाकी कान्ति !

फिर तो प्रारंभ हो जाता श्रीरंगनाथ भगवान् द्वारा अपनी प्राणप्रिया गोदाके अंग-प्रत्यंगका श्रृंगार। वे अपनी प्राणप्रियाके ललाटपर चन्दन और केसरसे खौरकी रचना करते। श्रीरंगनाथ स्वयं अपने हाथोंसे अपनी प्रियाके झूमते प्रेममदसे छके कमलनेत्रोंमें काजल अंजित करते। गरुड़की चौंच-सी अपनी प्रियाकी नुकीली नासिकाके अग्रभागमें मुक्ताकी बेसर पहनाते। अपनी प्रियाके परम मनोहर कमलदल-से मनोहर कानोंमें कर्णभूषण पहनाते। और तब अपनी प्रियाके दर्पण-सदृश कपोलोंपर उन कर्णभूषणोंके पड़ते झलमलाते प्रतिबिम्बको देख-देखकर अति हर्षित हो उठते। श्रीरंगनाथ अपनी प्रियाके अतिशय लावण्ययुक्त मुखारविन्दको, जो कोटि-कोटि शशधरोंके समान कान्ति बिखेरता होता, घण्टों अपलक निहारते रहते। अपनी प्रियाके लज्जावनत मुखको, उसकी मन्द-सुमन्द मुसकानकी छटासे प्रकाशयुक्त प्रतीत होती चिबुक(ठोढ़ी)को संस्पर्शितकर उन्नत करते और उसकी छवि वे बार-बार, निरख-निरखकर न्यौछावर हो उठते। अहा ! कितना प्रेम और लावण्य भरा होता उस समय श्रीरंगनाथके नेत्रोंमें ! गोदा तो उसी समय लज्जासे अपने प्रियतमके पीत उत्तरीयमें अपना मुख छुपा लेती। जिस समय भगवान् रंगनाथकी आजानु भुजाओंमें – जिनमें केयूर और कंकण सुशोभित होते, गोदा बँध जाती, उस समय अन्तरिक्षमें विमानोंमें विराजित देव और देवांगनायें हर्षसे पुष्पवर्षा करने लगते। अपनी प्रियाके लाल-लाल करतलोंको जब भगवान् रंगनाथ अपने हाथोंमें लेते और उनपर कस्तूरीसे भिन्न-भिन्न अतिशय सुहावने चित्र रचना करते, उस समय भगवती लक्ष्मी भी गोदादेवीके सौभाग्यकी सराहना करने लगती।

इस प्रकार प्रतिदिन ही भगवान् श्रीरंगनाथ एवं जगज्जननी गोदाका पुष्पवाटिकामें मिलन होता और वे दोनों मिलकर समवेत पुष्पचयन करते। फिर दोनों मिलकर ही वनमाला गूँथते, वनमालामें नित्य नूतन कलाकृतियाँ निर्माण करते, और जब माला गुँथ जाती तो भगवान् रंगनाथ पहले उसे अपनी प्रियाकी वेणीमें श्रृंगारित कर देते और तत्पश्चात् अपनी प्राणप्रियाका अंग-प्रत्यंगका श्रृंगार करते। जब अपनी प्रिया गोदाका भगवान् रंगनाथ पूर्ण श्रृंगार सम्पन्न

कर लेते तो गोदाको वे उसका सजा-सजाया वदन एक भरे कूपजलमें दिखलाते।

बालिका गोदा उसके पश्चात् अपनी वेणीमें गुँथी माला उतारती और उसे कदली-पल्लवोंमें बाँधकर मन्दिरमें अपने पिता विष्णुचित्तस्वामीको भगवान् रंगनाथके श्रीविग्रहको अर्पित करनेको दे देती। भगवती गोदाके पिता अपनी पुत्रीके मालानिर्माणके कला-कौशलको देख-देखकर मुग्ध हो जाते। यह क्रम लगातार अनेक दिवसोंतक निर्विघ्न चलता रहा।

एक दिवस जब विष्णुचित्तस्वामी अपनी पुत्री द्वारा संरचित वनमाला, जो पुष्पों एवं तुलसीदलोंके संयोगसे अतिशय मनोहर ग्रथित थी, अपने आराध्य भगवान् रंगनाथको अर्पण कर ही रहे थे, उसी समय उन्होंने देखा कि मालामें एक अतिशय दीर्घ काला बाल गुँथा हुआ है। पूर्ण आचारनिष्ठ ब्राह्मण विष्णुचित्तस्वामीका नारीदेहके बालको अपने आराध्यकी मालामें देख अतिशय ग्लानियुक्त होना तो स्वाभाविक ही था, उन्होंने अतिशय खिन्न मनसे अपनी बालिकाको बुलाया और वह बाल दिखाकर उसकी भर्त्सना की। उन्होंने उस दिन भगवान्‌के श्रीविग्रहको तुलसी-वनमाला धारण ही नहीं करायी। दूसरे दिवस पुनः जब श्रीविष्णुचित्तस्वामी अपनी पुत्री द्वारा रचित वनमालाको भगवान्‌को अर्पण करनेके पूर्व ध्यानसे देख रहे थे, उन्हें फिर नारीदेहका अति लम्बित बाल उसमें गुँथा मिला। तीसरे दिन भी जब यही बात पुनः दृष्टिगोचर हुई, तो चौथे दिन वे छुपकर अपनी बालिकाकी माला ग्रंथन करनेकी क्रिया गुपचुप छिपकर देखनेका निश्चय कर बैठे। वृद्ध सदाचारी विष्णुचित्तस्वामी जब एक लताजालकी ओटसे अपनी पुत्रीपर छिपकर दृष्टि जमाये थे, तो उन्हें भगवान् रंगनाथके दर्शन तो हुए नहीं, बस, यही दृष्टिगोचर हुआ कि उनकी पुत्री गोदा पुष्पमाला निर्माणकर सर्वप्रथम उससे अपनी वेणी सजाती है, तब भरे कूपके जलमें प्रतिबिम्बित अपने स्वरूपको स्वयं देखती है, और तब अपने केशोंमें सज्जित माला उतारकर उसको कदली-पत्तोंमें बाँधकर उसे भगवान्‌के श्रीविग्रहकी सेवामें समुपस्थित करती है। अपनी पुत्री द्वारा किये जानेवाले इतने गर्हित आचरणकी तो वृद्ध भगवद्भक्त पिताको कभी कल्पना ही नहीं थी।

वे चुपचाप यह सब देखकर मन्दिर चले आये, और ज्योंही गोदा माला लेकर आयी, वे उसके आचरणका बखानकर उसके सम्मुख फूट-फूटकर रोने लगे। बालिका गोदा तो इतनी सरल एवं रसमय थी कि उसे यह समझ ही

नहीं आ रहा था, कि उससे भूल कहाँ हुई है। जब स्वयं भगवान् रंगनाथ उसका मनुहार करने उसकी वेणीमें माला सज्जित करते हैं, तो फिर दोष उसका कहाँ, दोष तो भगवान्का है। किन्तु अतिशय लज्जाशील बालिका अपने रुष्ट पिताके सम्मुख ऐसी सरस बात कहे भी तो क्या ! बालिका गोदा अपने पिता द्वारा दी हुई सभी भर्त्सनाएँ चुपचाप सुनती रही और एक शब्द भी नहीं बोली। दण्डस्वरूप दूसरे दिवससे गोदाका भगवान् रंगनाथके गर्भमन्दिरमें, उनकी पुष्पवाटिकामें, दोनों स्थानोंमें प्रवेश ही निषिद्ध हो गया। अब भला गोदाका यह अपमान एवं उनके विरहमें उसका विलाप भगवान् रंगनाथ कैसे सह पाते ? रात्रिको ही भक्तिमती गोदाके पिताको स्वप्नादेश हुआ। स्वप्नमें स्वयं भगवान् रंगनाथ विष्णुचित्तस्वामीके सम्मुख प्रकट हो गये थे। भगवान् रंगनाथने विष्णुचित्तस्वामीको स्पष्ट आदेश दिया था कि उन्हें वनमाला तभी स्वीकार होगी जब वह वनमाला बालिका गोदा ही अपने हाथों निर्माण करेगी, और प्रथमतः अपनी वेणीमें गूँथकर फिर उन्हें पहनायेगी। साथ ही उनकी शेष सभी पूजाएँ भी आजके पश्चात् गोदाके द्वारा ही सम्पादित करायी जायें। यदि उनके द्वारा दिये इस आदेशका अक्षरशः पालन नहीं हुआ, तो फिर परिणाम भयानक होंगे, विष्णुचित्त स्वामी उसे भोगनेको तैयार हो जावें।

भगवान् द्वारा स्वप्नमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर इस प्रकार आदेश देनेके पश्चात् विष्णुस्वामी अब भला भगवदाज्ञाको क्योंकर ठुकरा पाते।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि दक्षिण भारतमें भक्तिमती गोदा आण्डालके रूपमें राधाभाव ही व्यक्त हुआ है। उनका तन-मन वचन एवं जीवन लोकोत्तर रूपसे निर्मल और उज्ज्वल है। उनमें निज सुखेच्छाका कणांश भी नहीं है, अपितु सच्ची बात यही है कि तत्सुखके लिये सर्वस्वका उत्सर्ग कर देनेके लिये उनमें उल्लास उमड़ता रहता है। भगवती गोदा देवी आण्डालसे श्रीरंगनाथ भगवान्ने प्रकट प्रत्यक्ष होकर सर्वजनके सम्मुख पाणिग्रहण किया है। उनके विवाहमें सभी तीर्थ, सभी देवता, स्थान-स्थानसे प्रकट चलकर आये थे। जैसे नरसी भक्तका माहेरा भगवान्ने साँवल सेठके रूपमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर सब जनसमुदायके सम्मुख भरा था, उसी तरह भगवान्ने देवी गोदा आण्डालसे विवाह भी सब जनसमुदायके सम्मुख किया था।

जिस कूपमें भगवती गोदा आण्डाल अपनी छवि जल-प्रतिबिम्बमें देखा करती थी, वह कूप आज भी ज्यों-का-त्यों विद्यमान है। पू.गुरुदेव उस कूपका

सहारा लेकर घण्टों समाधिस्थ-से बैठे रहे। श्रीविल्लीपुत्तूरमें जो रंगनाथजीका मन्दिर है, उसमें मुख्य स्थानपर गोदाम्बाके साथ ही श्रीरंगनाथजीकी पावन मूर्त्ति है। उन्हें यहाँ रंगमन्नार (रंगप्रभु)कहते हैं। श्रीरंगमन्नार मन्दिरसे लगभग आधे मीलपर एक सरोवर है। इस सरोवरमें ही स्नान करके पास ही स्थित श्रीरंगवाटिका में गोदा पुष्प चयनार्थ जाया करती थी।

श्रीआद्यशंकराचार्यकी जन्मस्थली कालड़ीमें

कालड़ी भगवान् श्रीआद्यशंकराचार्यकी जन्मभूमि है। यहाँ पेरियार नदीके तटपर श्रीशंकराचार्य एवं उनकी माताका मन्दिर है। यह वही पेरियार नदी है, जिसमें भगवान् शंकरने पाँच वर्षकी ही छोटी अवस्थामें माया-मकर निर्माण किया था, और उसके मुखमें स्वयंको निपतितकर अपनी मातासे संन्यास-दीक्षाकी अनुमति ले ली थी।

भगवान् शंकरके मन्दिरमें प्रवेश करते ही पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको उनके द्वारा प्रवर्त्तित अनेक औपनिषद् महावाक्योंकी स्मृति हो आयी। वे एकदम गम्भीर, भाव-विभोर हो उठे। उनके नेत्र आर्द्र हो उठे थे और कपोल अश्रुसिक्त। उनके अधरों, नथुनों और कपोलोंकी आकृति कुछ बदल गयी थी। एक विशेष प्रकारका वैवर्ण्य मुखाकृतिपर अवतरित हो उठा था। वे कुछ भी बोलनेकी स्थितिमें तो थे नहीं। पू.गुरुदेव डूब गये थे उस स्मृतिमें, जब वे पूरे शांकर मतानुयायी, निष्ठावान्, अद्वैतवादी, निरन्तर **'सोऽहम्'** मंत्रका जप करनेवाले होकर गीताप्रेसमें सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके निमंत्रणपर आये थे। किस प्रकारसे वे प्राणवल्लभ नन्दनन्दनकी अहैतुकी कृपा-योजनासे गीताप्रेससे गीतावाटिका पहुँच गये और सेठजी गोयन्दकाजीके स्थानपर परम भागवत, महासिद्ध, सन्त, महज्जन, श्रीपोद्दारजीसे टकरा गये। फिर मात्र चरणस्पर्श करके श्रीपोद्दार महाराजने अद्वैत निष्ठाके महलको किस प्रकार धूलि-धूसरित कर दिया और उनमें मधुर साकारोपासनाके बीज वपन कर दिये। पू.गुरुदेवके सम्मुख वे सभी पुरातन स्मृतियाँ जीवन्त जाग्रत् हो उठी थीं, जब उन्हें पोद्दार महाराजने सूक्ष्मदेहसे रसदीक्षा प्रदान की थी और मधुरोपासनामें अतिशय गहरे उतार दिया था। फिर भगवान् श्रीकृष्णके आदेशसे उनकी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी पूजा-अर्चना प्रारम्भ हुई और श्रीपोद्दार महाराजके द्वारा ही उन्हें बिना माँगे ललिता-सहस्रनाम एवं सौभाग्य-अष्टोत्तरशत-नामावलिकी पुस्तककी प्रति प्राप्त हुई थी। जिन परम भट्टारिका भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी उपासना भगवान् शंकराचार्यने की और उनके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किये, वैसी ही इस उपासनामें उन्हें भी सफलता मिली।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि यह स्थान अभी भी आध्यात्मिक शक्तिका

पुञ्ज है। बहुत ही सशक्त ज्ञानका तेजोवलय यहाँके वातावरणमें सर्वत्र व्याप्त है। पू.गुरुदेव साधककी दृष्टिसे कह रहे थे कि कोई ईमानदारीसे किसी भी पथसे चले तो सही, किसी प्रतिबिम्बको चाहे वह ज्ञानका हो, भक्तिका हो, किसी भी आचार्य, सम्प्रदाय, मतके अनुसार पकड़े तो सही, वह अवश्य उस बिम्बको, परम सत्यको प्राप्त कर लेगा। और सत्य तो एक ही है, चाहे वह ज्ञानसागरसे उपलब्ध हो अथवा भावसागरसे। हाँ भावसागरका पथ रसमय है और ज्ञानका परम शुष्क।

कन्याकुमारीमें रसोद्दीपन

उस दिवस फाल्गुन कृष्णपूर्णिमा थी, जिस दिन पू. गुरुदेव श्रीराधा बाबा एवं श्रीपोद्दार महाराज भारतवर्षकी दक्षिणी सीमा कन्याकुमारी पहुँचे थे। पू. गुरुदेव कह रहे थे कि विश्वकी एक-से-एक विस्मयजनक वस्तुएँ प्रपञ्च-निर्माताके हाथों सृष्ट हुई है।, इनमें एक यह दक्षिण भारतका भूमिविन्दु भी है, जहाँसे दक्षिणकी ओर मुख करनेपर पृथ्वीके दक्षिणी ध्रुवतक मात्र जल-ही-जल मिलेगा, कहीं भी भूमिका एक लघु खण्ड भी दृष्टिगोचर नहीं हो पायेगा। इसी प्रकार यदि वह व्यक्ति उत्तराभिमुख हो जायगा तो उसे उत्तरी ध्रुवतक कहीं भी जलके दर्शन नहीं होंगे, मात्र पृथ्वी-ही-पृथ्वी दृष्टिगोचर होगी। पू.गुरुदेव इसीकी संतुलना आध्यात्मिक दृष्टिसे करते हुए कह रहे थे कि स्रष्टाकी इस निर्मितिसे मानव यदि शिक्षा ले ले और मात्र भगवन्नामका आश्रय ले ले, तो उसके भी जीवनमें एक ऐसा विन्दु आ जाता है, जिसके आगे फिर प्राकृत माया एवं लौकिकता शेष रह ही नहीं जाती। शेष रह जाता है मात्र भावोल्लास, अथवा ज्ञानोल्लास। वह या तो मुक्तिसमुद्रमें डूब जाता है, और यदि इस मुक्तिसिन्धुके व्यामोहसे वह पार हो जाय तो उस ध्रुवतक उसकी पहुँच हो जाती है, जहाँ मात्र तत्सुखी भाव-ही-भाव, अगाध प्रीति-ही-प्रीतिका साम्राज्य है।

पू.गुरुदेव गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कह रहे थे –"गोस्वामीपाद ! आज फाल्गुनी पूर्णिमा होनेके कारण लोग होलिका-दहन करेंगे, आप मेरे प्यारकी लाज रख लीजिये, आप एक व्यक्ति तो ऐसे हों जो संसारमें मत्सुखकी होली जलादें। यह 'मत्सुख'की अमावस्या मिट जाय और श्रीकृष्णसुखकी जय हो जाय, फिर तो आपकी हृदयभूमिपर तीनों दिशाओंसे प्रीतिभावका महा

समर्पण-मूर्ति पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

सिन्धु उमड़ उठेगा। आपके सम्मुख तो होंगे रसराज ब्रजेन्द्रनन्दन पलक-पाँवड़ा बिछाये और पूर्व एवं पश्चिम दोनों ओर होगा महाभावसिन्धु अपने दक्षिण एवं वाम रसास्वादनमें आपको आपाततः निमग्न कर देनेको समुत्सुक। जीवनमें फिर आपके पल–पल रस उछलता रहेगा।

पू.गुरुदेव गोस्वामीजीको लेकर वहाँ खड़े थे, जहाँ कन्यास्वरूपा कुमारी पार्वतीजीका मन्दिर है। जनश्रुतिके अनुसार भगवती पार्वती यहाँ एक पैरपर खड़ी रहकर भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये तप कर रही हैं। कहते हैं, सत्ययुग आनेपर भगवान् शंकरसे उनका परिणय-मिलन होगा। इसी स्थलपर पू.गुरुदेव श्रीचिम्मनलालजीको कह रहे थे – गोस्वामीपाद ! ब्रजभावकी गरिमा तो अति विचित्र है। वहाँ राधा इस प्रकार कोई तप नहीं करती, जिससे उसे उसके प्रियतम श्रीकृष्ण मिल जावें। उसे तो 'स्वसुख'के लिये, 'स्वकल्याण'के लिये, निजकी कृतकृत्यता अथवा निजके जीवनके साफल्यके लिये श्रीकृष्ण-मिलनकी चाह ही नहीं है। वहाँ तो प्रियतम श्रीकृष्ण ही अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधाकिशोरीसे मिलनेकी चाह करते हैं। वे तो उनका सन्देश पाकर उनके सुखके लिये संकेतवटपर मिलने जाती हैं।

गोस्वामीजी ! यह संकेतवट इस जगत्के नायक-नायिकाके मिलनभूमिकी तरहका कोई स्थान नहीं है। यहाँका संकेत-स्थल तो चिन्मय देश है, जो लीलाकी सुन्दरताके लिये जब जिस प्रकारके वातावरणकी आवश्यकता होती है, वैसा वातावरण समुपस्थित कर देता है। इस चिन्मय प्रदेशमें वे सभी उपकरण सदैव समुपस्थित हो जाते हैं जिससे लीला निर्बाध रूपसे चल सके और लीलाकी सम्पन्नता सुन्दरतम प्रकारसे हो सके। कहनेका सार यही है कि तत्सुखसुखित्वका भाव श्रीबृषभानुनन्दिनीके अणु-अणुमें परिव्याप्त है। इन भावतरंगोंकी गाथा अनिर्वचनीय है। वस्तुतः इन भावलहरियोंकी महिमा अनुमानसे सर्वथा परे है।

गोस्वामीपाद ! निजसुख-कामनाका नितान्त अभाव और प्रियसुख-वाञ्छामें आशिख निमग्नता ही ब्रजभावके साधककी आधारशिला है। स्वसुख-वासनाका आत्यन्तिक राहित्य ही ब्रजभावका आरंभ है। श्रीप्रिया-प्रियतमकी रसमयी सेवामें संलग्न सखियों-मंजरियोंके तत्सुखी भावका स्तर और स्वरूप तो अनुमानातीत है ही, ब्रजदेशकी प्रकृति भी तत्सुखी भावसे सदैव भावित रहती है। इस विलक्षण देशकी लताएँ-वृक्ष, पशु-पक्षी –यहाँतक एक तृण भी तत्सुखी भावसे

भावित रहता है। यह सब वार्त्ता करते-करते पू.गुरुदेव अरब सागरमें सूर्यास्त एवं बंगालकी खाड़ीमें चन्द्रोदयका दृश्य देखने चल दिये।

यहाँ कन्याकुमारीपर अरबसागरपर सूर्यास्तके समय डूबते सूर्यका दृश्य बहुत ही भव्य होता है।

सभी यात्रियोंने अरबसागरपर डूबते सूर्यका दृश्य देखा और बंगालकी खाड़ीमें फाल्गुनी पूर्णिमा होनेसे रुपहले चन्द्रोदयका दृश्य अतिशय मनोहर था।

आज **पू.गुरुदेवने** यही निश्चय किया कि वे गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी एवं श्रीव**ल्लभलालजी** गोस्वामी आदिके सहित रात्रिमें सागरके तटपर ही अपना **आसन लगावेंगे**। यद्यपि लोगोंने पू.गुरुदेवको यह कहकर मना करना चाहा कि **वहाँ सागरतटपर** बैठना खतरेसे खाली नहीं है। पूर्णिमाके दिन सागरमें वैसे **ही उत्ताल** ज्वार आता रहता है, और उत्ताल लहरें किसको सागरके मध्य खींच लें, कुछ भी असंभावित घट सकता है। किन्तु एक बार कुछ भी निश्चय कर लेनेपर पू.गुरुदेवको उनके हठसे हटाना प्रायः असंभव ही होता था। ।

पू.गुरुदेवकी परम रसमयी भावनाको कौन ग्रहण करे ? लोगोंके पास इस भावनाको ग्रहण करनेका पात्र ही जो नहीं था। पू.गुरुदेवके लिये तो सागर उनके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र ही तो थे। संसारके लिये परिदृश्यमान जगत् और जगत्से उत्पन्न होनेवाले नरक-स्वर्ग, मृत्यु-जन्म, राग-द्वेषमूलक हो सकते हों, पू.गुरुदेवके लिये तो कार्यकारणात्मक यह समस्त परिदृश्यमान् जगत् नराकृति परब्रह्म उनके प्रियतम श्रीकृष्णका ही रूप तो था। वे श्रीकृष्ण उनका मृत्यु-विधान करें या जीवित रखें, पू. गुरुदेव तो उनकी रुचिकी ही सर्वदा एवं सर्वथा जय मनाते रहते थे। उनका स्वयंका तो अहं शेष था ही नहीं, जो भयग्रस्त हो अथवा अनुकूलता-प्रतिकूलता अनुभव करे।

पू.गुरुदेव तो रात्रिपर्यन्त गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे ब्रजरसके निर्मलतम तत्सुखीभावोंकी चर्चा करते रहे।

पू. गुरुदेवने गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे रात्रिपर्यन्त ब्रजभावकी ही चर्चा की। वे उन्हें यही समझा रहे थे कि – "गोस्वामीपाद ! आपके जीवनमें एक बहुत बड़ी भूल यह होती है कि आपको कर्त्तव्यबोधकी भावना स्वयंमें अटकाये रखती है। आप उसे जड़-मूलसे हटा दीजिये। विविध कर्त्तव्य-बोधकी

भावनामें अटके हुए साधककी जीवनधारा सर्वथा सर्वरूपेण नीलसुन्दरकी ओर प्रवाहित नहीं हो पाती। जब आपको पोद्दार महाराज जैसे रसिक सिद्ध सन्तकी कृपा-कणिका मिल चुकी है, फिर आप यह क्यों सोचते हैं कि मुझे अमुक धर्मका पालन करना है, मुझे अमुक कर्त्तव्यका निर्वाह करना है। बस, अपने जीवनकी धाराको सर्वथा सर्वरूपेण नीलसुन्दरकी ओर प्रवाहित कर दीजिये। इस जगत्से सर्वथा एवं सर्वदाके लिये उपरत हो जाइये। तीनों लोकोंके सुखको घास-फूसके समान समझिये। कितना ही आप जप-तप करलें, कितना ही तीर्थाटन करें, जो सुख आपको श्रीपोद्दार महाराजकी कृपाकणिका देने वाली है, उसकी तो अभी कल्पना ही आप कर नहीं सकते। अतः अपने अहंकारके तटको चूर्ण-चूर्ण करके उसे अथाह समुद्रवत् श्रीपोद्दार महाराज रूप रससिन्धुमें मिला दीजिये। आपकी अहंकारकी जलधारा उनसे मिलकर सिन्धु हो जाय। सरिता जब सिन्धुमें मिल गयी तब चाहे वह सरिता गंगा हो, यमुना हो, कृष्णा हो, गोदावरी हो, एवं चाहे कावेरी ही क्यों न हो, अब किसकी सामर्थ्य है कि इस सम्मिश्रित जलको पृथक्-पृथक् कर सके।

जिस प्रेमीका मानस-विन्दु अपने प्रेमास्पद रससिद्ध सन्त रूप सिन्धुमें विलीन हो चुका है, उस प्रेमी मनका अपने प्रेमास्पदसे पृथकत्व कर सकना, पृथक् हो सकना सर्वथा असंभव है।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके कहनेसे गोस्वामीजीने उन्हें उस रात निम्न पद सुनाया–

चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये
लोककी लाज सौं काज कहा सरैगो ।
बहुरि कोउ कहैगो स्यामके ढिंग गई
याहु ते अधिक कोउ और कहा कहैगो।।
नाचिबे लगी तो फेर घूँघट कहा
सूर रन चढे पै कौन ते डरैगो ।
निरखिये रूप नारायण हरि स्यामकौ
बहुरि ऐसो सखी दाव कब परैगो।।

यह पद श्रीगोस्वामीजीकी सुमधुरतम स्वरलहरीमें सुनते-सुनते पू. गुरुदेवके मनने जागतिक धरातल ही छोड़ दिया। गोस्वामीजीके गायनसे वे कहीं 'अन्यत्र' ही चले गये थे। क्या दिवस, क्या रात्रि, क्या भोर, क्या सायं –पू.

गुरुदेव जब अपने लीलाराज्यमें उद्दीपित हुए डूब जाते थे, तो फिर काल वहाँ रहता ही कहाँ था ? गोस्वामीजीको निशापर्यन्त पू.गुरुदेवके पास रहना ही था। होलीदहनकी महारात्रि थी, आज तो रात्रिपर्यन्त जागरण उन्हें करना ही था। अतः वे कुछ कालतक तो शान्त रहे, फिर उन्होंने ब्रजभावके ही पद सुनानेका निश्चय कर लिया। वे गाने लगे –

आनँद सिन्धु बढ्यौ हरि तनमें।
राधा मुख पूरन ससि निरखत, उमगि चल्यौ ब्रज बृन्दावनमें ।।
इत रोक्यौ जमुना उत गोपिन कछु एक फैलि पर्यौ त्रिभुवनमें ।
नहिं परस्यौ कर्मठ अरु ज्ञानी, अटकि रह्यौ रसिकनके मनमें ।।
मंद-मंद अवगाहत बुधिबल, भक्त हेतु लीला छिन-छिनमें ।
कछुक लह्यौ नन्दसूनु कृपातें सो देखियत परमानँद जनमें ।।

इस पदको सुनकर पू.गुरुदेव किंचित् मुखर हुए। धीरे-धीरे वे बोलने लगे –"गोस्वामीपाद ! बृषभानुनन्दिनी और ब्रजेन्द्रनन्दनके चिद्विलासका सागर परम अद्भुत है। मैं तो कट्टर वेदान्ती था, मेरे हृदयमें इस ब्रजरसके प्रवेशकी तो संभावना ही नहीं थी, किन्तु महारससिद्ध संत महानुभाव श्रीपोद्दार महाराजने प्रणाम करनेके बहानेसे चरणनखोंका स्पर्श करके मेरे अन्दर स्वयं अपनेको ही सदाके लिये प्रतिष्ठित कर दिया। और अपने साथ-ही-साथ प्रतिष्ठित कर दिया इस चिद्विलासको भी। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि " लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये लोग साधना करते हैं, परन्तु यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि अमुक साधनासे साधकको स्वरूपकी प्राप्ति हो ही जायगी। लक्ष्यतक पहुँचनेका एक मात्र उपाय कृपा ही है। यह हो सकता है कि साधना करते-करते कृपापात्रता साधकको मिल जाय, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि कृपापात्रता पानेके बाद भी वह कृपाभाजन बनेगा अथवा नहीं। कृपापात्रताकी स्थिति और कृपाप्राप्तिकी स्थिति – ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं। साधना करते-करते साधकका हृदय विगलित हो करके जब लाक्षावत् प्रवाहित होने लगता है और उस लाक्षावत् द्रवित हृदयपर जब भगवान्की शीतल दृष्टि पड़ती है, तब भगवान्की दृष्टिकी शीतलतासे संयोग होते ही मन उस साँचे में ढल जाता है, जिसमें भगवान् उसे ढालना चाहते हैं। भगवान्की शीतल दृष्टि पड़नेको ही संत लोग भगवत्कृपाका अवतरण कहते हैं।

भगवान्की यह कृपा किसपर अवतरित होगी और किस ढंगसे अवतरित

होगी, यह बात किसी नियममें बाँधी ही नहीं जा सकती। यह कार्य जो आजतक विश्वके इतिहासमें नहीं हुआ, वह कार्य जो देखनेमें असंभव लग रहा हो, उस कार्यकी पूर्णताका भार सच्चे विश्वाससे कोई भगवान्‌पर छोड़दे तो आप निश्चय मानिये, भगवान् उसे पूरा कर देंगे। उस आस्तिकके लिए भगवान् नवीन नियमका निर्माण कर देते हैं। किन्तु दुर्भाग्य यही है कि आज भगवान्‌पर विश्वास करनेवाले आस्तिक मिलते ही नहीं हैं।

गोस्वामीजी ! श्रीपोद्दार महाराजके प्रथम मिलनने ही मेरे अन्दर भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपपर विश्वास जगा दिया था। इसके पहले तो मैं **'नहिं परस्यौ कर्मठ और ज्ञानी'**की स्थितिमें था। एक प्रकारसे वह मेरा संक्रमणकाल ही था। इन्हीं दिनों मेरे हृदयमें भगवान्‌के अकारण सौहार्दपर अनोखा विश्वास जगा और यह विश्वास मेरे भीतर पूर्णतया छा गया। मेरे रोम-रोममें भगवद्विश्वास पूर्णतः समा गया। मेरे मनमें यह आस्था दृढ हो गयी कि भगवान्‌की कृपा अहैतुकी है और वह मेरे लिये असंभवको भी संभव कर देगी। भगवान्‌की कृपापर वह मेरी आस्था आज भी ज्यों-की-त्यों है। मेरे जीवनमें अनेकों बार परिस्थितियोंके अत्यन्त उलट-फेर आये हैं, परन्तु मैं सदा हँसता रहा हूँ। सदा ही मैं सर्वथा निश्चिन्त प्रभुकृपापर निर्भर रहा। इसमें हेतु मात्र यही था कि मेरा भगवान्‌की अहैतुकी कृपापर अडिग विश्वास रहा। गोस्वामीजी ! हम भले न समझें, जिसे जगत् प्रतिकूलताकी स्थिति कहता है, वह वस्तुतः हमारी विश्वासहीनताका, हमारी अनास्थाका ही द्योतक है। निश्चय ही उस प्रतिकूलताके गर्भमें अनुकूलता-ही-अनुकूलता है। मेरा तो भगवत्कृपापर विचित्र विश्वास रहा है। मैं तो सदैव यही मानता रहा हूँ कि भले अमुक कार्य आजतक किसीका कभी नहीं हुआ हो, परन्तु भगवान् मेरा यह कार्य कर ही देंगे। मैंने तो भगवान्‌की इस दुर्बलताको पकड़ रखा है कि यदि किसी कार्यके लिये कोई उनपर निर्भर हो जाय तो वे उसकी आशा कभी तोड़ते नहीं। भगवान् उसकी निर्भरताकी परीक्षा तो लेते हैं, परन्तु सच्चे निर्भरकी आशा वे अवश्य पूरी कर देते हैं।

कर्मकाण्डियोंको अपनी साधनाका धोर अभिमान होता है, और ज्ञानी भगवान्‌की सत्ताको ही मायोपाधिक मानता है, इसीलिये दोनों – कर्मकाण्डी एवं ज्ञानी इस ब्रजरसका स्पर्श नहीं कर पाते। यह ब्रजरस श्रीराधामुख रूपी पूर्ण चन्द्रमाको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र एवं गोपीजनोंका उमड़ता आनन्दसिन्धु

है। यह ब्रजरस बृन्दावनका निजस्व है और वहीं सदैव उमड़ता है। इसे स्थूल बृन्दावन नगर किंवा ब्रजमण्डलतक ही परिच्छिन्न अथवा सीमित नहीं समझना चाहिये। यद्यपि यह भूमि-परिच्छिन्न ब्रज-बृन्दावन भी उस दिव्य वृन्दावनी लीलाका रंगमंच रहा है। अतः इसका भी महत्व अवश्य है। किन्तु सच्चा चिन्मय वृन्दावन तो सिद्ध रसिक सन्तोंके हृदय-पटलपर अवतरित होता है।

जो वृन्दावन सन्तकी अनिर्वचनीय अनुभूतिरूप परम चिन्मय है, उसका महत्व कुछ और ही है। यह दिव्य वृन्दावन तो **'प्रकाशते क्वापि पात्रे '** किसी महान् भाग्यशालीके जीवनमें, उसके हृदयपटलपर प्रकाशित होता है। वह सिद्ध सन्त चलता-फिरता वृन्दावन होता है।

यह ब्रजरस उस बृन्दावनमें परिच्छिन्न है। यह रस प्रियतम श्रीकृष्णके हृदयमें अपनी प्रिया राधाके मुखचन्द्रको देखकर उमड़ता है। इसे एक ओर यमुनाजी रोक लेती हैं, एवं दूसरी ओर ब्रजांगनाएँ। इसके कृछ छींटे ही त्रिभुवनमें अन्यत्र बिखर पाते हैं और वे भी बिखर पाते हैं सन्तोंकी अनुभूतिपूर्ण पद-रचनाओंके द्वारा। ये रसिक इस रसको अपने कण्ठमें अटकाये रखते हैं। रसानन्दकी अधिकताके कारण ये न तो इसे पचा ही पाते हैं और न ही अधिकारीके अभावमें उसे उगल ही पाते हैं। हाँ, परमानन्ददासजी कहते हैं, उस रसका कणिकांश अवश्य ही मुझे ब्रजेन्द्रतनय श्रीकृष्णकी कृपासे प्राप्त हुआ है और मैं अपनी सामर्थ्यके अनुसार उस रसप्रवाहमें अवगाहन करता हुआ क्षण-प्रतिक्षण उस दिव्य लीलाका आस्वादन करता रहता हूँ।

उस रात्रि गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनों ही विलक्षण ब्रजभावके प्रीतिराज्यमें लहराते रहे। पल-पल उमड़ते-उछलते रससागरको देखते-देखते ही दोनोंकी निशा व्यतीत हो गयी।

भगवती मीनाक्षीकी साक्षीमें सभी यात्रियोंका आध्यात्मिक संशुद्धीकरण

स्टेशनसे पूर्व दिशामें लगभग एक मीलपर मदुरा नगरके मध्यभागमें भगवती मीनाक्षीका मन्दिर है। अपनी निर्माणकलाकी भव्यताके लिये यह मन्दिर सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह मन्दिर लगभग २२ बीघे भूमिपर बना है। इसमें चारों ओर चार मुख्य गोपुर हैं। वैसे छोटे-बड़े मिलाकर मन्दिरमें २७ गोपुर हैं। सबसे अधिक ऊँचा दक्षिणका गोपुर है। सर्वाधिक सुन्दर गोपुर पश्चिमका है। बड़े गोपुर ग्यारह मंजिलतक ऊँचे हैं।

सामान्यतः लोग पूर्व दिशासे मन्दिरमें जाते हैं, किन्तु इस दिशाका गोपुर अशुभ माना जाता है। कहते हैं, इन्द्रको वृत्रवधके कारण जब ब्रह्महत्या लगी तब वे इसी मार्गसे भीतर गये और यहाँके पवित्र सरोवरमें कमलनालमें बहुत कालतक स्थित रहे थे। उस समय ब्रह्महत्या इन्द्रके मन्दिरमेंसे निकलनेकी प्रतीक्षा करती पूर्व दिशाके गोपुरके द्वारपर खड़ी रही। इसीसे यह गोपुर अपवित्र माना जाता है।

गोपुरमें प्रवेश करनेपर पहले 'नगर मण्डप' आता है, जिसमें फल-फूलकी दुकानें हैं। इसके आगे अष्टशक्ति मण्डप है। इसमें स्तम्भोंके स्थानपर अष्ट लक्ष्मियोंकी मूर्त्तियाँ छतका आधार बनी हैं। इसके आगे मीनाक्षीनायकम् मण्डप है, इसमें भी दुकानें हैं। इसके आगे जो अँधेरा मण्डप है, उसमें भगवान् विष्णुके मोहिनीरूप, शिव, ब्रह्मा, विष्णु तथा अनुसूयाजोकी कलापूर्ण मूर्तियाँ हैं। इसके आगे स्वर्णपुष्करिणी सरोवर है।

सरोवरके चारों ओर मण्डप हैं, यहाँ मण्डपोंमें तीन ओर भगवान् शंकरकी चौसठ लीलाओंकी मूर्तियाँ बनी हैं। यही वह सरोवर है, जहाँ इन्द्र ब्रह्महत्याके भयसे छिपे थे।

सरोवरके पश्चिममें एक मण्डप है, जिसे किलिकुण्डुमण्डप कहा जाता है। इसमें पिंजरोंमें पक्षी पाले गये हैं। यहाँ एक अद्भुत सिंहमूर्त्ति है। सिंहके मुखमें एक गोला बनाया गया है। सिंहके जबड़ेमें उँगली डालकर घुमानेसे वह गोला घूमता है। पत्थरमें इस प्रकारका शिल्पनैपुण्य देखकर चकित रह जाना पड़ता है। मन्दिरके सम्मुखके मण्डपमें स्तम्भोंमें पाँचों पाण्डवोंकी मूर्त्तियाँ हैं।

शेष स्तम्भोंमें सिंहकी मूर्त्तियाँ हैं। इस मण्डपको पुरुष मृगमण्डप कहते हैं, क्योंकि इसमें एक मूर्ति ऐसी बनी है, जिसका आधा शरीर पुरुषका और आधा मृगका है। इस मण्डपके सामने ही मीनाक्षी देवीके निज मन्दिरका द्वार है। द्वारके दक्षिण छोटा-सा सुब्रह्मण्य मन्दिर है। इसमें स्वामी कार्तिकेय तथा उनकी दोनों पत्नियोंकी मूर्तियाँ हैं । द्वारपर दोनों ओर पीतलकी द्वारपाल-मूर्तियाँ हैं।

अनेक ड्योढियोंके भीतर श्रीमीनाक्षीदेवीकी भव्य मूर्ति है। बहुमूल्य वस्त्राभरणोंसे देवीका श्याम विग्रह सुभूषित रहता है। महामण्डपके दाहिनी ओर देवीका शयनमन्दिर है। मीनाक्षी मन्दिरका शिखर स्वर्णमण्डित है। मन्दिरके सम्मुख बाहर स्वर्णमण्डित स्तम्भ है । मीनाक्षी मन्दिरके भीतरी परिक्रमामार्गमें इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिकी मूर्तियाँ बनी हैं।

मीनाक्षी मन्दिरके दर्शनकर सुन्दरेश्वर मन्दिरकी ओर चलनेपर मध्यके द्वारके सामने गणेशजीका मन्दिर है। इसमें गणेशजीकी विशाल मूर्ति है। यह मूर्ति 'वण्डीपूर' सरोवर खोदते समय भूमिमें मिली थी। वहाँसे लाकर यहाँ प्रतिष्ठित की गयी है।

सुन्दरेश्वर मन्दिरके सम्मुख पहुँचनेपर प्रथम नटराजके दर्शन होते हैं। यह रजतमण्डित मूर्ति चिदम्बरम्की नटराज मूर्तिसे बड़ी है। मूर्तिके मुखको छोड़कर सर्वांगमें रजतका आवरण चढ़ा है। चिदम्बरम्में नटराज मूर्तिका वाम पद ऊपर उठा है और यहाँ दाहिना पद ऊपर उठा है।

सुन्दरेश्वर मन्दिरके सम्मुख भी स्वर्णमण्डित स्तम्भ है और मन्दिरका शिखर भी स्वर्णमण्डित है। अनेक ड्योढियोंके भीतर अर्घेपर सुन्दरेश्वर स्वयम्भू लिंग सुशोभित है। उसपर स्वर्णका त्रिपुण्ड्र लगा है।

मन्दिरके बाहर जगमोहनमें आठ स्तम्भ हैं, जिनपर भगवान् शंकरकी विविध लीलाओंकी अत्यन्त सजीव मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनका शिल्पनैपुण्य अद्भुत है। यहीं द्वारके सम्मुख चार स्तम्भोंका एक मण्डप है, जिसमें पत्थरमें ही श्रृंखला बनायी गयी है। इस श्रृंखलाकी कड़ियाँ लोहेकी श्रृंखलाके समान घूम सकती है। यहींपर वीरभद्र एवं अघोरभद्रकी विशाल उग्र मूर्तियाँ हैं जो शिवगणोंके सामर्थ्यकी प्रतीकके रूपमें स्थित हैं।

इस मण्डपमें भगवान् शंकरके ऊर्ध्व नृत्यकी अद्भुत कलापूर्ण विशाल मूर्ति है। ताण्डव नृत्य करते हुए शंकरजीका एक चरण ऊपर कानके समीपतक

पहुँच गया है। पास ही उतनी ही विशाल काली-मूर्ति है। परिक्रमामें प्राचीन कदम्ब वृक्षका अवशेष सुरक्षित है जिसके मूलमें भगवान् सुन्दरेश्वर (शिव)ने मीनाक्षीका पाणिग्रहण किया था।

कहा जाता है, पहले यहाँ कदम्बवन था। कदम्बके एक वृक्षके नीचे भगवान् सुन्दरेश्वरका स्वयंभू लिंग था। देवता उसकी पूजा करते थे। श्रद्धालु पाण्ड्य नरेश मलयध्वजको इसका पता लगा। उन्होंने इस लिंगमूर्तिके स्थानपर मन्दिर बनवाने तथा वहीं नगर बसानेका संकल्प किया। स्वप्नमें भगवान्ने राजाके संकल्पकी प्रशंसा की तथा एक सर्पके रूपमें आकर नगरकी सीमाका भी निर्देश कर गये।

पाण्ड्यनरेशके कोई सन्तान नहीं थी। राजाने भगवान् शंकरकी बहुत आराधना एवं तपस्या की। साक्षात् भगवती पार्वती ही अपने अंशसे राजा मलयध्वजके यहाँ कन्या रूपमें अवतीर्ण हुई । उसके विशाल सुन्दर नेत्रोंके कारण माता-पिताने उनका नाम मीनाक्षी रखा। राजा मलयध्वज कुछ काल पश्चात् कैलासवासी हो गये। राज्यका भार रानी कांचनमालाने सम्हाला ।

मीनाक्षीके युवती होनेपर साक्षात् भगवान् सुन्दरेश्वरने उससे विवाह करनेकी इच्छा व्यक्त की। रानी कांचनमालाने बड़े समारोहसे मीनाक्षीका विवाह सुन्दरेश्वर शिवसे कर दिया।

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज जब मीनाक्षी मन्दिर पहुँचे तो उनके साथ छः सौ यात्रियोंका पूरा समुदाय था। भगवतीके मन्दिरका पट मध्याह्नमें समयपर बन्द हो जाता है। जब सभी यात्री दर्शनार्थ पहुँचे उस समय पट बन्द होनेमें मात्र आधा घण्टेका समय शेष था। इस अल्प समयमें सभी यात्री माँ मीनाक्षीके कैसे दर्शन कर पावेंगे, यह एक समस्या ही थी। पू.गुरुदेव अति कुशल व्यवस्थापक भी थे। अतः उन्होंने अविलम्ब निश्चय कर लिया, यात्रियोंको पंक्तिबद्ध खड़ा किया जाय तभी यह संभव है, अन्यथा व्यवस्था दुष्कर हो उठेगी।

श्रीपोद्दार महाराज गर्भगृहके द्वारपर खड़े हो गये और पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा एक-एक करके लोगोंको भेजने लगे।

अचानक पू.गुरुदेवका भावदृश्य परिवर्तित होना प्रारंभ हुआ। पू.गुरुदेवको मूर्तिके स्थानपर सर्वदेवमयी सर्वकल्याणनिलया परमाद्या, पराभट्टारिका, सनातनी, भगवती, जगदम्बा, माता पार्वती साक्षात् दृष्टिगोचर हो उठी। साथ ही पू.पोद्दार

महाराजके स्थानपर उन्हें साक्षात् भगवान् चन्द्रमौलेश्वर शिव ही खड़े दृष्टिगोचर हो रहे थे। पू.गुरुदेव सभी यात्रियोंके सौभाग्यपर वाह-वाह कर उठे। उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था कि कृपामूर्ति भगवान् शंकर ही अपनी प्राणप्यारी समाराध्या भगवती माता पार्वतीके दर्शन एक-एक यात्रीको करा रहे हैं और भगवती अपने परमातिपरम सुन्दर कृपाभरे नेत्रोंसे उत्पन्न तेजसे एक-एक यात्रीके भूत एवं भविष्य, पूर्व एवं पश्चात्की सर्व कर्मराशि भस्म करती जा रही है। पू.गुरुदेव राधाबाबा देख रहे थे महामहाकृपामूर्ति श्रीपोद्दार महाराजकी कृपासे प्रत्येक यात्रीका आध्यात्मिक जगत्में प्रवेश हो जाय, इसीलिये वे भगवतीके मन्दिरके द्वारपर भगवान् पिनाकपाणिके रूपमें खडे हैं और यात्रियोंको मरणोपरान्त दिव्य उपासनादेह मिल जाय इसकी कृपा-आयोजना कर रहे हैं। भारतीय तंत्र इसे 'बैन्दवदेह' कहता है। इस देहकी उत्पत्ति सिद्ध गुरु अथवा इष्टदेवता या देवीसे ही होती है। दीक्षाप्राप्तिके साथ ही इस देहके बीजकी प्राप्ति होती है और यह परमोत्तम अध्यात्मबीज शुभ साधनोपयोगी पुनर्जन्मकी प्राप्तिमें हेतु होता है।

पू.गुरुदेवको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा था – महाकृपावतार पोद्दार महाराज छः सौ व्यक्तियोंको आध्यात्मिक जगत्में प्रवेश करानेके लिये उन्हें पुनर्जन्मके पश्चात् आध्यात्मिक साधनादेहका दान करनेका उपक्रम कर रहे हैं। वैदिक युगमें उपनयन संस्कारके अनन्तर गायत्री मंत्रदीक्षाके साथ ही इस देहकी प्राप्तिरूप द्वितीय जन्म होता था। इसीलिये जातकको द्विज कहा जाता था। इस देहका क्रमविकास भी होता है। स्वरूपका यह परिवर्तन गुरुशक्तिसे होता है।

पू.गुरुदेवके पास गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी खड़े थे। वे पू.गुरुदेवसे भगवती मीनाक्षीके कोई विशेष पूजनकी बात पूछने आये थे। पू.गुरुदेवने धीरेसे श्रीचिम्मनलालजीसे कहा –" श्रीपोद्दार महाराज क्या करने जा रहे हैं, कुछ पता है ?" गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीने धीरेसे न जाने किस प्रकार जानकर कह दिया – बाबा ! पोद्दार महाराज द्वारा यात्रियोंके अध्यात्मदेहकी रूपान्तरण -चेष्टा हो रही है। पू.गुरुदेव मुसका दिये। मुझे जब मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, ये सभी मीनाक्षी-दर्शनकी बातें बता रहे थे– तो मैंने उनसे पूछा था – मामाजी ! आपको कैसे ज्ञात हुआ कि पोद्दार महाराज एक-एक व्यक्तिको दर्शन कराते हुए उनके अध्यात्मदेहकी रूपान्तरण-चेष्टा

कर रहे हैं ? उन्होंने धीरे-से कहा– "बेटा, छठी इन्द्रियसे एकदम यही प्रेरणा हुई और मैंने पू.राधाबाबासे जो तथ्य समझमें आया, बोल दिया।' "

मैंने पीछे पू.गुरुदेवसे अपने मामाजी द्वारा बतायी बातें उल्लेख कीं एवं रूपान्तरण-चेष्टाको विस्तारसे बतानेका आग्रह किया तो उन्होंने ही निम्न रहस्य बताया था –" यह प्रकृतिके अंशका शोधन है। जो देह माता-पिताके द्वारा मिलता है, उसमें आनुवंशिकी प्रकृति रहती है, माता-पिताके परंपरागत दोष-गुण भी उसके भाग होते हैं। फिर संगजनित दोष-गुण भी उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं। सिद्ध सन्त अपने सम्पर्कमें आये जीवोंकी प्रकृतिका शोधन करता है। जितना-जितना सम्पर्कमें आये व्यक्तिका समर्पण होता है, उसकी प्रकृतिका उतना-उतना अंश रूपान्तरित हो जाता है। संतके सम्पर्कमें आया व्यक्ति अपने अहंकारके कुछ पाप-पुण्य अपने पास ही सुरक्षित रखना चाहता है। वह संतके सम्मुख अच्छा दिखनेकी भावनासे कुछ अच्छाइयाँ बचाकर रखता है, और अधिक बुरा नहीं दिखे इस भावनासे कुछ बुराइयाँ भी छुपाता है। इस कपटके होनेसे उसका उतना भाग अरूपान्तरित रह जाता है।"

मैंने पू.गुरुदेवसे प्रश्न किया –" बाबा ! ये यात्री तो सर्वथा समर्पित नहीं थे, फिर उन सबमें यह रूपान्तरण-चेष्टा कैसे संभव हुई ?

पू.गुरुदेवने कहा –" श्रीपोद्दार महाराज महाकृपावर्षी सिद्ध सन्त हैं। उन्होंने प्रत्येक दर्शनार्थीको अपनी अमोघ संकल्पशक्तिसे आरोहिणीधारामें बहा देनेका बीजवपन किया था। वस्तुतः प्राकृत कालका प्रवाह जीवको दो धाराओंमें बहाता है। कुछको आरोहण धारामें एवं प्रायः अधिकांशको दूसरी अवरोहण धारामें। आरोहिणी धारा जीवमें जब क्रियाशील हो उठती है तो क्रमशः उसका अहंकार क्षीण-क्षीणतर-क्षीणतम होता जाता है और अन्ततः उसका समर्पण किसी सिद्ध संतसे घटित होकर वह जीव बंधनमुक्त हो जाता है। प्रकृति स्वभावतः अधोगामिनी होनेसे अवरोह तो सर्वत्र दिखता ही है। जीवका स्वाभाविक सम्मान अवरोहकी तरफ ही होता है, अतः उत्तरोत्तर वह अपना बन्धन क्रमशः प्रगाढ ही करता जाता है।

श्रीपोद्दार महाराज इन सभी यात्रियोंके अन्तरात्मा रूपमें अपनेको अनुभव करते हुए अन्तर्यामीरूपसे ब्रह्ममय ज्ञानदेहका बीज डाल रहे थे। आद्याशक्ति द्वारा उनका प्रतिबाधक कर्मजाल तो समाप्त किया ही जा रहा था। श्रीपोद्दार महाराज इन सभीमें अपने संकल्पसे तारक ज्ञान दे रहे थे। इस

महाज्ञानका संचार संत अलक्षित रूपसे करनेमें समर्थ होते हैं। इससे कालान्तरमें हृदयके मर्ममें प्रविष्ट सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

भैया ! सिद्धसन्तकी महाकरुणाके बिना किसी भी जीवमें कभी भी प्रत्यक्ष आत्मप्रकाश असंभव है। यह सन्तकी करुणा ही शान्ति एवं चैतन्यकी ज्योति साधकके जीवनमें प्रस्फुटित करती है। **'चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः''** की उक्ति यही सत्य उजागर करती है।

मैंने पुनः जिज्ञासा की –"बाबा ! ये सभी यात्री क्या ज्ञानसाधनातक ही सीमित हो जावेंगे ? श्रीपोद्दार महाराज तो प्रेमी सिद्ध सन्त हैं ! "

इसके उत्तरमें पू.गुरुदेव कहने लगे – भैया ! प्रेमकी प्रक्रिया तो ज्ञानके पश्चात् ही प्रारंभ होती है। वास्तविक रस-साधनाका सूत्रपात ज्ञानोत्तर है। ज्ञानका अर्थ ही है भगवान्का ज्ञान । सगुण साकार भगवान्का ज्ञान ही भगवद्दर्शन कहलाता है। निर्गुण-निराकार भगवद्दर्शनको ब्रह्मज्ञानकी संज्ञा दी जाती है। भावोदयके लिये सम्पूर्णतया कामदहनकी आवश्यकता होती है। बीज रूप अज्ञान रहनेतक तो कामदेवका अस्तित्व रहता ही है। अज्ञान ही तो पशुभाव है। दिव्य ज्ञानसे पशुभाव पूर्ण निवृत्त होकर पशुपति या शिवभाव होता है। इसके अभिव्यक्त होनेपर ही कामका समग्र नाश होता है। भैया ! यह शिव रूप सत्ता भी ज्ञानातीत परिपूर्णत्व तभी लाभ करती है, जब प्रेमभावकी पराकाष्ठा लाभ करके प्राकृत कामके आकर्षणसे अतीत हुई, परम प्रेमभावको प्राप्त करती है।

पू.गुरुदेव द्वारा बतलायी इन सभी बातोंसे मेरा समाधान हो गया कि श्रीपोद्दार महाराज जो अनेकों बार पू.गुरुदेवको या तो महाभावस्वरूपा भगवती श्रीमती राधारानीके रूपमें दिखते थे, अथवा रसराज ब्रजेन्द्रनन्दन नीलसुन्दरके रूपमें दृष्टिगोचर होते थे, आज आश्चर्यजनक रूपसे चन्द्रमौलेश्वर भगवान् शिवके रूपमें क्यों दिखे ?

मैंने मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे यह भी पूछा था कि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने वहाँ भगवती मीनाक्षी देवीकी कोई औपचारिक पूजा भी सम्पन्न की थी क्या ?

इसके उत्तरमें उन्होंने यही बताया था कि यात्री एक-एक करके दर्शनार्थ आ रहे थे, एवं श्रीपोद्दार महाराज प्रत्येकको शीघ्र-से-शीघ्र दर्शन कराके निवृत्त करते जारहे थे, फिर भी आधे घण्टेका समय छः सौ यात्रियोंके

लिये अल्पतम था। पट बन्द होनेकी घड़ी सन्निकट थी एवं आधेके लगभग यात्री अभी अवशिष्ट थे। पुजारियोंका भी, उनकी परम्परा, जो सदियोंसे चली आ रही थी, पालन करना आवश्यक था, अतः वे बहुत उतावली दिखा रहे थे। मध्यका कोई रास्ता भी शेष नहीं बचा था। अन्ततः जैसे-तेसे सभीने दर्शन किये।

पू.गुरुदेव तो सबको दर्शन कराके ही भगवतीके दर्शन करनेके लिये आगे आये। उनके मुखसे तो भगवतीकी स्तुति, जो उन्हें कण्ठस्थ थी निस्सृत हो रही थी। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी उनके साथ थे। श्रीपोद्दार महाराज भी वहीं थे। मन्दिरके प्रमुख अधिकारियोंको अबतक श्रीपोद्दार महाराजका परिचय प्राप्त हो चुका था। ये ही 'कल्याण' पत्रिकाके यशस्वी सम्पादक एवं धार्मिक संस्था गीताप्रेसके सफल कर्णधार हैं – यह जानकर मन्दिरकी प्रशासनसमितिकी ओरसे उन्हें बहुत सम्मान दिया जा रहा था।

पू.गुरुदेवके मन्दिरमें दर्शनार्थ प्रविष्ट होते ही मुख्य पुजारीको एक प्रकारका भावावेश हो आया। उस दिव्यावेशसे पुजारीका मुख तमतमा उठा था। वह बार-बार अंग्रेजीमें पोद्दार महाराजसे पूछता जा रहा था –क्या ये ही आपके स्वामीजी हैं ?

श्रीपोद्दार महाराज द्वारा स्वीकृतिसूचक उत्तर दिये जानेपर वे पू. गुरुदेवको एकटक देखने लगे थे। कहाँ तो वे पहले बड़ी उतावली दिखला रहे थे और कहाँ अब वे जड़वत् स्थिर खड़े पू.गुरुदेव द्वारा माँका स्तुतिपाठ दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। पू.गुरुदेव भी भावाविष्ट हुए माँकी स्तुतिमें इतने तन्मय थे कि उन्हें बाह्यावेश ही नहीं था। सहसा जो सर्वाधिक वयोवृद्ध पुजारीको अपना कर्त्तव्यबोध हुआ। वह भगवती मीनाक्षीके श्रीविग्रहकी ओर बढ़ा और उनके कण्ठदेशमें जो सुन्दर-से-सुन्दर माला थी, उसे लेकर उसने पू.गुरुदेवके गलेमें पहना दी। प्रसादी मालाके कण्ठमें आते ही पू.गुरुदेवका कण्ठ भक्तिभावसे भर गया। मनके भीतर-ही -भीतर वे भावाभिभूत होकर बोल उठे – "हे मेरी माँ ! तू ही मेरी माता है, पिता है, भ्राता, गुरु, सुहृद् एव बन्धुजन है। तू ही मेरी प्रभु है, तू ही मेरा हितू है। तू ही मेरी इस संसारमें अविकल कर्मराशि है। तू ही मेरी विशुद्ध विद्या, मेरा प्राप्तव्य पद है। माँ ! एक तू ही तो है जिसकी गोदमें मैं परम सुखसे सब शंकाओंसे परे विश्राम कर रहा हूँ।"

"हे सुमेरु पर्वतके स्वर्णशिखरपर निवास करने वाली माता, तुझे मेरा नमस्कार है। हे श्रीपुरमें निवास करने वाली शिवसती तुझे मेरा नमन है। हे पद्माटवी विहारनिरते ! हे चिन्तामणि रत्नभवन निवासरते !! हे चक्रराज स्थिते ! हे विन्दुनिलये ! हे शिवांकस्थिते, विद्यास्वरूपिणि अम्बे ! तुझे मेरा नमस्कार है।

जय जय जगदम्बभक्तवश्ये !
जय जय सान्द्रकृपावशान्तरंगे !!
जय जय निखिलार्थदानशौण्डे !
जय जय हे ललिताम्ब चित्सुखाब्धे !!

भगवती सीताजीकी अग्निपरीक्षाके दर्शनः रामेश्वरमें

पू.गुरुदेव तीर्थयात्रासे लौटकर आनेपर कह रहे थे, कि रामेश्वरकी स्थापनाके सम्बन्धमें दो कथाएँ प्रसिद्ध हैं। पहली कथा तो यह है कि भगवान् श्रीरामने लंका जाते समय सेतु बँधवाया और सेतुके समीप श्रीरामेश्वरकी स्थापना की। भगवान् श्रीरामने सेतु बाँधनेसे पूर्व उप्पूरमें गणेशजीकी स्थापना तथा पूजन किया। इस कथाके अनुसार जगज्जननी सीताजीकी अग्निपरीक्षा लंकामें ही हुई थी। यह स्वाभाविक है; क्योंकि किसी भी कार्यके प्रारम्भमें भगवान् गणेशजी एवं नवग्रहपूजनकी आदिकालीन भारतीय परम्परा रही है।

श्रीरामेश्वर-स्थापनाकी एक और कथा पू.गुरुदेवको रामेश्वरदर्शनके समय वहाँके विद्वानोंने कही थी। इस कथाके अनुसार रामेश्वर, हनुमदीश्वर तथा रामेश्वरधामके अनेक तीर्थोंकी संगति पू.गुरुदेवके मनमें पूरी-पूरी बैठ रही थी। पू.गुरुदेव कह रहे थे कि किसी कल्पमें भगवान् रामकी लीला इस प्रकार भी अवश्य ही हुई होगी। यह कथा इस प्रकार है –

भगवान् श्रीराम लंकायुद्धमें विजयी होकर पुष्पक विमानके द्वारा जब अयोध्याकी ओर चले तब उनके मनमें यह खेद था कि " रावण ब्राह्मण था और उसे कुलसहित मारना ब्रह्महत्याका पाप तो हुआ ही है।"इसका प्रायश्चित्त

जाननेके लिये भगवान् श्रीरामने समुद्रपानकर्त्ता अगस्त्यजीके आश्रमके पास पुष्पक विमानको उतार दिया और कुछ दिवस वहाँ उनसे सत्संगलाभ किया।

विभीषणकी प्रार्थनापर भगवान्ने समुद्रका सेतु धनुषकी नोकसे भंग कर दिया। श्रीजानकीजीकी यहीं समुद्रके किनारे अग्निपरीक्षा हुई। महर्षि अगस्त्यजीके आदेशसे रावणवधके प्रायश्चित्त-स्वरूप शिवलिंगकी स्थापनाका प्रभुने निश्चय किया था। भगवान् श्रीरामजीने श्रीहनुमानजीको दिव्य लिंगमूर्त्ति लानेके लिये भगवान् शंकरके पास कैलास भेजा।

श्रीहनुमानजी कैलास गये; किन्तु उन्हें भगवान् शंकरके दर्शन नहीं हुए। श्रीहनुमानजीने भगवान् शंकरके दर्शनार्थ तप करनेका निश्चय किया और वे घोर तपपूर्वक बारंबार भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् प्रकट हुए तथा उन्होंने हनुमानजीको अपनी दिव्य लिंगमूर्त्ति दे दी।

इधर मूर्त्तिस्थापनाके मुहूर्त्तपर श्रीहनुमानजी नहीं पहुँचे तो माता जानकीने क्रीड़ापूर्वक एक बालुकालिंग बना दिया। ऋषियोंके आदेशसे श्रीरघुनाथजीने उसीको स्थापित कर दिया। यही रामेश्वर लिंग है, जिसे स्थानीय लोग रामनाथलिंगम् भी कहते हैं।

श्रीहनुमानजी कैलाससे लौटे तो उन्हें अन्य लिंगके स्थापित हो जानेसे बहुत खेद हुआ। भगवान् श्रीरामने श्रीहनुमानजीको अतिशय दुखी देखकर कहा – 'तुम यदि मेरे स्थापित लिंगको हटा सको तो मैं तुम्हारे द्वारा कैलाससे लाये लिंगको स्थापित कर दूँ। श्रीहनुमानजीने बहुत चेष्टा की किन्तु वे माता सीताजी द्वारा स्थापित उस लिंगको किंचित् सरका भी नहीं सके।

भगवान् श्रीरामजीने इसपर कहा – हनुमान् ! जानकीजीके द्वारा निर्मित और मेरे द्वारा स्थापित यह मूर्त्ति तो अविचल है, अब तुम्हारे द्वारा लायी मूर्त्तिको इसके पासमें भले ही स्थापित किया जा सकता है। हाँ, यह मेरी प्रतिश्रुति है कि जबतक कोई तुम्हारे द्वारा लायी इस मूर्त्तिके दर्शन नहीं करेगा, उसे रामेश्वरदर्शनका फल नहीं होगा। हनुमानजीने कैलाससे लायी मूर्त्ति स्थापित कर दी। भगवान्ने उसका पूजन किया। वही मूर्त्ति हनुमदीश्वर काशी-विश्वनाथ कही जाती है ।

पूज्य गुरुदेव कह रहे थे कि रामेश्वरमें समुद्रस्नानके समय ठीक प्रातः मुझे वहाँ भगवती सीताके अग्निपरीक्षाके दर्शन हुए, अतः मुझे इसी कथापर अधिक विश्वास है।

हाँ, प्रथम कथा कि " भगवान् श्रीरामने लंका जाते समय सेतु बँधवाया और सेतुके समीप श्रीरामेश्वरकी स्थापना की" – यह महर्षि वाल्मीकि एवं सन्त श्रीतुलसीदासजी महाराज द्वारा वर्णित है, अतः इसे भी मैं पूरी मान्यता देता हूँ। कल्पभेदसे दोनों ही कथायें सत्य लग रही हैं।

मैंने अग्निपरीक्षाके सम्बन्धमें पू.गुरुदेवसे पूछा –"बाबा ! अग्निपरीक्षा द्वारा जगज्जननी माता जानकीने अपनेको निर्दोष सिद्ध किया, क्या आज भी कोई अग्निपरीक्षासे सत्यको प्रमाणित कर सकता है ?"

उत्तरमें पू.गुरुदेवने कहा कि –भैया ! यह सब अखण्ड भगवत्स्मृतिका चमत्कार है। जगज्जननी श्रीसीताजीके लिये श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं –

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट ।।

श्रीहनुमानजी सीताजीकी दशाका वर्णन करते कह रहे हैं – "हे प्रभो ! आपका नाम रात दिन पहरा देनेवाला है, आपका ध्यान ही किंवाड़ है। माता सीता अपने नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रखती हैं, यही ताला लगा है; फिर प्राण जायें तो किस मार्गसे ?"

यह तो श्रीसीताजीकी रावणके कारागारमें अशोकवाटिकाके समयकी दशा थी। इसी प्रकार अग्निपरीक्षाके समय भी श्रीतुलसीदासजी महाराज माता जानकीका वर्णन करके कहते हैं –

पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही।।
जौं मन वच क्रम मम उर मार्हीं। तजि रघुबीर आन गति नार्हीं।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखण्ड समाना ।।

यदि मन, वचन, और कर्मसे मेरे हृदयमें श्रीरघुवीरको छोड़कर दूसरी गति नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मनकी गति जानते हैं (मेरे भी मनकी गति जानकर) मेरे लिये चन्दनके समान शीतल हो जावें।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि इस प्रकार जिसकी अखण्ड स्मृति भगवान्के चरणोंमें हो, उसकी अग्निपरीक्षा होनेपर अग्नि उसे कदापि नहीं जलायेगी।

इस विषयमें भक्तराज प्रह्लाद भी उदाहरण हैं, जो मात्र अखण्ड अग्निकी प्रत्येक लपटमें भगवान्का दर्शन करनेके कारण अग्निसे जीवित निकल आये और होलिका उनकी बुआ जल गयी। भगवान्की अखण्ड स्मृति

सबकुछ कर सकती है।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि रामेश्वरमें यह भगवल्लीला मेरे सम्मुख प्रत्यक्षवत् प्रकट हो चुकी है, जिसका श्रीतुलसीदासजीने अपनी आँखों-देखा वर्णन किया है –

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग विदित जो।
जिमि छीरसागर इन्दिरा रामहि समर्पी आनि सो।।
सो राम बाम विभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकजकी कली।।

भैया ! श्रीसीताजीका तो हाथ पकड़कर अग्नि देवताने शरीर धारण करके श्रीरामजीको समर्पित किया है। श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीके वामभागमें विराजित हुईं, मानो नये खिले हुए नीले कमलके पास सोनेकी कमलकी कली सुशोभित हो। उस समय देवता हर्षित होकर पुष्पवर्षा कर रहे थे। आकाशमें दुंदुभि नाद होने लगा। श्रीजानकीजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उस समय की शोभा वर्णनातीत है।

वेदारण्यकी प्रलयमें पू.गुरुदेवको भावोल्लास

जिस व्यक्तिके जीवनमें ब्रजभाव अवतरित होता है, ब्रजभाव-भावित, ब्रजभाव-परिनिष्ठित उस जीवनकी कल्पना जगत्के साधारण प्राणी कर नहीं सकते। जब पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराज तीर्थयात्रामें वेदारण्यम् पहुँचे तो वहाँ उन सबको वहाँके निवासियोंके द्वारा स्वागत-सत्कारके स्थानपर क्रन्दन, विलाप और दुःखगाथा-श्रवण ही मिला। गीताप्रेसकी तीर्थयात्राके पहुँचनेके कुछ ही दिनों पूर्व यहाँ प्रलयंकारी तूफान आ चुका था। वेदारण्य तो ठीक समुद्रके किनारेपर है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजको अपने नगरमें आयी हुई विपत्तिका वर्णन सुनाते हुए वहाँके नागरिकोंने कहा कि " मात्र पाँच मिनटके अल्प समयमें सागरमें तीन इतनी विशाल लहरें उठीं कि सम्पूर्ण वेदारण्य शहर पूर्णतया प्रलयमें डूब गया। एकके पश्चात् दूसरी और दूसरीके पश्चात् तीसरी, कुल तीन ही लहरें, मात्र पाँच मिनटके अल्प

अन्तरालमें आयी थीं और पूरा प्रलय मचा गयीं। पहली लहर इतनी ऊँची थी कि रेलवे स्टेशनकी छतपर लगे हुए लोहेके खम्भेका शीर्षभाग भी डूब गया, हजारों पशु-पक्षी, नर-नारी बह गये और मर गये। दूसरी लहर उससे भी ऊँची थी, उसने मकानोंका मलबा और पशु-पक्षियों, नर-नारियोंके शव भी नहीं रहने दिये, और तीसरी तो इतनी ऊँची एवं शक्तिशाली थी कि दूर-दूरतककी वनस्पतियाँ, वृक्ष सब स्वाहा हो गये। धन-जनकी अपार क्षतिकी तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। सायंकाल सोते समय किसीने सोचा तक नहीं था कि आजकी रात्रि कालरात्रिकी तरह सबको लील जायगी।''

जगत्-व्यवहारकी दृष्टिसे यह वर्णन वस्तुतः किसी भी सहृदय प्राणीके चित्तमें करुणा एवं दुःखका संचार ही करेगा, निर्मम-से-निर्मम प्राणी भी इस घटनाको सुनकर पीड़ित लोगोंकी वेदनाका सहभागी ही होगा, और सिहर उठेगा। किन्तु इस दृश्यको आनुमानिक आँखोंसे अपने सम्मुख देखकर भी पू. गुरुदेव हर्षसे नाच उठे। वे सोचने लगे जब प्रलयकर्त्ता इस प्रकार सबको एक क्षणमें ही डुबो सकता है, पुरातन सृजनका कोई अवशेष ही नहीं रहने देता, और शवोंतकको बहा ले जा सकता है, तब यह भी तो संभव है कि किसी संत अथवा साक्षात् प्रभुके ही करुणानिलय हृदयमें उनसे जुड़े, साथ ही कृपाकी बाट देखते जीवोंके लिये महाभावसिन्धुकी एक ऐसी असीम ऊँची लहर आ जाय और जीवका सब कुछ बहा ले जाय। भगवान् एवं सन्तसे क्यों न ऐसी चमत्कारिक स्नेहदानकी आशा की जावे कि उसकी विशाल लहरें निकटवर्त्ती लोगोंको सदाके लिये अपनेमें एकात्म कर लेंगी।

पू.गुरुदेव यही विचार करने लगे कि साधकको तो, जैसे भी बने, किसी भी दशामें, किसी महान् संतके निकट रहनेका मन बना ही लेना चाहिये। वेदारण्यके समुद्रने उन्हीं लोगोंको तो डुबाया जो उसके तटका आश्रय लिये रह रहे थे। जो सुदूरवर्त्ती भीतरी प्रदेशोंमें थे, वे इन लोगोंके स्वजन-संबन्धी तो इस प्रलयसे अनछुए रह ही गये थे। उन्हें सागरकी लहरोंने तो क्या, जलकी एक बूँदने भी संस्पर्शित नहीं किया। अस्तु, जैसे बने, बस, वैसे किसी महान् सिद्ध सन्तकी आत्मीयताके दायरेमें, उसके निकट उनका आश्रय लेकर रहनेका ढंग बना लेना चाहिये। अवश्य ऐसा होगा, जब ऐसे सिद्ध सन्तके हृदयमें सतत प्रवाहित करुणासिन्धुमें, दयाके सागरमें, महाभावोदधि में, भगवत्प्रेमके वारिधिमें कभी-न-कभी ऐसा असीम उछाल आवेगा, ऐसी

अनहोनी प्रीतिलहर उठेगी कि निकटवर्त्ती लोगोंको चाहे वे कैसे भी क्यों न हों, बहा ले जायगी। संतके निकट रहने वाले लोगोंका भविष्य कितना सुन्दर है, इस सौभाग्यको दर्शाते हुए पू.गुरुदेव सभी लोगोंको अनेक वर्षोंतक वेदारण्यम्के इस प्रलयकी कथा सुनाया करते थे।

चिदम्बरम्में भगवान् शिवके साक्षात् दर्शन

चिदम्बरम् दक्षिण भारतका प्रमुख तीर्थ है। सुप्रसिद्ध नटराजकी शिवमूर्त्ति यहीं है। दक्षिण भारतमें भगवान् शंकरके पंचतत्त्वलिंगोंमें आकाशतत्त्वलिंग चिदम्बरम्में ही माना जाता है। मन्दिर रेलवे स्टेशनसे लगभग एक मील दूर है।

यहाँ नटराज भगवान् शिवका मन्दिर ही प्रधान मन्दिर है। इसका घेरा लगभग सौ बीघा है। यहाँ एक बहुत बड़ा शिवगंगा सरोवर है, जिसे हेम पुष्करिणी कहते हैं। हेम पुष्करिणी सरोवरके पश्चिममें पार्वती मन्दिर है। पार्वतीजीको यहाँ शिवकामसुन्दरी कहते हैं। यह मन्दिर नटराजके निज मन्दिरसे पृथक्, स्वयंमें सुविशाल है। इस मन्दिरका सभामण्डप एवं विग्रह दोनों अतिशय सुन्दर हैं।

भगवान् नटराजका निज मन्दिर चौथे घेरेको पार करके पाँचवे घेरेमें है। आगे एक स्वर्णमण्डित स्तंभ है। आगे एक आँगनमें कसौटीके काले पत्थरका श्रीनटराजका निजमन्दिर है। मन्दिरमें नृत्य करते भगवान् शंकरकी अतिशय भव्य मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति स्वर्णकी है। इसकी झाँकी बहुत ही भव्य है। पासमें ही पार्वतीजी, तुम्बुरु गन्धर्व, नारदजी, आदिकी छोटी स्वर्ण मूर्त्तियाँ हैं।

श्रीनटराज भगवान्के मन्दिरके दाहिनी ओर काली भित्तिमें एक यंत्र उत्कीर्ण है। यहाँ स्वर्णकी मालाएँ लटकती रहती हैं। यह नीला शून्याकार ही आकाश तत्त्वलिंग माना जाता है। इस स्थानपर प्रायः पर्दा पड़ा रहता है। लगभग ग्यारह बजे दिनमें अभिषेकके समय तथा रात्रिमें अभिषेकके समय ही इसके दर्शन होते हैं। यहाँ सम्पुटमें रखे दो शिवलिंग हैं। एक स्फटिकका एवं दूसरा नीलमणिका। इनके दर्शन, अभिषेक, पूजनके समय दिनमें ग्यारह बजे

लगभग होते हैं। स्फटिकमणिकी मूर्त्तिको चन्द्रमौलीश्वर तथा नीलमकी मूर्त्तिको रत्नसभापति कहते हैं। नटराज मन्दिरके निजी घेरेके बाहर (चौथे घेरेमें) उत्तर दिशामें एक मन्दिर है। इस मन्दिरके सामने सभामण्डप है। अनेक ड्योढियोंके भीतर भगवान् शंकरका लिंगमय विग्रह है। यही भगवान् चिदम्बरम्का मूल विग्रह है। महर्षि व्याघ्रपाद तथा महर्षि पतञ्जलिने इसी मूर्त्तिकी अर्चा की थी। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए थे। उन्होंने ताण्डव नृत्य किया। उस नृत्यके स्मारक रूपमें नटराज मूर्त्तिकी स्थापना हुई है। आदिमूर्त्ति तो यह लिंगमूर्त्ति ही है।

पू.गुरुदेव इस लिंगमूर्त्तिके दर्शन करने जैसे ही प्रविष्ट हुए उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति ध्यानस्थ बैठे हुए थे। इन ध्यानस्थ व्यक्तिके रोम–रोमसे प्रकाश–रश्मियाँ फूट रही थीं। उनके शरीरके चतुर्दिक् तेजका एक अद्भुत वलय था। वे महात्मा नेत्र निमीलित किये थे। परन्तु उनके नेत्र इतने विशाल थे, जो प्रकट कर रहे थे कि महात्मा अलौकिक हैं। उनके नेत्रोंके ऊपरकी भौहें भी दीर्घ थीं और मस्तककी लम्बी-लम्बी आनितम्ब-लम्बित जटाएँ भूमिका संस्पर्श कर रही थीं। उन तेजपुञ्ज व्यक्तिको सम्मुख देखकर पू.गुरुदेव एक क्षणमें ही समझ गये कि निश्चय ही भगवान् नटराज शिव ही मुझपर अनुग्रह करने यहाँ विराजित होकर मुझे दर्शन दे रहे हैं। पू.गुरुदेव अंजलिबद्ध होकर उनके सम्मुख खड़े हो गये और मन-ही-मन प्रार्थना करने लगे – " प्रभो ! आपको अपने सम्मुख आसीन देखकर भ्रम हो सकता है कि आप कोई नाम-रूप-परिच्छिन्न महापुरुष हैं, किन्तु सीमाबद्ध शरीरमें मेरे सम्मुख आप प्रकट होते हुए भी निश्चय ही नित्य असीम हैं। आपमें परिच्छिन्नताकी प्रतीति सर्वथा सर्वांशमें ही सत्य नहीं है। भगवन् ! यह तो आपकी अचिन्त्य मायाशक्तिका प्रभाव है, जो असीमको सीमाबद्धकी तरह मेरे सम्मुख प्रकट कर दे रही है। सत्य तो यह है स्वामिन् ! आपके स्वरूपतत्त्वको, श्रीविग्रहरहस्यको वस्तुतः इदमित्थम्रूपमें कोई समझ ले, यह सामर्थ्य किसमें है ?"

"हे नागविभूषण ! आप मुझे महान् योगीके रूपमें दर्शन दे रहे हैं, किन्तु प्रभो ! आपकी कमल सदृश अँगुलियाँ जो नख-चन्द्रिकासे उद्भासित हो रही हैं, आपकी सुघड़ नासा, सुन्दर भौहें, आपके बिम्ब-विडम्ब अरुणिम अधरोंकी कान्ति, लोक-व्यथाहारी आपकी स्मिति – इस स्मितिसे मण्डित आपका कृपावर्षी मुखसरोज, विषधर नागों एवं रुद्राक्ष मणियोंसे विभूषित आपका

वक्षस्थल, चन्दन वृक्षके समान सुशीतल आपका कर्पूर-गौर वदन, चतुर्दिक् जिसके महाविषधर सर्प लिपटे हैं, ऐसे परम सुशीतल आपके अंग-प्रत्यंगको मैं देख-देखकर आपके विचित्र महिमामय स्वरूपपर न्यौछावर हो रहा हूँ।"

"हे मायाधमन ! अपने प्रपन्न जनोंके मायाबन्धनको हर लेनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। प्रभो ! ये हम लोगोंसे जुड़े हजारों व्यक्ति, जो आपके अचिन्त्य योगमाया-वैभवके कारण ही इस असत्स्वरूप, स्वप्नाभ, बुद्धिव्यामोहक, अशेष दुःखप्रद संसारके मैं-मेरे, तू-तेरेके मोह-जालमें फँसे हैं, इन्हें कृपाकर इस जंजालसे मुक्त कर दीजिये , नाथ !"

"हे चन्द्रमौलि ! वस्तुतः सत्य तो एक मात्र आप ही हो, यह तत्व इन मायान्ध व्यक्तियोंकी बुद्धिमें उतरे ऐसी कृपा करिये। हे पूर्णानन्दमय ! हे निरञ्जन ! हे अद्वय ! हे अमृतस्वरूप ! यह आपकी माया जो क्षण-क्षण उत्पन्न एवं विनष्ट होने वाले क्षणभंगुर स्वभावकी है, फिर भी इन मोहान्ध व्यक्तियोंको यही एकमेव सत्य, अपना स्वार्थ समझमें आरही है। आपके स्वयंज्योति, निरञ्जन, पूर्णानन्दस्वरूपकी ओर इनका ध्यान ही नहीं जा रहा ! कृपा करें नाथ ! जिससे आप गुरुदेवरूप सूर्यसे ये तत्त्वज्ञानरूपी दिव्यदृष्टि प्राप्त कर सकें और आत्मस्वरूप आपको अपना परम प्रेमास्पद अनुभव करलें। फिर तो उनके 'अहं' और ममके रूपमें आप-ही-आप बचे रहेंगे और यह मिथ्याभूत संसार वे गोवत्सपदकी तरह अनायास पार कर जायेंगे। कृपा करें नाथ !"

"आप जो सबके परम प्रेमास्पद आत्मा हो, उसे तो ये सभी अलभ्य, अगोचर, दुरूह, पराया माने हैं और देह आदि वस्तुतः अपनेसे पराये, जड़, नाशमान् हैं, उन्हें अपनी आत्मा जान रहे हैं, इसके अनन्तर वे अपने मायावी भोगोंकी रक्षाके लिये आपकी तीर्थ-मूर्ति आदिकी पूजा करने चले हैं। कैसे पा सकेंगे वे आपको ? उनके अज्ञानकी निवृत्ति तो होनी ही नहीं है ! कैसे मिल पावेगा उन्हें आत्मप्रकाश ? हे अनन्त ! जो विवेकवान् साधक-संत हैं, उनका पथ तो और ही है । वे आपको अपनेसे बाहर न तो किसी तीर्थमें देखते हैं, न ही स्थानमें। वे विवेकी आपको अपने भीतर ही अभिन्न भावसे प्राप्त कर लेते हैं।"

इस प्रकार अपने ज्ञानदीपसे पू.गुरुदेव उन महापुरुष भगवान् शिवकी अर्चना करते रहे। आतुरकण्ठसे पू.गुरुदेव भगवान् आशुतोषकी कितनी ही देरतक स्तुति करते रहे।

पू.गुरुदेवकी स्तुतिसे पूर्ण प्रसन्न हुए उन ध्यानस्थ महायोगीश्वर भगवान् शंकरने कुछ काल पश्चात् अपने नेत्र उन्मीलित किये। कैसी विलक्षण शान्ति, कितनी प्रगाढ़ आत्मीयता, कितनी महान् प्रसन्नता और सहृदयता भरी थी उन भगवान् शंकरके नेत्रोंमें, यह तो लेखनीका विषय हो ही नहीं सकता था। अचानक वे किंचित् मुसकाये, और वरद मुद्रा प्रदर्शित करते अन्तर्धान हो गये।

पाण्डिचेरीमें 'माताजी'से वार्त्तालाप

श्रीरमण महर्षि एवं योगिराज अरविन्द इस युगके दो महान् सिद्ध संत हो चुके हैं। समुद्रके किनारे अरविन्दाश्रमके अनेक भवन हैं। इन्हींमेंसे एक भवनमें योगिराज अरविन्दकी समाधि है। यात्री समाधिके दर्शन करने आते हैं।

श्रीअरविन्दने इसी भवनमें पच्चीस वर्षतक साधनामय जीवन व्यतीत किया। पू.गुरुदेव एवं पोद्दार महाराज जब अरविन्दाश्रम गये, उस समय श्रीमीरा, एक फ्रैंच वृद्ध महिला जिसे आश्रमवासी 'माताजी' वा 'मदर'के नामसे पुकारते थे, एवं श्रीअरविन्दके समान ही आदर करते थे, आश्रमकी संचालिका थीं।

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा जब माँसे मिले तो उनकी नीली-नीली आँखोंमें चिन्मय दिव्य स्नेहकी किरणें प्रसरित होती हुईं उन्हें दृष्टिगोचर हुईं। पू. गुरुदेवने पू. माताजीसे आन्तरिक परिचय प्राप्त करनेके लिये अनेक जिज्ञासाएँ कीं।

पू.गुरुदेवकी प्रथम जिज्ञासा भगवान्‌के सगुण-साकार स्वरूपके सम्बन्धमें थी।

श्रीमाताजीने अतिशय संक्षेपमें पू.गुरुदेवको हँसकर प्रत्युत्तर दिया था। (यद्यपि उन्होंने उत्तर अंग्रेजी भाषामें दिया था, उसका भावार्थ हिन्दीमें यहाँ दिया जा रहा है।) " भगवान् अजन्मा हैं, नित्य हैं, प्राकृत जीवकी भाँति उनका जन्म नहीं होता फिर भी असाधुताको जड़से उन्मूलन कर देने और साधु पुरुषोंको कृपाकी धारामें निमग्न कर देने वे अवतरित होते हैं। वर्त्तमान युगमें 'अरविन्द' रूपमें वे ही योगेश्वर जन्मे हैं। "

" भगवान् श्रीकृष्ण एवं अरविन्दमें कोई भेद ?" पू.गुरुदेवका प्रश्न था।

श्रीमाताजीने उत्तर दिया – स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण एवं अरविन्दमें इतना ही अन्तर है कि वे अवतारी थे। अवतारकालमें पांचभौतिक ढाँचेको लेकर अवतरण नहीं होता, वह होता है आत्ममायाकृत। उसमें पंच भूतोंसे सम्बन्ध नहीं होता। योगमायाको स्वीकार करना पंचभूतोंकी जड़तामें आबद्ध होना नहीं है। यहाँ अरविन्द पंचभूतोंमें जन्म लेकर उनका आवेशावतार हैं योगेश्वर अरविन्द और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं।

पू.गुरुदेवने पुनः प्रश्न किया – उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके सम्बन्धमें आपका अनुभव ?

"श्रीराधा अप्राकृत प्रीतिकी मूर्ति हैं। वे ऐसी प्रीति हैं जिनमें उनके प्रियतमके अतिरिक्त कुछ भी अन्य अशेष है। आदि, मध्य एवं अन्त सब कुछ समर्पण। श्रीराधाका स्व कुछ भी नहीं, सब कुछ प्रेम, श्रीकृष्ण एवं समर्पण।

मद्रासमें श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका अर्चन

पू.गुरुदेवको सन् १९५१में जब भगवती पराभट्टारिका श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीके दर्शन हुए, उस समय वे चतुर्भुजा, चार आयुधोंसहित प्रकट हुईं थीं । ये चारों आयुध थे – पाश, अंकुश, पुष्पबाण एवं इक्षुकोदण्ड । पूगुरुदेव जब दक्षिण भारतकी यात्रामें आये तो उन्हें ऐसे किसी पुरातन विग्रहकी खोज थी, जिसमें सभी चारों आयुध उनके दर्शनके अनुरूप हों और कुछ ऐसे भी लक्षण हों, जिनसे पू.गुरुदेवको जो भगवतीके दर्शन हुए थे, उससे उस विग्रहमें साम्यता दृष्टिगोचर हो सके।

पू.गुरुदेव जब मदुरैमें माँ मीनाक्षीके दर्शन कर रहे थे, तो उन्हें उनके चारों आयुध तो अपने दर्शनोंसे समानता रखते मिले, परन्तु उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि मीनाक्षीरूपमें किसी राजकन्यामें भगवतीके आवेशकी यह मूर्त्ति है, उनका साक्षात् स्वयंभू प्रकट विग्रह नहीं है। वे किसी ऐसे जाग्रत् विग्रहकी खोज कर रहे थे,जो पुरातन हो और किसी ऋषि महात्मापर अनुग्रहसे स्वयंभू प्रकट हुआ हो। पू.गुरुदेव विचार कर रहे थे कि श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी भगवत्पाद आदिशंकराचार्यकी परमाराध्या रही हैं, अतः दक्षिण भारतमें उन्हें कहीं ऐसी मूर्त्ति मिलनी ही चाहिये। अन्ततः स्वयं माताने अपने पुत्रकी लालसानुरूप उन्हें दर्शन दे ही दिये। पू.गुरुदेव जब तीर्थयात्रामें मद्रास पहुँचे तो उन्हें किसीने

सूचना दी कि यहाँसे दस-बारह मीलकी दूरीपर ऐसा स्थान है, जहाँ पुरातन दर्शनीय चारों आयुध सहित पराभट्टारिका भगवतीका पुरातन विग्रह है।

पू.गुरुदेवने अपने साथ गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको लिया और श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकी ठीक अपने भावानुरूप प्रतिमा पाकर वे उस विग्रहके दर्शनार्थ गये। पू.गुरुदेव कृतकृत्य एवं उत्फुल्ल हो उठे। उन्होंने इस श्रीविग्रहकी पहले तो श्रीपोद्दार महाराज स्वयंसे पूजा करानी चाही किन्तु श्रीपोद्दार महाराज तो लोगोंसे मिलने-जुलनेमें इतने व्यस्त थे, कि उन्हें समयका बहुत ही अभाव था। पू.गुरुदेवने गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे ही आग्रह किया कि वे भगवतीकी भावोपनिषद्से सम्पूर्ण पूजा सम्पन्न करें। यह भावोपनिषद् पूजनक्रम 'श्रीमहाभावदिनमणि श्रीराधाबाबा' नामक पुस्तकके तृतीय खण्डमें 'महायागक्रम' शीर्षकसे प्रकाशित किया जा चुका है।

सांगोपांग पूजनोपरान्त पू.गुरुदेव माँकी स्तुति करने लगे :–

"हे शिवे ! हे भगवान् सदाशिवको सुशीतल कर देनेवाली अमृततरंग ! हे नित्योज्ज्वले ! माँ ! तेरी जय हो ! "

"हे निवृत्तिका तिलक एवं प्रवृत्तिका अम्बर धारण करने वाली माँ ! हे शान्ति एवं विद्या कलाओंकी कलाप, परम मधुर आकृतिवाली माँ, तेरी जय हो !"

"हे तीनों वेदोंमें अपनी ही मूर्त्ति स्थापित करने वाली, हे सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय – तीनों प्रकारके कर्म करने वाली, हे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश त्रिरूपोंकी समवायिनी, हे श्रीपुरमें संचरण करने वाली, हे भगवान् शंकरकी कुटुम्बिनि, हे त्रिगुण रूप संविदको अपनी चरणप्रभासे – सत्वको चरणनखचन्द्रिकासे, रजको चरणतलकी मनोहर लालिमासे एवं तमको चरणोंकी पगथलीकी कठोरतासे उत्पन्न करने वाली ! हे त्रयि ! हे त्रिपुरसुन्दरी माँ ! हे स्वर्ग, धरा एवं पाताल –तीनों लोकोंकी ईश्वरी ! तेरी सदा ही जय हो !"

भक्तिमती चिन्मयीदेवीके वृत्तान्तसे भावावेश

विजयवाड़ाके समीपके एक स्थानकी बात है। घटना बड़ी दिव्य है। श्रीपोद्दार महाराज अपने एक वकील मित्रसे मिलने गये थे। वे इस क्षेत्रके प्रसिद्ध प्रतिष्ठित वकील थे। वार्त्ताके सन्दर्भमें श्रीवकील साहबने पोद्दारजीसे उल्लेख किया कि " मेरे पड़ोस में ही एक प्रौढ़ आँयुकी महिला रात-दिन एकान्तमें भजन करती रहती है। वह अत्यन्त गोपनीय रूपमें लोकस्तुति-पराङ्मुख रहकर भजनरत रहती है। उस पवित्रकीर्ति स्त्रीके आसपास ऐसी दिव्य शान्ति समाहित रहती है कि जब भी कोई उसके पास जाता है तो एक परम दिव्य विलक्षण पावित्र्यमें डूब जाता है। वह भजनके अतिरिक्त कुछ नहीं करती। सात्विकता और आस्तिकताकी तो वह साक्षात् साकार प्रतिमा है। उसे न दिनका ध्यान रहता है, न ही रातका । कब सूर्य उदय हुआ और कब सूर्यास्त– उसे अधिकांशतया स्मृति भी नहीं रहती। जगत्में क्या हो रहा है, न वह जानती है, न ही जानना चाहती है। वह सदा अपनी धुनमें लगी रहती है । जब-तब उसके कपोलोंसे अश्रुके विन्दु ढलकते रहते हैं। जब आपका यहाँ आगमन हो ही गया है, तो एक बार आप उससे अवश्य मिलें। "

श्रीवकील साहबका आग्रह इतना प्रबल था कि पोद्दार महाराजको उस महिलासे मिलने जाना ही पड़ा।

पू.पोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवको उस देवीसे अपने मिलनकी समग्र घटना वहाँसे लौटकर आनेपर सुनाई थी।

"बाबा ! उसे कमरा न कहकर साधनाकक्ष ही कहना चाहिये, जहाँ वह वृद्धा रहती थी। वहाँका वातावरण अत्यन्त सत्वसम्पन्न था। उस कक्षके कण-कणमें चिन्मय दिव्यता व्याप्त थी। मैं जब वहाँ गया तो मैंने देखा – वह देवी अपने आराध्यके समक्ष अतिशय भावविह्वल दशामें बैठी है। उसकी वह विह्वलता कोई एक दिवसकी तो बात थी नहीं, वह तो उसके जीवनका स्वरूप ही बन गयी थी। वह पूजामें निरे प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त्तमें बैठती थी और कब मध्याह्न हो जाता था, इसका उसे ध्यान ही नहीं रहता था। पूजा प्रारम्भ करते हुए उसका चित्त प्रायः एक अनोखी मधुर समर्पणकी कल्पनामें बह उठता था। उसे समझमें ही नहीं आता था कि – यदि उसके आराध्य सर्वव्यापक परमात्मा होते तो अन्तर्यामी होनेके नाते उसके रोम-रोमकी भावनाओंके वे साक्षी होते।

वे उसकी साधनाको परिपूर्ण करने उसके सम्मुख प्रकट भी हो सकते थे। परन्तु उसके तो आराध्य पाँचभौतिक चोलेके भीतर प्रकट होकर लीला कर रहे थे। उसकी दृष्टिमें उनमें सर्वज्ञताशक्ति होनेकी तो संभावना ही नहीं थी। फिर वे उसके विशुद्ध समर्पणभावको आदर देकर इस गोपनीय स्थानमें कैसे उसे मिलेंगे, दर्शन देंगे ?" किन्तु उसका हृदय पत्थरकी शिलाके समान दृढ़ निश्चय किये था, कि वह अपना प्रेम बाह्यरूपमें तो पत्रादि द्वारा या अन्यत्र व्यक्तिशः जाकर कदापि प्रकट नहीं करेगी । उसे तो सन्त श्रीतुलसीदासजीकी एक ही उक्ति निरन्तर उत्साहित करती रहती थी –

जापर जाकर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू।।

अब वह मिलन कब होगा ? वह प्रतीक्षा करती-करती किशोरीसे युवती हुई, युवतीसे वृद्धा हुई और अब तो दन्तहीन मुख और श्वेतकेशा हुई वह एक महान् विशुद्ध समर्पणकी पावन दीपशिखा ही बन गयी थी, जो अपने हृदयको जलाती, उसीसे सर्वत्र सबको आलोकित करती प्रतिदिन प्रतिक्षण अपने प्राण-धनकी प्रतीक्षा करती रहती थी। अपने आराध्यके दर्शनकी चाहके लिये पल-पल पथमें नयन बिछाये वह अनथक उनकी राह देखती रहती थी। "

"बाबा ! करुणार्णव भगवान् उसपर द्रवित हुए । सर्वव्यापक भगवान्से किसीकी सच्ची चाह छिपी तो रह ही नहीं पाती। विरहतापमें तपकर कुन्दन हुई उस साधिकाकी वाञ्छाके पूर्ण होनेकी भूमिका अन्ततः बन ही गयी। करुणार्णव प्रभुने उसकी वाञ्छाको पूर्ण करनेके लिये समुचित संयोग घटित कर दिया ।"

"बाबा ! जब मैं उसके साधनाकक्षमें प्रविष्ट हुआ तो मैंने देखा – आसनपर मौन बैठी उसके युगल कपोल उसका आँचल एवं वक्ष अश्रुप्रवाहसे सिक्त है। उसके सम्मुख उसके ठाकुरजीका श्रीविग्रह है और उस श्रीविग्रहके पास मेरा बहुत पुराना बम्बई-जीवनका एक चित्र है। मैंने जब उसके साधनाकक्षमें प्रवेश किया तब उस देवीको बाह्यज्ञानका संचार नहीं था। वह नेत्र मूँदे शान्त बैठी थी। मैं बिना आहट किये शान्त उसकी प्रेममयी गहन मनोदशा देख-देखकर मुग्ध हो रहा था। कुछ काल पश्चात् उसने अपने नेत्र उन्मीलित किये । आँचलसे अपने अश्रु पौंछे । उसके पास प्रायः मोहल्लेके लोग मध्याह्नमें प्रसाद लेनेका आग्रह करने आया करते थे। मेरे आनेपर भी उसका यही अनुमान था कि कोई प्रतिदिनकी भाँति प्रसाद लेनेका आग्रह करने आया है।

बाबा ! वह सर्वथा मौन निम्नमुख किये जड़ पुतलीकी तरह बैठी ही रही। "

"अन्ततः मुझे ही उससे पूछना पड़ा –" देवी !· यह चित्र किसका है ?" सिर झुकाये ही उसने उत्तर दिया – " बहुत वर्षों पूर्व जब मैं किशोरी बालिका थी, इनके बारेमें कुछ पढा था, तबसे मेरी इनपर अतिशय श्रद्धा हो गयी। बहुत चेष्टा करनेपर इनका बम्बईसे यह चित्र मिला। तबसे मैं उन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें ही देखती हूँ। मेरा इनके प्रति समर्पणभाव बढ़ता ही जा रहा है। अब तो ये ही मेरे सर्वस्व आराध्य हैं । "

मैंने पुनः पूछा– "क्या आप इन्हें जानती हैं ? कभी इनसे मिली हैं ? ये कहाँ रहते है ?"

देवीने बतलाया – "मैं उनका नाम जानती हूँ, पर कभी उनसे मिली नहीं हूँ। जब मेरा सर्वस्व समर्पण इन्हें हो ही गया तो पता-ठिकाना जाननेकी आवश्यकता है भी नहीं !"

" बाबा ! उस देवीने मेरे प्रश्नोंके उत्तर तो दिये किन्तु अन्तर्मनमें एक विचारप्रवाह चल पड़ा कि अबतक इस प्रकारके प्रश्न करनेवाला कोई आया नहीं, आज यह मेरे प्रति इतनी गहन जिज्ञासा करने वाला अन्ततः है कौन ?'

"मस्तक और नेत्र झुकाये रखनेका तो उसका चिर अभ्यास था किन्तु फिर भी किसी अचिन्त्य प्रेरणावश उसने अपना मस्तक उठाया और मेरी ओर देखा। "

"बाबा ! देखते ही तो वह विस्मयसे चकित हो गयी। उस देवीको अपनी दोनों आँखोंपर विश्वास नहीं हो पा रहा था। विस्मयके आवर्त्तमें पड़ी उसने अपने चित्रपटपर दृष्टि जमाकर अपने प्रकट दृश्यसे उसकी संतुलना की। अब तो उसे अपने भाग्यपर अतिशय हर्ष हो उठा। उसे विश्वास हो गया कि उसके आराध्य ही पधारे हैं और वे ही उससे ये सभी जिज्ञासायें कर रहे हैं। उसका मन अपने सौभाग्य-वैभवको पाकर नृत्य कर उठा।"

"देवीके नेत्र लज्जाशील संकोच, दैन्य, उल्लास, आनन्द आदिके समवेत भावोंसे भर गये। उसकी मुखाकृति उपरोक्त भावोंका रह-रहकर प्रकाश कर उठती थी। यद्यपि वह इन सभी भावोंको अपने आराध्यके सम्मुख गोपनीय ही रखना चाह रही थी, फिर भी सभी भाव बरबस उसके वदनसरोजको उद्दीप्त कर रहे थे। उसका रोम-रोम पुलकावलिसे रोमाञ्चित था। "

तत्क्षण ही उसने मेरे मुखकी ओर पुनः नेत्र उठाये। नेत्र चार हुए और

वह प्रौढा मेरे चरणोंमें ढुलक गयी। कितने ही काल वह मेरे चरणोंको अपने प्रेमाश्रुओंसे भिगोती रही। मुझे भी कुछ ज्ञान नहीं रहा। जब मुझे होश हुआ तो मेरे नेत्र भी अश्रुओंसे गीले थे। उसका मस्तक मेरे अश्रुओंसे तर था।"

"जब वह उठी तो संवरित होकर उसने मेरे भालपर चन्दनका तिलक किया। चरणोंमें चन्दन लगाकर पुष्प निवेदित किये और अति मन्द मधुंर स्वरमें बोली – भगवान्ने मेरा मनोरथ पूर्ण कर दिया। मैं धन्य हो गयी। इससे अधिक और मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। "

" मैं अपनेको रोक नहीं सका। उससे प्रश्न कर बैठा – "देवी ! मैं आपका परिचय जान लेता । "

उसने आर्द्रकण्ठ होकर अश्रुभरे नेत्रोंसे कहा– " मेरा परिचय जानकर क्या करेंगे ? मुझे कोई लाभ दिखाई नहीं देता। मेरी प्रार्थना तो इतनी ही है कि जो परिचय आपको मिला है, उसे भी आप कृपाकरके किसीको भी नहीं बतावें।
नहीं तो मेरे यहाँ भीड़ हो जायगी। "

"मैंने पुनः कहा – आप मेरा पता लिख लें । "

देवी किंचित् मन्द मुसकायी – "मुझे तो इसकी भी आवश्यकता नहीं। मेरे मनमें तो एक यही साध थी कि एक बार मुझे आपके दर्शन हो जावें। वह साध अन्तर्यामी प्रभुने पूरी कर दी। और अब कोई साध मनमें है नहीं। वैसे मनसे तो मैं आपके अत्यन्त निकट रहती ही हूँ। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय। "

" बाबा ! मैं उसके सर्वथा हेतुरहित समर्पणको देखकर विस्मित एवं मुग्ध था। मेरे हृदयसे उसे भूरि-भूरि आशीर्वाद निकलने लगा। मेरा हृदय इतना भर आया था कि किसी प्रकार अपनेको रोककर मैं उसके साधनाकक्षसे बाहर हो पाया।

स्वर्गद्वार नीलाचल (पुरी) में महाभावाविष्ट श्रीराधाबाबा

नीलाचलमें महाभावावेश

भारतमें चार पावन धाम हैं। कहते हैं सत्ययुगमें बद्री, त्रेतामें रामेश्वर, द्वापरमें द्वारका और कलियुगमें अति पावनकारी धाम मात्र जगन्नाथपुरी ही है। पहले यहाँ नीलाचल पर्वत था और उस पर्वतपर नीलमाधव भगवान् विराजित थे। सागर उनके निरन्तर चरण पखारता था। देवगण ही इनकी पूजा किया करते थे। आज भी श्रीजगन्नाथजीके शिखरपर लगा चक्र 'नीलछत्र' कहलाता है। जहाँतक इस नीलछत्रके दर्शन होते हैं, वह पूरा क्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरी है। इसे श्रीक्षेत्र, शंखक्षेत्र, पुरुषोत्तमपुरी आदि अनेक नामोंसे लोग पुकारते हैं। शाक्त इसे उड्डीयानपीठ कहते हैं। इक्यावन शक्तिपीठोंमेंसे यह एक पीठस्थल है। सतीकी नाभि यहाँ गिरी थी।

श्रीजगन्नाथजीके महाप्रसादकी महिमा तो भुवनविख्यात है। महाप्रसादमें छुआ-छूतका दोष तो माना ही नहीं जाता। इस प्रसादमें तो उच्छिष्टता दोषको भी नहीं गिना जाता। व्रत पर्वादिके दिन भी इस प्रसादका ग्रहण विधिसम्मत माना जाता है।

श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु जब पुरी पधारे तो एकादशी व्रतके दिन उनकी निष्ठाकी परीक्षा लेने किसीने मन्दिरमें ही महाप्रसाद दे दिया। आचार्य महाप्रभुने एकादशीके पूरे दिन एवं रात्रि पर्यंत उस भगवत्प्रसादका स्तवन किया और दूसरे दिवस द्वादशी आनेपर स्तवन समाप्त करके उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। इस प्रकार उन्होंने 'महाप्रसाद' एवं एकादशी व्रत' दोनोंका समान आदर किया।

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरसे समुद्रतटको सीधा मार्ग गया है। समुद्र-स्नानके इस स्थान स्वर्गद्वार कहलाता है। मन्दिरसे स्वर्गद्वार लगभग एक मील है।

प्राचीन कालमें परम विष्णुभक्त मालवनरेश इन्द्रद्युम्नको स्वप्नादेश हुआ था कि उत्कल देशमें नीलमाधवका दिव्य देवपूजित विग्रह है। तुम उसकी पूजा करो, तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा। वे जब भगवान् नील-माधवके दर्शनार्थ उत्कल आये तबतक देवता उस विग्रहको लेकर स्वर्गलोक चले गये थे। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दारुब्रह्म रूपमें अब तुम्हें श्रीजगन्नाथके दर्शन होंगे। महाराज इन्द्रद्युम्न सपरिवार नीलाचलमें ही बस

गये। एक दिवस समुद्रसे बहुत बड़ा काष्ठ (महादारु) बहकर आया। महाराजने उसे निकलवाया।

इससे विष्णुमूर्त्ति बनवानेका उन्होंने निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बढ़ईके रूपमें भगवान् विश्वकर्मा उपस्थित हुए। उन्होंने मूर्त्ति बनाना स्वीकार किया। उन्होंने राजासे वचन लिया कि जबतक वे मूर्त्ति बनावेंगे, उनके निर्माणभवनका द्वार कोई बाहरसे खोले नहीं।

महादारुको लेकर विश्वकर्माजी गुंडीचा मन्दिरमें निर्माणभवनमें प्रवेश कर गये। विश्वकर्मा महीनों बाहर नहीं आये। रानीको चिन्ता व्याप्त हो गयी। वह सोचने लगी अब तक तो बढई भूख-प्याससे मर गया होगा। करुणावश उसने द्वार खुलवा दिया। बढ़ई तो अदृश्य हो ही चुका था। किन्तु वहाँ श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलरामजीकी मूर्त्तियाँ मिलीं। वे मूर्त्तियाँ अधूरी थीं। किन्तु उसी समय पुनः आकाशवाणी हुई– " भगवान्‌की इसी रूपमें पूजित होनेकी इच्छा है, इन मूर्त्तियोंपर रंग लगाकर इन्हें मन्दिरमें प्रतिष्ठित कर दो।" इस आकाशवाणीके अनुसार मूर्त्तियाँ प्रतिष्ठित कर दी गयीं। गुंडीचा मन्दिरको इसीलिये ब्रह्मलोक या जनकपुर कहते हैं।

पू.गुरुदेव जब जगन्नाथपुरी पहुँचे तब उनके संग जगन्नाथपुरीका दर्शन करने मैं भी गोरखपुरसे वहाँ पहुँचा था। पू.पोद्दार महाराजके दर्शनकर मैंने जब पू.गुरुदेवके दर्शनकी इच्छा प्रकट की तो पता लगा कि वे विरहावेशमें सर्वथा बाह्यावेशरहित अवस्थामें हैं। उनके पास किसीके भी जानेकी श्रीपोद्दार महाराज द्वारा मनाही है। उन दिनों मैं संन्यासी नहीं हुआ था।

मैंने सुन रखा था कि रसोपासनाके क्षेत्रमें संयोगकी अपेक्षा विप्रलम्भ को अधिक महत्व दिया गया है। अबतक पू.गुरुदेवको संयोगावस्थामें दर्शनानन्दमें तो तन्मय अनेक बार देख चुका था, किन्तु विप्रलम्भभावमें उन्हें अबतक कभी देख नहीं पाया था। सुना था कि विप्रलम्भमें संयोगकी अपेक्षा भी तन्मयता अधिक होती है। मैं अवसरकी ताकमें बैठ गया कि जैसे ही पू.गुरुदेवके पहरेपर बैठा व्यक्ति इधर-उधर हो, मैं उनके निवासकक्षमें चला जाऊँ, और मेरे गुरुदेवकी विरहदशाका आस्वादन तो करूँ। श्रीपोद्दार महाराज समुद्रकिनारेसे थोड़ी ही दूरीपर ठहरे थे। मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी भी वहीं ठहरे थे। पू.गुरुदेव दूसरे तल्लेके एक कक्षमें विराजित थे।

मैं भगवान् श्रीकृष्णसे अत्यन्त करुण स्वरमें मन-ही-मन प्रार्थना करने

लगा – 'प्रभो ! एक झाँकी मेरे गुरुदेवके विरहावेशकी कृपाकरके मेरे दृष्टिपथपर ला दें, और यह तभी संभव है जबकि पहरेपर बैठे श्रीराधेश्यामजी भगत इधर-उधर हो जावें। प्रभुकृपासे मुझे अवसर मिल ही गया। श्रीराधेश्यामजी भगतने मुझे वहाँ खड़े देखकर कहा –" भैया ! मैं शौच होने जाना चाहता हूँ, आप कुछ काल यहाँ पहरेपर मेरे स्थानपर नियुक्त हो जाइये। सचमुच ही बाबा ऐसी अवस्थामें नहीं हैं कि कोई दर्शनार्थी उन्हें परेशान करे।" मैं तो ऐसा चाहता ही था, बस स्वीकृति देते ही भगतजी अपने वस्त्र लेकर शौचस्नानके लिये चल पड़े। निचले तल्लेमें अनेक शौचालय-स्नानगृह बने थे। पासमें कुआ भी था जिसमें सुमिष्ट जल था।

जैसे ही भगतजी शौचस्नानार्थ नीचे गये, मैंने एक दृष्टि पू.गुरुदेवपर जो भीतर कक्षमें बैठे थे, डाली। उनकी उस दशाका चित्र मैं लेखनीके द्वारा प्रकट कर सकूँ, सचमुच ही यह मेरी शक्तिके बाहर है। शब्दोंके द्वारा इतना ही कह सकता हूँ कि उस समय उनके शरीरमें स्पन्दनकी शक्ति स्वाभाविक थी ही नहीं। बस, किसी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा ही उनके स्नायुजालोंमें प्राणोका संचार हो रहा था। बस, उनके शरीरमें जीवनका चिह्न इतना सा ही अवशिष्ट था कि वे रह-रहकर अतिशय करुण स्वरमें 'हा, प्राणवल्लभ! हा प्राणेश्वर ! कहकर पुकार उठते थे। पू.गुरुदेवके नेत्रोंकी पुतली तो एकदम स्थिर थी। हाँ, दृग्गोलकोंमें उनके प्राणनिकेत प्रियतम नीलसुन्दरकी प्रत्यक्ष छवि, अथवा ध्यानमूर्त्ति कुछ भी कहें, अवश्य ही झिलमिल कर रही थी। कोई कहेगा कि यदि वह मूर्त्ति प्रत्यक्ष थी, तो फिर वियोग कैसा ? बस, इसके उत्तरमें यही कहना बनता है कि भावावेशमें उन्हें यही अनुभव हो रहा था कि उनके प्रियतम तो उन्हें छोड़कर मथुरा चले गये हैं, और मथुरा ही नहीं, मथुराको भी त्यागकर महासमुद्रके भीतर बसे किसी द्वीप द्वारकामें चले गये हैं। किन्तु किसी आशामें बँधे-बँधे ये प्राण उनकी स्मृतिमूर्त्तिके सहारे उनके देहमें अटके हैं। बस ! रुद्धकण्ठसे अतिशय आर्त्तध्वनिमें अपने प्रियतमको प्राणवल्लभ, प्राणसुन्दर, नीलमणि ! इस प्रकार पुकारते वे अपने प्राणपखेरुओंको उड़जानेसे बचाये हैं।

मैं पू.गुरुदेवके निवास कक्षमें प्रवेश तो कर गया, परन्तु अपने गुरुदेवको इस परितप्त दशामें देखकर तो मेरी वेदनाका भार असह्य हो उठा। मैं सोचने लगा – पू.गुरुदेवको इस विक्षिप्त दशामें मुझे कदापि नहीं देखना चाहिये था।

पू.गुरुदेव मूर्च्छित भी नहीं थे। वे तो ऐसी भयंकर वेदनामें थे जहाँ मूर्च्छा भी उस विरहज्वालामें जल जाय।

मैं काष्ठपुतली–सा, फटे-नयन अपने परमात्मीय गुरुदेवसे मन-ही-मन यही प्रार्थना करने लगा – ओह, बाबा ! मात्र क्षणभरके लिये ही सही अपनी इस अथाह प्रेमरसे-भावित करुण विरहदशाकी छायाकी छायाकी प्रतिच्छायाको किसी नगण्यतम अंशमें ही सही, मुझे स्पर्श करनेका पावनतम एक सुअवसर तो दे दीजिये। क्षणभरके लिये ही सही, इस भीषण विरहार्त्तनादकी एक क्षीण गूँज ही सही, आपकी हेतुरहित कृपासे मेरे हृदयमें भी प्रतिनादित तो हो उठे। इस अत्यन्त भयावह नीरवताकी एक छाया ही छू जाय तो मेरी विषय वासना तो जलकर राख हो जाय। यदि पू. गुरुदेवके चित्तमें उस समय प्रियतम स्मृतिरूप अमृत और विरहरूपी गरल – दोनोंका ही युगपत् संचार नहीं होता तो उनका यह विरहभाव उनके महानिर्वाणमें निश्चय ही परिणत हो उठता। किन्तु उनके जीवनको बचाये रखनेकी अभी उनके प्रियतम श्रीकृष्ण और उनकी योगमाया लीलामहाशक्तिकी इच्छा थी, अतः उनके हृत्पटलपर अपने प्रियतम नीलसुन्दरकी रूपसुधाचन्द्रिका पूरी छिटक रही थी।

मैं आगे अपने प्राणप्रिय गुरुदेवकी वह दशा और अधिक नहीं देख सका और अश्रु बहाता बाहर आ गया। मेरे गुरुदेवके मुखपर एक विलक्षण प्रियदर्शनजन्य संयोगकी भी स्मिति थी और कभी-कभी वे अपने भावविह्वल विकृत मुखसे करुण क्रन्दनकी एक 'हा प्राणनिकेत' ध्वनि भी निकालते थे, वह ध्वनि इतनी मर्मबेधी होती थी कि सुननेवाले मुझ दुष्टमतिके हृदयको अतिशय विदीर्ण कर दे रही थी। यदि ये दो लक्षण मुझे दृष्टिगोचर नहीं होते तो मुझे उनकी अतिशय मन्द श्वासगति देखकर तो पू.पोद्दार महाराजको पुकारकर बुलाना पड़ता।

मैं पू.गुरुदेवके कक्षसे बाहर आ गया।

बहुत काल पश्चात् जब पू.गुरुदेव तीर्थयात्रा सम्पन्नकर गोरखपुर आ गये थे, और उनसे एकान्तमें मैंने निष्कपट खुलकर वार्त्ता की थी, तब मैंने उनको पुरीमें उनकी विरहविह्वल अवस्थाके दर्शनकी अपनी बात कही थी। उस समय उन्होंने अपनी पुरीकी भाव-अनुभूति बतायी थी। वे कह रहे थे कि मेरी स्वयंकी उत्तप्त विरहदशा तो पुरीमें थी ही नहीं। मैं विरहिणी मेरी अग्रजा बहिन राधाकी विरहदशाकी मात्र साक्षी हुई व्यथित थी। यदि मुझमें मेरी

अग्रजा प्रिया राधाकी विरहदशा व्यक्त हो उठती तो उसका अर्थ था, मेरे प्राण-पखेरूका उड़जाना। तुम कल्पना करो कि जब मेरी अग्रजा राधाकी दशाकी छाया पड़ने मात्रसे उसकी भगिनी मुझ मञ्जुश्यामाकी ऐसी विह्वल दशा हो रही थी तो स्वयं मेरी भगिनी राधाकी विरहदशा कितनी उत्तप्त रही होगी !

पू.गुरुदेवने मुझे बताया कि लोग 'विरह,'विरह' करके मात्र बातें करते हैं, सच्चे विरहकी मात्र कथा-वार्त्ता सुननेसे ही कैसी दशा होती है, इसका प्रतीक तो जगन्नाथ भगवान्का दारुविग्रह है।

पू. गुरुदेवने सुनाया कि द्वापरमें द्वारकामें पटरानियोंके पास रहते हुए श्रीकृष्ण अपनी राधा-स्मृतिको बहुत ही गोपनीय अप्रकट रखते थे। किन्तु जब उनका विरहभाव असह्य हो उठता, तो वे कभी-कभी माता रोहिणीके सम्मुख उस विरहदशाकी विकलताको अभिव्यक्त कर देते थे। कभी-कभी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियाँ निशामें जब उनकी स्वप्नावस्थामें व्यक्त राधाप्रेमको उनके मुखसे निकलती अस्फुट शब्दावली द्वारा जान लेतीं तब भी वे उसे छिपा लेते और किसी न किसी बहानेसे उन अपनी पटरानियोंको भुलावा दे देते।

एक दिवस श्रीकृष्णचन्द्रकी पटरानियोंने माता रोहिणीके भवनमें जाकर उनसे आग्रह किया कि वे उन्हें श्रीराधाके एवं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रेमके मुख्यतया विरह-प्रसंगोंको सुनावें। इन रुक्मिणी, सत्यभामादि पटरानियोंको तो उनके पति श्रीकृष्णके देशान्तर वियोगमें भी ऐसा उत्कट विरह होता नहीं था, अतः वे श्रीमती राधाकी विरहदशाका मात्र वर्णन ही माता रोहिणीसे सुनना चाहती थीं । माता रोहिणीने इस प्रसंगको बहुत टालना चाहा किन्तु पटरानियोंके अतिशय आग्रहसे बाध्य होकर उन्हें वह प्रसंग सुनानेको प्रस्तुत होना पड़ा। उचित नहीं था कि सुभद्राजी भी वहाँ रहें। अतः माता रोहिणीने सुभद्राजीको भवनके बाहर द्वारपर खड़े रहनेको कहा और आदेश दे दिया कि वे किसीको भीतर प्रवेश नहीं करने दें। संयोगवश उसी समय श्रीकृष्ण-बलराम वहाँ पधारे। सुभद्राजीने दोनों भाइयोंके मध्यमें खड़े होकर अपने दोनों हाथ फैलाकर दोनोंको भीतर जानेसे रोक दिया। बंद द्वारके भीतर जो ब्रजप्रेमकी वार्त्ता हो रही थी, उसे द्वारके बाहरसे ही यकिञ्चित् सुनकर तीनोंके शरीर द्रवित होने लगे। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गये। देवर्षिने यह जो

प्रेमद्रवित रूप देखा तो प्रार्थनाकी – 'आप तीनों इसी रूपमें विराजमान हों।' भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीका आगह स्वीकार कर लिया और कहा –"कलियुगमें दारुविग्रहमें इसी रूपमें हम तीनों भगवान् जगन्नाथके रूपमें नीलाचलमें स्थित होंगे।"

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि इसपर कोई विश्वास नहीं करेगा, किन्तु है यह परम सत्य कि चैतन्य महाप्रभु जब विरहावेशमें हा ! प्राणवल्लभ ! कहकर अपने हाथ अपने प्रियतम श्रीकृष्णका आलिंगन करने फैलाते थे तो उनके हाथ इतने लम्बे हो जाते थे, मानो कोई लम्बा बाँस हो। अब कोई कहेगा कि प्राकृत अस्थियाँ कैसे इतनी लम्बी हो जायेंगी ? तो किसीके तर्कका उत्तर तो मेरे पास है नहीं, परन्तु भाव चिन्मय होनेसे प्रकृतिमें भी उलटफेर कर सकनेमें पूर्ण समर्थ है, यह मेरा सत्य अनुभव है। भगवान् जगन्नाथ मन्दिरमें जो दारु-प्रतिमामें अंगोंकी विकृति है, वे प्रेमद्रवित भगवान्का विकृत आकार यदि कोई भाग्यवान् भावकी आँख पा जावे तो उसे परम सत्य अनुभव होगा।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि उनकी अग्रजा राधा श्रीकृष्णके अन्य गोपी चन्द्रावली आदिके कुञ्जमें जानेपर ही कभी-कभी विरहावेशमें ऐसी विकृत अंग हो जाती हैं कि फिर प्रियतम श्रीकृष्णको उन अपनी प्रियाके विकारग्रस्त अंगोंको यथास्थान, यथारूप अवस्थित करनेके लिये घण्टों उन्हें सहलाना पड़ता है, तब वे कहीं यथारूप हो पाते हैं।

प्रसंगवश विवशतासे मुझे पुरीकी वार्त्ताको स्थगित कर गोरखपुरमें पू. गुरुदेवसे होनेवाले संवादका उल्लेख करना पड़ा जबकि अभी जगन्नाथपुरीमें मन्दिरदर्शनका प्रसंग कहना पूरा शेष है।

जब पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज जगन्नाथ मन्दिरमें पहुँचे तो उन्हें भगवान्के सविधि दर्शन कराने पण्डाजी श्रीसदाशिवरावजी रथ उनके साथ थे। श्रीरथजी मन्दिरके पुजारियोंके ही परिवारके एक व्यक्ति थे और पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा एवं श्रीपोद्दार महाराजके प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते थे।श्रीरथजीने श्रीपोद्दार महाराजको बतलाया कि मन्दिर दर्शनकी यही परम्परा है कि पहले मन्दिरकी परिक्रमा करके यात्रीको जय-विजय द्वारमें जय-विजयके दर्शन करके इनसे अनुमति लेकर तभी निजमन्दिरमें जाना चाहिये। निजमन्दिरके जगमोहनमें गरुड़स्तम्भ है। श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेव यहींसे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते थे। वहाँ एक छोटा गड्ढा भूमिमें है। पू.गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजको जब

श्रीरथजी पण्डाने यह बताया कि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विरहाश्रुधाराके निरन्तर निपतित होते रहनेसे यह गड्ढा निर्मित हो गया था, जो आजतक सुरक्षित रखा गया है, यह सुनकर श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा दोनोंके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगे। पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज यहींसे ऐसे भावाविष्ट हुए कि उनकी वाणी रुद्ध हो गयी।

श्रीरथजीके निर्देशानुसार गरुड़स्तम्भको दाहिने करके पू.गुरुदेव निजमन्दिरमें प्रविष्ट हुए।

निज मन्दिरमें सोलह फुट लम्बी एवं चार फुट ऊँची वेदी है। इसे रत्नवेदी कहते हैं। वेदीके तीन ओर तीन फुट चौड़ी गली है, जिससे यात्री अन्तर्दर्शनके समय श्रीजगन्नाथजीकी परिक्रमा करते हैं। इसी वेदीपर श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलरामजीकी मुख्य मूर्त्तियाँ विराजित हैं। श्रीजगन्नाथजीका श्याम वर्ण है। वेदीपर एक ओर छः फुट लम्बा सुदर्शनचक्र प्रतिष्ठित है। यहीं नीलमाधव, लक्ष्मी और सरस्वतीकी छोटी मूर्त्तियाँ हैं।

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराजको पण्डाजी श्रीरथ भीतरतक श्रीविग्रहके चरणस्पर्श कराने ले गये। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें भीतरतक जाकर भगवान्‌के श्रीविग्रहोंके चरणस्पर्श कर सकनेकी परंपरा है किन्तु यहाँकी सेवापद्धति कुछ ऐसी है कि यह निश्चित नहीं है कि किस समय भोग लगेगा और कब सबके लिये भीतरतक जानेकी सुविधा प्राप्त होगी। प्रायः रात्रिमें ही यह सुविधा मिलती है। किन्तु प्रतिदिन उसके मिलनेका निश्चय नहीं है। श्रीरथजीने श्रीपोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेवके लिये विशेष चेष्टा करके यह व्यवस्था करायी थी। पू.गुरुदेवने निजमन्दिरमें विराजित छः फुट लम्बे सुदर्शनचक्रके दर्शन किये। इस सुदर्शनचक्रके दर्शनसे दोनों महारसिक सिद्ध भक्तोंकी विशुद्ध निराविल मधुर धारा भगवान् जगन्नाथके लोकोत्तर तेजसमन्वित मुखमण्डलपर अटक गयी। वह उनके ऐश्वर्य पर्वतको लाँघ नहीं सकी, और एक बार रुद्ध हो गयी। किन्तु उसका प्रवाह थोड़ी ही देरमें द्विगुणित हो उफन उठा। यह देखो – पू.पोद्दार महाराजकी आँखें उस जगन्नाथ भगवान्‌को जो द्वारकाधीश स्वरूपमें खड़े थे, तत्क्षण ही अपने प्राणपति, प्राणाधार नील-सुन्दरके रूपमें देखने लगे और प्रेमावेशसे उनके नेत्र अश्रुकी अविरल धारा बरसाने लगे। श्रीपोद्दार महाराजने पू.गुरुदेवका हाथ पकड़ रखा था। उन्हें सँभालनेके लिये वे संरक्षकवत् मन्दिरमें प्रविष्ट हुए थे, क्योंकि पू.गुरुदेव

श्रीराधाबाबा तो प्रातःकालसे ही जब वे दोनों स्वर्गद्वारमें साथ-साथ समुद्रस्नान करने गये थे, तभीसे कहनेभरको ही होश में थे। तभीसे क्षण-क्षणमें उनका शरीर बाह्यज्ञानशून्य निस्पन्द हो जा रहा था। पू.पोद्दार महाराज समझते थे कि श्रीजगन्नाथपुरीके सागरतटपर तरंगित लहरोंके दृश्यने पू.गुरुदेवकी श्रीकृष्णालिंगनकी लालसाको उद्दीप्तकरके उन्हें मथित कर दिया है। तभीसे अपूर्व प्रियतम-विरहकी ज्वाला उनके अन्तस्तलमें प्राणोंको प्रतिक्षण जला रही है। विरहभावकी कराल लपटोंमें उनका शरीर-मन-प्राण सबकुछ झुलसता जा रहा है। परन्तु अवश्यमेव यह सब हो रहा है उनके भावदेहमें ही। उनके प्राकृत देहमें तो वे अपने हृत्सिन्धुकी ज्वाला और भावसागरकी मन्थनलीलाको सर्वथा अप्रकट ही रखे हैं। हाँ, यह अवश्य है कि उनके प्राकृत देहको संस्पर्श करनेवाली वायु, उनकी परम पूत प्रियतम स्मृतिमयी नेत्रदृष्टि, त्रितापसे प्रतिक्षण जलते हुए असंख्य प्राणियोंके लिये महौषधिरूप बन रही है। श्रीपोद्दार महाराज इस सत्यसे भी पूर्णतया अवगत थे कि उनके परम प्रिय शिष्यके रससागरकी कुछ बूँदें उनके चित्तके मन्थनसे उत्पन्न हुई अमृतकी कुछ कणिकायें प्रपंचके तटपर बिखर रही हैं। और इससे जो भी सौभाग्यशाली प्राणी इनके सम्पर्कमें आ रहे हैं, वे त्रिताप ज्वालासे निश्चय ही सदाके लिये विमुक्त हो जावेंगे।

इसीलिये पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके हाथोंको श्रीपोद्दार महाराज पकड़े हुए थे, उन्हें सम्हाले थे, किन्तु होगया सर्वथा विपरीत। श्रीपोद्दार महाराजकी स्वयंकी दशा ही श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते-करते ऐसी उन्मत्त हो गयी कि उलटे पू.गुरुदेवको उन्हें सम्हालना पड़ा।

श्रीपोद्दार महाराज तो श्रीजगन्नाथजीके दारुविग्रहको बस, खड़े देख रहे थे, किन्तु अचानक ही भावोद्दीपन हुआ और उनका दृश्य बदल गया। उन्हें अनुभव होने लगा – " समग्र अन्तरिक्ष जय-जयनादसे नादित हो रहा है। सर्वत्र आकाशमें देववृन्द परमानन्दित पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। अब तो श्रीपोद्दार महाराजकी आँखोंके आगे से वह दारुप्रतिमा विलुप्त ही हो गयी और उनके नेत्र अपलक केन्द्रित हो गये उनके प्रियतम नीलसुन्दरके पदकमलोंपर ही। लो, अब तो रासनृत्यके तालबन्धका एक विचित्र-सा कम्पन उन चरणोंमें होने लगा। ओह ! स्पष्ट ही तो है – समस्त कलाओंके आदिगुरु ये ब्रजेन्द्रनन्दन यमुनाकी मणिमयी, साथही, सुकोमलतम सैकतराशिपर अनुपम रासनृत्य करने

जा रहे हैं। अखिलकला-प्रवर्तक, सकलकला-निधि उनके प्रियतम अपनी रास रंगशालामें अपनी रासनृत्यकलाका दर्शन करावें और निर्निमेष नयनोंसे उनकी ओर निहारतीं असंख्य गोपियोंके प्राणोंको सुशीतल करें, फिर दृष्टाके सौभाग्यको क्यों न सराहा जावे ? लो, उनका यह नृत्य प्रारंभ भी हो गया।

अरे भाई ! कोई अपना प्रेमास्पद नृत्य करे तो हर्ष होना चाहिये, फिर ये पोद्दार महाराज अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरके रासनृत्यके समय रो क्यों रहे हैं ? अरे भाई ! तुम इन पोद्दार महाराजको प्राकृत शरीरमें नरदेहधारी ही देख रहे हो, इनका अप्राकृत भावशरीर तो तुम्हारी दृष्टिसे सर्वथा ओझल ही है। ये तो हैं साक्षात् श्रीबृषभानुनन्दिनी ! उस प्रेमलोकमें श्रीबृषभानुनन्दिनीकी मनोदशा कैसी विचित्र है, इसे तुम क्या जानो ? उनकी अश्रुधारामें जो कभी विराम हुआ नहीं, होगा नहीं, और होता नहीं, इसका तुम्हें कहाँ पता है ? अविरल अनवरत क्रन्दन ही तो उनका जीवन है ! यह क्रन्दन अनादि है और अन्तरहित है। संयोगके क्षणोंमें, चाहे प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दन महारासमें नृत्य ही क्यों नहीं कर रहे हों, इस रासोल्लासमें भी उन्हें अपने प्राणवल्लभसे विरहकी स्मृति हो आती है और उनका क्रन्दन प्रारंभ हो जाता है। कोई कहेगा बृषभानुनन्दिनीको विरहकी आशंका ही तो होती है, सामने सत्यमें तो उनके पास उनके प्रियतम श्रीकृष्ण रहते ही हैं। तो भाई ! कोई प्राकृत व्यक्ति अप्राकृत राज्यकी बातें ठीक तरहसे समझ नहीं सकता। जाग्रत् और भावका भेद इस प्राकृत लोकका है। इस प्राकृत लोकमें जाग्रत् अवस्थाको लोग सत्य समझते हैं और स्वप्नावस्था और मनोराज्यको लोग मिथ्या समझते हैं। किन्तु इस अप्राकृत ब्रजभावके राज्यमें मनोराज्य उतना ही सत्य है जितना जाग्रत् अवस्था। वहाँ स्मृति ही सत्य है। विरहमें मिलनकी स्मृति वहाँ सच्चा मिलन कराती है। इसी प्रकार मिलनमें विरहकी स्मृति भी वहाँ नित्य विरह हो जाती है। उस भावराज्यमें स्मृति ही सत्य है। स्वप्न ही सत्य है। मनोरथ ही सत्य है, कामना ही सत्य है। अस्तु, प्रिया-प्रियतमके रास-मिलनमें भी पोद्दार महाराज भावी विरहकी आशंकामें डूबे अपने नेत्रोंसे अश्रुधारा बहा रहे हैं जबकि कहीं यदि उनके वियोगके क्षण वस्तुतः होते तब तो अश्रुप्रवाहकी सीमा ही नहीं रहती।

फिर कोई प्रश्न कर सकता है कि वे जब अनवरत क्रन्दन ही करते रहते हैं तो 'कल्याण' गीताप्रेसका कार्य कैसे करते हैं ? तो इसका उत्तर यह

है कि उनके भावराज्यमें न तो कहीं 'गीता' है, न ही गीतावक्ता है, और न ही कोई लोक है और न ही उसका कल्याण है। यहाँ यह ध्यानमें रखनेका विषय है कि श्रीपोद्दार महाराजके पंचभूतात्मक प्राकृत शरीरका नियन्ता उनके स्वयंका अहं है ही नहीं। उनका शरीर तो एक यंत्र है जिसको जगन्नियन्ता भगवान् उनके स्थानपर आसीन हो अपनी रुचिके अनुसार चला रहे हैं। वे जो बुलाते हैं, उनका देह बोल देता है, जैसा व्यवहार जगन्नियन्ता भगवान् कराना चाहते हैं उनका देह वही अच्छा-बुरा कर्म, अनुकूल-प्रतिकूल व्यवहार कर देता है। पोद्दार महाराजका निजका अहं तो महासत्वमें कबका विलीन हो गया। यह महासत्व तो त्रिगुणसे परेकी वस्तु है।

भाई, जीवकी साधनाका माध्यम तो प्राकृत शरीर ही है, भले ही प्राकृत राज्यके शरीर द्वारा कोई कितनी ही साधना करे, और साधनाके फलस्वरूप कोई कितना ही सत्वगुण प्रवृद्ध करले, उस सतोगुणमें रजोगुण-तमोगुण सम्मिश्रित तो रहता ही है, रहेगा ही। तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण प्रकृतिके राज्यकी वस्तु हैं, किन्तु महासत्व तो त्रिगुणसे परे, अप्राकृत राज्यकी वस्तु है। महासत्वमें विलीन होनेवाला मन रसस्वरूप ब्रजेन्द्रनन्दन किंवा महाभावस्वरूपा बृषभानुनन्दिनीसे एकमेक हो जाता है। तो श्रीपोद्दार महाराज तो अब महासत्वमें एकमेक हो महासत्वका भी आधार बन गये हैं। अतः अब तो वे भाई ! महाभावस्वरूपा बृषभानुनन्दिनी ही बन गये हैं। अब रहा उनका प्राकृत शरीर, सो उनके इस प्राकृत देहका नियंत्रण जगन्नियन्ता जैसे करना चाहें, कर ही रहे हैं। यह सत्य है कि सरिताके जलप्रवाहमें धराके उलटे भी मछली तैर जाती है किन्तु हाथी नहीं तैर सकता, इसी प्रकार अपने भावजीवनमें उमड़ते -उछलते रस-सागरको श्रीपोद्दार महाराज अपने प्राकृत देहमें व्यक्त होनेसे रोकनेमें अति कुशल हैं। वे असीम रसप्रवाहमें उलटे तैरकर ही साधारण तुच्छ मोही, गृहस्थ मनुष्यवत् व्यवहार कर लेते हैं। किन्तु कभी-कभी रसका उद्दीपन जब उनके वशके बाहर अथाह हो उठता है तो उनके देहमें भी उसके अनुभाव व्यक्त हो ही जाते हैं। तो आज यही हो रहा है। इसमें यह भी हेतु है कि साधनाकी दृष्टिसे जिनका श्रीपोद्दार महाराजके प्रति समुन्नत श्रद्धाभाव है, श्रीपोद्दार महाराजके भावावेशसे उनके भावजगत्को पोषण मिल जाय। उनकी श्रद्धा सीमातीत उफनकर सीमातीत हो उठे। किन्तु यहाँ यह भी ध्यान रहे कि यह सब करनेवाला जगन्नियन्ता भगवान् ही है। पोद्दार महाराज स्वयं नहीं हैं।

उनके प्राकृत कलेवरसे किसीको श्रद्धान्वित करना, या उसमें घोर अश्रद्धा उत्पन्न कर देना– ये सभी जगन्नियन्ताके ही कार्य हैं। श्रीपोद्दार महाराज तो पूरे डूब चुके हैं, उस महासत्व-सिन्धुमें जो पूर्णतया अप्राकृत है, एवं उसका इस प्राकृत जगत्से लेशात्मक सम्बन्ध भी नहीं है।

तो, परिस्थिति सर्वथा दूसरी हो जानेसे उलटे अब श्रीपोद्दार महाराजकी सँभाल पू.गुरुदेवके लिये आवश्यक हो गयी। श्रीपोद्दार महाराजकी भावदशा ऐसी ही गंभीर होती जा रही थी कि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको ऐसा प्रतीत होने लगा कि ये कुछ ही कालमें जड़िमाभावसे ग्रस्त हो उठेंगे। अतः वे उन्हें मन्दिरसे बाहर ले आये। पू.गुरुदेव कसकर श्रीपोद्दार महाराजका हाथ पकड़े हुए थे, और उन्हें खींचते-से बाहर ला रहे थे। मन्दिरके बाहर एक भिखारी बैठा हुआ था। उसे सम्पूर्ण शरीरमें श्वेत कुष्ट थी। अब श्रीपोद्दार महाराज ज्यों ही मन्दिरसे बाहर आये, लगे उस श्वेतकुष्टी भिखारीके पैर पड़ने। पू.गुरुदेव भी यद्यपि उस समय भावमदिराके नशेमें थे, परन्तु उन्हें अपना नशा थोड़ा शिथिल करना पड़ रहा था। पू.गुरुदेव कहते थे कि इस महासत्व रूपी मदिराका नशा इतना आनन्दस्वरूप है कि कोई भी डूबा हुआ व्यक्ति सामान्यतः इस आनन्दको त्यागकर प्राकृत जगत्में पदार्पण करना नहीं चाहता, किन्तु कुछ व्यक्तियोंमें भगावत्कृपासे ऐसी विलक्षण समता और मत्सुखसे उपरति उत्पन्न हो जाती है कि उनके लिये महासत्वसिन्धुमें डूबे रहना अथवा प्राकृत जगतमें बातें करते रहना, दोनों ही समान स्थिति हो जाती हैं। तो जब श्रीपोद्दार महाराज भावावेशमें सुध-बुधरहित हुए एक कोढीके पैरोंको इस प्रकार टटोलने लगे, मानों उन पैरोंमें ही सारी रस-सम्पदा भरी हो, तो पू.गुरुदेवने उन्हें किसी प्रकार निवृत्त किया और तुरन्त मोटर गाड़ीमें बैठाकर उनके निवासपर ले आये। पू.गुरुदेव जैसे ही उन्हें निवासपर लाये भावोद्वेलनजन्य शैथिल्यके अतिरेकसे अभिभूत हुए श्रीपोद्दार महाराजतो अपना कक्ष बन्दकर सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य जड़वत् हो गये।

पू.पोद्दार महाराज एवं गुरुदेवके संग मन्दिरमें उस समय मैं भी था। मैंने जब पू.गुरुदेवसे श्रीपोद्दार महाराजकी उस समयकी स्थितिपर प्रकाश डालनेकी बात कही तो वे कहने लगे –" भैया ! तुझे श्रीपोद्दार महाराजके मुखसे सुनी उनकी अपनी अनुभूतिकी बात बता रहा हूँ। यह घटना रतनगढ़की है। श्रीपोद्दार महाराज शौचके लिये धोरोंकी ओर जा रहे थे। अचानक वे

एकदम भावसमाधिस्थ होने लगे। उनके लिये हाथका लोटा सँभाल पाना तथा अपने शरीरको ठीकसे खड़ा रख पाना ही कठिन हो रहा था। उनका भाव जब कुछ शिथिल हुआ तो वे मुझसे कहने लगे –"बाबा ! बहुत दिन पहले मेरे मनमें बार-बार संन्यास लेनेकी प्रवृत्ति होती थी। एक दिवस जब भगवान्ने तनिक मेरी भर्त्सना करते हुए मुझसे कहा – 'मूर्ख ! मुझसे पृथक् जगत्की सत्ता है कहाँ, जो तू उसका न्यास करेगा ? 'बाबा ! उसके पश्चात्से प्रभुकी ऐसी कृपा हुई कि चैतन्यमयी शक्तिके विलासरूपमें मुझे भगवान्में यह जगत् अखण्ड नित्य प्रत्यक्ष होने लगा है। बाबा ! मेरे लिये अब अतीत एवं अनागत दोनों ही भगवान्में अखण्ड नित्य वर्तमान हैं। फिर भी बाबा ! इन ब्रजेन्द्रनन्दनकी रूपमाधुरी ऐसी विलक्षण है कि वह **'सर्वं कृष्णमयं जगत्'**को भी बृन्दावनकी रसभूमिमें परिणत कर देती है और मेरी भावमयी दशा कुछ और विचित्र हो उठती है, जिसे मैं शब्द नहीं दे पाता।" तो भैया ! उस समय पोद्दार महाराज कुछ वैसी ही स्थितिमें थे।

मैं पू.गुरुदेवके मुखसे श्रीपोद्दार महाराजकी स्थितिकी बात सुनकर अपनेको कृतकृत्य अनुभव करने लगा। सचमुच मुझ जैसे साधारण विषयी नारकीय जीवका यह कितना बड़ा सौभाग्य था कि जीवनके बालपनसे इन सन्तोंकी ही गोदमें मुझे खेलने-खानेका भी सौभाग्य मिला और प्रभु कृपा करे कि इनकी रज-राखीमें मरनेका भी सौभाग्य प्राप्त हो जाय। यह भी मुझपर उनकी कृपा ही है, उनके जीवन-चरित्रके पावन-स्मरणमें इधर आयुका वृद्धत्व और रुग्णताभरा जीवन निरन्तर लग रहा है।

———————

तीर्थयात्राका प्रयोजन-साफल्य

जब पू.गुरुदेव तीर्थयात्रासे लौटकर आये, उस समय मैंने उनसे एक दिवस एकान्तमें पूछा – "बाबा ! आपका इस तीर्थयात्राका प्रयोजन सफल हुआ या नहीं ?"

उन्होंने सम्मुख पड़ी अपनी खड़ाऊको संकेतित करते हुए मुझसे हँसते हुए कहा –"भैया! मैं तो इस खड़ाऊकी तरह जड़ हूँ, श्रीपोद्दार महाराजरूप ब्रजेन्द्रनन्दन मुझे जहाँ ले जावें, जो भी प्रयोग मेरा लें, मेरे तो वे ही सूत्रधार, यंत्री, सबकुछ हैं। मैं तो पूर्णतया उनके हाथका खिलौना हूँ।"

"यह सत्य है कि वे भगवान्‌के स्वरूपका साक्षात्कार किये हुए भगवत्प्रेमी सिद्ध महात्मा हैं। वे जिस स्थानमें रहते हैं, जाते हैं, क्योंकि उनके हृदयमें भगवान् प्रकट हैं, वे सभी स्थान मेरी दृष्टिमें परमतीर्थ हैं, फिर उनके तीर्थोंमें जानेसे सभी तीर्थ महातीर्थ बन गये हैं, इसमें मुझे तो कोई सन्देह है नहीं।"

"जहाँतक तीर्थयात्रियोंके अन्तःकरणकी शुद्धि और उसके फलस्वरूप उन्हें भगवत्प्राप्तिका प्रश्न है– ये तीर्थयात्री सभी प्रायः इन्द्रियलोलुप, काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं विषयासक्तिके महादास थे, उन्हें अपने अहंमें लगी तनिक भी खरौंच स्वीकार नहीं थी, वे वस्तुतः श्रीपोद्दार महाराज जैसे सिद्ध सन्तके साथ तीर्थयात्रा करनेके अधिकारी ही नहीं थे। अतः जैसा फल इनको मिलना चाहिये था, वह नहीं मिला। वे यदि थोड़ी भी भोगलोलुपताका त्याग कर देते तो उन सभीको मानवजीवनकी चरम एवं परम ध्येयरूपा भगवत्प्राप्ति हो ही जानी चाहिये थी। परन्तु सभीको प्रतिदिन समझानेपर भी वे अपनी विषयासक्ति, अभिमान और अपनी स्त्रियासक्ति तनिक भी छोड़ने को तैयार नहीं थे। वे साथ आयीं अपनी स्त्रियोंके आगे मर्कटकी तरह नाचने वाले गुलाम बनकर ही प्रायः आये थे। श्रीपोद्दार महाराज जैसे सहिष्णु, सबका मन रखनेवाले, स्वयं कष्ट पाकर भी दूसरोंको सुविधा देनेवाले, सन्तके चाहनेपर भी वे उस लाभसे वंचित ही रह गये, जो उन्हें इस तीर्थयात्रा एवं सन्त पोद्दार महाराज जैसे सिद्ध संतके संगसे मिलना चाहिये था। फिर भी श्रीपोद्दार महाराजने अनेक तीर्थोंमें इन सभी यात्रियोंकी कारणजगत्‌की ऐसी दीक्षा सम्पन्न करदी जो उनके साधनोन्मुखी पुनर्जन्ममें हेतु हो जायगी, यह विलक्षण लाभ उन्हें प्राप्त हो ही गया।"

"इस तीर्थयात्रामें गुप्तरूपसे रहनेवाले ऐसे अनेक साधननिष्ठ महात्मा जो मात्र इसीलिये तीर्थोंमें रहकर साधना कर रहे थे कि कभी-न-कभी उन्हें कोई महासिद्ध सन्त कृपा करके दर्शन देगा और उनकी साधना सिद्धि-फलोन्मुखी हो उठेगी, उन्हें श्रीपोद्दार महाराज द्वारा अवश्य विलक्षण कृपादान हुआ है। वे कितने ही वर्षोंसे जैसे बिना पंखके पक्षीशावक बुभुक्षातुर हुए अपनी माँकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही श्रीपोद्दार महाराज जैसे महासिद्ध सन्तकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें श्रीपोद्दार महाराज द्वारा महासिद्धिका दान अवश्य हुआ है। इस यात्राकी एक यही सबसे बड़ी सफलता रही है।"

"श्रीपोद्दार महाराजका इस यात्रामें स्थान-स्थानपर मन्दिरों एवं मठोंमें स्वागत समायोजन हुआ और स्थान-स्थानपर विद्वानोंने उनके प्रवचन-सत्संग आयोजित किये। इन सत्संगोंमें श्रीपोद्दार महाराजने छुट्टियाँ मनाने अथवा मौज-शौक या प्रमोद करनेके लिये तीर्थोंमें जानेको निषेध किया। उन्होंने मठाधीशों, मन्दिरोंके पुजारियों एवं पण्डोंको जो उद्बोधन किये, उनसे अनेकोंके जीवन बदले हैं। कुछ तो मुझसे भी मिलने आये हैं। उन्होंने मेरे चरण छूकर प्रतिज्ञा की है कि वे भविष्यमें मन-इन्द्रियोंका भलीभाँति संयम करेंगे। वे मन्दिरोंकी आयमें धनलोलुपताका त्याग करेंगे। वे प्रतिग्रहके त्यागी, यथालाभ सन्तुष्ट, मिथ्या अहंकार-अभिमानसे मुक्त, दंभरहित, जितेन्द्रिय, सत्यवादी होकर तीर्थविग्रहोंकी पूजा करेंगे। वे किसी भी परस्त्रीका अंगस्पर्श नहीं करेंगे, आहार-आचारका पालन करेंगे, दीन-दुखी या असहाय यात्रियोंकी यथायोग्य सेवा करेंगे। इस प्रकार इन पण्डों, मन्दिरोंके पुजारियोंपर जो श्रीपोद्दार महाराजके कथनी एवं करनीमें समानतायुक्त आचरणोंका प्रभाव पड़ा है, उससे भी इन तीर्थोंकी शुद्धिका कार्य सम्पन्न हुआ है।"

"पू.गुरुदेव कह रहे थे कि आज तो सरकार एवं नास्तिक हिन्दू जनता द्वारा तीर्थोंमें बूचड़खाने, शराबखाने, द्यूतगृह, वेश्यालय खोले जा रहे हैं। स्थान-स्थानपर घुमन्तू लोगों द्वारा नदियोंमें विवस्त्र स्नान अथवा अर्धनग्न स्नानादिको प्रोत्साहित किया जा रहा है। तीर्थ-घाटोंकी कोई मर्यादाका पालन नहीं होता। जिन भगवत्परायण भजनानन्दी महापुरुषोंने अपने पुण्यबलसे तीर्थोंको तीर्थ बनाया था, पापाचारी दाम्भिक लोगोंने उनकी वह सब मर्यादा और पुण्यराशि नष्ट-भ्रष्ट करदी है। प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थोंमें जो पापकाण्ड एवं दुराचार हो रहे है, वे अत्यन्त भयानक एवं रोमाञ्चकारी हैं। इन दुराचारोंको

देखकर अच्छे लोगोंकी तो श्रद्धा ही तीर्थोंसे हट रही है, एवं वे तीर्थोंमें जाना ही नहीं चाहते। श्रीपोद्दार महाराजने अपने भाषणों और संकल्पोंसे इन सभीके विरुद्ध एक आन्दोलनकी भूमिका प्रस्तुत की है, इससे आज नहीं तो भविष्यमें अवश्य इन तीर्थोंके सुधारकी जनतामें प्रवृत्ति उत्पन्न होगी।''

''श्रीपोद्दार महाराज तीर्थयात्रामें जिन-जिन तीर्थस्थानोंमें गये एवं वहाँके जिन-जिन क्षेत्रीय देवालयोंमें दर्शनार्थ पहुँचे, उन-उन देवालयोंके देवता उनके सम्मुख प्रायः प्रत्यक्ष होकर प्रकट हुए हैं। एक सिद्ध सन्तके द्वारा किसी भी देवविग्रहका दर्शन करना और किसी साधारण व्यक्ति द्वारा देवविग्रहके दर्शन करनेमें यही भेद है। साधारण व्यक्ति तो वहाँ देवविग्रहमें प्रायः प्राकृत मूर्त्तिके ही दर्शन करता है। किन्तु महासिद्ध सन्त जब वहाँ जाता है तो उसके सम्मुख देवविग्रह अपनी सम्पूर्ण महिमा और माहात्यके साथ प्रकट हो जाता है। साथ ही उस देवविग्रहकी स्थापना करनेवाले वे सिद्ध सन्त भी यदि अन्तर्जगत्में कहीं होते हैं, तो वे भी उस सिद्ध सन्तसे परस्पर मिलनेके लिये सम्मुख प्रकट हो जाते हैं। इस सन्तसम्मिलनका यह प्रभाव होता है कि उस विग्रहमें पुनः वह प्रत्यक्ष तेजस्विता प्रकट हो जाती है, जो तेजस्विता उनके पुजारियोंकी अश्रद्धासे लुप्त हो गयी है। उदाहरणके रूपमें इसे अच्छी प्रकार समझ लें। जैसे श्री पोद्दार महाराज वृन्दावनमें श्रीबिहारीजी अथवा श्रीराधा-बल्लभलालजीके मन्दिरमें दर्शनार्थ गये। अब, एक साधारण दर्शनार्थी तो बिहारीजीमें मात्र मूर्त्तिके दर्शन ही करेगा, किन्तु श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख तो श्रीबिहारीजी अवश्यमेव अपने पूर्ण तत्व और माहात्म्यके साथ मूर्त्त होंगे ही। सन्तकी दृष्टि ही ऐसी अमोघ होती है कि वह खम्भेमेंसे श्रीनृसिंहजीको जब प्रत्यक्ष प्रकट कर देती है तो वह किसी सिद्ध महात्मा द्वारा स्थापित, प्राणप्रतिष्ठित मूर्त्तिमेंसे उस देवताको प्रकट क्यों नहीं करेगी ? देवता तो वहाँ है ही। अतः वे बिहारीजी, राधावल्लभजी आदि विग्रह इन सभी सिद्ध सन्तोंके सम्मुख अपनी महिमाका प्रकाश करते प्रकट होते ही हैं। इतिहासमें इसके अनेक उदाहरण हैं। श्रीतुलसीदासजीके सम्मुख बंशीधारी भगवान् उनके आग्रहपर रामरूपमें परिवर्तित हो गये थे। इसी प्रकार श्रीविजयसिंह बोडाणा रणछोड़रायजीकी द्वारकाकी मूलमूर्त्तिको डाकोर ही ले गये थे। श्रीनाथजी महाराज श्रीवल्लभाचार्यजीसे प्रत्यक्ष बोलकर वार्त्ता करते थे। अतः ये सभी सिद्ध विग्रह श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख प्रत्यक्ष अपने प्रभावका प्रकाश करते प्रकट नहीं

हुए हों, सो बात नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि श्रीपोद्दार महाराज इतने आत्मगोपनचतुर हैं कि उन्होंने किसीके भी सम्मुख अपनी अनुभूतिकी गंध भी नहीं लगने दी है।"

इतना कहते-कहते पू.गुरुदेवके नेत्र श्रीपोद्दार महाराजके स्वभाव-माधुर्यका स्मरण करते हुए अत्यधिक छलछला आये। पू.गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराजकी महिमामें जो भी बोल रहे थे, उनके अधरोंका एक-एक शब्द प्यारमें भीगा हुआ था। शब्दके अक्षर-अक्षरसे श्रद्धा फूट रही थी। कुछ क्षण रुककर हाथ जोड़े-जोड़े पू.गुरुदेवने कहा – "आज विश्वमें मेरी दृष्टिमें तो उन जैसा कोई सिद्ध सन्त नहीं है। श्रीपोद्दार महाराजकी महिमाका भैया ! मैं आदि अन्त ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक जाता हूँ, और बस, उनके श्रीचरणोंमें बार-बार वन्दन करने लगता हूँ।"

इसके पश्चात् कुछ कालतक तो पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा बोल ही नहीं पाये। मैं मेरे गुरुदेवका भावविभोर मुख एकटक देखता रहा। इसके पश्चात् वे पुनः कहने लगे –"भैया ! श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख सभी तीर्थोंमें क्षेत्राधिकारी देवता प्रकट हुए हैं, और अनेक स्थानोंमें देवताओंने उनसे भगवद्भक्तिके दानकी याचना की है। परन्तु मैं यह बात मुखसे निकालते-निकालते हिचक जाता हूँ। मेरी वाणी लड़खड़ा जाती है। आज किसमें उनके प्रति ऐसी श्रद्धा है ? तू मेरी बात सुन भर रहा है। परन्तु तेरी भी ऐसी ठीक श्रद्धा कहाँ है ? यदि तेरी ऐसी श्रद्धा श्रीपोद्दार महाराजमें हो जाती तो इसी क्षण तू भगवत्प्राप्त सिद्ध सन्त हो जाता।"

"तो इन विग्रहोंके श्रीपोद्दार महाराजके सम्मुख प्रत्यक्ष प्रकट होनेसे तीर्थोंके तीर्थत्वमें निश्चय ही इस यात्रासे अभिवृद्धि हुई है। इस सम्बन्धमें अनेक बार तो यह तथ्य मेरे अनुभवमें आया है, और अनेक घटनाएँ श्रीपोद्दार महाराजने मेरे पास आकर मुझे बतायी हैं।"

"अनेक तीर्थोंमें श्रीपोद्दार महाराज जब तीर्थदर्शन कर रहे थे और मैं उनके पास था, तो वे मुझसे कहने लगे – देखिये, बाबा ! यह मन्दिर पंचभूतात्मक सर्वथा नहीं रहा है, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय हो उठा है।"

"श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें जब वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर रहे थे, उन्हें विलक्षण भावावेश हो उठा था। वे एक कोढ़ीके चरण पकड़नेकी दीनता कर रहे थे। मैं उन्हें किसी प्रकार सम्हालकर लाया था। बादमें वे जब किंचित्

प्रकृतिस्थ हुए तो मुझसे कहने लगे – " बाबा ! वह कोढी भिखारी था ही नहीं। वे तो चैतन्य महाप्रभु थे। मैंने उन्हें पहचान लिया और उनके चरणोंमें गिरकर उनसे महाभावकी भिक्षा माँग रहा था। अब भैया ! ऐसे अनेक महासिद्ध सन्तोंका श्रीपोद्दार महाराजसे जो मिलन इस तीर्थयात्राट्रेनमें हुआ है, उससे विश्वके घोर बढते कालुष्यमें विराम तो अवश्य-अवश्यमेव आया ही है।"

"भैया ! तुम कल्पना नहीं कर सकते कि महासिद्ध सन्त चाहे वे किसी भी सम्प्रदायके हों, किसी भी धर्मके हों, उनके परस्परके सम्बन्धोंमें ऐसी आत्मीयता रहती है, ऐसा निजत्व , ऐसा अपनापन होता है, जिसमें परायेपन जैसे किसी प्रकारके भावकी कल्पना ही नहीं होती।"

"शुचिन्द्रम्की एक घटना बतलाता हूँ, श्रीपोद्दार महाराज मेरे पास रोते हुए आये। मैंने उनसे पूछा –"प्रभो ! यह क्या लीला कर रहे है ?" उनकी हिचकी बँध रही थी । वे सिसकते-हिचकी लेते मुझसे कह रहे थे –"श्रीहनुमानजी आये थे, बाबा ! वे मुझे गलेसे लगाने जा रहे थे। वे मान ही नहीं रहे थे। अन्ततः उनकी ही बात बात माननी पड़ी। ज्यों ही उन्होंने मेरे हृदयसे हृदय मिलाया, मैं तो होशमें रहा ही नहीं। कितना विशुद्ध अनुराग उनका मुझमें है, मैं क्या कहूँ । श्रीहनुमानजीने जैसा प्रेमका, अपनेपनका आज मुझे अनुभव कराया है, बाबा ! मैं उनपर न्यौछावर हूँ। "

"किसी तीर्थमें एक दिन वे कह रहे थे –"बाबा ! मुझमें तो त्रुटियाँ भरी हैं, किन्तु इन सभी सन्तोंमें न जाने क्यों मेरे प्रति ऐसा राग है कि उन्हें मेरे दोष दिखाई ही नहीं पड़ते। ये सभी सन्त प्रेमकी प्रतिमूर्त्तियाँ हैं। मैं इन तीर्थोंमें जहाँ भी जा रहा हूँ बाबा ! मुझे सिद्ध सन्तोंमें मेरे प्रति अनुरागमें निरन्तर अभिवृद्धि ही दिखती है। सभीकी मुझपर अहैतुकी प्रीति दृष्टिगोचर होती है।"

"बाबा ! प्रेमके लिये प्रेम, रागके लिये राग, त्यागके लिये त्याग तो सभी करते हैं, किन्तु ये सन्त तो मेरे प्रति हेतुरहित प्रीति रखते हैं। ये तो मुझे देते ही देते हैं। इनके पवित्र आचार, इनकी असमोर्ध्व शास्त्र विद्वत्ता, इनकी अपूर्व तप-तितिक्षा, बाबा ! इन सिद्ध सन्तोंके सम्मुख अपनेको अति तुच्छ, सूर्यके सम्मुख जुगनूके तुल्य भी नहीं पाता, किन्तु ये मुझे न जाने क्यों, क्या देखकर सम्मान करते हैं।"

"मैं जानता हूँ ये सभी मुझसे राग करते हैं, अतः मेरे दोष इन्हें दिखते

नहीं। ये देनेका अभिमान नहीं करते। मैं इनसे इनकी चरणरजकी भिक्षा माँगता हूँ। प्रार्थना करता हूँ कि आप सबकी अनुग्रहराशि मुझे उन्नत करेगी। किन्तु प्रत्येक उन्नतिके साथ अवनति जुड़ी है। मेरे जीवनमें तो उन्नति करनेके लिये अभी बहुत कुछ शेष है, किन्तु उन्नति जहाँ भी होती है,अवनति वहीं खड़ी प्रतीक्षा करती है। अतः कृपा करें, जहाँ तक अवनतिकी बात है, आप लोग ऐसा आशीर्वाद दें, सद्भावना दें कि मुझ तुच्छके जीवनमें भगवत्स्मृतिमें गिरावट नहीं आये। जीवन चाहे कितना ही क्यों न निम्न हो, किन्तु मेरी श्रीकृष्ण-स्मृतिका तार अखण्ड रहे। मैं विनयकी बात नहीं करता, सच्ची बात कहता हूँ, मनुष्य दूसरेके दोषोंको देखनेमें जितना पटु है, उतना ही वह अपने दोषोंको देखनेमें अपनी आँखोंको मूँदे रखता है। मैं इनसे प्रार्थना करता हूँ —" आप लोगोंकी कृपा रहेगी तो मुझे अपने दोष दिखते रहेंगे। " परन्तु बाबा ! इनकी आँखोंकी निर्मलताकी बलिहारी है, ये सभी सिद्ध लोग मेरे भीतर गुण ही देखते हैं, दोष देखते ही नहीं। बतलाइये बाबा ! मुझ दोषागारके प्रति इनकी ऐसी गुणदृष्टि इनके प्रेमका ही तो परिणाम है। बाबा ! मेरे जीवनमें तो जहाँ दोष-ही-दोष भरे हैं, इसके उपरान्त मेरे प्रति जिनका ऐसा निर्मल प्रेम है, उन लोगोंके चरणोंमें मैं न्यौछावर नहीं होऊँ तो क्या करूँ ?"

"बाबा ! प्रत्येक तीर्थमें ही मेरी ऐसी दशा हुई है। सिद्ध सन्त लोग, आकाशचारी महात्मागण, दिव्य विभूतियाँ, आचार्यकोटिके कारक पुरुष मेरी प्रशंसा करते हैं। वे मेरी प्रशंसा करके मुझे गिरावें, सो बात नहीं है। इन सबका मेरे प्रति जो स्नेह है, वही फूट पड़ता है। "

"भैया ! श्रीपोद्दार महाराज अपनी महाभावगत दैन्यराशि बिखेरते सिसक-सिसक कर रो रहे थे। उनकी हिचकी बँधी थी। सो, इससे मुझे यह कहनेमें कुछ संकोच नहीं है कि इस तीर्थयात्रामें श्रीपोद्दार महाराज और सभी संतोंके कृपा-उच्छलनसे अवश्यमेव इन तीर्थोंमें बढ़ते कलिप्रवाहमें कुछ रोक लगनी ही चाहिये।"

"सबके अन्तमें मेरा इतना ही कहना है भैया ! कि श्रीपोद्दार महाराजका पल-पल, क्षण-क्षण भगवदीय कार्ययोजनाका एक अंग है। अतः उनके माध्यमसे जो कुछ हुआ है वह भगवदिच्छाकी ही पूर्त्ति हुई है। इसमें कुछ भी मीन-मेख नहीं है।"

अध्याय नवम

पू.गुरुदेवका काष्ठमौन

जहाँतक मुझे स्मरण है, उस दिन वि.सं. २०१३की वैशाखी पूर्णिमा थी। अपने नित्य नियमानुसार निरे प्रभात ही मैं पू.गुरुदेवके चरणस्पर्श करने उनकी कुटियामें गया था। उस दिवस यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरे आनेके पूर्व ही मेरे पूर्वाश्रमके मातुल श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी वहाँ बैठे थे। पू.गुरुदेवने उन्हें सन्देश भेजकर बुलाया था। वैसे स्लेटपट्टी पू.गुरुदेवके हाथमें थी और वे उसमें कुछ-कुछ लिख भी रहे थे, परन्तु अधिकांश वार्त्ता वे उनसे प्रायःबोलकर ही कर रहे थे। मैंने मन ही मन सोचा संभव है, उनकी कोई गोपनीय मंत्रणा हो, अतः जब मैं प्रणाम कर वापस लौटने लगा, तो उन्होंने मुझे रोककर कहा कि तुझसे कुछ भी छिपायी जाय , ऐसी कोई गोपनीय बात नहीं हो रही और उन्होंने मुझे अपने पास ही बैठनेका संकेत कर दिया। वे मेरे पूर्वाश्रमके मामाजीसे यही कह रहे थे कि अबतक वे सभीसे यही उद्घोष करते रहे थे कि अठारह मास पश्चात् वे इस स्लेट पट्टीपर लिखकर बात करनेका बन्धन तोड़ देंगे और सभीसे उन्मुक्त बोलकर वार्त्ता करेंगे, किन्तु इसके सर्वथा विपरीत, उलटे आजके ठीक अठारह माह पश्चात् अब वे पूर्णतया काष्ठमौनी हो जावें – ऐसी ही उनके प्राणाराध्य श्रीकृष्णकी इच्छा है।

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि अयोध्यामें आनन्द एवं उत्साहकी लहरें उठ रही थीं कि कल प्रातः भगवान् रामका यौवराज्य पदमें अभिषेक होगा, किन्तु किसे पता था राम सरीखे सर्वप्रिय राजकुमारको कल ही महाराज दशरथ चौदह वर्षके लिये वनवास दे देंगे।

पू.गुरुदेवसे राम-वनवासकी उपमा सुनकर मेरे नेत्र छलछला आये। मैंने उनसे पूछ ही लिया – "बाबा ! यह काष्ठमौन वस्तुतः होता क्या है ?"

पू.गुरुदेव कहने लगे – "भैया ! यह संन्यासके अन्तर्गत ही एक अति कठोर क्लेशकारी व्रत है। इसका बाह्य स्वरूप तो यह है कि काष्ठमौनव्रती संन्यासी नदीके किनारे इस व्रतको ग्रहण करे, जिससे उसे जल पीनेकी किसीसे याचना नहीं करनी पड़े। जब उसे क्षुधा लगे तो वह भिक्षा माँगनेकी मुद्रामें अपने हाथ करले। कोई अपने आप जो भी वस्तु खानेके लिये दे दे,

यदि वह मांसादि अखाद्य नहीं हो तो गंगाके पवित्र जलमें धोकर खा ले। प्रायः वह चलता ही रहे, जब अतिशय श्रान्त हो जाय तो किसी वृक्षके नीचे बैठ जाय। किसी भी प्राणीकी ओर अपनी दृष्टि उठाकर नहीं देखे। मात्र धरतीकी ओर देखता रहे। बोलने, पढ़ने, लिखने, बात करनेका तो प्रश्न ही नहीं है। चाहे वह कितना ही शारीरिक कष्टमें हो, अपने शरीरकष्टका किसीसे तनिक भी संकेत नहीं करे। ''

''यह उपरोक्त व्रत तो इस काष्ठमौनीका बाह्य स्वरूप है, इसका आन्तरिक स्वरूप यह है कि शरीर एवं समग्र दृश्यको ही आत्यन्तिक विस्मरणकर अपने आत्मानुभवमें निमग्न हो, डूब जाय।''

पू.गुरुदेव कहने लगे कि 'एक धर्मात्मा गृहस्थ थे। प्रभुके विधानवश वे मरणान्तक रुग्ण हो गये। उनके कोई सन्तान नहीं थी, धर्मभीरु सती पत्नी थी। उसने उनकी बहुत ही सेवा की। जब वे मरणासन्न हो उठे, तुलसी चरणामृत भी उनके गलेके नीचे नहीं उतर रहा था, तो उनकी पतिव्रता धर्म-परायणा स्त्रीने उन्हें मृतप्राय समझ उनके शिखासूत्र विच्छिन्नकर उन्हें आतुर-संन्यास दिला दिया। उस समय वे सर्वथा अचेतन थे, और उनकी ऊर्ध्व श्वास उखड़ी-उखड़ी चल रही थीं । उनके जीवित रहनेकी तब कोई आशा ही नहीं थी किन्तु प्रभुका विधान, संन्यासी होनेके उपरान्त वे पुनः स्वस्थ होने लगे। धीरे-धीरे उनकी श्वास सौम्य-स्वाभाविक हो गयी, वे स्वस्थ हो गये। अब क्योंकि उनकी पत्नीने उन्हें संन्यस्त कर दिया था, अतः वह उनकी स्वयं सम्मुख सेवा करने नहीं आती थी। वैसे वह उनके पथ्य, दवादिकी व्यवस्था उनके अन्य सम्बन्धियोंसे करवा देती थी।

वे जब पूर्णतया स्वस्थ हो गये तो उन्होंने अपनी पत्नीके बारेमें पूछा और यह जिज्ञासा की कि वह उनके सम्मुख क्यों नहीं आती ? उनकी पत्नीने सारी बात परोक्षमें रहकर उन्हें समझा दी कि मरणासन्न अवस्थामें उन्हें चतुर्थाश्रमी संन्यासी बना दिया गया है।

यह सुननेके पश्चात् उन धर्मात्मा गृहस्थके लिये फिर अपने घरमें रहनेका तो कोई तुक ही नहीं था। वे गृह त्यागकर गंगाके किनारे हरिद्वार चले गये। वे संन्यस्त वेषमें धर्मोपदेश कर जीवन व्यतीत करने लगे। समय व्यतीत होता गया, और उनके जीवनके इसी प्रकार चौबीस वर्ष व्यतीत हो गये।

इधर कुम्भपर्व आया। उनकी पत्नी भी हरिद्वार कुम्भमें स्नानार्थ आयी। संयोग ऐसा हुआ कि एक दिवस एक पण्डालमें जहाँ वे संन्यासी प्रवचन करते थे, उनकी स्त्री वहीं प्रवचन सुनने पहुँच गयी। वह भीड़में अपने संन्यासी पतिके उत्कट वैराग्य, उनकी विद्वत्ता, विषयवस्तुको अति सुगम करके समझानेकी उनकी शैली, उनका ज्ञान देख-देखकर हर्षित थी और अश्रु बहा रही थी। प्रवचनकर्त्ता संन्यासी महात्माकी दृष्टि भी उस स्त्री पर पड़ी तो वे उसे पहचान गये। जब प्रवचन समाप्त हो गया एवं सभी श्रोता चले गये तो महात्माजीने उस अपनी स्त्रीको बुलाया और उसका हाल-चाल पूछने लगे।

वह स्त्री वस्तुतः धर्माचारिणी थी, उसे मन-ही-मन बहुत दुःख हुआ कि जब मैंने इन्हें संन्यस्त कर ही दिया तो ये अबतक चौबीस वर्ष पश्चात् भी मुझे स्मृत रखे ही हैं, विस्मृत नहीं कर पाये हैं। उस स्त्रीने अपनी हृदयकी ग्लानि उनके सम्मुख व्यक्त कर दी। वह कहने लगी कि आप मात्र ब्रह्मज्ञान और ईश्वरभक्तिका मौखिक प्रवचन ही करते हैं, आपने चौबीस वर्ष पश्चात् मुझे अपने हृदयमें ज्यों-का-त्यों बसाये रखा है। आप कैसे संन्यासी हैं ? सम्यक् न्यासका तो अर्थ ही है कि आप इस मिथ्या स्वप्नगत दृश्यको, जगत्को आत्यन्तिक विस्मरण कर देते।

उन महात्माजीको अपनी स्त्रीकी वह बात हृदयमें चुभ गयी। बस, उसी क्षण उन्होंने अपनी पत्नीको ही गुरु मान कठोर काष्ठमौनव्रत ले लिया। उन्होंने दृष्टि नीचीकी तो यावज्जीवन दृष्टि ऊपर उठायी ही नहीं। यावज्जीवन वे अनिकेत वृक्षोंके नीचे प्रायः नग्न रहते। कोई वस्त्र उढ़ाता तो ओढ़ लेते किन्तु यदि वह शरीरसे गिर जाता तो अपने हाथसे उसे उठाते नहीं थे।

पू.गुरुदेव मुझसे कह रहे थे कि धीरे-धीरे वे अपने शरीर-दृश्यको सर्वथा ही विस्मृत कर गये थे। उनकी ज्ञाननिष्ठाकी छठी भूमिका थी। मैंने गंगातटमें विचरण करते उनके दर्शन किये थे। वे गंगाके किनारे विचरण करते और उनके पीछे उनकी स्त्री भी सर्वथा अज्ञातभावसे उनकी सेवा-सँभाल करती, उनका अनुगमन कर रही थी। मैंने उस स्त्रीसे भी बात की एवं उससे उन्हें भगवान्पर छोड़ अपने घर लौट जानेकी प्रेरणा दी थी। मेरे समझानेपर वह स्त्री उन्हें प्रभुके मंगलमय विधानपर छोड़ घर लौट गयी थी।

एक बार उनके सामने कोई किसीको लाठीसे बुरी तरह मार रहा था, उस समय अचानक उन्होंने अपने हाथ निषेधकी मुद्रामें ऊपरको उठा लिये।

फिर उन्होंने वे हाथ कभी नीचे नहीं किये। उनके हाथ फिर यावज्जीवन उठे हुए ही रहे। कोई उन्हें अपने हाथसे खिला देता, मुखमें कौर दे देता तभी वे कुछ खाते अन्यथा स्वयं हाथ नीचा करके नहीं खाते थे। जल भी गंगाजीमें मुखतक डुबकी लगाकर ही पीते थे। विलक्षण तितिक्षा थी उनमें !

पू.गुरुदेव कह रहे थे कि वस्तुतः यह व्रत लोग गंगाकिनारे ही लेते हैं जिससे उन्हें जल पीनेके लिये याचना नहीं करनी पड़े। मुझे तो श्रीपोद्दार महाराज गंगाके किनारे जाने देंगे नहीं, एवं उनसे अनुमति माँगना भी व्यर्थ ही है। फिर श्रीकृष्णने मुझे उन्हें छोड़ देनेकी भी आज्ञा नहीं दी है।

मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीने पूछा " बाबा ! आपने श्रीपोद्दार महाराजसे अनुमति ले ली ?"

इसके उत्तरमें पू.गुरुदेव कहने लगे कि 'उन्हें मात्र सूचना ही देनी है। मुझे उनसे अनुमति तो लेनी नहीं है। मेरा निश्चय परिवर्त्तनशील तो है नहीं। वह तो पूर्णतया अडिग है। अब जब केवल सूचना ही देनी है तो कोई-न-कोई उन्हें सूचना दे ही देगा। या मैं ही उनके पास चला जाऊँगा। अभी श्रीकृष्णने मेरे काष्ठमौनका स्वरूप और उसके पूरे नियम निर्धारित नहीं किये हैं, सो एक-दो दिनमें उनकी रुचि और स्पष्टरूपसे सम्मुख आजाय तो श्रीपोद्दार महाराजको सूचित कर ही दूँगा।'

अन्ततः वे नियम भी सम्मुख आ गये, पू.गुरुदेवके काष्ठमौनका स्वरूप भी निर्धारित हो ही गया, और श्रीपोद्दार महाराजको सूचना भी दे ही दी गयी। यहाँ यह रहस्य पुनः उजागर कर देता हूँ कि पू.गुरुदेवके मन-मानसमें प्रकट होनेवाले श्रीकृष्ण ही श्रीपोद्दार महाराजका वस्तुतः स्वरूप था। वे दो भिन्न सर्वथा सर्वांशमें ही नहीं थे। अतः भीतरी बात यही थी कि श्रीपोद्दार महाराजने ही पू.गुरुदेवको काष्ठमौन लेनेकी आज्ञा दी थी। श्रीपोद्दार महाराज मात्र ऊपरसे भले ही कृत्रिम व्यावहारिक अश्रु बहा लें, भीतरसे वे पूरे मनसे चाह रहे थे कि पू.गुरुदेव काष्ठमौनी हो जावें। श्रीपोद्दार महाराज तो अपने शिष्य पू. गुरुदेव श्रीराधाबाबाका यतिरूप भी इतना ऊँचा देखना चाहते थे कि वे संसारमें सर्वसंन्यासी समाजके आदर्श बन जावें। श्रीपोद्दार महाराजके तो रोम-रोममें उत्सुकताभरी एक साध थी कि उनके बाबा यतिधर्मका सर्वोच्च आदर्श शरीर और मन दोनों प्रकारसे विश्वके सम्मुख प्रकट करें। अतः उनके निषेध करनेका तो प्रश्न ही नहीं था।

दो-चार दिवसोंमें ही पू.गुरुदेवके काष्ठमौनके आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकारके नियम भी स्पष्ट हो गये –

(१) आश्विन पूर्णिमा वि.सं. २०१४ तदनुसार १९अक्टूबर १९५७ को पू.गुरुदेव काष्ठमौन ले लेंगे।

(२) किसी भी प्रश्नको लेकर श्रीपोद्दार महाराजके चिन्तित होनेपर पू.गुरुदेव बोलकर प्रकांश डाल सकते हैं।

(३) पू.माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी अ.सौ. पत्नी)ने यावज्जीवन पुत्रकी तरह उन्हें भिक्षा करायी है, अतः जब भी पू.गुरुदेव भिक्षा करने जावेंगे तो उनकी ओर अवश्य देख लेंगे। यह आँख उठाकर देखनेकी बात भी श्रीपोद्दार महाराज और उनकी धर्मपत्नी, मात्र दोके लिये ही रहेगी।

(४) शेष किसीकी ओर वे दृष्टि उठाकर भी नहीं देखेंगे, बोलनेका तो प्रश्न ही नहीं।

(५) किसी भी प्रकारका वे संकेत भी नहीं करेंगे, चाहे वे कितने ही कष्टमें क्यों न हों, अतिशय रुग्ण हों।

(६) जल भी वे अपने हाथसे नहीं पीयेंगे, श्रीपोद्दार महाराज स्वयं, उनकी धर्मपत्नी अथवा उनकी अ.सौ. पुत्री सावित्री उन्हें जल पिलायेगी, तभी वे इनके हाथसे लेकर जल पीयेंगे।

(७) भिक्षा भी इन तीनोंमेंसे कोई करायेगा तो करेंगे। भिक्षा करते समय वे पू.माताजी (श्रीपोद्दार महाराजकी अ.सौ. पत्नी) अथवा श्रीपोद्दार महाराजकी ओर दृष्टि उठाकर देखेंगे।

(८) यदि किसी कारणवश उनका शरीरसंग श्रीपोद्दार महाराजसे छूट जाय तो वे उसी स्थानपर रह जावेंगे जहाँ उनका बिलगाव श्रीपोद्दार महाराजसे हुआ था। वे उस स्थानसे तभी हटेंगे जब श्रीपोद्दार महाराज उन्हें लेने आवेंगे, और हाथ पकड़कर जहाँ भी ले जावेंगे, वे चले जावेंगे।

(९) हाँ, यदि श्रीपोद्दार महाराजका शरीरान्त हो रहा होगा, और उन्हें कोई सूचना देगा तो सूचना पाते ही वे स्वयं जहाँ श्रीपोद्दार महाराजके होनेकी संभावना होगी, उस स्थानकी ओर चल पड़ेंगे।

(१०) यदि इसी मध्य श्रीपोद्दार महाराजका देहान्त ही हो जाय तो

जहाँ उनकी चिता होगी, वे वहीं बैठ जावेंगे।

(११) इसी प्रकार श्रीपोद्दार महाराजकी मृत्युके उपरान्त जैसी कि श्रीपोद्दार महाराज उनसे आशा करते हैं कि वे उनकी मृत्यके उपरान्त उनकी धर्मपत्नीकी सँभाल करें, तो यदि मैया(श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी)उनके सँभालकी आवश्यकता अनुभव करेंगी, तो मैयाकी मृत्युतक वे अपना काष्ठमौन स्थगित कर उसकी सँभाल कर सकते हैं। किन्तु इसमें शर्त्त यह है कि वे श्रीपोद्दार महाराजकी चितास्थली छोड़कर मैयाकी रुचिके अनुसार किसी अन्य स्थानको कदापि नहीं जावेंगे। वे मैयाके लिये भी चितास्थलीका परित्याग नहीं करेंगे।

(१२) संभव है, वे कुछ ही कालमें अपनी देहको, निकटस्थ सभी परिचितोंको साथ ही इस दृश्य जगत्को भी सर्वथा विस्मृत कर जावें,ऐसी अवस्थामें उनकी मानसिक अवस्था क्या होगी, इसके बारेमें वे अभी कुछ भी नहीं कह सकते।

(१३) उनके काष्ठमौनका यह अर्थ भी नहीं समझना चाहिये कि यदि उनकी सेवामें नियुक्त कोई व्यक्ति अथवा बाहरका भी कोई व्यक्ति कुएपर पानी भर रहा हो, उसका पैर फिसल जाय , और वह कुएमें गिर पड़े तो उस समय वे मौन रहेंगे। वे निश्चय ही होश रहते जोरसे चिल्लायेंगे कि अमुक व्यक्ति कुएमें गिर गया है। साथ ही साथ उसे बचानेके लिये वे स्वयं कुएमें कूद भी पड़ेंगे, फिर जैसी भी भवितव्यता हो, चाहे वे एवं वह व्यक्ति दोनों बच जावे, अथवा दोनों ही काल कवलित हो जावें।

इन सभी नियमोंकी सूचना श्रीपोद्दार महाराजको स्वयं पू.गुरुदेवने दे दी।

------oo-----

पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके काष्ठमौनका प्रयोजन

यहाँ इस प्रसंगमें अनुशीलन करनेकी एक ही बात है कि पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको काष्ठमौनके लिये अन्ततः श्रीकृष्णने क्यों प्रेरित किया ?

मैंने यह प्रश्न एक दिवस पू.गुरुदेवसे पूछ ही लिया था। मैंने उनसे पूछा –"बाबा ! आपके प्राणाराध्य श्रीकृष्ण आपसे काष्ठमौन लेनेका अन्ततः यह आग्रह क्यों कर रहे हैं ? क्या उनका उद्देश्य आपका विश्वमें यश-संवर्धन है, जिससे वे आपसे ऐसा कठोर तप करानेका आग्रह कर रहे हैं । बाबा ! मेरी बुद्धि तो काम ही नहीं कर रही।"

"जहाँतक तपका प्रश्न है, आपके लिये तो वि.सं.१९९२की आश्विन पूर्णिमा तदनुसार १२ अक्टूबर सन् १९३५ ई.का दिन ही काष्ठमौनकी तिथि थी जबकि आपने अपने हृदयकी अलौकिक समता और ब्रह्मज्ञानके अखण्ड बोधको जाँचने-परखने, अपने पूर्वाश्रमके भ्राताओंसे अज्ञात, भगवती गंगाके किनारे गलितकुष्ठी कोढियोंके मध्य रहकर अनवरत पन्द्रह दिवस व्यतीत किये थे। इन पन्द्रह दिनोंमें आपने भिक्षाकी कहाँ परवाह की थी ? प्रारब्धानुसार सूखे भुने चने, भुनी धानकी लाई, जो भी आपके द्वारा फैलाई चादरमें गंगास्नानार्थ आयीं महिलाएँ अथवा पुरुष डाल देते, वही तो आपके उदरकी क्षुधानिवृत्तिका साधन होती थी। कलकत्तेकी हुगली नदीका गँदला जल ही तो आपकी उन दिनों प्यास बुझाता था। एक कौपीन मात्र ही तो आपके पास वस्त्रके रूपमें था। उन दिनों क्या आप काष्ठमौनी नहीं थे ? जब आपने अपनेको उन असभ्य कुसंस्कृत कोढियोंके मध्य, उनकी निरन्तर परस्पर की जानेवाली भद्दी, अश्लील गाली-गलौजको सुनते हुए भी अपनेको शब्दविक्षेपसे मुक्त रखकर शान्त पूर्ण समत्वभरा जीवन व्यतीत किया था। उन दिनों आप पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ, समत्वरूपी तत्वमें स्थित, पूर्ण देहाध्यासमुक्त ही तो थे। गीताके एक-एक श्लोकको आपने अपने जीवनमें पूरा उतारा था। और उस समय अपने आत्मपरीक्षणमें आपको मात्र एक ही न्यूनता दिखाई पड़ी थी कि आप मीठा भोजन प्राप्त होनेपर सामान्य क्षुधासे अधिक खा जाया करते थे। यह आपकी प्रवृत्ति भी आपके शरीरमें शर्कराकी माँगके कारण थी, आपकी कोई

स्वादेन्द्रिय लोलुपता नहीं थी।"

"बाबा ! इसके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजकी अयाचित कृपासे आपका ब्रह्मनिष्ठ सच्चिदानन्दघन मन चिन्मय सुधारससिन्धु व्रजेन्द्रनन्दन राधावल्लभ श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रका नित्य धाम हो गया। बाबा ! आप तो उस पथके पथिक हैं, जो चित्तवृत्ति-निरोधसिद्ध महाज्ञानकी सप्तम भूमिकामें प्रवेश पाये परम वन्दनीय ऋषभदेव और माता देवहूतिके लिये भी अगम्य है।"

"आपकी चित्तवृत्ति तो प्रेमघन रससुधासागर आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दकी ओर निर्बाध प्रवाहित रहती है। मेरे बाबा ! आपके लिये कौनसा निरोध है और कौनसा उन्मेष है। आप तो निरोध और उन्मेष दोनोंकी चरम सीमाको भी उल्लंधन कर गये हैं। इस परम रसमय पथपर अबाध विहरण करते आप तो समग्र चिन्मयताके एक मात्र पुञ्जीभूत स्वरूप प्रियतम श्यामसुन्दरको भी प्रेमदान देकर कृतकृत्य कर रहे हैं। आपके अंगोंकी संस्पर्शित पवन लहरियोंका अपने श्रीअंगसे संस्पर्श पाकर तो योगीन्द्र-मुनीन्द्र-दुर्लभगति प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र भी अपनेको परम कृतार्थ मानते हैं, फिर आपके लिये यह काष्ठमौनव्रत कौनसा वाञ्छनीय पद है ?"

"मेरे बाबा ! जब आपके प्रियतम श्रीकृष्ण ही समस्त बन्धनोंको तोड़कर सर्वथा उच्छृंखलताको प्राप्त हैं, उन सर्वनियमातीत, सर्वबन्धनविमुक्त, नित्यस्ववश, परात्पर परम पुरुषोत्तमको भी जिन आपमें वशमें रखनेकी अनन्त प्रीति है, फिर आपको काष्ठमौनव्रती बनाकर आपके प्रेष्ठ श्रीकृष्ण क्या खेल करने जा रहे हैं ?"

"विश्वप्रकृतिके प्रत्येक स्पन्दनमें विन्दुरूपसे जो विदग्धभाव, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, रूप (सौन्दर्य), एवं केलिरस (माधुर्य) वर्तमान है, उन सातों रसोंके उदधिमें तो आप आपाततः निमज्जन कर ही रहे हैं, इनकी उर्मियोंमें जब आप उच्छलन ले ही रहे हैं तो फिर आनन्दकन्दके दिव्य रमणानन्दमें अनादि कालसे उन्मादी आपको यह काष्ठमौन कौनसा यश-पद प्रदान करेगा ? बाबा ! कृपाकरके मेरा समाधान कर दीजिये न !"

"मेरे बाबा ! आपका हृदय सहज सरल स्वच्छ भावके जलसे स्नात है, भावानुरागरूप नवनीतसे स्निग्ध है, कृपा-दुग्धधारासे वत्सल है, सौन्दर्य-घृतसे दैदीप्यमान है , लावण्य-मदिरासे मस्त है, आपको यह काष्ठमौन रूपी क्षार, अम्ल, तिक्त और कटु रस क्या आप्यायित करेगा ?"

महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा

(चतुर्थ खण्ड)

पृष्ठ संख्या
401-462
तक

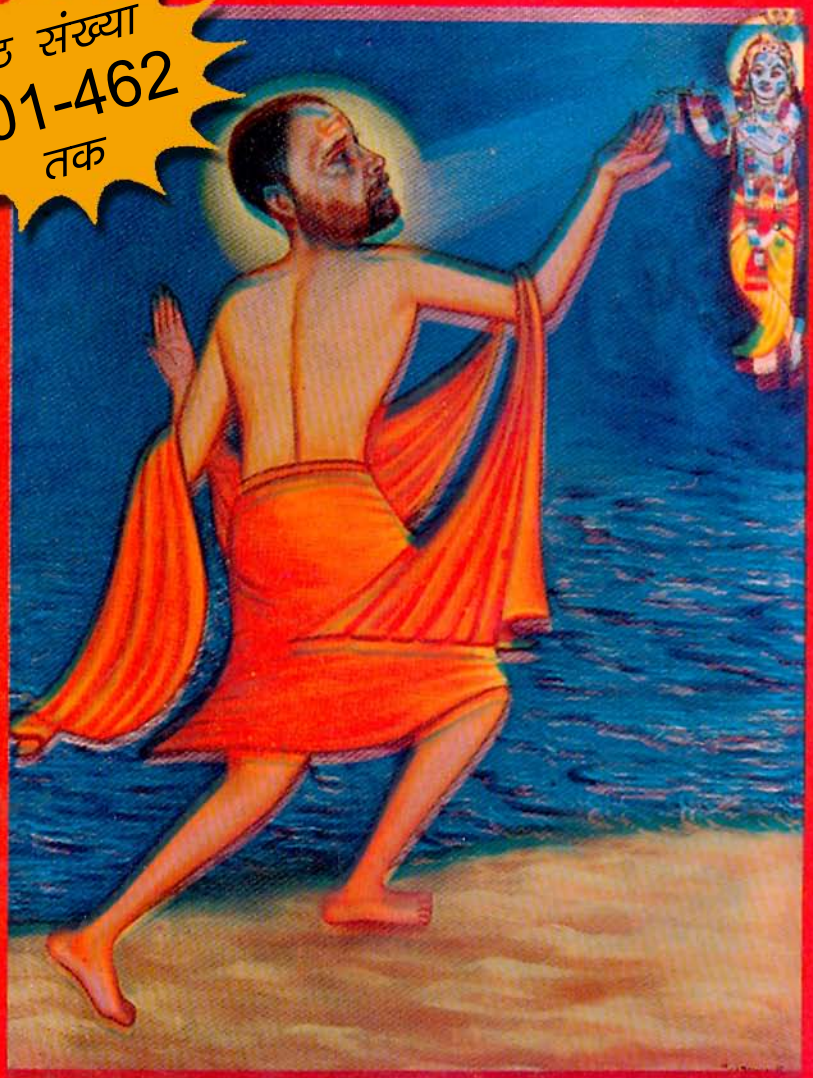

साधु कृष्णप्रेम

"बाबा ! अभी भी आपके मन-इन्द्रिय, समस्त अंग-अवयव, आपकी बुद्धि एवं चित्त सभी प्रियतम श्रीकृष्णको ही तो सुख-संस्पर्शमें डुबाये रखते हैं। क्या आप श्रीकृष्णके अतिरिक्त आज भी किसीसे बोलते हैं ? क्या आपका चलना-फिरना, सोना-जागना, सब व्यवहार-बर्त्ताव आज भी अपने प्राकृत स्व अथवा अहंके लिये है ? क्या आपका जीवनधारण भी अपने लिये है ? जब आपका सर्वस्व बाह्य एवं अभ्यन्तर दोनों ही नित्य निरन्तर अपने प्रियतमको सुख-संस्पर्श दान देते रहनेमें ही निरत है, लव मात्र भी स्व-सुखान्वेषण उसमें नहीं है, तब इस काष्ठमौनका क्या अर्थ है।"

"बाबा ! आप सुन्दर-सुन्दर सुगन्धित पुष्पमालायें मालियोंसे कहकर निर्माण कराते हैं, कानपुरसे ढेरों सुगन्धित पुष्प आपकी सेवार्थ श्रीरामनिवासजी ढंढारिया व्यवस्था करते हैं, परन्तु वे गुलाब और मालतीकी मालायें क्या आपका साज-श्रृंगार होती हैं ? सुस्वादु-से-सुस्वादु पक्वान्न (भोजनपदार्थ)आपकी भिक्षामें वात्सल्यमूर्त्ति श्रीमती मातायें निर्माण करती हैं, परन्तु क्या वे पदार्थ आपकी जिह्वाके स्वादका अनुरञ्जन कर पाते हैं ? इन सुस्वादु भोज्य पदार्थोंसे क्या आपका शरीर पुष्ट हो, ऐसी स्वाद-भावना आपमें कभी उदय होती है ? आपके पास कन्नौजसे, दिल्लीसे अच्छे-से-अच्छा मूल्यवान् सुगन्धित पुष्पसार (इत्र) आता है, किन्तु क्या वह दिव्य गंधका सेवन आप अपने आनन्दलाभके लिये करते हैं ? आप मधुर-मधुर संगीतध्वनि पद-गायनादिमें सुनते हैं, परन्तु क्या वह आपके अपने कानोंको सुख पहुँचानेके लिये होता है ? आपका तो सर्वस्व मात्र अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके सुखके लिये ही जब न्यौछावर है, तो फिर यह काष्ठमौन और सबसे पूर्णतया पृथक् एकाकी होना एवं शवकी तरह संवेदनशून्य होना किसलिये ? यह आपके किस प्रयोजनको सिद्ध करेगा ?"

मैं स्नेह-आवेशमें बोलता जा रहा था और पू.गुरुदेव सुन रहे थे। सहसा मैंने सुना मेरे गुरुदेव,मेरे बाबा गीत गा रहे हैं – उनकी वाणी तो मात्र राधा-राधा ही उच्चारण कर रही थी किन्तु वे अपनी स्लेटपट्टीपर लिखकर अपनी स्वरावलीको शब्द दे रहे थे –

कहो तो मातियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस ।
कहो कसूँभी साड़ी पहराँ, कहो तो भगवा भेस ।।
मोहन प्यारा आजो म्हारे देस ।

गाते-गाते ही वे मुखर हो उठे। " भैया ! तेरी स्नेह एवं सद्भावभरी बातें बहुत ही प्यारी लगीं। परन्तु मेरा यह शरीर, मेरी अहंता, प्रियतम श्रीकृष्णकी एकमात्र निधि, उनकी प्यारी वस्तु तो हैं ही, परन्तु साथ ही मेरी यह अहंता न्यूनतम तेरह सौ व्यक्तियोंके साथ भी पूरी उलझी है। मेरे पास इन सभीके रूपमें मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण ही आये हैं और उनकी माँग ब्रजभावकी चाहे हो, या नहीं हो, वे मेरेसे किसी-न-किसी रूपमें जुड़ अवश्य गये हैं। भैया ! उन मेरेसे जुड़े तेरह सौ व्यक्तियोंको मुझे मेरे साथ ही ब्रजरसके अथाह समुद्रमें डुबाना है। अब इन व्यक्तियोंकी, जो मुझसे बँधे हैं, दशा ऐसी है कि इनमें काम-ही-काम उफन रहा है। इनमें जो स्त्रियाँ हैं,उनमें सतीत्वमूलक दाम्पत्यप्रेमकी तो छाया ही नहीं, अपितु शूर्पणखाको भी लज्जित करनेवाला वीभत्स काम है।"

"अब भैया ! मनुष्यके आँख नहीं होनेपर वह केवल दृष्टिशक्तिसे ही हीन-अन्धा होता है, परन्तु काम तो सारे विवेकको ही नष्ट कर देता है। इसीसे कहा गया है – **'काम अन्ध तम , प्रेम निर्मल भास्कर।' "**

"अब भैया ! मैं मुझसे जुड़े इन कामान्ध, मलिन देहासक्त लोगोंको काम और प्रेमका भेद कैसे समझाऊँ ? जैसे अनुभवी रत्नव्यापारी काँच तथा असली हीरको पहचान पाते हैं अन्य नहीं, इसी प्रकार विरले प्रेमी भक्त ही काम तथा प्रेमके भेदको श्रीराधामाधवकी कृपासे पहचान पाते हैं।"

"भैया ! काम या काममूलक श्रृंगार इतनी भयानक वस्तु है कि वह केवन कल्याण-साधनसे ही नहीं गिराता, अपितु सर्वनाश ही कर डालता है। कामकी दृष्टि रहती है मलिन हाड़-मांस, मल-मूत्रके आगार देह और उसकी अधः इन्द्रियोंकी तृप्तिकी ओर एवं प्रेमका लक्ष्य रहता है ऊर्ध्वतम सर्वानन्दस्वरूप भगवान्‌के आनन्दविधानकी ओर। कामसे अधःपतन होता है, और प्रेमसे दिव्यातिदिव्य भगवद्रसका दुर्लभ आस्वादन प्राप्त होता है। इस नीच कामके प्रभावसे विद्या, बुद्धि, त्याग, संयम, तपस्या, साधुता, वैराग्य, धर्म एवं ज्ञान बातकी बात में विनष्ट हो जाते हैं।"

"भैया ! जब बड़े-बड़े आचार्य, विद्वान्, राधाप्रेमके नामपर पापाचारमें प्रवृत्त हो जाते हैं और अपनी विद्वत्ता और तर्कशैलीका दुरुपयोगकर पापका प्रसार करने लगते हैं, वहाँ इन विषयी प्राणियोंको जो मेरेसे जुड़े हैं, मैं कैसे इस निर्मल प्रेमधारामें बहाऊँ ? ये तो सर्वथा एवं सर्वदा ही भौतिक पदार्थोंमें

सुख ढूँढ रहे हैं। इन्हें तो अंग-प्रत्यंगोंमें ही काम-कण्डूयन, सुखसाधनकी कल्पना है। इन्हें तो निद्रा एवं विषयभोगके अतिरिक्त कहीं भी सुख नहीं दिखता। अब इन्हें कैसे मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके दिव्यश्रृंगाररसके अनुशीलनकी रूपरेखा समझाऊँ ?"

"भैया ! मैंने मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके सम्मुख ही इस समस्याको रखा और उनसे प्रार्थना की कि वे ही कोई इन कामान्ध विषयकीटोंपर कृपा करनेका उपाय सोचें। भैया ! महान् अनुग्रहमूर्त्ति मेरे प्रियतम श्रीकृष्णने ही यह विधान किया है कि यदि इनकी समग्र पापकर्मराशि मैं अपने तपकी अग्निमें स्वाहा कर दूँ तो फिर वे इनकी पुण्यराशिका विषयसुख इन्हें देकर खाता बराबर कर देंगे। इस प्रकार प्राकृत धरातलपर इनके पुनः जन्मग्रहणकी प्रक्रिया बन्द हो जायगी। और यही प्रक्रिया यदि एक बार बन्द हो गयी तो कालान्तरमें मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी हेतुरहित कृपासे इन्हें ब्रजराज्यमें जन्म देनेकी भूमिकाका निर्माण कर देंगे। बस, फिर तो मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीके दर्शनसे इन सभीको एक ऐसे अनिर्वचनीय, परम दुर्लभ, विलक्षण चिदानन्दमय रसकी उपलब्धि होगी कि इन सभीका समस्त विषय-व्यामोह सदा-सदाके लिये मिट जायेगा।"

"भैया ! तू तो मुझपर विश्वास करेगा ही, मैं इसीलिये यह तपभरा काष्ठमौन व्रत ले रहा हूँ कि मेरे इस तपोमय व्रतसे ही इनकी अनवरत अब भी बढाये जानेवाली पापराशि स्वाहा हो सकती है। इन तेरह सौ लोगोंमेंसे अधिकांश इतने पापपरायण हैं कि घोर नारकीय कुकर्म करके भी इनके अन्दर खेदकी, दुखकी अथवा पश्चात्तापकी तनिक सी भावना भी नहीं जग रही है। ये धनकी चोरीको होशियारी समझते हैं, परस्त्रीगमनको पौरुष और भोगोंकी प्राप्तिको ही भगवत्कृपा, संतकृपा मान रहे हैं। ये अपने घोर पापोंको मुझसे कपटकर छिपाये रखते हैं, और मेरे सम्मुख साधननिष्ठ, सत्संगी बनकर आते हैं। मैं यदि यह तप नहीं करूँगा तो इनको इतनी अपार एवं असह्य यातना भोगनी पड़ेगी कि इनका यमदूत कचूमर ही निकाल देंगे।"

"भैया ! अब मैं तुमसे क्या कहूँ ? प्रापंचिक धरातलपर इसीलिये मुझे यह घोर तप करनेकी आज्ञा श्रीकृष्ण द्वारा मिली है। वे मेरे प्रति इतने स्नेहिल हैं कि मेरे थोड़ेसे तपसे ये इनके गुरुतर पाप स्वाहा कर देंगे। भैया ! पाप तो तुझसे भी होते हैं, और तू भी इन तेरह सौ व्यक्तियोंमें एक है।"

पू.गुरुदेवकी बात सुनकर मुझे तो इतनी लज्जा आयी कि यदि धरती फट जाती तो मैं उसमें उसी क्षण समा जाता। कितने हेतुरहित कृपालु मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबा थे और कितने कृतघ्न उनसे जुड़े हम लोग थे।

पूजा-विसर्जन

तीर्थयात्रासे लौटकर पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराज अप्रेल व्यतीत होनेपर ही गोरखपुर पहुँचे थे। अब काष्ठमौनव्रत लेनेमें पू.गुरुदेवके पास मात्र लगभग पाँच मास ही शेष थे। इसके पश्चात् उन्हें न तो देहको ही पकड़ना था और न ही प्राकृत जगत्को। पू.गुरुदेवके पास अपने दायित्वके रूपमें और तो ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसे वे किसी भी दूसरेको दे जाते; उनकी धरोहर तो मात्र उनकी आराधना और कतिपय पूजाएँ थीं, जिन्हें वे विगत अनेक वर्षोंसे सम्पन्न कर रहे थे। अपने काष्ठमौनकालमें तो उन्हें इतना भी बहिर्मुख नहीं होना था कि ये पारमार्थिक क्रियायें भी सम्पादित कर सकें। महाभाव-सिन्धुके अतल तलमें डूबा मन जब प्राकृत धरातलका स्पर्श ही नहीं करने जा रहा था तो वह किसी भी देवजगत्की पूजा-अर्चा कैसे सम्पादित कर सकता था ? तब ? वे मनसे चाहते थे कि कोई ऐसा सुपात्र, समर्पित व्यक्ति मिल जाता, जो उनकी इन पारमार्थिक पूजा-धरोहरोंको सँभाल पाता। किन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति उनकी कसौटीमें खरा नहीं उतर रहा था।

उनकी सर्वप्रधान पारमार्थिक पूजा तो परमाद्या जगज्जननी पराभट्टारिका भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी थी। पू.गुरुदेवके पास भगवतीका अलभ्य षोडशाक्षरी मंत्र भी था, जिसे वे किसी उचित पात्रको देना चाहते थे। पू.गुरुदेव विगत अनेकानेक वर्षोंसे सहस्रनामावलीसे भगवतीकी प्रत्येक प्रहर अर्चना किया करते थे। यह अर्चना प्रतिदिन चार बार होती थी। इस पूजन-अर्चनको तो उन्होंने विसर्जित करना ही उचित समझा, क्योंकि इसका जीवनपर्यंत निर्वाह करनेवाला उनकी दृष्टिमें अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। जहाँ तक भगवतीके षोडशाक्षरी मंत्रका प्रश्न था, वे उसे श्रीपोद्दार महाराजकी आहृत-कामकी सन्तति -- पुत्री अ.सौ. सावित्रीबाईको दीक्षा देकर प्रदान ही कर चुके थे। अपने काष्ठमौनकालमें भी वे प्रत्येक शुक्रवारको भावोपनिषद् द्वारा भगवतीकी

मानसिक पूजा अवश्य कर लेना चाहते थे, और इसका मानसिक संकल्प उन्होंने मन-ही-मन कर लिया था। वह क्रिया भी उनके द्वारा तभीतक सम्पन्न होनी संभव थी, जबतक उन्हें कालकी स्मृति रहने वाली थी कि शुक्रवार किस दिन है । जब उन्हें कालकी भी स्मृति नहीं रहेगी तो वह पूजा भी स्वाभाविक ही उनके द्वारा छूट ही जाने वाली थी।

हाँ ! जहाँतक भगवती त्रिपुरसुन्दरीके नाम-जपका प्रश्न था, उन्होंने अनेक लोगोंको 'ललिता सहस्रनाम'की अपनी आराधनाकी पुस्तकें, जो उनके पास अनेक संख्यामें थीं, नामावलीपाठका निर्देश देकर वितरित की थीं। इन पुस्तकोंमेंसे अ.सौ. बाई सावित्री एवं उनके पति श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगलाको भी पुस्तकें मिली थीं, साथ ही उन्हें इस सहस्रनामके अनेक पाठ भी करनेके निर्देश पू.गुरुदेवके द्वारा दिये गये थे। इसी प्रकार पू.गुरुदेव द्वारा ललिता सहस्रनामकी एक पुस्तक श्रीशिवनाथजी दुबेको भी प्रदान की गयी थी, जो संभवतः आजतक भी उनके पास होगी। पू.गुरुदेवने अपने जपकी मालायें भी अनेक कृपापात्रोंको अपने पूजा-विसर्जनके अवसरपर वितरित कर दी थीं।

पू.गुरुदेव द्वारा उनके जपकी एक रुद्राक्षमाला, एक तुलसीमाला और एक दुर्गा सप्तशतीकी पुस्तक लेखकको भी प्राप्त हुई थी।

अब मैं पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाकी एक और अतिशय महत्वपूर्ण पूजार्चनाका उल्लेख कर रहा हूँ, जो उनसे जुड़े प्रत्येक प्राणीके लिये परम मंगलकारी थी। पू.गुरुदेवकी यह अर्चना तभीसे प्रारंभ हुई थी जबसे उनमें स्वयंमें श्रीपोद्दार महाराजकी कृपासे गोपीभावका उन्मेष हुआ था। पू.गुरुदेवका जीवन विलक्षण था। वे अपनी देहके स्थानपर अपनी भावदेहको ही चौबीसों घण्टे अनुभव करते थे। उनकी भावदेहकी वय सदा चौदह वर्षकी किशोरीकी ही रहती थी। पू.गुरुदेवकी यह भावदेह न तो उनकी कोई कल्पनामूर्त्ति थी, न ही कोई ध्यान-धारणाजन्य उच्च स्थिति, एवं न ही कोई दैवी साक्षात्कारकी उच्च उपलब्धि थी। पू.गुरुदेवकी भावदेह तो पूर्णतया चिन्मय, जीवन्त और सदैव ही उनकी देहके साथ एकात्म थी। सच्ची बात तो यही थी कि वे अपनी पार्थिव देहको सर्वथा भूले रहते थे और अपनी चिन्मय देहसे ही प्रातः-जागरणसे लेकर रात्रिमें शयन पर्यंत सभी व्यवहार करते थे। जब वे अपनेको ही प्रत्यक्ष जीवन्त, चिन्मय देह अनुभव करते थे तो अपनी निवास-कुटी एवं उस निवास-कुटीके चारों ओरके भूमि-भवनोंको भी वे अपने वृन्दावनधामके ही भूमि-

भवन देखते थे। इस प्रकार उनका समग्र दृश्य ही, यहाँतक कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वायु-आकाश, जल-तेज, धरा सब चिन्मय वृन्दावन-धामके ही अप्राकृत तत्व बने रहते थे। विलक्षण साधना थी, पू.गुरुदेवकी ! उनसे मिलने आया कोई सांसारिक बात करनेवाला व्यक्ति भी उन्हें उस रूपमें दृष्टिगोचर नहीं होता था; या तो उन्हें उनके आराध्य ब्रजेन्द्रनन्दन ही साक्षात् उसके रूपमें दिखते थे, अथवा उनके भावंराज्य वृन्दावनधामका कोई गोप-गोपी, सखा या सखी ही उसके रूपमें अनुभवमें आता था।

एक दिवसकी घटना सुनाता हूँ। एक व्यक्ति अपनी आर्थिक दुरवस्थाका विवरण सुनानेको उनके पास आया था। उन्हें तो उसके रूपमें अपने आराध्य नन्दनन्दन ही दिखाई दिये। अब, वह व्यक्ति जैसे ही अपनी दुनियादारीकी बात कहना प्रारंभ करे कि पू.गुरुदेव उसपर बिगड़ते चले जावें – 'तुम सर्वज्ञ होकर अन्धे बनते हो, तुम मेरा उपहास उड़ाने आये हो, तुम झूठे हो, फरेब करते हो, मायावी हो, एक निरीह साधुसे छल करने आये हो। तुम बगीचेसे निकल जाओ, मैं अभी तुम्हें दरबानोंको बुलाकर निकलवाता हूँ।'

यह सब सुनकर वह व्यक्ति अत्यन्त दुखी होकर आँसू बहाता, क्षमा माँगता चला गया। उसके जाते ही पू.गुरुदेव एकदम सामान्य हो गये। फिर मेरी ओर देखकर बोल उठे –"भैया ! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण आते हैं, मुझसे रुपया माँगते हैं। क्या वे नहीं जानते कि उन्होंने ही अपने विधानसे मुझे चतुर्थाश्रमी संन्यासी बनाया है। जब मैं अर्थका स्पर्श ही नहीं करता तो अब भला, मुझसे अर्थयाचना करना, क्या मेरा उपहास उड़ाना नहीं है ? मेरे इस निकुञ्जमें आकर मेरा ही तमाशा बनाना क्या उन्हें शोभा देता है ? द्वारपालों– गोपोंसे कहकर क्या मैं उनको अपने महलसे बाहर नहीं निकलवा सकती ?"

पू.गुरुदेवकी बहुत सावधानीपूर्वक कही उक्तिमें भी प्रयुक्त स्त्रीलिंगका क्रियाप्रयोग सुनकर मैं चकित हो गया। मैं समझ गया, पू.गुरुदेव सामान्य भावमें नहीं हैं। उन्होंने उस याचकके रूपमें साक्षात् श्रीकृष्णके ही दर्शन किये हैं और उनके अपने आराध्य प्राणपतिसे ही उनकी संभ्रम-संकोचरहित सम्पूर्ण वार्त्ता हुई है।

इसी प्रकार एक दिन अकेलेमें मुझसे कहने लगे–"भैया ! सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) पाँच-सात दिवस पहले मिलने आये थे। एकान्तमें मुझसे अकेले बात करने लगे। पूछने लगे – 'बाबा ! मनै पहचाणौ हो ?' मैंने

उत्तर दिया–" खूब अच्छी तरह !" फिर मन-ही-मन कहा– 'आप तो साक्षात् नारायण-स्वरूप हौ।' पुनः वे मुझसे कहने लगे –"बाबा ! सुण्यौ है, आजकाल थे लोगाँसूँ बाताँ बहुत करौ हौ। म्हारी हृदयरी राय मानो और बात्याँ ही करणी होय तो सत्संग कराओ। अन्यथा भजन-ध्यानमें ही डूब्या रहौ। लोगाँसूँ सांसारिक बात्याँ करणेमें कोई लाभ नहीं है।"

"अब भला भैया ! मैं उनको क्या उत्तर देता ? मुझसे सत्संग करवानेका उनका आग्रह आजतक ज्यों-का-त्यों बना है। उनकी बात मैंने सुनली एवं यही संक्षिप्त उत्तर दिया –'प्रभो ! आप तो पूर्ण हैं, सर्वज्ञ हैं, मेरी दृष्टिमें सदैवसे ही साक्षात् नारायण थे, हैं, एवं भविष्यमें भी सदैव नारायण ही रहेंगे। अब आप अपनी सर्वज्ञताशक्तिसे ही जान लीजिये कि मैं किससे क्या बात करता हूँ।"

"भैया ! अब इस वृक्षके नीचे मान लो, मैं अकेला ही मेरी मौज-मस्तीमें पड़ा हूँ, परन्तु कोई बाहरसे देखनेवाला क्या समझेगा कि इस वृक्षके रूपमें बाबा क्या देख रहे हैं, इसके पत्ते-पत्तेमें उन्हें क्या दिख रहा है ? अब इसके साक्षी तो मेरे अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ही हैं कि मैं तुझसे जो ये गप्प लगा रहा हूँ, उसमें मेरी दृष्टिमें तेरे रूपमें, मेरे रूपमें कौन है, और तेरे-मेरे बात करनेके पीछेकी पृष्ठभूमि क्या है ?"

मैं पू.गुरुदेवकी थोड़ी-सी वार्त्तासे ही समझ गया कि मेरे गुरुदेवका चित्त ऐसी निष्पन्द दीपशिखाकी तरह है जो सर्वत्र, सर्वरूपोंमें, चाहे वे नैसर्गिक हों अथवा दैवी, अपने उर-हार प्रियतम नीलमणिकी ही शोभा निहारते रहते हैं। उनके चित्त-यानपर कोई अन्य चढ़ ही नहीं पाता, चाहे वह सन्त हो, महात्मा हो, ज्ञानी हो, कितना ही बड़ा भक्त हो, आचार्य हो; अथवा घोर पतित, नीच, पापी हो। उनके प्राणवल्लभ यदि एक क्षणके करोड़वें अंशके कालमानमें भी उनकी हृदय-शय्यासे उतर जावें तो उनके प्राण व्याकुल हो उठते हैं, और प्रतिवाद कर उठते हैं– 'नहीं, नहीं प्राणेश्वरी ! मेरा नित्य धाम तो तुम्हारा हृदय ही रहने दो।' पू.गुरुदेवके पास यदि चतुर्मुख ब्रह्माजी भी आवें तो उन्हें श्रीकृष्णका रूप रखकर ही आना पड़ता है, और उनके सम्मुख चाहे एक लघु कीट-पतंग, पशु-पक्षी आवे तो भी वह उनका प्राणपति मुरलीमनोहर श्रीकृष्ण ही बनकर आता है। उनका अमोघ, शाश्वत, अखण्ड, नित्य, सत्य दर्शन है – सर्वत्र सबमें एकमात्र अपने प्रियतम नीलसुन्दरका स्मित-समन्वित श्यामघन

सुन्दर मुखचन्द्र।

मैं अपनेको धन्य-धन्य कह उठता हूँ। मैं कितना भाग्यवान् हूँ ! मेरे गुरुदेवकी रजनी, प्राकृत तमोमयी रजनी नहीं है; अपितु है सर्वथा चिदानन्दमयी, ब्रजराज्यकी परम रसमयी रजनी है, जो मेरे गुरुदेवके प्राणाराध्य प्राणप्रियतमको अपने अंकमें भरकर विश्राम कराती है। मेरे गुरुदेवका अरुणोदय प्राकृत अरुणोदय कदापि-कदापि नहीं है; न ही उनकी उंषा, प्राकृत उषा है। पू. गुरुदेवका दिवस, उषा, रजनी, अरुणोदय, प्रभात, मध्यान्ह एवं सन्ध्या – सर्वकाल ही उनके प्रियतम-दर्शनमें , प्रियतम-सुखमें निमित्त होनेमें ही तन्मय रहता है। इसीलिये मेरे गुरुदेवका सर्वकाल नराकृति परब्रह्म नन्दतनूजसे पूर्णतया आप्यायित, ओतप्रोत, निमज्जित होनेके कारण मंगलनिधान है। उस कालके अणु-अणुसे सर्वत्र दिग्-दिगन्तमें असीम, अमित मंगलवर्षा होती रहती है।

इसी प्रकार मेरे गुरुदेवका समग्र देश मायानिर्मित जड़ देश है ही नहीं। उनका शरीर भले ही गोरखपुरके किसी गीतावाटिका नामक देशमें लेटा रहे, किन्तु उनका भावदेह इसी देशको तत्क्षण ही चिन्मय यमुनाकी लोल कृष्णमयी लहरियोंमें परिस्नात करा देता है। एक क्षण ही तो व्यतीत नहीं हो पाता कि प्राकृत धरातलमें उनकी खड़ी जीर्ण-शीर्ण कुटिया बृषभानुपुरका चिन्मय प्रासाद बन जाती है। न तो वे प्राकृत देह रह जाते हैं, न ही उनका निवास प्राकृत रहता है। तत्क्षण ही वे स्वयं भी बृषभानुबाबाकी परम लाडिली छोटी पुत्री – मंजुश्यामा हो उठते हैं। उनके मंजुश्यामा होते ही उनकी कुटिया भी बृषभानुपुरका चिन्मय प्रासाद बन जाती है। उनकी यह कोई मानसिक कल्पना है – ऐसा सर्वथा-सर्वांशमें नहीं मानना चाहिये। जब उनका मन ही प्राकृत देहान्तर्गत संकल्प-विकल्पात्मक मन नहीं रहता, अप्राकृत हो उठता है; और अप्राकृत होकर ब्रजेन्द्रनन्दनके उस मनसे एकीभूत हो उठता है, जो मन कभी देश एवं कालसे परिच्छिन्न नहीं होता, जिसमें अतीत, वर्तमान एवं भविष्य – यह कालभेद ही नहीं है; और जिसके समक्ष सब कुछ नित्य वर्तमान है। फिर जिसकी कल्पना, स्वप्न, मनोरथ, संकल्प अमोघ हैं, अखण्ड है , वह कभी विकल्पित होना संभव ही नहीं । जिसमें संकल्प होनेमें एवं मूर्त होनेमें कहीं कोई काल-व्यवधान है ही नहीं ।

लो देखो ! पू.गुरुदेवने अपनी चिन्मय कृपादृष्टिसे गोरखपुर नगरकी

गीतावाटिकाको कैसी मंगल भावसज्जासे सज्जित किया है ! समग्र गीतावाटिकाकी वनभूमिका कण-कण दिव्य मणियोंकी ज्योतिसे उद्भासित हो उठा है। देखो ! पू.गुरुदेवकी निवासकुटी मधुरलीलाकी मूलधारा बृषभानुनन्दिनी श्रीराधाकी बाल्यविहारस्थली राजपुरी बृषभानुपुरमें परिणत होगयी है। अहा ! दोनों ओर कैसे सुरम्य पर्वत हैं ! ये दोनों ओरके विलक्षण मणिमय पर्वत निर्गलित मणिद्रवोंकी भाँति सुन्दर जलनिर्झरोंके कल-कल निनादसे पूरित रहते हैं। इन निर्झरोंके दोनों तटोंपर और इनकी उद्गमस्थलीको भिन्न-भिन्न वर्णके मणिवृक्ष आच्छादित किये हैं। ओह ! कैसे सुन्दर मणिमय विहंगमकुल इन वनपादपोंमें फुदक-फुदककर विहार कर रहे हैं।

न सोऽस्ति मणिभूरुहो विविध रत्नशाखो न यः।
सुचित्र मणिपल्लवाः न खलु या न शाखाश्च ताः।।
न तेऽपि मणिपल्लवा विविध रत्नपुष्पा न ये।
न पुष्पनिकरोऽप्यसौ विविध गन्धबन्धुर्न यः।।

(आनन्दबृन्दावनचम्पू)

"यहाँ मणिमय ऐसा कोई वृक्ष नहीं, जिसके शाखासमूह विविध रत्नमय न हों। प्रत्येक मणिमय वृक्षकी शाखावलि विविध रत्नोंसे ही निर्मित है। फिर इन शाखाओंमें ऐसी कोई शाखा नहीं, जो विविध वर्णके मणिमय पल्लवजालसे मण्डित नहीं हो। प्रत्येक वृक्षकी प्रत्येक शाखा बहुवर्णी मणिमयी पल्लवराजिसे राजित हो रही है। ऐसे मणिपल्लव नहीं, जिनमें रत्नमय कुसुम-समूह प्रस्फुटित नहीं हुए हों – सभी मणिपल्लवोंपर रत्नमय कुसुमनिकर झलमल-झलमल कर रहे हैं और फिर ऐसा कोई पुष्पनिकर नहीं, जिससे विविध भाँतिकी सुगन्ध प्रसरित नहीं हो रही हो – कुसुमसमूहोंसे भाँति-भाँतिके सौरभ झर रहे हैं।"

शाल, तमाल, ताल, कपित्थ, बकुल, नारिकेल, रसाल, प्रियाल, श्रीफल, करील, कोविदार, देवदारु, मन्दार, जम्बीर, चन्दन, अशोक, कदम्ब, गुग्गुल, पीलू, गन्धपिप्पली, गजपिप्पली आदि वृक्षोंसे वन भरा है। ये सभी कल्पपादपोंसे अनन्त गुने महिमाशाली हैं। इन वृक्षोंको वासन्ती, वनमल्लिका, स्वर्णयूथी,जाती,यूथी, मल्लिका, मुद्गरा, अपराजिता, गुञ्जा, शतमूली, बिम्बफललता, लवंगलता, आदि लताएँ आच्छादित किये रहती हैं। ऐसा स्वयं भगवती जगज्जननी श्रीराधारानीका चिन्मयधाम बृषभानुपुर जिसका कण-कण चिन्मय तत्वसे सुगठित है, यहाँ सुव्यक्त हो रहा है।

महदाश्चर्य है – पू.गुरुदेवकी छोटी-सी कुटिया जिसका भूभाग कठिनतासे मात्र ढाई सौ गजके घेरेमें होगा – उसमें न जाने विचित्र वैभवोंसे परिपूर्ण कितनी ही पुरियाँ समाहित हो गयी हैं।

यह प्रथम महल वीरभानुजीका है। इसके अन्दरके वैभवका वर्णन करने जायँ तो पूरा कथासरित्सागर ही हो जायगा। इस पुरीका मुख्य द्वार चिन्मय हरिद्राभ मणिमय है। इसके सभी कपाट हीरक-खचित हैं। यह महल अनेक रत्नसिंहासनोंसे युक्त है। मणिमय रत्नमुकुट पहने पीत परिधान-शोभित वीरभानु इस महलके अधिपति हैं। द्वितीय महल सुन्दर श्रृंगार-सुसज्जित किशोर वयस्क श्रीचन्द्रभानु गोपका है। तीसरा महल सूर्यभानु गोपका है एवं चौथा महल वसुभानुजीका है। पाँचवाँ महल देवभानुजीका एवं छठा शक्रभानुजीका हैं सातवाँ महल रत्नभानु महाराजका है। इसके पश्चात् सुपार्श्व, सुबल एवं सुदाम गोपोंके महल हैं। तब जाकर परम रम्य बृषभानुपुरके युवराज श्रीदामगोपका महल आता है। ओह ! श्रीदाम भैयाके अंग कितने कमनीय हैं ! उनके वक्षस्थलपर सदा प्रफुल्ल मालतीमाला झूलती रहती है।

इसके पश्चात् असंख्य कोटि मार्तण्डकी ज्योतिके समान एक विलक्षण ज्योतिमण्डलसे युक्त भगवती त्रिपुरसुन्दरीका मन्दिर है। ओह ! जय हो ! इसी ज्योतिबिम्बमें लक्षदल-समन्वित परम दिव्य पद्म है। पराभट्टारिका भगवती कामेश्वरांकनिलया इसी पद्ममें अपने चतुष्पाद सिंहासनमें शिवाकार-मंचपर, परशिवके पर्यंकपर एवं भगवान् कामेश्वरके अंकपर विराजित रहती हैं। अप्रतिम विश्वविमोहन उनका सौन्दर्य है। वाणीकी सामर्थ्य नहीं कि इसकी छाया भी छू सके। अहा ! उनकी कैसी विचित्र मुसकान है ! अनादि अनन्त समस्त माया इस विचित्र मुसकानसे ही व्यक्त होती है और अनन्त ब्रह्माण्डोंकी समग्र स्थिति, उत्पत्ति एवं प्रलय इन्हीं महामायाके द्वारा ही भ्रू-संकेतसे संचालित हो रही है।

इसके उपरान्त यदि नन्दनन्दन किसीको आगे जाने देते हैं तो उसे भगवती प्रिया श्रीराधारानीके महलके दर्शन हो पाते हैं, जिसपर कोटि-कोटि गोपांगनाओंका संरक्षण है।

यह तो मेरे पू.गुरुदेवकी निवास कुटीके चिन्मय विलासकी एक अति साधारण झाँकी है, अब इस कुटीके चतुर्दिक् खिंची चारदीवारीके मुख्यद्वारके बाहर निकलते ही गिरिराज गोवर्धनका दिग्दर्शन तनिक अति संक्षेपमें कर लें।

देखो ! देखो ! कितने उत्तुंग शतश्रृंगसमन्वित गिरिराज गोवर्धनके परिसरमें हम सभी लोग आ पहुँचे। यह है पद्मरागका पर्वत और इसके नीचे बसा है आन्योर ग्राम । यहाँ पारिजातवनश्रेणी और कल्पतरुओंकी पंक्ति कैसी शोभा दे रही है। और यह गिरिराज पर्वतकी पूँछड़ी है। यहाँ असंख्य कामधेनु झुण्डोंमें वनचारण कर रही हैं। दूर-सुदूरतक हरे-भरे तृण-घाससे भरे मैदानोंमें रंग-बिरंगी विचरण करती गायोंकी कैसी शोभा हमारे नयनोंको रंजित कर दे रही है। हे गिरिराज पर्वत ! तुम्हें हमारे अनन्त प्रणाम हैं। नव पल्लवोंसे परिशोभित, चन्दन, मन्दार, चम्पक आदि पुष्पोंके परागसे सुवासित, सुमधुर भ्रमर-रवसे गुंजारित यह यतीपुरा ग्राम आ गया। कतिपय मान्यतानुसार यहाँ भगवान् गिरिराजका मुखारविन्द है।

इसके पश्चात् दानघाटी और तब मानसीगंगाका क्षीरसरोवर। इसका घेरा प्रवालनिर्मित है और घाट वैदूर्यरचित हैं। यहाँ घाटोंपर शिल्पनैपुण्यसे अंकित शुक-पिक आदि पक्षियोंकी प्रतिकृति ऐसी लगती है मानो जीवन्त पक्षीगण चहक रहे हों ।

और यह देखो ! गिरिराज पर्वतकी दूसरी गिरिश्रृंखलाके एक ओर उद्धवकुण्ड और दूसरी ओर उद्धवकुण्डके ठीक सामने कुसुमसरोवर। कुसुमसरोवरकी अट्टालिकाएँ महानीलमणिनिर्मित हैं और इसके घाटोंकी संरचना कुरुविन्दमणिमय प्रस्तरोंसे गठित है। विविध भाँतिसे सुचित्रित इस सरोवरकी शोभाके सम्मुख त्रिलोकीका पुञ्जीभूत वैभव भी तुच्छ प्रतीत होता है।

इस परम वैभवमय गिरिराजकी पूँछमें जैसे पूँछड़ी गाँव है, इसी प्रकार इसके शिरोभागमें श्रीराधाकुण्ड एवं कृष्णकुण्ड सरोवर हैं। ये कुण्ड विलक्षण हैं। सर्वथा सच्चिदानन्दमय होनेसे यहाँकी किसी वस्तुकी सीमा नहीं बाँधी जा सकती। किसीका रूप-रंग निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। लीलाचिन्तक भक्तके अधिकारानुसार ही इनका रूप-रंग प्रकाशित होता है। यह सब प्रियतम प्राणवल्लभ श्रीकृष्णकी कृपेच्छाके अनुसार ही भक्तके मानसमें व्यक्त होता है। एक ही राधाकुण्ड एक ही समय लीलामें चार योजनका भी संभव है, एवं दूसरे ही क्षण चौथाई कोस – आधे मीलमें ही परिमित हो सकता है। यहाँकी सभी वस्तुएँ चिन्मय हैं।

आओ चलें ! अब पू.गुरुदेवकी निवासकुटीके बाड़ेके पूर्वोत्तर दिशाकी ओर एक मैदान है, उसमें कुछ लीची, अमरूदादिके वृक्ष हैं। वैसे प्राकृत

जड़जगत्में तो यह पू.गुरुदेवकी कुटियाके पार्श्वकी एक खाली जमीन है। इसके सामने ही गीतावाटिकाकी सीमा दीवाल है। किन्तु भाई, तुम-हम जड़ प्राणियोंके लिये ही यह एक खाली जमीन भले ही दिखे। इस जमीनको पू. गुरुदेवकी आँखोंसे यदि हम देख पावें तो तुम्हें-हमें वहाँ मध्यमें राधाकुण्ड-कृष्णकुण्ड एवं चतुर्दिक् श्रीयुगल-सेवापरायणा अष्ट सखियोंके अपने-अपने अष्ट कुञ्ज दृष्टिगोचर हो उठेंगे।

महाभावस्वरूपा श्रीराधाजीकी ये अष्ट सखियाँ हैं– १.श्रीललिता, २. श्रीविशाखा, ३.श्रीचित्रा, ४.श्रीइन्दुलेखा, ५.श्रीचम्पकलता, ६.श्रीरंगदेवी, ७. श्रीतुंगविद्या, ८.श्रीसुदेवी।

अब ऊपरसे देखनेमें जो एक निरर्थक जमीनका खाली टुकड़ा है, उसमें पूगुरुदेवने कैसा परम मंगलमय भावसंसार बनाया है। इस भूखण्डकी उत्तर दिशामें श्रीललिताजीका ललिताकुञ्ज है। ईशान कोणमें विशाखाकुञ्ज, पूर्वदिशामें चित्राकुंज, आग्नेयकोणमें इन्दुलेखाकुञ्ज, दक्षिण दिशामें चम्पकलता-कुञ्ज, नैऋत्यकोणमें रंगदेवीकुञ्ज, पश्चिम दिशामें तुंगविद्याकुञ्ज, और वायव्यकोण कोणमें सुदेवीकुञ्ज है।

आओ ! अब मैं तुम्हें मेरे पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके तत्कालीन भावदेहका किंचित् परिचय दे दूँ। भविष्यमें ८ अप्रेल, १९५७ ई.को तो वे भगवती महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीमें एकमेक हो जावेंगे, किन्तु वर्तमानमें उनका भावरूप क्या है , उसका किंचित् परिचय तो पाठकगण प्राप्त कर लें।

यह अखण्ड नित्य सत्य है कि नित्य निकुंजेश्वरी महाभावस्वरूपा श्रीराधारानीका महाप्रेमसिन्धु नित्यनिकुंजेश्वर रसराज प्रियतम श्रीकृष्णको असीम सुख प्रदान करनेके लिये अनवरत लहराता रहता है। इस नित्योच्छलित महाभावसिन्धुमें ऊँची-नीची, छोटी-बड़ी विविध भावतरंगे सदा उठती रहती हैं। इनमें आठ दिशाओंसे आठ भावतरंगें मुख्यतया उठती हैं। इन अष्ट तरंगोंमें एक है, खण्डिता महाभावकी तरंग, जो राधाकुण्डके उत्तरी दिशावाले घाट, जहाँ श्रीललिताजीका निकुंज है, उस घाटसे उमड़ती रहती है।

खण्डिता भाव – जैसाकि पू.गुरुदेवने हम सभीके सम्मुख अनेकों बार उल्लेख किया है, उसे ही यहाँ वर्णित किया जा रहा है। संकेतका अतिक्रमण करनेवाले प्रियतम कान्तको अति विलम्बसे आते हुए देखकर जो प्रियतमा कान्ता रोषाकुला और दीर्घनिश्वासत्यागिनी होती है, उसे खण्डिता कहते हैं।

श्रीललिता खण्डिता भावकी मूर्तिमान स्वरूपा हैं। खण्डिताभावकी मूर्तिमान स्वरूपा श्रीललिताजी, श्रीकृष्णाह्लादिनी श्रीराधाके सच्चिदानन्दमय दिव्यवपुमें अधरोंकी लालिमाके रूपमें नित्य विराजित रहती हैं। वह अरुणा–
धरविलासिनी लालिमा ही सर्वजन–सुखविधायिनी विविध और विस्तृत लीलामें श्रीललिता स्वरूपसे प्रकट होकर सम्पूर्ण लीलाविहारका संयोजन–संपादन–संचालन करती है। भगवती नित्यनिकुंजेश्वरी श्रीराधाके मंजुल अधरोंकी अनुपम अरुणिमा ही श्रीललिता स्वरूपसे रंगमंच–सूत्रधारिणी बनकर कुंज–निकुंजके विशद विपुल लीलोल्लासको सतत उच्छलित–संवर्धित करती रहती हैं।

जब यह भावसिन्धु और अधिक उत्ताल तरंगोंमें उमड़ता है, तब श्रीललिता ही मंजुश्यामामंजरीके रूपमें प्रकट हो जाती है। श्रीमंजुश्यामाजी श्रीराधाकिशोरीकी छोटी सहोदरा बहिन हैं। इनका शास्त्रीय नाम अनंगमंजरी है। यह छोटी बहिन स्वभावसे कुछ चंचल है और कुछ मुखर है। श्रीराधा-किशोरी एवं श्रीश्यामसुन्दर दोनोंकी ही यह अत्यन्त प्रीतिपात्री है। दोनों ही प्रिया-प्रियतम सदैव श्रीमंजुश्यामाके माध्यमसे एक-दूसरेको सुख प्रदान करनेका विधान रचते हैं। दोनोंको ही श्री मंजुश्यामाजीमें अपनी-अपनी विवशताका एक सुन्दर समाधान दिखलाई देता है। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा इसी भावकी मूर्तिमान प्रतिमा हैं। यही उनकी वर्तमानमें भावमूर्ति है।

महाभावस्वरूपा श्रीबृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके हृदयमें अपार व्यथा है कि मैं अपने प्राणप्रियतम श्रीकृष्णको किंचित् भी सुख दे ही नहीं सकी। यद्यपि श्रीराधाके जीवनका एक-एक श्वास, उनके हृदयका एक-एक स्पन्दन, उनकी वाणीका एक-एक शब्द, उनकी क्रिया और व्यवहारका एक-एक व्यापार, सर्वत्र एवं सर्वदा ही सर्वथा-सर्वथा अपने हृदयाराध्य प्राणवल्लभ नीलसुन्दरके लिये ही होता है, इसके उपरान्त भी वे अहर्निश अनवरत यही सोचती रहती हैं कि मुझ अकिंचनाके द्वारा हाय ! मेरे प्राणवल्लभका सुखविधान कैसे और कब हो पावेगा ? श्रीबृषभानुनन्दिनी परम खिन्नताकी दारुण भावनासे नित्य निरन्तर भावित रहती हैं कि मेरे द्वारा मेरे प्रियतमकी कोई सेवा कभी नहीं बन पायी। परम खिन्नताकी भावनासे सदैव अभिभूत रहनेके फलस्वरूप उनके आन्तरिक क्रन्दनमें कभी विराम आता ही नहीं। उनके अन्तरकी इस अनन्त व्यथाके आधारपर ही श्रीराधारानीका जीवन सभी आचार्य अनन्त क्रन्दनमय कहते हैं।

यही व्यथा रसराज प्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनके हृदयमें परिव्याप्त रहती है। राधा-प्राणवल्लभ महामहैश्वर्यमय हैं, फिर भी प्रेम-परवश हुआ उनका व्यथित हृदय चीत्कार कर उठता है कि मैं अपनी प्राणप्रियाको तनिक सुख नहीं दे पाया। हृदयकी व्यथाकी इस पराकाष्ठाका एक विन्दु ऐसा भी आ जाता है, जब दोनों प्रेमी हृदयोंके हाहाकारका दारुण स्वरूप प्राणान्तक सीमाका संस्पर्श करने लगता है और तब दोनोंके करुण हाहाकारके मिलन-विन्दुपर अघटन-घटना-पटीयसी लीलामहाशक्ति योगमायाके विधानसे एक नवीन परिस्थितिका निर्माण हो जाता है। श्रीबृषभानुनन्दिनीके दृष्टिपथपर अपनी सहोदरा भगिनी मंजुश्यामा आती हैं। उसे देखते ही श्रीबृषभानुनन्दिनीके हृदयमें एक आशाकी किरण उद्भासित हो उठती है कि मैं तो प्रियतमको सुख नहीं दे सकी, कदाचित् इस मेरी छोटी भगिनीके माध्यमसे प्रियतमको सुखदान कर सकूँ। ठीक ऐसी ही प्रबल आशाका उद्भव प्रियतम श्रीकृष्णके अन्तरमें भी होता है। श्रीमञ्जुश्यामाको देखते ही उनके मनमें भी ये ही भाव उमड़ उठते हैं कि मैं तो अपनी प्रियाका जीवनपर्यन्त ही सुखसम्पादन नहीं कर सका, किन्तु एक संभावना दिखाई देती है कि कदाचित् इसके माध्यमसे मैं अपनी प्राणप्रियाको सुखी बना सकूँ । ज्योंही दोनोंके हृदयमें हाहाकारकी चरम सीमा उपस्थित होती है, उस सीमाके मिलन-विन्दुपर श्रीमंजुरानी दोनोंके दृष्टिपथपर आती हैं और तत्क्षण ही दोनोंके प्रीतिविगलित हृदयमें बलवती आशाका संचार हो उठता है। श्रीमंजुरानीके माध्यमसे प्रिया श्रीराधा और प्रियतम श्रीकृष्ण दोनों ही एक दूसरेको सुखदान कर सकनेकी भावनासे भर उठते हैं। जब बीज पल्लवित होता है तो फल तो लगते ही हैं। फिर तो दोनोंमें सुखदानकी दिव्यलीलाका मधुर विलास आरंभ हो जाता है। दोनों ओर सुखदानके लिये होड़-सी मच जाती है।

श्रीमंजुरानीके माध्यमसे दोनों एक दूसरेको सुखदान कर पाते हैं। ऐसा इसलिये संभव होता है क्योंकि श्यामवर्णा मंजुरानी प्रिया-प्रियतम, भानुदुलारी एवं ब्रजेन्द्रतनय दोनोंका युगलित रूप है। नीलमकी नकबेसरके रूपमें श्रीमंजुरानी श्रीप्रियाके नासिकाग्र भागमें सदैव विराजित रहती है। श्रीप्रियाके ऐसे अंगमें श्रीमंजुश्यामाजीकी अवस्थिति ऐसे स्थलपर है, जहाँ वाम श्वासका और दक्षिण श्वासका, दोनोंका सुखद स्पर्श सदा-सर्वदा उन्हें प्राप्त होता रहता है। यहाँ सदैव ध्यान रहे कि श्रीराधारानीका दक्षिण श्वास श्रीकृष्ण हैं और वाम श्वास

और वामश्वास श्रीराधारानी प्राणप्रिया स्वयं हैं। इसीलिये उनके युगलित स्वरूपकी परिचायिका मंजुश्यामा हैं।

अब इस महाभावसागरकी लहरें प्रिया-प्रियतम युगलकुण्डके उत्तरी दिशासे जब और अधिक विकसित होती, उछाल लेती हैं, तब मंजुश्यामा मंजरी ही रूपमञ्जरीके रूपमें परिणत हो जाती हैं।

कृष्णप्रिया श्रीराधाके अंग-प्रत्यंगका विलक्षण लावण्य ही रूपमंजरीके स्वरूपसे युगल सेवापरायण है। ये रूपमंजरी ही पू.गुरुदेवकी प्रथम भावदीक्षाकी प्रथम गुरु रही हैं। निकुञ्जलीलामें श्रीरूपमंजरीका विकसित रूप श्रीलवंगमंजरी हैं। प्रिया श्रीराधाके मुखका सुवास ही लवंगमंजरीके रूपमें मूर्तिमान होता है। श्रीलवंगमंजरीका ही उत्ताल उच्छलन मोदिनीमंजरीके रूपमें अभिव्यक्त होता है। क्रन्दनमयी प्रिया राधारानीकी अश्रुकणिकाएँ ही मोदिनीमंजरीके रूपमें मूर्तिमान हो उठती हैं। इससे भी जब उच्चतर तरंग उत्थित होती है तो इन श्रीमोदिनीमंजरीका भी एक और परिशुद्ध भावस्वरूप माधवीमंजरीके रूपमें साकार हो उठता है। नित्य-निकुंजेश्वरी श्रीमती राधारानीके वक्षोजोंको आच्छादित करने वाली जो कंचुकी है, उसी कंचुकीके बन्दोंका जो चिह्न उनके वक्षस्थलपर उभर आता है, वह बन्दचिन्ह ही माधवीमंजरीके रूपमें साकार होता है। इस प्रकार महाभावस्वरूपा श्रीराधाके अद्भुत महाभावसिन्धुकी खण्डिता भावमयी तरंगें जब ललिताकुंजसे सखी ललितारानीको माध्यम बनाकर लहराती हैं, तब इन अतिशय मंगलमयी छः उर्मियोंके शुभ दर्शन होते हैं।

पू.गुरुदेवने ये सभी बातें तभी उल्लेख की थीं जब अपनी पूजा-विसर्जनके कालमें अपनी पूजाका यह महाभावात्मक प्रकरण प्रधानतया श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको उन्होंने सौंपा था। वैसे उसमें किंचित् भागीदार श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल भी थे, परन्तु पू.गुरुदेवसे जुड़े तेरह सौसे अधिक कुछ लोगोंको प्रधानतया श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ही प्रतिदिन परम मंगलमयी रस एवं भावके स्वादिष्ट सरस पक्वान्नों और व्यञ्जनोंसे भरी थाली परोसनेका कार्य किया करते थे। पू.गुरुदेवके रस-परिवारकी एक संक्षिप्त झाँकी यहाँ दी जा रही है। उनकी उनचास तो बहनें थीं, एवं बहत्तर भाई थे। माता-पिता, सास-ससुर, ननदें आदिका लेखा-जोखा तो अलग ही था। इन बहत्तर भाइयोंमें श्रीदामादि गोपोंके वर्गके बृषभानुपुरके भाई भी थे और श्रीकृष्णके सखावर्गके नन्दभवनके भाई भी थे। इसी प्रकार पू.गुरुदेवकी अनेक माताएँ थीं जिनमें

कीर्त्तिदादि बृषभानुपुरकी, मातृवर्गकी स्त्रियाँ एवं यशोदादि नन्दभवनकी श्रीकृष्णमाताएँ भी सम्मिलित थीं। पू.गुरुदेवके पितृवर्गके भी असंख्य गोप थे, जिनमें बृषभानुजी एवं उनके बन्धु, साथ ही बृषभानुपुरके पितृवर्गके गोप एक ओर एवं नन्दरायजी एवं नन्दग्रामके पितातुल्य गोप दूसरी ओर थे। इस प्रकार अति बृहद् पू.गुरुदेवका भाव-परिवार था।

पू.गुरुदेवके इस भाव-परिवारकी छाया जिन-जिन व्यक्तियोंपर पड़ी थी एवं पू.गुरुदेवके प्राणाराध्य श्रीकृष्णने जिन-जिन महाकृपापात्र व्यक्तियोंका चयन इस भाव-परिवारके पात्रोंके रूपमें अनुमोदित कर दिया था, ऐसे तेरह सौ एवं कुछ लोग उस समय सन् १९५६ में पू.गुरुदेवकी अन्तरंग आत्मीयताकी परिधिमें थे। पूगुरुदेव तो इन सभी व्यक्तियोंकी स्मृति करके उन्हें प्रतिदिन चार बार अपने-अपने लीलाराज्यके स्वरूपोंमें प्रतिस्थापित करते थे, कुछ एकको तो सैकड़ों वार ही जब-जब उनकी स्मृति किंवा सम्मुखसेवा होती थी, उन्हें उनके स्वरूपभावके रूपमें ही वे अपने पार्थिव नेत्रोंसे भी देखते थे।

उदाहरण स्वरूप मैं श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको ही लेता हूँ। इन महाभाग्यवान् कृपापात्र श्रीगोस्वामीजीकी पू.गुरुदेवके लीलाराज्यमें श्यामला मंजरीके रूपमें परिणति नियत थी। इन श्यामलामंजरीका क्या भाव था, इसपर किंचित् विस्तार डाल रहा हूँ।

पू.गुरुदेवके भावानुसार श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीकृष्णकुण्डके आग्नेय कोणमें श्रीइन्दुलेखाजीका कुंज है। श्रीइन्दुलेखाजी प्रोषितभर्तृका भावकी मूर्तिमान् स्वरूपा हैं। जिसका प्रियतम (कान्त) दूर देशमें हो, उस वियुक्ता कान्ताको प्रोषितभर्तृका कहते हैं। प्रियतमप्राणा श्रीराधारानीके पयोधरोंपर शोभायमान नखक्षत-छबि ही लीलाराज्यमें श्रीमती इन्दुलेखाजीके रूपमें विराजित हैं।

यहाँ एक बात सावधानीके रूपमें पाठकोंके सम्मुख व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि श्रीराधाकुण्ड और कृष्णकुण्डके चतुर्दिक् जो प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी लोकातीत मधुरलीला हो रही है, उस मधुर भावकी लोकोत्तर लीलामें प्रकर्ष-रसोत्कर्षके लिये सदोषताका झीना-सा एक आवरण मात्र अवश्य है। लीला-विहारके वर्णनमें जब ऐसी दोषपूर्ण कोई शब्दावली आती है, तो पाठकोंको उसमें निहित प्राकृत अर्थ ग्रहण नहीं करना चाहिये। शब्द तो प्राकृत हैं, अतः उनका अर्थ स्वभावतः प्राकृत ही ग्रहण होगा। परन्तु वास्तविकता यह है कि यह दिव्य लीला अत्यन्त निर्दोष, नित्य अभिनव,

सदा सुन्दर और बाह्याभ्यन्तर पूर्ण-पूर्णतया परम पवित्र है। शब्दोंके प्राकृत अर्थोंसे देखनेमात्रके लिये सदोष है, किन्तु सदैव पूर्णतया निर्दोष यह मधुर लीला पूर्ण पवित्र है।

उदाहरण-स्वरूप समझलें – ऊपरके वाक्यमें श्रीराधारानीके पयोधरोंमें शोभायमान नखक्षतोंका वर्णन आया है। अब इन पयोधरोंमे नखक्षत शब्दावलीके अर्थरूपमें तो यही कोई अवधारणा करेगा कि यह नखक्षत नरनारीके परस्पर विलाससे उत्पन्न कुत्सित रतिचिन्ह ही होगा। किन्तु यथार्थ यहाँ सर्वथा अलौकिक है।

पाठकोंको यहाँ सदैव ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि प्रिया-प्रियतम भगवान् श्रीराधाकृष्ण **'छिति जल पावक गगन समीरा'** नामक पंचभूतोंसे निर्मित देह सर्वथा नहीं हैं। जहाँ ब्रह्मा द्वारा सृष्ट लोकके नियमोंसे अनुशासित मानव-मानवीका शरीर गुणदोषमय पांचभौतिक होता है, इन प्राकृत शरीरोंमें जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधिजन्य अनेक क्लेशात्मक द्वन्द्व भरे रहते हैं। इनमें रक्त-मांस, मल-मूत्र, कफ-पित्त, अस्थि-मज्जा एवं वीर्यकी उत्पत्ति होती है; एवं ये गुण-दोषमय विकारपुञ्ज होते हैं; वहीं भागवती प्रिया-प्रियतमके विग्रह सच्चिदानन्दमय, चिन्मय, विभु एवं गुणातीत, दोषातीत, नियमातीत, लोकातीत हैं। सभी शास्त्र एकमतसे कहते हैं कि जो जन भगवान्‌की चिन्मय रसलीलामें प्राकृत भाव करते हैं, एवं प्रिया-प्रियतमके विहारको नर-नारीका मिथुन विलास समझकर चिन्तन करते हैं, वे घोर नारकीय यंत्रणाओंके भागी महदपराधी होते हैं।

अतः कृष्णगतप्राणा प्रिया राधारानीके पयोधरोंपर शोभायमान नखक्षत चिह्नके रूपमें यदि सत्य देखा जाय तो प्रेमपुत्तलिका भगवती श्रीमती राधारानीके अन्तरका प्रगाढ़तम पावनतम कृष्णानुराग ही बाहर उभर आया है। वस्तुतः सत्य-सत्य इसे समझनेके लिये तो दिव्य भावचक्षु ही अपेक्षित हैं जो मात्र प्रियतम श्रीकृष्णकी कृपासे ही प्राप्त होने संभव हैं।

कहनेका यही अर्थ है कि आग्नेयकोणमें महाभावसिन्धुकी प्रोषितभर्तृका भाववाली जो तरंग विशदरूपसे उद्वेलित होती है, उसीकी साकार स्वरूपा हैं श्रीइन्दुलेखाजी और इनका विकसित उच्छलित स्वरूप हैं श्रीश्यामलामंजरी, जिनमें श्रीगोस्वामीजीकी परिणति नियत है। इनकी उत्पत्ति प्रिया राधारानीके कृष्णवर्णीय स्तनाग्रभागसे हुई है। श्रीश्यामलामंजरीका ही पुनः विकसित रूप केलिमंजरी हैं जो प्रिया श्रीराधारानीके बायें हाथमें अनामिका अँगुलीसे प्रकट

होती हैं। केलिमंजरीका उच्छलित स्वरूप श्रीविलासमंजरी हैं जो प्रियाके चरणोंके दोनों अंगुष्ठके पार्श्वकी अँगुलीमें स्थित बिछिया नामक आभूषणके रूपमें प्रियासे नित्य संलग्न रहती हैं। श्रीविलासमंजरीके उत्तरोत्तर उच्छलनसे श्रीसौदामिनीजी प्रकट होती हैं, जो प्रियाके भालपर स्थित मणिसहित चूड़ामणिचन्द्रिकाके रूपमें प्रियासे नित्य संयुक्त रहती है। पू.गुरुदेवकी जन्मदात्री माता अधिकारिणी देवीकी परिणति इसी सौदामिनी मंजरीके रूपमें ही हुई है। सौदामिनीका उच्छलित स्वरूप हंसिनी है जो प्रियाकी बिछिया वाली दोनों अँगुलियोंको छोड़कर चरणोंकी शेष अँगुलियोंकी अँगूठियोंके रूपमें प्रिया श्रीमती राधारानीसे नित्य संलग्न रहती हैं।

पू.गुरुदेवकी पूजाका यही स्वरूप रहा करता था कि गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी जब भी पू.गुरुदेवके सम्मुख आते, चाहे प्रातः दर्शनार्थ चरणवन्दनाके लिये आवें, पू.गुरुदेव तो उनके रूपमें श्यामलामंजरीको ही देखते थे। एक बार ज्योंही पू.गुरुदेवको श्रीगोस्वामीजी श्यामलामंजरीके रूपमें दिखे कि वे उन्हें अपनी अग्रजा भगिनीके स्तनाग्रभागकी कृष्णकुचकर्णिकामें प्रतिस्थापित कर देते थे। वैसे प्रतिदिन ही निरे ब्राह्ममुहूर्तमें पू.गुरुदेव जब निभृतनिकुंजमें मंजुश्यामाके रूपमें अपनी भगिनी श्रीराधाकी बेसरसे प्रकट होते थे और प्रिया-प्रियतमके मिलित युगनद्ध स्वरूपके दर्शन करते हुए उनमें प्रकट रतिचिह्नों – नखक्षत, दन्तक्षतादिका चन्दन-कस्तूरीपंकके लेप द्वारा दुराव करते थे, उस समय अपनी अग्रजा बहिनके कंचुकी विनिर्मुक्त स्तनमण्डलका दर्शन करते समय उन्हें कुचकर्णिकाके रूपमें श्यामला मंजरीका चिन्तन होता ही था, बस उसी समय वे गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीको इस मंजरीभावमें मानसिक रूपसे एकात्म कर देते थे। इसी प्रकार स्नानके पूर्व पीठी-विलेपनके समय, तैलमर्दनके समय, स्नानके समय, स्नानान्तर वस्त्र-विमोचनके समय, फिर वस्त्र-धारणके समय, श्रृंगारके समय, पू.गुरुदेव भगवती श्रीराधाकी अनुजा मंजुश्यामाके रूपमें अपनी बड़ी बहनके स्तनोंकी कुचकर्णिकाके जब-जब दर्शन करते थे, वहीं वे श्यामला मंजरीके रूपमें श्रीगोस्वामीजीको अपनी अग्रजा श्रीराधारानीमें एकात्म कर देते थे।

यह तो एक उदाहरण श्रीश्यामलामंजरीके रूपमें श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके प्रति की हुई पू.गुरुदेवकी अर्चनाका हुआ पू.गुरुदेव तो प्रतिदिन ही अपनेसे जुड़े तेरह सौ व्यक्तियोंको इसी प्रकार अनेकों बार लीलापरिकरोंके

रूपमें स्मरण करते थे, फिर उन्हें प्रियाप्रियतमके किसी-न-किसी अंगमें एकाकार कर देते थे।

पू.गुरुदेवकी तो अष्टप्रहर समग्र दिवस-निशा अनवरत लीला-अनुभावना होती ही रहती थी। इस लीला-अनुभावनामें जब-जब विदूषक सखा मधुमंगलका लीलारंगस्थलमें प्राकट्य होता, पू.गुरुदेव मधुमंगलके रूपमें श्रीशिवनाथजी दुबेको ही देखते थे। बस, पू.गुरुदेवके सम्मुख चाहे श्रीशिवनाथ दुबे आवें, बैठें, वार्त्ता-गप करें, पू.गुरुदेव तो शिवनाथजीका प्राकृत शरीर न तो देखते थे, न ही उनकी प्राकृत वार्त्तामें मनोयोग करते थे, वहाँ वे स्वयं तो मंजुश्यामा सखी होते, और उनके पास बैठा होता मधुमंगल, उनके प्राणवल्लभ प्रियतम श्रीकृष्णका प्यारा सखा।

उन्हें अ.सौ. सावित्री बाई श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री दिखती ही नहीं थी, उन्हें तो उनके रूपमें मधुमतीमंजरी ही दृष्टिगोचर होती थीं। उन्हें श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल दिखते ही नहीं थे, उन्हें तो उनके स्थानपर विशाखा देवी ही दिखती थीं।

पू.गुरुदेवकी विलक्षण भावदशा थी। उनकी अर्चनाका प्रारम्भ होते ही उनका समग्र देश परिवर्तित हो जाता था; उनका देह परिवर्तित हो जाता था। पू.गुरुदेवके देहके कण-कणसे एक परम दिव्य चिन्मयी ज्योति झरती रहती थी। इसी प्रकार श्रीपोद्दार महाराजकी अ.सौ. धर्मपत्नी (पू.गुरुदेवकी धर्ममाताजी)–(भगवती त्रिपुरसुन्दरी), श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी (श्यामला मंजरी), श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगला (ललिता सखी), श्रीमती सावित्रीबाई फोगला (मधुमतीमंजरी) श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल (विशाखा सखी),श्रीराधेश्याम पालड़ीवाल (अशोक मंजरी)आदि कृपापात्रोंके देह एवं उनका देश, काल सभी तो पू.गुरुदेव अपनी कृपाराशिसे चिन्मय बना देते थे। पू.गुरुदेवकी दृष्टिमें जैसे ये सभी आते ही परम चिन्मय हो जाते थे, वैसे ही उनकी दृष्टिमें आनेवाले सभी तेरह सौ व्यक्ति भी ब्रजराज्यके लीलापरिकर हो जाते एवं पूर्ण चिन्मयतामें डूब जाते थे। इन सभी कृपापात्रोंके अंगों-अंगोंसे ही नहीं, अणु-अणुसे ऐसी चिन्मयी उज्ज्वल आभा प्रकट होती थी जो प्राकृत जगत्के कोटि-कोटि सूर्योंमें भी नहीं होती। साथ ही वह इतनी शीतल सुखद होती थी कि प्रपंचके कोटि-कोटि चन्द्रोंकी पुञ्जीभूत किरणोंसे भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती । पू. गुरुदेव गोरखपुर नगरकी गीतावाटिकामें रहते हुए भी, प्राकृत

जगत्में देहधारण किये रहते हुए भी, इस जगत्से सर्वथा अतीत अनन्त असीम दूर रहते थे। उनके देशमें सूर्य चमकता था, किन्तु वह प्राकृत जगत्का सूर्य नहीं था। पू.गुरुदेवके चिन्मय लीलाजगत्का सूर्य प्राकृत सूर्यसे परम विलक्षण, अत्यन्त सुन्दर, महाशोभन सूर्य था। पू.गुरुदेवके चिन्मय भावजगत्में भी एक पीयूषवर्षी चन्द्र था, परन्तु वह प्राकृत चन्द्र नहीं था – प्राकृत चन्द्रसे सर्वथा भिन्न, सौन्दर्यपुञ्ज, अतिशय सुषमाशाली, परम विलक्षण अनिर्वचनीय शोभाशाली दूसरा ही चन्द्र था। पू.गुरुदेवके देशका भी सुनील गगन था, उसमें मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु असंख्य तारकपंक्ति थी, परन्तु वे प्रापंचिक भौम, बुध आदि सर्वथा नहीं थे – इनसे सर्वथा पृथक् परम रमणीय, तेजोमय, चिन्मय थे।

ओह ! लेखककी कल्पनामें वह शब्दराशि ही नहीं आ रही जो पू. गुरुदेवकी विहार-भूमिके गीतावाटिकामें अवतरणको व्यक्त कर पावे। इसी प्रकार जो यहाँ इस मलिन कामपूर्ण पापमय तेरह सौ प्राकृत व्यक्तियोंमें पू. गुरुदेवके लीलाराज्यके चिन्मय पात्रोंके अवतरणकी पवित्रता, सौन्दर्यराशि एवं चिन्मयताको अभिव्यंजना प्रदान कर सकें। पू.गुरुदेवकी ओर-छोरविहीन कृपा-माहेमाको भाषा दी जा सके, यह संभव ही नहीं है।

कोई दार्शनिक यहाँ जिज्ञासा कर सकता है, उसे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी नक्षत्र, जल, वायु, गगन नाम सुनकर कदाचित् शंका खड़ी हो सकती है कि आप श्रुतिविरुद्ध बात कैसे करते हैं जबकि श्रुतियाँ कहती हैं –

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।(कठ. २।२।१५)

वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्र एवं न तारकसमुदाय ही प्रकाशित होता है और न विद्युत् ही प्रकाश करती है। फिर वहाँ अग्निका प्रकाश तो संभव ही कहाँ ? क्योंकि उस नित्य प्रकाशसे ही तो इन सूर्य, चन्द्र, तारकों आदिमें प्रकाशका संचार होता है, उसके आंशिक प्रकाशको पाकर ही तो ये प्रकाशित हो रहे हैं, सारा जगत् ही उसीके क्षुद्रतम अंशसे ही प्रकाशित हो रहा है। श्रुति प्रतिपादित यह चिन्मय धाम भी पू.गुरुदेवकी विन्मय ब्रजेन्द्रपुरीसे पृथक् सत्ता नहीं रखता। अवश्य ही इस श्रुतिप्रतिपादित ज्योतिर्मय धाममें जो भाग्यवान् एक बार निमग्न हो जाता है, वही इसके पश्चात् ही यह अनुभव कर पाता है कि पू.गुरुदेवके लीलालोककी ब्रजेन्द्रपुरीमें सूर्य, चन्द्र आदि हैं तो

परम सत्य, परन्तु वे ग्रहगण प्राकृत ग्रहोंसे सर्वथा भिन्न हैं–

प्राकृतेभ्यो ग्रहेभ्योऽन्ये चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः (श्रीभागवतामृतम्)

पू.गुरुदेवके भावराज्यकी ऊपर वर्णित कुंज, निकुंज, प्रासाद, गिरि, निर्झर, सरोवरों, साथ ही गोप, गोपी, सखा, सखियोंका कोई इत्थंभूत रूप नहीं था; इतना है, ऐसे है, ऐसे नहीं है; इस प्रकार इनके लिये कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती थी। पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाके भावराज्यकी एक-एक वस्तु स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दनकी स्वरूपशक्तिकी परिणति थी, इसीलिये ये सभी पूर्णतया नियममुक्त, सर्व-तंत्र-स्वतंत्र, अमर्यादित थे। पू.गुरुदेव स्वयंकी परिणतिको ही लें, वे कुछ काल श्रीराधारानीकी प्रिय सारिका रहे, फिर मंजुलीलामंजरीके भावमें रहे, फिर प्रिया श्रीराधारानीकी अनुजा मंजुश्यामा भावमें रहे और तब स्वयं भगवती श्रीमती राधारानीके रूपमें चिर-प्रतिष्ठित होगये। इसी प्रकार उनकी जन्मदात्री माताकी भी अनेक परिणितियाँ हुईं, कभी माता पार्वतीके रूपमें, कभी ब्राह्मणी भागुरि ऋषिकी पत्नी, तदनन्तर श्रीराधारानीके मस्तकपर नित्य विराजित रहनेवाली सौदामिनी नामक अलंकारके रूपमें उनकी परिणति हुई । इसी प्रकार अ.सौ. सावित्रीबाई फोगला (श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री)पहले मधुमतीमंजरी रहीं और तब पू.गुरुदेवके स्वयंके राधाभावमें प्रतिष्ठित होनेपर उन्हें पू.गुरुदेवका पूर्वभाव मंजुश्यामा पद प्राप्त हो गया। पू.गुरुदेवका भावराज्य जड़जगत् नहीं होनेसे वहाँका प्रत्येक व्यक्ति, वहाँकी प्रत्येक वस्तु, एवं परिस्थितिके रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा, भाव आदिकी कोई इयत्ता नहीं थी। पू.गुरुदेवके भावलीलाराज्यके सभी पात्र, यहाँतक कि वहाँकी पृथ्वीका एक लघुतम रजकण भी उनके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको अप्रतिम सुख देनेके लिये उनकी अचिन्त्य लीलामहाशक्तिकी योजनाका निरन्तर अनुसरण करता रहता था। लीलामहाशक्ति प्रिया-प्रियतमकी एक मात्र अनन्त भावसुख-विधात्री हैं। अतः उनकी जब जैसी लीलाका प्रकाश होना होता था, वे सब उसीके अनुरूप हो उठते थे। वहाँके जितने भी लीलापरिकर थे, उन सभीका अस्तित्व ही प्रिया-प्रियतमकी लीलाको मधुरातिमधुर बनाना था। इनमें स्वयंमें रसपानकी लालसाका सर्वथा अभाव होकर, रसदान करनेकी ऐसी अतीव इच्छा थी, जिससे वे भाँति-भाँतिके उपकरणोंसे अपने प्रिया-प्रियतमको क्षण-क्षणमें आनन्दसिन्धुमें निमग्न करनेके लिये न जाने कितनी बार अपना रूप-परिवर्त्तन, अपने अस्तित्वका अदर्शन आदि अतिशय चमत्कार कर देनेवाली

चेष्टाएँ करते थे।

पू.गुरुदेवने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको अपने सभी लीलापरिकरोंके नाम, उनके स्वरूप, वय, स्वभाव और उनकी सेवाओंका अति संक्षेपमें परिचय कराया, साथ ही उन्हें यह भी बताया कि उनसे जुड़े तेरह सौ एवं कुछ व्यक्तियोंमें किन-किन व्यक्तियोंकी किन-किन पात्रोंमें परिणति होने वाली है। पू. गुरुदेवने श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे यह भी आशा की कि वे इन व्यक्तियोंको वर्गबद्ध करके कम-से-कम दिनमें एक बार तो अवश्य ही अपने-अपने स्वरूपभूत लीलापरिकरोंमें समर्पित कर दें। और उनका यह समर्पण-कर्म उनकी जीवन-व्यापी साधना बन जावे।

पू.गुरुदेवने अपने सम्पर्कमें आये तेरह सौ एवं कुछ व्यक्तियोंमेंसे अधिकांशको तो श्रीकृष्णभावमें ही समर्पित किया हुआ था। शेषमेंसे अनेक सखावर्गके भावके थे।

पू.गुरुदेवने अपने सखावर्गके लीलापात्रोंको उनके प्रधान भावोंके अनुसार अष्टभावोमें विभाजित कर रखा था। वे आठ भावप्रधान वर्ग निम्न थे। (१) सुहृद भावप्रधान सखा (२) समायु वर्गके सखा (३) प्रिय सखावर्ग (४) प्रिय नर्मसखावर्ग (५) विदूषक सखावर्ग (६) विट सखावर्ग (७) चर एवं दूतसखावर्ग (८) चेट वर्गके सखा जो नियत कार्य करने वाले सेवक थे।

(१) सुहृद्भाव प्रधानता वाले वर्गमें श्रीकृष्णके वे गोपसखा हैं, जो आयुमें श्रीकृष्णसे बड़े हैं। इनपर यशोदा मैया अपने लालकी रक्षाका भार डाले रखती हैं। ये निम्न हैं – (१) बलभद्र (श्रीबलरामजी) (२) सुभद्र (३) भद्रवर्धन (४) मण्डलीभद्र (५) कुलवीर (६) गोभट (७) महाभीम (८) सुरप्रभ (९) विजयाक्ष

इनमें प्रमुख श्रीबलरामजी ही सदैव रहते हैं और जब किसी कारणवश श्रीबलरामजी गोचारणके समय अनुपस्थित होते हैं तो उस समय इस वर्गका नेतृत्व विजयाक्ष करते हैं। इन उपरोक्त सखाओंका मुख्य दायित्व श्रीकृष्णके साथ रहकर उनकी रक्षा करना होता है। श्रीयशोदामैया द्वारा दायित्व देकर ये श्रीकृष्णके वनमें संरक्षक बनाये गये हैं।

अब दूसरी श्रेणी उस सखावर्गकी आती है जो श्रीकृष्णके या तो समायुके हैं, अथवा उनसे कुछ वयमें छोटे हैं। ये श्रीकृष्णके सदाके साथी हैं, इनमें से कुछ तो श्रीकृष्णके साथ नन्दभवनमें ही खाते-पीते, सोते हैं। इनमें प्रधान हैं वरूथप और उनके आठ मुख्य सहयोगी हैं – विशाल, वृषभ,

ओजस्वी, अम्बि, देवप्रस्थ, मन्दार, मणिबन्ध एवं कुसुमापीड़।

तीसरी श्रेणी प्रियसखावर्गकी आती है, जिनमें प्रामुख्य तो श्रीदामका है एवं उनके सहयोगी निम्न हैं – दाम, सुदामा, वसुदाम, किंकणी, भद्रसेन, अंशुमान, स्तोककृष्ण (श्रीकृष्णके चाचा नन्दनका पुत्र), और पुण्डरीकाक्ष। ये प्रिय सखा श्रीकृष्णके नित्यके क्रीड़ासंगी हैं एवं उनका निरन्तर आनन्दवर्धन करते रहना ही इनका मुख्य कार्य है। ये सभी परम शान्त प्रकृतिके हैं और श्रीकृष्णके परम प्राणरूप हैं । ये सभी समान वय एवं रूपवाले हैं। इन्हें श्रीकृष्ण प्राणोपम प्रेम करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि श्रीकृष्ण जो भी भोजन करते हैं, उसमें से प्रथम ग्रासका आधा भाग स्तोकके मुखमें पहले देते हैं, फिर शेष स्वयं अपने मुखमें डालते हैं। स्तोककृष्ण देखनेमें श्रीकृष्णकी प्रतिमूर्ति हैं। भद्रसेन इन सभी सखासेनाके नायक हैं। श्रीदाम श्रीकृष्णके पीठमर्दक सखा हैं।

चौथी सखाओंकी श्रेणी नर्मसखावर्गकी है। इनमें प्रमुख सुबल (श्रीकृष्णके चाचा सन्नन्दके पुत्र) हैं। इनके सहायक अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दन, विदग्ध एवं चन्दन हैं। श्रीकृष्णका ऐसा कोई रहस्य नहीं है जो इन नर्म सखाओंसे गोपनीय हो।

पाँचवी सखाश्रेणी विट सखावर्गकी है। ये श्रीकृष्णकी श्रीमतीराधारानीके साथ प्रणयलीलाके कार्योंमें सदैव सहायक रहते हैं। इनमें प्रमुख तो कडार हैं किन्तु इनका सहयोग करने वाले भारतीबन्धु, गन्ध, वेद, वेध, कुन्द, मन्दार, कलिन्द, एवं कुलिक हैं।

सातवीं श्रेणीके सखा हैं चर एवं दूत। इनमें प्रमुख चतुर नामक सखा हैं और इनके सहयोगी हैं – श्रीमान्, पेशल, विशारद, तुंग, वावदूक, मनोरम, नीतिसार एवं चारण। ये नाना वेष बनाकर गोपियोंमें विचरण करते हैं और उनके मनकी रहस्यभरी बाते पता लगानेमें अति चतुर हैं। ये कुञ्ज-सम्मिलनके उपयोगी दूत हैं। गोपियोंको संकेतस्थलीमें आमन्त्रण-सन्देश इन्हींके द्वारा श्रीकृष्ण भेजते हैं।

आठवीं श्रेणी उन सखाओंकी है जो नियत काम करनेवाले सेवक हैं। इनमें ताम्बूल, अंगराग, पुष्पालंकरण एवं इत्रादिकी सेवा तथा श्रीकृष्णको नाना वेषोंमें सजानेकी सेवा प्रमुख है। इनमें दय नामक सखा प्रमुख हैं और इनके सहयोगी हैं – मकरन्द, महागन्ध, प्रेमकन्द, सुमन, कुसुमोल्लास, पुष्पहास,

सुबन्ध एवं सुगन्ध।

इन उपरोक्त बहत्तर सखावर्गमें ही पू.गुरुदेवके जितने भी भाई थे, वे विभाजित थे।

इसी प्रकार पू.गुरुदेवकी जितनी भी बहनें एवं पुत्रियाँ थीं, वे निम्नलिखित उनचास सखियोंकी श्रेणियोंमें आती थीं। इन उनचास सखियोंमें से बारह सखियोंका वर्णन तो इसी अध्यायमें पूर्वतः खण्डिता भाव एवं प्रोषितभर्तृका भावका वर्णन करते हुए ललिता एवं इन्दुलेखाजीके प्रसंगमें किया जा चुका है। शेष सखियोंके भाव निम्न हैं (१) स्वाधीनभर्तृकाभावकी प्रतिनिधि श्रीविशाखाजी हैं। (२) दिवाभिसारिकाभावकी अधीश्वरी श्रीमती चित्रारानी हैं। (३) वासकसज्जा-भावका प्रतिनिधित्व श्रीचम्पकलताजी करती हैं। (४) उत्कण्ठिताभावकी प्रतिनिधि हैं श्रीरंगदेवीजी (५) विप्रलब्धाभावकी प्रधान हैं श्रीतुंगविद्याजी एवं (६) कलहान्तरिता भावकी प्रमुख गोपी श्रीमती सुदेवीजी हैं।

श्रीललिताजीका वर्णन खण्डिताभावके प्रसंगमें पिछले पृष्ठोंमें दिया गया है। दूसरी श्रीविशाखाजी हैं। ये श्रीराधारानीके केशोंकी स्निग्धताके रूपमें श्रीमतीसे नित्य संलग्न रहती हैं एवं इनका प्रधान भाव स्वाधीनभर्तृकाभाव है। इनका कुंज श्रीराधाकुण्डके ईशानकोणमें है। स्वाधीनभर्तृकाभावकी लहर जब ईशानकोणसे और उत्तुंग एवं परिशुद्ध रूपमें उमड़ती है तो इसी लहरको मधुमतीमंजरी कहा जाता है। ये मधुमतीमंजरी श्रीमती राधारानीके स्वरकी मधुरतामें नित्य निवास करती हैं। अब यही ईशान कोणकी लहर जब और विकसित एवं उद्दाम वेगसे उमड़ती है तो ये मधुमतीमंजरी, चन्दनमंजरीका स्वरूप ग्रहण कर लेती हैं। जहाँ विशाखा सखीकी उत्पत्ति रानीके केशोंकी स्निग्धतासे होती है, वहीं चन्दनमंजरीकी उत्पत्ति रानीके केशोंकी सुवाससे होती है।

ये चन्दनमंजरी ही और उत्तरोत्तर विकासको प्राप्तकर कर्पूरमंजरीमें पर्यवसित हो जाती हैं। कर्पूरमंजरीका नित्य निवास राधारानीके अंगविलेपनके सुवासमें है। अब कर्पूरमंजरीके भावमें भी जब और विकास, और वेग उठता है तो इनका ही परिशुद्ध स्वरूप शशिरेखामें हो जाता है। शशिरेखा रानीकी मुसकान (स्मिति)में ही नित्य स्थित रहती हैं। अब इसी स्वाधीनभर्तृकाभावका जब सर्वोत्तम विकास होता है तो हारहीरा रूपमें यह विकास प्राप्त करता है। हारहीराजी श्रीमती राधारानीके कण्ठमें लटकनेवाले पंचहारमें नित्य निवास

करती हैं।

इसी प्रकार पूर्व दिशामें चित्राकुंज है। श्रीचित्राजी दिवाभिसारिका भावप्रधान सखी हैं। इनका नित्य निवास रानीके कर्ण-कुण्डलोंमें रहता है। इनका उत्तरोत्तर उच्छलन ही क्रमशः विमलाके रूपमें होता है, जिनका निवास श्रीराधारानीके तनके गोरेपनमें होती है। इसी प्रकार पूर्वदिशाकी यह अभिसारिका भावलहर ही जब क्रमशः उत्तरोत्तर और विकासको प्राप्त करती है तो विमला मंजरी, रतिमंजरीमें परिणत हो जाती है। रतिमंजरीका निवास रानीके नूपुर और नूपुरकी ध्वनिमें होता है। रतिमंजरीका ही विकसित स्वरूप गुणमंजरी हैं जिनका निवास रानीकी कटिकी मेखला एवं मेखलाकी ध्वनिमें होता है। इन्हींका उत्तरोत्तर विकसित स्वरूप सुकेशी एवं सुकेशीका विकसित स्वरूप कुन्दवल्ली हैं। सुकेशीकी उत्पत्ति रानीके केशोंके कुञ्चितपनेसे होती है और कुन्दवल्लीकी उत्पत्ति रानीकी दोनों कलाइयोंके चार वलयसे होती है। यहाँ ध्यान रखनेकी बात है कि राधारानी अपनी प्रत्येक हाथकी कलाईपर चूड़ियोंके दोनों ओर दो वलय धारण करती हैं।

इन्दुलेखाजीका वर्णन पूर्व पृष्ठोंमें किया जा चुका है।

चम्पकलताकुंज राधाकृष्ण युगलकुण्डके दक्षिण दिशामें स्थित है और इनका मुख्य भाव वासकसज्जा है। जिनके कान्त दूर देशमें नहीं, ब्रजप्रदेशमें ही हैं, ऐसे कान्तकी प्रतीक्षा करती हुई जो स्वयंको एवं निज निकुंजको सुसज्जित करती है, ऐसी कान्ताको वासकसज्जा कहते हैं। वासकसज्जा-भावकी ही उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुखी धाराओंका नाम पालिका, लासिका, प्रेम, सुलोचना एवं मंजुलामंजरी है। चम्पकलताजी रानीके कण्ठकी सरसतामें, पालिकामंजरी रानीके पयोधरोंकी पीनतामें, लासिका दाहिने हाथकी पाँचों अंगुलियोंकी अँगूठियोंमें, प्रेममंजरी रानीके कपोलपर स्वेदविन्दुमें, सुलोचना रानीके कटाक्षमें एवं मंजुला रानीके पयोधरद्वयके मध्य भागमें की हुई चित्ररचनामें नित्य निवास करती है।

नैऋत्यकोणमें श्रीरंगदेवीजीकी कुंज है। श्रीरंगदेवीजी उत्कण्ठिता भावकी मूर्तिमान स्वरूप हैं। इनके ही क्रमशः उत्तरोत्तर विकसित रूप भद्रा, कुन्द, मंजुलीला, चारुशीला एवं विद्युन्माला हैं। श्रीरंगदेवीजी श्रीमती राधारानीकी नीवीकी डोर एवं गाँठमें निवास करती हैं। इसी प्रकार क्रमशः भद्रा, रानीके नयनोंके शीलमें; कुन्द, दंतपंक्ति एवं दन्तकान्तिमें, मंजुलीला,

बायें कपोलपर एक कृष्णवर्णीय विन्दुमें, चारुशीला, रानीके कण्ठदेशमें मोतियोंके पदक आभूषणमें, विद्युन्माला, वन्दनी जैसा मोतियोंसे बना भालके आभूषणमें निवास करती हैं।

राधाकृष्ण युगलकुण्डकी पश्चिम दिशामें श्रीतुंगविद्याजीका कुंज है। इनका प्रमुख भाव विप्रलब्धा है। संकेत प्रदान किये जानेके पश्चात् भी कान्तके दैवात् नहीं आनेपर जो आन्तरिक व्यथासे अत्यन्त संताप होता है, उस सन्ताप भावको ही विप्रलंभ कहा जाता है। यह विप्रलब्धाभाव भी क्रमशः उत्तरोत्तर छः उत्कर्षोन्मुखी उर्मियोंमें लहराता है। इस उत्कर्षमें ही तुंगविद्यामहाभाव क्रमशः धन्यामंजरी, मदनसुन्दरी, पद्ममंजरी सरोजिनी एवं मदनालसामें परिणत होता है।

तुंगद्याजीका जहाँ श्रीमती राधारानीके करके कंकणमें नित्य निवास है, वहीं धन्या कर-चरणके कम्पन, एवं कभी-कभी सर्वांगके कम्पनमें भी निवास करती है। मदनसुन्दरीजी रानीके नाभिके ऊपर वक्षस्थलसे नीचेकी रोमावलीमें, पद्ममंजरी दोनों नेत्रोंकी पलकोंके केशमें, सरोजिनी पदतलके पद्मचिन्हमें एवं मदनालसा रानीकी जँभाईमें निवास करती है।

श्रीराधाकृष्ण युगलकुण्डके वायव्यकोणमें श्रीसुदेवीकुञ्ज है। श्रीसुदेवी कलहान्तरिता भावकी प्रतीक है। जो अनुनय-विनयरत कान्तका रोषवशात् सम्मान नहीं करती और फिर कान्त-वियुक्ता हो जानेकी स्थितिमें अत्यन्तानुतापसे संतप्त होती है, उस कान्ताको कलहान्तरिता कहते हैं। कलहान्तरिताभावकी उत्तरोत्तर उत्कर्षोन्मुखी छः उर्मियाँ ही तारक, अशोक, सुधा, इन्दिरा एवं मनोहरा हैं। सुदेवीजी रानीकी अरुण कंचुकी स्वरूपा हैं तो तारक, पयोधरपर चित्ररचना, अशोक, नासिकाकी नथ, सुधा, अधरामृतरस, इन्दिरा, वामपदतलकी ऊर्ध्वरेखा, मनोहरा, गुच्छोंसहित भुजबन्ध हैं।

इन उपरोक्त आठ भावतरंगोंकी छः-छः उर्मियाँ, इस प्रकार अड़तालीस उर्मियाँ श्रीराधारानी महाभावसमुद्रकी हैं। इन्हें ही पू.गुरुदेव अपनी श्रीराधारानी समेत अड़तालीस बहनें कहा करते थे। उनचासवीं उर्मिमें उन्होंने उन सभी सखियोंका समावेश कर लिया था जो इनके अतिरिक्त कुछ भी, कहीं भी अन्य हैं। ये सभी श्रीमती राधारानीकी कायव्यूहरूपा, उनकी स्वरूपभूता, उनसे सर्वथा अभिन्न, उनमें ही समलंकृत हैं।

इन उनचास बहनों और बहत्तर भ्राताओंके अतिरिक्त पू.गुरुदेवकी

मातृवर्गकी अनेक श्रेणीकी गोपियाँ थीं, इनके नाम भी दिये जा रहे हैं। पू. गुरुदेवकी माताएँ – (१) बृषभानुपुरकी माता कीर्त्तिदा, नन्दगेहिनी यशोदा एवं बड़ी माता रोहिणी (२) मातामही – बृषभानुपुरकी राधारानीकी नानी मोक्षदा और श्रीकृष्णकी नानी पाटला (३) मौसी – कीर्त्तिमती एवं श्रीकृष्णकी मौसी –यशोदेवी, यशस्विनी (४) पितामही – सुखदा एवं श्रीकृष्णकी पितामही – वरीयसी (५) मामी – मेनका, षष्ठी और गौरी । बुआ – भानुमुद्रा, श्रीकृष्णकी बुआ – सुनन्दा, नन्दिनी। (६) ताई – श्रीकृष्णकी ताई तुंगी (उपनन्दजीकी पत्नी), पीवरी (अभिनन्दजीकी पत्नी)। चाची – कुवलया (सन्नन्दजीकी पत्नी), अतुल्या (नन्दनजीकी पत्नी)।

पू.गुरुदेवके सम्पर्कमें आयी अनेक माताओंको जिन्हें पू.गुरुदेव किसीको मौसी, किसीको बुआ, किसीको नानी कहते थे, वे सभी इन्हीं उपरोक्त गोपियोंमें परिणत होनी थीं ।

इसी प्रकार पू.गुरुदेवके पितृवर्गके भी अनेक लीला-परिकर थे। जैसे पितृवर्गके – बृषभानुबाबा एवं नन्दबाबा प्रमुख थे। पितामह – पर्जन्यजी एवं महीभानुजी थे; मातामह सुमुखजी एवं इन्दुगोप थे ; नन्दकुलके श्रीकृष्णके ताऊ – उपनन्द, अभिनन्द एवं बृषभानुकुलमें ताऊ महाभानुजी थे। नन्दकुलमें चाचा सन्नन्द एवं नन्दन थे, साथ ही बृषभानुकुलके चाचा भानु, रत्नभानु एवं सुभानु थे। नन्दकुलमें फूफा महानील एवं सुनील थे एवं भानुकुलमें काश गोप थे। नन्दकुलके मामा यशोवर्धन, यशोधर, यशोदेव एवं सुदेव थे, वहाँ बृषभानुकुलमें मामा भद्रकीर्ति, महाकीर्ति एवं चन्द्रकीर्ति थे। नन्दकुलमें मौसा मल्ल गोप थे, एवं बृषभानुकुलके मौसा कुश थे।

इस प्रकार तेरह सौ एवं कुछ व्यक्तियोंकी जिन-जिन भावोंमें परिणति पू.गुरुदेव द्वारा प्रार्थित की गयी थी एवं जिसे उनके प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा तथास्तु किया जा चुका था, उनकी सभीकी एक बृहद् सूची पू.गुरुदेवने श्रीगोस्वामी चिम्मनलालजी एवं अनेक सहयोगियोंसे मिलकर बनवायी। इस बृहद् सूचीमें सभी तेरह सौ व्यक्तियों और उनकी परिणतिको सांकेतिक भाषामें नामांकित किया गया था।

उदाहरणस्वरूप जैसे मधुमती मंजरीमें अमुक-अमुक व्यक्तिकी परिणति होनी थी तो एक गोलाकार बड़ा वर्तुल बनाकर उसमें पहले तो सांकेतिक भाषामें 'मधुमं'अंकित कर दिया जाता था, एवं तब नीचे जिन-जिन लोगोंकी

इस भावराशि-सिन्धुमें डूबनेका विधान था, उन लोगोंके नाम सांकेतिक भाषामें दे दिये जाते थे। यह सब अंकन इसीलिये किया गया था जिससे कि जिसे पू.गुरुदेव अपनी यह रस एवं भावपूजाका दायित्व दें, वह सही व्यक्तियोंके सही भावमें परिणतिकी ठीक पूजा सम्पादित कर सके। विस्मृतिवश उससे कोई भूल घटित नहीं हो।

इस प्रकार तेरह सौ एवं कुछ व्यक्तियोंको लीला-सिन्धुमें डुबोनेका जो कृपाप्रयास पू. गुरुदेव द्वारा किया जा रहा था, काष्ठमौन लेनेके पूर्व उन्होंने उसका समग्र दायित्व श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके कन्धोंपर डाल दिया। क्योंकि श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्र एवं 'कल्याण कल्पतरु' अंग्रेजी मासिक पत्रके सम्पादन एवं अनुवाद आदि कार्योंमें अतिशय व्यस्त थे, अतः पू.गुरुदेवने उनपर इतना ही दायित्व डाला कि वे इस सभी सूचीको एक सरसरी दृष्टिसे प्रतिदिन देख भर लें और चार बारकी अपेक्षा मात्र एक बार ही इन सभी व्यक्तियोंको भगवती श्रीराधारानीको समर्पण करनेकी महामंगलमयी क्रिया करलें।

पू.गुरुदेवने श्रीगोस्वामीजीपर अपने संकल्पसे ऐसी शक्ति संनिहित कर दी, जिससे मात्र उनके उस सूचीको पढ़लेने मात्रसे ही सभी प्राकृत विषयी प्राणियोंको जो उस सूचीसे संलग्न थे, उस परम चिन्मय भावराशिके उन अनमोल एवं शुचितम बीजोंका पल्लवन संभव हो गया जो पू.गुरुदेवने कृपा करके उनकी अनुर्वरा बंजर भूमिमें डाले थे।

इस प्रकार अपना अधिकांश पारमार्थिक दायित्व श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीपर डाल पू. गुरुदेव एक प्रकारसे अपने अधिकांश पारमार्थिक बोझसे हलके हो गये।

पू.गुरुदेव अनन्त कृपावतार थे। उनके पास ऐसे हजारों व्यक्तियोंका पत्राचार एकत्रित था, जिनमें पत्र-लेखकोंने अपने भीषण पतनकी अति वीभत्स एवं दयनीय दशाओंका निष्कपट वर्णन उनके सम्मुख किया था। पू.गुरुदेव प्रतिदिन ही अपनी मातृपूजा करते समय इन लोगोंकी पापराशिका उल्लेख अपनी आराध्या माँके सम्मुख निवेदन करते थे, जिससे अनन्त क्षमामयी कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुंसमर्था अघटनघटनापटीयसी उनकी माता उस पापमयी कर्मराशिको स्वाहा कर दे, साथ ही इन लोगोंके लिये कोई ऐसा मंगलमय विधान बना दे कि वे अपने भविष्य जीवनमें किसी भी प्रकार सदाचार-मार्गमें

अपने चरण अग्रसर कर पावें।

इस भयसे कि काष्ठमौन लेनेके उपरान्त ये पत्र किसी अन्य व्यक्तिके हाथ नहीं पड़ जावें, पू.गुरुदेवने इन सभी पत्रोंके वे पापवर्णनके अंश काटकर उन सभी पत्रोंको अग्निमें स्वाहा कर दिया। इस अंशको भी उन्होंने श्रीपोद्दार महाराज रूप महासिद्ध संतके पास एक बार इस आशासे भेज दिया जिससे उन व्यक्तियोंकी कर्मराशिको हलकी करनेका दायित्व कुछ वे भी स्वीकार कर लें। श्रीपोद्दार महाराजने उन्हें मात्र सरसरी दृष्टिसे देखा और सबके छोटे-छोटे टुकड़ेकर उन्हें जला दिये।

इस दायित्वसे मुक्त होनेके उपरान्त अब पू.गुरुदेवके पास बची थी उनकी ब्रजभावसम्बन्धी लाइब्रेरी। उनके पास गौड़ीय सम्प्रदायके एवं बृन्दावनके अन्य रसिकाचार्योंकी रस-विवेचना सम्बन्धी लभ्य एवं अलभ्य पुस्तकोंका पूरा संग्रह था। इस सभी पुस्तकालयको पू.गुरुदेवने अ.सौ. सावित्रीबाई फोगला (श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री)को प्रदान कर दिया, जिसे पू.गुरुदेवके काष्ठमौनके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराज रतनगढ ले गये एवं वहाँ वे सब पुस्तकें उनकी व्यक्तिगत श्रीकृष्णपुस्तकालयमें संयुक्त कर दी गयीं। अब पू.गुरुदेव सर्वभावसे पूर्णतया निवृत्त होकर काष्ठमौनव्रतके लिये तत्पर हो चुके थे।

———oo———

उन्मुक्तहस्त श्रीकृष्णवितरण

सन्तोंका जीवन करुणा एवं मंगलमयताका कैसा अगाध सिन्धु होता है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण इस लेखमें कर रहा हूँ।

तीर्थयात्रासे लौटकर आते ही श्रीपोद्दार महाराज अतीव रुग्ण हो गये थे। बड़े-बड़े डाक्टर आ रहे थे, किन्तु उनके रोगका सही निदाने-आकलन नहीं कर पा रहे थे। पू.गुरुदेव प्रतिदिन ही मध्याहमें उन्हें सँभालने जाया करते थे। एक दिवस जब पू.गुरुदेव उनसे मिलने गये थे, पू.गुरुदेवके संग मैं भी था। पू.गुरुदेवने संकेत करके मुझे बाहर बरामदेमें ही रुकनेकी आज्ञा दे दी थी। किन्तु उस बरामदेकी खिड़कीकी सन्धिसे श्रीपोद्दार महाराजके दर्शन भी हो सकते थे और उनकी वाणी भी स्पष्टतया सुनाई पड़ती थी। मैं बरामदमें

खिड़कीकी संधिसे ही श्रीपोद्दार महाराजका दर्शन–श्रवण कर रहा था –

"श्रीपोद्दार महाराज पूर्वाभिमुख मस्तक किये एक पलंगपर लेटे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुकी एक पतली-सी धार बह रही थी। वे हाथमें एक कागजका पैड लिये थे और कुछ लिख रहे थे। उनके नेत्र बन्द थे। पू.गुरुदेव उनकी पलंगके पास रखी एक कुर्सीपर बैठ गये और एकटक उनके मुखपर व्यक्तं अपूर्व शान्ति और प्रीतिकी प्रवाहित धाराका दर्शन करने लगे। कुछ समय इसी प्रकार निकल गया। किंचित् काल पश्चात् पू.गुरुदेवने श्रीपोद्दार महाराजके हाथकी नब्ज देखनेके लिये उनका हाथ ग्रहण किया। पू.पोद्दार महाराजको उस हस्तस्पर्शसे ही पू.गुरुदेवके आगमनका भान हुआ। वे बोल उठे– "बाबा ! क्या करूँ ? इधर तीर्थयात्राकालमें चार-पाँच माहमें सब मिलाकर मात्र चार घण्टे भी नहीं सो पाया हूँ। बाबा ! मुझसे हजारों लोग आबाल-वृद्ध जुड़े हैं। अब इधर तीर्थयात्रा-भ्रमणमें हजारों लोगोंकी कर्मराशि मेरा बोझ और बन गयी है। अब बताइये भला ! इन सभीके अनादि संसरणका अन्त हो जाय, ये मुझसे जुड़े, जाने-अनजाने मुझे अपना माननेवाले सभी जीव भवबन्धनसे मुक्त हो जावें, इसका भला क्या उपाय हो ? मेरी चिन्ताका अभी भी यही हेतु बन रहा है। मैं तो अभी भी बाबा ! लेटा-लेटा श्रीकृष्णसे प्रार्थना कर रहा था। मेरे सम्मुख तो श्रीमद्भागवतके गोपीगीतका यही श्लोक बार-बार उभर रहा था –

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलाद्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः।।"

"दयालो ! प्रभो ! जब आप भयंकर विषकी औषधि कर सकते हैं, यहाँ तक कि जो निष्प्राण हो चुके हैं, वे भी आपके स्पर्श मात्रसे सुखमें सोये व्यक्तिकी तरह परम उल्लसित नवजीवन प्राप्तकर उठ खड़े हो सकते हैं, अघासुर जैसे सर्पके मुखमें प्रविष्ट व्यक्तियोंकी आप रक्षा कर सकते हैं, आँधी-बिजली एवं घनघोर वर्षासे डूबते लोगोंको बचा सकते हैं, व्योमासुर और अरिष्टसे अपने जनोंकी रक्षा कर सकते हैं, तो प्रभो ! इन संसार-सर्पसे डँसे हुए, माया-विषसे अन्धे, बहरे एवं बेहोश, पापाचार रूप अघासुरके मुखमें पूरे निगले गये मेरे स्वजनोंकी भी रक्षा कर लीजिये न !"

"कृपासिन्धो ! इन मेरे स्वजनों, मुझे अपना आत्मीय, हितू, साथ ही देह सम्बन्धसे अपना सम्बन्धी-नाती माननेवाले लोगोंको भवदावानलने चारों

ओरसे घेर लिया है, इसके निवारणका आपकी शरणमें जानेके अतिरिक्त मेरे पास तो कोई भी उपाय नहीं है। इस भीषण नारकीय तापसे अपने आपको बचा लेनेकी इन सभीके पास भी कोई शक्ति शेष नहीं है। ये तो इस भीषण विषयभोगरूप नरकाग्निको सुखकारी मानकर बार-बार पतिंगेकी तरह उसीमें कूदनेको आकुल हैं।"

"प्रभो ! इस दावाग्निज्वालाका ये तो माँग-माँगकर स्वागत कर रहे है। और जो भी इस ज्वालासे थोड़ा भी मुक्त है, हटा है, दूर है, या कम तप्त है, वह अपनेको हतभाग्य, कृपावंचित समझ रहा है।"

"हे महाप्रभावशाली ! इस भवदावाग्निसे इन सभी अभागों, बुद्धिहीनोंकी मुझ शरणागतकी ओर देखकर ही रक्षा कर लीजिये।"

"हे प्राणपति ! आप मेरे तो बान्धव हो ही, सभीके एकमात्र आप ही आश्रय हो, इन सब आत्मीयजनोंकी ओरसे मैं हे कृष्ण ! आपको पुकार रहा हूँ। इनसे किसी भी हेतुकी आप सर्वथा आशा नहीं करें, ये तो माया-मूर्च्छित हैं, सब प्रकारसे मायाके नशेसे पागल हैं, घोर विषयान्ध है। इनकी ओर मैं स्वयं ही भले ही कृष्ण-कृष्ण कहकर पुकार लूँ ! ये तो निरन्तर भोग-भोग की ही रट लगाये हैं। इन संतप्त, वज्रमूढ़ व्यक्तियोंकी इस मायावह्निको आप अपनी योगमायाशक्तिका विकासकर पी जाइये, न प्रभो !"

"हे नीलसुन्दर ! आप एक महाजलधरतुल्य प्रकाण्ड विग्रहका आविर्भाव करें, जो इन त्रितापतप्त जीवोंकी भोगाग्निको समूल बुझादे।"

श्रीपोद्दार महाराज यद्यपि धीरे-धीरे पू.गुरुदेवसे वार्त्ता कर रहे थे, परन्तु उनकी वाणी स्पष्ट मेरे कानोंमें पड़ रही थी – "बाबा ! कितनी ही प्रार्थना करो, श्रीकृष्ण तो पूर्ण स्वेच्छाचारी हैं, उनका पूर्ण मंगलमय कृपा-विधान तो जब क्रियाशील होगा, तभी होगा। वे मेरी सब बाते सुन लेते हैं एवं मुसका देते हैं। इधर तीर्थयात्राकालमें हजारों लोगोंने प्रणाम कर-करके मुझपर तो अपनी अतीव गन्दी कर्मराशि फेंकी ही है। अब मेरे लिये तो यही समस्या है कि यह भीषण कर्मराशि कैसे कटे ? चाहे अति अल्पांशमें ही सही इस कर्मराशिको मेरे शरीर द्वारा ही भोगूँ, इसके सिवा कोई उपाय ही शेष नहीं है। इस कर्मराशिको काटनेके दो ही उपाय हैं, या तो सबसे एकान्त होकर मनको दो-चार वर्ष पूर्णतया विशुद्ध सत्वमें डुबा दूँ, अथवा रोगके रूपमें प्रभुकी इस शरीरमें अर्चा करूँ। बाबा ! जब एकान्त होना अपने वशकी ही बात नहीं है तो रोग सह रहा

हूँ। अब बिचारे डाक्टर-वैद्य क्या निदान कर पावेंगे ? उनको इस रोगका हेतु ही पकड़में नहीं आ सकता। ''

मैं चुपचाप द्वारपर बैठा पू.पोद्दार महाराजकी वार्त्ता सुन रहा था। मैं विचार कर रहा था – ''कैसे महान् हैं ये सन्त ! कितनी करुणा भरी है, इनके हृदयमें ! जैसे ही ये किसीका अनिष्ट देखते हैं, दया इन्हें झकझोर देती है। उस दया-करुणाके प्रचण्ड वेगसे परिचालित होकर ये पहले तो उसके चतुर्दिक् अपनी शीतल छाया करते हैं, न्यायविधानके रक्षार्थ तप्त सूर्यरूपी यमराजका ये अपने शान्त सात्विक भजनमय अस्तित्वसे ढँक लेते हैं। अब अपने हृदयकी वात्सल्यराशिरूप जलवर्षासे ये अपना अस्तित्व समाप्त होनेतक रसवर्षा करते रहते हैं। एक-दो स्थानोंमें ही नहीं, ये तो विश्वभरको आप्यायित करनेका व्रत लिये हैं। इनका कोई एक देश अपना नहीं, एक परिवार अपना नहीं, जो इनकी छायातले आजाय, चाहे वह किसी देश, जाति, धर्मका जीव हो, वही इनका अपने-से-अपना हो जाता है। ये श्रीपोद्दार महाराज, ये मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबा, ये करुणाशील महापुरुष यही तो कर रहे हैं। हम तो अपने स्वरूपको ही इस शरीर रूप माया-मदिराका पानकर भूले हैं। हमारे सामने सभी प्रकाशके स्रोत सूर्य (सन्त एवं शास्त्रोंकी वाणी), चन्द्र (सदाचार एवं स्वधर्माचरण), एवं नक्षत्र (तीर्थसेवन, दान, पुण्यादि कर्म), सभी तो इस शरीर-भोग एवं इन्द्रियोंकी तृप्ति रूपी घनी अँधेरी काली घटासे घिरकर लुप्त हो गये हैं। हमारे चित्तमें तो पूर्णतय रजोमय नाद, अभिमानके गर्जनका ही पूरा बोलबाला है। सर्वत्र तमका घना आवरण हमारी बुद्धिको पूरी तरह ढक चुका है। यद्यपि है यह अज्ञानजन्य प्रतीति मात्र। हम स्वरूपतः हैं स्वप्रकाश स्वरूप। हमारे आत्मारूप निर्मल सर्वव्यापी, अनन्त गगनका इस तम रूप अज्ञानजन्य घनघोर घटासे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह तम हमारे स्वरूपको आवृत कर ही नहीं सकता। ब्रह्मस्वरूप जीवात्माका आवरण किसी भी प्राकृत गुणसे संभव ही नहीं। ये सब दुःख-अभाव, रोग-शोक, संपत्ति-विपत्ति, यश-अपयश,जन्म-मृत्यु अज्ञानजन्य प्रतीति मात्र हैं। किन्तु अपने ऐसे स्वरूपका भान जीवको तभी होता है, जब हमारी आँखें उन सान्द्रनीलद्युति ब्रजराजतनय श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर केन्द्रित हों। किन्तु कठिनाई यही है कि या तो घोर दुःख भोगोंसे हम सर्वथा मूढ़ हो चुके होते हैं, बेहोश रहते हैं, अथवा सम्पत्ति-सफलताके अभिमानकी मदिरा पिये हम प्रलापरत रहते हैं।

ये पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव जैसे सन्त हमारी उग्रतम पापराशिको अपने शरीरपर रोगरूपमें ग्रहण करके भी हमारी रजसे भरी मैं-मेरेकी गर्जनाको अपने आराध्य नीलसुन्दरके मधुमय कण्ठसे निस्सृत मुरलीके स्वरमें विलीन कर देनेको अहा ! कितने समुत्सुक हैं। हमारी घोर तमकी कालिमाको ये उन इनके परम प्राणधन जीवन-सर्वस्व प्राणाधिक निरंजनकी नीली ज्योतिमें घुलाकर उनकी सेवाका उपकरण बनाना चाहते हैं। अहा ! इन सन्तोंकी हमारे प्रति प्रवाहित अजस्र आत्मीयता और अनन्त करुणाकी बलिहारी है कि ये प्राकृत सत्वके आलोकको अपने प्राणसारसर्वस्व जीवनधनकी चरणनखचन्द्रिकामें डुबा देना चाहते हैं।

पू.गुरुदेवके काष्ठमौन लेनेका दिन ज्यों-ज्यों निकट आ रहा था, स्थान-स्थानसे लोग गोरखपुर आ रहे थे। दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह परिवार, स्त्री-पुरुष एवं बच्चों सहित, कलकत्ते, बम्बई, इलाहाबाद, कानपुर, बनारस, बीकानेर, रतनगढ, दिल्ली, लखनऊ, भागलपुर, गया, फखरपुर न जाने कहाँ-कहाँसे प्रतिदिवस चले आ रहे थे।

डाक्टर एवं वैद्योंके लाख मना करनेपर भी लोग जब कलकत्ते, बम्बई, दिल्ली आदि सुदूर स्थानोंसे आते तो, आते ही प्रथम दर्शन करने तो पोद्दार महाराजके कक्षमें जाते ही। फिर किसी सद्गृहस्थके घरमें यदि कोई आता है तो उसे ठहराने, भोजन, नाश्तेकी उन्हें व्यवस्था करनी ही होती है, विदा करते समय विदाईके दो फल उन्हें अपने हाथों देने ही पड़ते हैं। इस सब कार्यके लिये उन्हें अपने अप्राकृत लीलाजगत्को छोड़ प्रकृतिके धरातलपर आना ही होता था। यह सब अपरिहार्य था।

सन् १९५६ ई.के इस रुग्णताकालमें श्रीपोद्दार महाराजने अपना एक निवेदन भी लिखा था, जो उनके उस समयके अनुभूतिपूर्ण पदोंकी पुस्तिकाके साथ प्रकाशित होने वाला था, किन्तु बादमें अपने आत्मगोपन-स्वभाववश उन्होंने इसे प्रकाशित होनेसे रोक दिया था। बादमें इसे पद-रत्नाकर नामक श्रीपोद्दार महाराजके सम्पूर्ण काव्यसंकलनमें गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित किया गया। पाठकोंको श्रीपोद्दार महाराजकी उस समयकी वास्तविक मनोदशाका परिचय उनकी ही लेखनी द्वारा लिखित मिल जाय, इस दृष्टिसे इसे यहाँ दिया जा रहा है।

श्रीपोद्दार महाराजका निवेदन

"मंगलमय भगवान् अनन्त कृपासिन्धु हैं। उन्होंने कृपा करके मंगलमय रोग भेजा। महीनों बिछौनेपर पड़े रहना पड़ा। डाक्टर-वैद्योंने सम्मति दी –'पूर्ण एकान्तमें पूरे आरामसे रहना चाहिये, मिलने-जुलने लोग न आ पायें। कोई काम न करने दिया जाय।' अतः लोगोंका मिलना-जुलना प्रायः बन्द हो गया। काम रहा नहीं। सहज ही अधिक समय अकेले रहनेका सुअवसर मिल गया। चिकित्सा औषध-पथ्यादिके समयको छोड़कर शेष समय अकेले ही बन्द कमरेमें रहता। अकेलेमें रोगका चिन्तन न करके मन दूसरे काममें लगता। यह काम था – आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षणका । जीवनके सभी तरहके चित्र आते – "लोग बड़ा सन्त, भक्त या महात्मा मानते हैं। ओह, कितना बड़ा धोखा है। जीवनमें कितनी अपार दुर्बलताएँ हैं, कितनी मलिनताएँ हैं और कितने दोष-कलुष भरे हैं।" यह सब देखकर हृदय भर आता, सहज दैन्यभाव उदय होता। आँखोंमें आँसू छलक आते, मन दयासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद पतितपावनके पवित्र पादपद्मोंमें लोट जाता एवं बारबार करुणापूर्ण भावसे अपने दोष बता-बताकर अपनी अत्यन्त दीनदशाकी ओर दीनबन्धुकी दयादृष्टिको आकर्षित करता । कभी स्वयं अपनेको प्रबोध देने लगता।

इसी बीच मन्द-मन्द मुसकराते हुए विश्वजनमनमोहन अनन्त आनन्दाम्बुधि श्रीश्यामसुन्दर आते, हँसकर शिरपर वरद हस्त रखकर कहते– 'मूर्ख ! क्यों रो रहा है ? क्यों दीन-हीन बनकर दुखी हो रहा है ? चल, मेरे साथ ब्रजमें; देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्दसागरमें निमग्न हो जा।'
श्रीश्यामसुन्दर ब्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कन्दकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मंत्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे। वे उसे परम रम्य क्षेत्रमें छोड़कर चले जाते और लग जाते अपने लीला-विहारमें।

मन स्वच्छन्द विचरण करता – कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्रांगणमें , कभी गोष्ठमें, कभी सखाओंके हास्य-विनोदमें, कभी वनसे लौटकर आवनीमें, कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रासमंडलमें, कभी प्रेममयी गोपांगनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, कभी किसी अकेली सखीके मनमें, कभी सखियोंकी मधुर प्रेमचर्चामें, कभी वंशीवटपर, कभी सावनके झूलोंमें, कभी शारदीय झूलोंमें, कभी होलीके रंगमें, कभी नवप्रफुल्लित कुसुम-सौरभित वृन्दाकाननमें, कभी श्रीमतीके पास, कभी श्रीश्यामसुन्दरके

पास, कभी निभृत निकुंजोंमें , कभी किशोर-किशोरीकी लीला-विहारस्थलीमें, कभी उनके परस्पर होनेवाले मधुरतम प्रेमालापोंमें , कभी उद्धव-गोपीमिलनमें, कभी मथुरामें होनेवाले श्रीकृष्ण-उद्धव मिलनमें , कभी मथुरा जानेके पश्चात् राधा तथा गोपांगनाओंके प्रेम-विरहदशामें, – इस प्रकार प्रतिदिन दिनरात महीनोंतक यह दैन्य और लीलादर्शनका प्रवाह अबाध चलता रहा। मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एवं श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूपमाधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी-कभी सौन्दर्य-सुधा-सागरमें जाकर अपने-आपको खो दिया। वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, विलक्षण था! उसका पूर्ण वर्णन संभव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं हैं। परन्तु जितना-कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोड़े अंशका तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोड़े-से उद्‌गारोंका इन तुकबन्दियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।''

उपरोक्त मनोदशा तो उन दिनों श्रीपोद्दार महाराजकी थी। अब पू. गुरुदेवकी उन दिनोंकी दिनचर्यापर विचार करें। तीर्थयात्रासे लौटकर आनेके पश्चात् सर्वप्रथम पू.गुरुदेवने गोरखपुरके स्थानीय लोगोंसे बात कर लेनेका निश्चय किया।

स्थानीय लोगोंमें सर्वप्रथम उनकी दृष्टि श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके परिवारपर गयी। श्रीगोस्वामीजीका नियम था कि वे प्रति दिवस उनके पास आते और दर्शनकर, मन-ही-मन दूरसे ही प्रणाम कर चल देते थे। उनसे तो वे मात्र एक क्षणके लिये अवश्य नेत्र मिलाया करते थे। यह उनका नित्यका नियम था। पू.गुरुदेवने उनसे इतना ही कहा कि काष्ठमौनके पश्चात् भी वे इस नियमको जबतक पू.गुरुदेव गोरखपुर रहें, अवश्य निर्वाह करें। श्रीगोस्वामीजी तो इस नियमका पू.गुरुदेवके गोरखपुरसे बाहर जानेपर भी निर्वाह करते थे। वे पू.गुरुदेवकी कुटीका प्रतिदिन दर्शन करके उस कुटीको ही पू.गुरुदेवकी अनुपस्थितिमें उनका स्वरूप समझकर प्रणाम कर लेते थे।

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी माता श्रीचन्द्राबाई एवं दोनों बहनों – सुलोचनाबाई एवं मंगलाबाईको उन्होंने अवश्य समय दिया। उन तीनोंको पू. गुरुदेवसे मिलाने मैं स्वयं लेकर गया था। ये तीनों जब पू.गुरुदेवसे मिलकर आयीं तो बहुत प्रसन्न थीं। मैं इन तीनोंको जब इनके निवासतक पहुँचाकर पू.

गुरुदेवके पास पहुँचा तो वे बोल उठे – "भैया ! इन तीनोंकी पूरी कर्मराशिकी फाइलें मैंने पढ़ली हैं, और श्रीकृष्णसे मेरे सम्मुख उन्हें फड़वा दी हैं। बस, जीवनके शेष कुछ दिन ये कष्ट और सह लें, इनका रास्ता सीधा सपाट राजमार्गकी तरह है। प्रायः यह रास्ता तय हो गया ही समझो। श्रीकृष्णकी इन्हें भरपूर सहायता मिल जायगी।"

· मैं पू.गुरुदेवकी बात सुनकर चकित था। मेरा रोम-रोम पुकार रहा था – "अशरण शरण ! प्रभो ! आपकी अयाचित अनुकम्पाकी जय हो। आप सन्त पुरुष हैं कि कृपाके जहाज हैं ? देहादिके अभिमानमें बँधा मैं कैसे आपको जानूँ ? हे महामहिम ! आपको जानने, समझनेकी क्षमता मुझमें कहाँ ? जो आप लीला कर रहे हैं, जीवकी शक्ति नहीं कि वह ऐसी लीला कर ले। क्या आपकी मेरे सम्मुख कही गयी यह उक्ति कि आपने इन अपाहिज प्राणियोंकी सम्पूर्ण कर्मराशिकी फाइल पढ़ली और उसे श्रीकृष्णसे फड़वा दी, असाधारण बात नहीं है ? क्या यह बात प्रमाणित नहीं कर रही कि आप प्राकृत शरीरमें अशरीरी अखिल-विश्व-मंगल-विधायक हो । गुरुदेव ! मैं आपको नमस्कार ही कर सकता हूँ। निश्चय ही श्रीपोद्दार महाराज एवं आप दोनों हमारे लिये अशेष मंगलविधाता हो।"

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी तीसरी बहन –सौ. ताराबाई एवं उनके पति श्रीबद्रीप्रसादजी एवं सबसे छोटी बहन सौ.विमलादेवी (लेखककी जन्मदात्री माता) को भी पू.गुरुदेवने बीकानेरसे बुलाया था और सबसे अति प्रेमसहित वार्त्ता की। सौ.ताराबाईके उन दिनों पेटमें एक गाँठका आपरेशन हुआ था, फिर भी उन्हें बराबर दर्द बना रहता था। वह यही कहती रही कि मैं तो जब दर्द अधिक होता है तो भगवान्‌को खूब गाली देती हूँ। पू.गुरुदेवने हँसकर इसीका अनुमोदन करते हुए कहा कि तू प्रतिदिन भगवान्‌को गाली ही दिया कर।

सौ. विमलाबाईसे जब उन्होंने भजनके विषयमें पूछा तो उसने इतना ही कहा कि वह दाऊजीके मन्दिरमें प्रतिदिन दर्शन करने जाती है और पू. गुरुदेवको अपना सगा भाई मानती है। पू.गुरुदेवने उससे इसी निष्ठाको जीवनपर्यन्त निभानेकी आज्ञा दी।

पू.गुरुदेवकी कृपासे श्रीगोस्वामीजीके पूरे परिवारकी उत्तम गति हुई। बहन मंगलाबाई का अन्तिम क्षण पू.गुरुदेवके सान्निध्यमें गोरखपुरमें ही आया

था। माता श्रीमती चन्द्राबाईके देहावसानपर पू.गुरुदेवने उनकी अर्थीको स्वयं कन्धा देकर उसे पैदल ढ़ोकर श्मशानघाटतक पहुँचाया एवं उसका दाह-संस्कार किया। सौ. विमलाबाईके अन्तिम क्षणोंमें पू.पोद्दार महाराज एवं पू.गुरुदेव स्वयं चलकर रतनगढसे बीकानेर आये एवं उसे भगवद्धामकी प्राप्तिमें हेतु बने। सुलोचना बाईको भी मृत्युके समय साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने दर्शन दिये एवं उसे भगवद्धाम लेगये। स्वयं गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी तो पू.गुरुदेवके दाहिने हाथ ही थे । उनके अंतिम क्षणमें तो पू.गुरुदेवने अपने चरण उनके अंगोंसे संयुक्त किये एवं उनकी परम भागवती गतिका बारबार स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख एवं स्मरण किया।

अचिन्त्य लीलामहाशक्तिकी जय हो। अपनी लीलाके मिससे न जाने किन-किन जीवोंको वह अघटन-घटना-पटीयसी पू.गुरुदेवके सम्मुख करती है और उन्हें श्रीकृष्णके पाववतम ब्रजधाममें प्रवेश करानेका उपक्रम बनाती है। दोपहरका समय था। गोरखपुर शहरके साहबगंज नामक मोहल्लेसे श्रीठकुरीबाबूको पू.गुरुदेवने मिलनेका समय दिया था। पू.गुरुदेव इन्हें अपना मित्र मानते थे। पू.गुरुदेवके मित्र माननेका अर्थ ही था कि इनकी परिणति श्रीकृष्णके सखावर्गमें होनी निश्चित हो चुकी थी।

पू.गुरुदेवको ये मित्रके स्थानपर 'मिंतर' कहते थे। 'मित्र' शब्द उनके द्वारा शुद्धतया उच्चारित नहीं हो पाता। पू.गुरुदेव उनके आते ही 'आओ मिंतर' कहकर स्वागत करते थे। इन्हें इन दिनों बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान लगा था। इनकी साहबगंज स्थित कोठी जिसमें इन्होंने कुछ वर्ष पूर्व रासलीला करायी थी, बिक चुकी थी। पू.गुरुदेव जब इन्हें प्रबोध कर रहे थे, उस समय मैं ही पू.गुरुदेवकी स्लेटपट्टीपर लिखे उनके वचन उन्हें पढकर सुना रहा था। पू.गुरुदेव कह रहे थे – 'मिंतर ! अब तो मेरे जीवनके मात्र कुछ माह ही अवशेष हैं, इसके पश्चात् तो मेरी दृष्टि नीची हो जायेगी और ऊपर उठनेसे रही। विश्वास कर सको तो मेरी बातपर अटूट विश्वास करलो। तुम्हारा कितना बड़ा सौभाग्य है कि महाशक्तिसम्पन्न शेष, महेश, एवं सनकादि योगीश्वरगण जिनके चरणोंकी कल्पोंतक उपासना करते रहनेपर भी जो सौभाग्य प्राप्त नहीं कर पाये हैं, वह तुम्हें श्रीकृष्ण अपना सखा बनाकर देने वाले हैं। भगवती लीलामहाशक्ति द्वारा यह विधान तुम्हारे लिये स्वीकृत हो चुका है। तुम्हें इसके लिये कोई भी साधना, किंचित् भी परिश्रम, कुछ भी चेष्टा नहीं करनी है। बस,

एक ही बात तुम्हें करनी है कि उन अनन्त करुणावरुणालय भगवान्‌की तुमपर असीम कृपा बरस रही है, इस कृपामयता पर विश्वास करलो। तुम्हें अटूट एवं अखण्ड विश्वास हो जाय कि सुख-सम्पत्तिकी वर्षा होते समय, साथ ही घोर दुःख-दारिद्र्यके झंझावातमें समान रूपसे उनकी कृपाकी निराविल धारा तुमपर संतत बरस रही है; इसके दर्शन होने लगें। और यदि यह नहीं हो सके तो तुम्हारे मनमें उस अंनुकम्पाकी प्रतीक्षा ही जागृत हो जाय –'कब प्रभुकी कृपा मुझपर ढलक पड़ेगी ; इस ओर ही दृष्टि केन्द्रित हो उठे; चातक जिस प्रकार निर्झरकी, सरिताकी, सागरकी, वारि-धाराकी ओरसे मुख मोड़कर एकान्त मनसे स्वाति बूँदोंकी ही प्रतीक्षा करता है। तृषाकी ज्वालासे उस विहंगमके प्राण भले ही झुलस जावें, पर अपने अभिलषित मेघके अतिरिक्त किसी भी अन्यकी ओर वह ताकता नहीं। इस प्रकार सबकी आशा परित्यागकर अपने सखा श्रीकृष्णकी कृपाकणिकाको पा लेनेकी उत्कण्ठा मित्र ! तेरे प्राणोंमें जग जाय; एवं जबतक श्रीकृष्णकी उस कृपाकी अनुभूति न हो, तबतक घोर तप आदिसे शरीर क्षीण करनेके बदले जन्मान्तरमें अपने ही अर्जित विविध कर्मफलोंको, प्रारब्धसे प्राप्त होनेवाले सुखदुःखरूप भोगोंको विकृतिशून्य अम्लानचित्तसे भोगते रहनेकी वृत्ति उदय हो जाय; साथ ही प्रभुके प्रेमकी स्फूर्ति होते रहनेके कारण कृतज्ञ हृदयसे गद्गद वाणीसे , रोमाञ्चित हुए शरीरसे अपने आपको अपने मित्र श्रीकृष्णके चरणसरोजोंमें समर्पित करते रहनेकी भावना अखण्डरूपसे बन जाय, बस, मेरे मित्र ! तुम्हें यही सावधानी रखनी है।

मित्र ! एक दिन तुम्हारा शरीर भी गिरेगा ही ; मेरे लिये तो यह संसार मात्र पाँच माह और है, किन्तु जब तुम्हारा शरीर गिरेगा उस समय याद रखना, ऐसा विधान तेरे सामने स्वप्नके चित्रकी तरह आवेगा। मित्र ! तुझसे कोई आकर प्रश्न करेगा," ठकुरी ! कहाँ जाना चाहता है ? देख, स्वर्गमें जाना चाहे तो तुझे ले चलूँ !" परन्तु उस समय पूछनेवालेको तू एक ही उत्तर देना – "भाई ! मैं तो अपने 'मिंतर'के पास जाना चाहता हूँ। मेरा मिंतर कहाँ मिलेगा, वहीं मुझे पहुँचादो।" इसपर कोई मेरी निन्दा करेगा – मेरा उपहास उडावेगा। कहेगा –"अरे, तू उ़स साधूके चक्करमें पड़गया है ? अरे, वह तो सर्वथा ढ़ोंगो-पाखण्डी था। अरे, उसका रास्ता तो तुझे भयंकर विपत्तिमें गिरा देगा।" परन्तु मित्र, सावधान रहना, यदि उनकी बातोंमें आगया, तब तो तुझे स्वर्गादि

लोक मिल जावेंगे, मैं नहीं मिल पाऊँगा। किन्तु यदि तू मित्र, सावधानीपूर्वक उनके बहुत समझानेपर भी अड़ा रहा और हिला नहीं, तो वे तुझे एक ऐसी जगह छोड़ जावेंगे जहाँ तुझे मेरे दर्शन होंगे। उस समय उनके द्वारा छोड़े गये स्थानपर तुझे कष्ट तो नहीं होगा, परन्तु विषयभोग नहीं मिलेंगे। वहाँ मेरी प्रतीक्षा अवश्य कुछ दिन तुझे करनी पड़ेगी, फिर एक दिन तुझे मैं मिल जाऊँगा। मैं आते ही तेरे चारों ओर एक परिधि बनाकर चला जाऊँगा, और तुझे समझा जाऊँगा कि "ठकुरी, इस लक्ष्मणरेखाको मत लाँघना, चाहे कोई कितना ही भयभीत करे, कितना ही आकर्षण दिखावे।" होगा वही , जैसे ही मैं लक्ष्मणरेखा खींचकर गया नहीं, माया अनेक रूप रखकर आवेगी। कभी वह तेरी पत्नीका रूप रखकर आवेगी। तेरी पत्नी रोती-कलपती दिखेगी, कभी वह सुन्दर युवती बनकर तुझे भरमाना चाहेगी, कभी कोई भयावनी आकृति तुझे डरावेगी। परन्तु यदि तू मेरे द्वारा खींची उस लक्ष्मणरेखाका उल्लंधन नहीं करेगा, तो तेरा कोई बाल भी बाँका नहीं कर पावेगा। फिर तो मिंतर एक दिन मैं आऊँगा ही और तुझे अपनी टोलीके साथ ब्रजधाम ले जाऊँगा। परन्तु सावधान कर देता हूँ ! जैसा मैंने आज तुझे बताया है, मृत्युके पश्चात् ठीक ऐसा ही होनेवाला है, इधर-उधर कदापि मत होना। बस, यही मेरा सन्देश है।"पू.गुरुदेव ठकुरीबाबूको बार-बार इन्हीं उपरोक्त बातोंको दोहरा-दोहराकर समझा रहे थे।

ठकुरी बाबूके पश्चात् चमड़िया परिवार आनेवाला था। चमड़िया परिवारके आनेपर पू.गुरुदेवने मुझे रोक लिया था। श्रीपरमेश्वरजी चमड़िया गीतावाटिकाके रोकड़िया थे। उनके दादा बहरे थे। उन्हें मुझे पू.गुरुदेवकी बात कानमें जोरसे कहनी पड़ती थी। उन्हें भी पू.गुरुदेव यही कहकर आश्वस्त कर रहे थे कि "आप लोग सभी स्त्री-पुरुषोंके लिये भगवती लीलामहाशक्तिकी ओरसे विधान बन चुका है – मृत्युके समय एक-एक प्राणीको श्रीकृष्ण दर्शन ही नहीं देंगे, हाथ पकड़कर अपने धाम ले जावेंगे। किसीको कोई गोपी बना देंगे, अथवा किसीको अपना सखा।"

तत्पश्चात् श्रीलखपतरायजी एवं उनकी पत्नीको समय दिया गया था। श्रीलखपतरायजी प्रधान-वन-संरक्षक, भारत सरकारके पदपर नागपुरमें कार्यरत थे। ये श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके सहपाठी रहे थे तथा उन्हींके माध्यमसे गोरखपुर सपत्नीक आकर उन्हींके घर ठहरे थे। ये गोस्वामीजीको

अपना धर्मभ्राता मानते थे। श्रीलखपतरायजीने पू.गुरुदेवसे मिलनेपर कुछ औपचारिक वार्त्ताके पश्चात् प्रश्न किया –" स्वामीजी ! क्या आपको भगवान्‌के दर्शन हो चुके हैं ? मैंने यही प्रश्न मेरे धर्मभ्राता श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे भी किया था, किन्तु इनका तो उत्तर नकारात्मक है। इन्होंने श्रीपोद्दारजीको भगवत्प्राप्त पुरुष मानकर अपना समग्र जीवन उन्हें समर्पित कर दिया है। आज ये यदि सरकारी सेवामें होते तो निश्चय ही किसी रजवाड़े स्टेटमें उच्चतम पदपर होते। इन्हें 'सर'की उपाधि मिली होती। किन्तु इन्होंने तो अपनी सभी योग्यता, बल्कि अपना जीवन ही श्रीपोद्दारजीको समर्पित कर दिया। ये बारबार मुझे भी श्रीपोद्दारजीके प्रति निष्ठाकी प्रेरणा देते रहते हैं। मेरी पत्नीकी इनके प्रति बहुत ही श्रद्धा भावना है। वह इन्हें अपना गुरु मानती है। वही प्रेरणाकरके मुझे इनके पास लाई है। मेरे तो ये बड़े भ्राता तुल्य हैं। स्वामीजी ! सच्ची बात तो यह हैं कि मैं तो ईश्वरपर इनको देखकर ही विश्वास करने लगा हूँ। मुझे आपसे दो ही प्रश्न करने हैं। एक तो ईश्वरके अस्तित्वके सम्बन्धमें; दूसरे, हम दोनों पति-पत्नीके अनुरूप किसी साधना एवं पथनिर्देशके रूपमें।"

पू.गुरुदेवने श्रीलखपतरायजी एवं उनकी पत्नीको जो कुछ उपदेश दिया, उसका सार-संक्षेप नीचे दिया जा रहा है।

"लखपत बाबू ! इसे निश्चय ही गले उतार लीजिये कि भगवान् चाहे वे श्रीकृष्ण हो, श्रीराम हों, विष्णु हों, नारायण हों, कोई भी रूपमें क्यों न हों, आप चाहें कि तर्कसे आपका भगवत्सम्बन्धमें समाधान हो तो यह असंभव है। भगवत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ तर्कातीत हैं। प्राकृत वस्तुएँ ही तर्कगोचर किंवा तर्कसम्मत हो सकती हैं। भगवान् जब प्रकृतिके प्रकाशक, उससे अतीत हैं, तो उन्हें इन्द्रियाँ प्रकाशित ही नहीं कर सकती हैं। श्रीगोस्वामीजी आपके धर्मभ्राता, एवं आपकी पत्नीके श्रद्धास्पद अपनी सामर्थ्यानुसार पूरी नीयतसे श्रीपोद्दार महाराजको समर्पित हैं, वे अपने स्वधर्मपर आरूढ सच्चे आचारवान्, निष्ठावान् ब्राह्मण गृहस्थ हैं, अब स्वप्रकाश परमानन्दस्वरूप परमात्मापर उनका वश तो है नहीं। अब वे कृपा-परवश हुए जब अपनी स्वप्रकाशिका शक्तिसे उनकी मन-बुद्धिमें उतरेंगे तभी तो वे आपके प्रश्नका सकारात्मक उत्तर दे पावेंगे।"

"लखपत बाबू ! आप अंग्रजीके विद्वान् हैं, परन्तु आपने उपनिषद् किसी वेदान्ती विद्वान्‌से नहीं पढ़े हैं। उपनिषद् कहते हैं – भगवान् स्थूल

नहीं,अणु नहीं, महान् नहीं, घन नहीं, द्रव नहीं, छाया नहीं, तम नहीं, वायु नहीं, आकाश नहीं, गन्ध नहीं, तेज नहीं, रस नहीं, नेत्र नहीं, कर्ण नहीं, वाणी नहीं, मन नहीं, प्राण नहीं, मुख नहीं, माप नहीं; इस प्रकार समस्त अपरमात्म मायिक पदार्थोंके निषेध करनेपर भगवान् मात्र सच्चिदानन्द स्वरूपमें द्रष्टा भावमें ही संकेतित किये जा सकते हैं। किन्तु जहाँ श्रुति उन्हें 'नेति नेति' कहकर अशेष द्रष्टा रूपमें ही संकेतित करती हैं, वहीं वे वेदगर्भ ब्रह्माजीके सम्मुख अपने अपरिसीम ऐश्वर्य समन्वित रूपमें दृष्टिगोचर हो उठते हैं। एक ओर जहाँ श्रुति कहती है उनके हाथ नहीं, पैर नहीं, नेत्र नहीं, कान नहीं, वहीं श्रुति जिनके नित्य गर्भमें निवास करती हैं, उन ब्रह्माजीको वे हाथ-पैर, नेत्र-मुख, कान-नाक वाले दिखाई पड़ जाते हैं। विधाता महान् आश्चर्यमें डूब जाते हैं, श्रुतियोंको जहाँ ब्रह्ममें हाथ-पैर-मुखकी उपलब्धि नहीं हो पाती, वहीं श्रुतिगर्भ को प्रत्यक्ष अपने सम्मुख वही ब्रह्म हाथमें दहीसे सने अन्नका ग्रास हाथमें धारण किये प्रत्यक्ष अपने गोपशिशुओं और गौओंको ढूँढता-फिरता दिख रहा है। श्रुति जिसको अपरिच्छिन्न ज्ञानस्वरूप, अनन्त कहती हैं, वह **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** –'कहाँ गये मेरे सखा, कहाँ हैं मेरी गौएँ, किधर हैं मेरे गोवत्स' – इस प्रकार ब्रह्माजीको अनजान अज्ञानीकी भाँति अपनी खोयी निधिका अनुसन्धान पा लेनेके लिये आकुल चारों ओर दौड़ता दिख रहा है।''

''श्रीलखपतरायजी ! अब आप तर्कसे , बुद्धिसे कैसे इसे सम्मत कह पावेंगे कि जो परात्पर तत्व है, वह गोपशिशु लीला कर रहा है, जो **'एकमेवाद्वितीयं'** है, वह शिशु वत्सान्वेषणमें चिन्तित है, जो घन परमानन्दस्वरूप है, उसके नेत्रोंसे अपने वत्सोंकी चिन्तामें आँसू बह रहे हैं, जो अखण्ड घन ज्ञानस्वरूप है, वह मूढ़त्वको प्राप्त है और जो अनन्त है, वह चारों ओर राह ढूँढ़ता भटक रहा है।;जो ब्रह्म हो, वह हाथमें दधिमिश्रित अन्नग्रासका ही त्याग नहीं करता, उसे साथ लिये आँखोंसे चिन्तातुर अश्रु प्रवाहित कर रहा है।''

''अतः आप इसे ठीक जान लीजिये कि भगवन्मार्गमें यदि किसीको भी चलना है, तो उसे जिनपर भी आपकी श्रद्धा हो जाय , ऐसे सन्त महात्मापर निर्विवाद विश्वास करना ही पड़ेगा। इसके बिना तर्कसे आप भगवत्तत्त्वको निर्धारण कर पावें, यह असंभव है।''

''लखपतबाबू ! नैसर्गिक सनातन नियमोंका उल्लंधन नहीं होता। किसी विशाल सरोवरमें तैरते हुए व्यक्तिको देखकर ठीक उसी प्रकार

जल-संतरणकी इच्छा तो कोई भी कर सकता है, इसी प्रकार निरभ्र गगनमें उड़ते हुए मानस मरालोंको देखकर कोई भी बालक अपने हाथ पंखवत् फैलाकर उसकी अनुकृति करता वैसी इच्छा भले ही करले, इस प्रकारके दिवास्वप्न भले ही देखे जावें, किन्तु ठीक पक्षियोंके समान गगन-विहार, कुशल तैराककी तरह जल-विहार करनेकी सामर्थ्य तो ईश्वर कृपा-प्रदत्त ही होनी संभव है। इसी प्रकार भगवद्दर्शन करना, भगवान्का लीला-परिकर होनां, भगवान्को भी वशमें करनेकी सामर्थ्य सबमें मात्र इच्छासे संभव नहीं है। यह तो कोई एक बिरला ही कृपापात्र जन्म लेता है और भगवत्प्रारब्ध उसके भालपर लिखा होता है। क्या सभी कोई नरसी भक्त होने संभव हैं ? किसीके केदारा रागमें गा लेने मात्रसे कोई छप्पन करोड़का माहेरा भरेगा ? किसीके हुण्डी लिख देने मात्रसे साँवलशाह हुण्डी भरते रहें तब तो सभी दिवालिये हुण्डी लिखते ही चले जावेंगे। परन्तु ऐसा होता नहीं है। किसी मीराका ही जहरका प्याला अमृत होता है, किसी द्रौपदीकी ही साड़ी अनन्त होती है।''

''अतः ऐसे विरले कृपापात्र महानुभावोंपर श्रद्धा करके उनपर निर्विवाद विश्वास करके उन्हें ही जीवन समर्पण किया जाय, तभी साधना करते-करते मृत्युके अन्तिम क्षणोंतक कोई एक प्रकाशकी क्षीण-सी रेखा हृदयको आलोकित कर पाती है।''

''यह सत्य है कि ऐसे महापुरुष आज श्रीपोद्दारजीके रूपमें हम सभीको प्राप्त हैं। यह आपपर, मुझपर, श्रीगोस्वामीजीपर, एवं यहाँ सभीपर भगवान्की अनन्त अपरिसीम कृपा है कि प्रभुके भक्त-वात्सल्यका असीम प्रकाश जिनके हृदयमें है, ऐसे सन्त हमें श्रीपोद्दार महाराजके रूपमें प्राप्त हैं। श्रीपोद्दार महाराजका अन्तःकरण वस्तुतः पूर्ण-पूर्णतया वृन्दावनधाम ही है। इन भक्तहृदय पोद्दार महाराजके अन्तःकरणमें प्रेममयी गोपसुन्दरियोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये ब्रजेन्द्रनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण कैसी-कैसी मनोहर लीलायें करते हैं, ब्रजपुरन्ध्रियोंके साथ उनकी रुचिका अनुसरण करते हुए वे उनके साथ यमुनाविहार, झूलन लीला, होली लीला, दानलीला, रासलीला आदि अभूतपूर्व लीलायें सम्पन्न करते हैं। निश्चय ही श्रीपोद्दार महाराजके प्रेममें भगवान् बँधे हैं। उन्होंने अपने चरण-संलालनका, वक्षस्थलपर अपने पुण्य पादपल्लवोंको स्थापित रखनेका इन्हें अधिकार दिया है। श्रीपोद्दार महाराजके लिये भगवान्के चरण नित्य सुखसेव्य हैं।''

"अतः लखपत बाबू ! आप तो उनसे ही शरणदान माँगिये। देखिये, मैं तो अब कुछ ही माहका प्राणी हूँ। मुझे तो मरा हुआ प्राणी ही समझें। जीवित भी रहा तो निष्प्रयोजन शवकी तरह मुझे पोद्दार महाराज अपने प्रेमवश भले ही ढोते रहें। अतः अब मैं तो आपके किसी प्रयोजनका हूँ नहीं। अब तो आप श्रीपोद्दार महाराजके ही गले मढ़ जाइये। हाँ, यह अवश्य है कि ये कभी-कभी ऐसा व्यवहार कर उठते हैं कि नये व्यक्तिका साहस नहीं होता कि इन्हें अपनी सेवा समर्पित कर सके। किन्तु श्रीगोस्वामीजी आपको राह दिखावेंगे।"

"वैसे श्रीपोद्दार महाराज ही से आप साधना भी पूछ लीजिये। मैं तो आपको विदा होता हुआ प्राणी यही आश्वासन दे सकता हूँ कि आपकी पत्नी तो मेरी बहिन है ही; आपको भी मृत्युके समय अन्तिम सोलहवीं साँसमें अवश्य-अवश्य श्रीकृष्ण दर्शन देंगे और आपकी सब साध पूरी कर देंगे। आप कृतार्थ हो जावेंगे। "

"इस मेरी बहिन (आपकी पत्नी) को कहियेगा, यह नागपुर लौटनेके पूर्व एक दिवस अवश्य मुझे भिक्षा करा देगी। मेरी छोटी मैया (गोस्वामीजीकी पत्नी) इन्हें सब रीति समझा देगी।" पू.गुरुदेवने इस प्रकार श्रीलखपतरायजीको भी वही अलभ्य वरदान देते हुए विदा दे दी। मुझे पू.गुरुदेवने इन भाग्यवान् दम्पतीको सादर गोस्वामीजीके घर जहाँ वे ठहरे थे, छोड़ आनेकी आज्ञा दी।

उन दिनों मेरी यही दिनचर्या थी। मेरे सामने ही निरे प्रातः पू.गुरुदेव मिलनेवाले व्यक्तियोंकी सूची बनवाते थे। मैं ही ध्यान रखता कि यथासमय सूचीके अनुसार लोग पहुँच पाते हैं या नहीं। श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीकी पत्नी, श्री गंगाबाबू (गीताप्रेसके मशीन विभागके प्रमुख), श्रीगुलाबचन्दजी बोथराकी पत्नी, श्री गोवर्धन शर्मा, श्रीरामजीलालजी शास्त्रीकी पत्नी,श्रीमाधव-शरणजीके श्वसुरजी, श्रीवैद्य विद्याधरजी, श्रीजीवबोधनसिंह दरबान, गीताप्रेसके पहलवान दरबान जो उत्सवोंमें ढोलक बजाते थे, – सभी आगन्तुक मिलने आनेवालोंको मैं तो मेरे पू.गुरुदेवसे एक ही आश्वासन दिया जाता देखता था, चाहे किसीकी माँग हो अथवा नहीं हो, उनका तो सबको एक ही आश्वासन रहता था, 'भैया ! विश्वास करलो मृत्युकी अन्तिम सोलहवीं साँसमें तुमपर श्रीकृष्ण अवश्य-अवश्य कृपा करेंगे।

मैं सोचता, कैसे हैं मेरे गुरुदेव श्रीराधाबाबा ! श्रीपोद्दार महाराजने तो आजतक उनके दाहिने हाथ श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीदुलीचन्दजी दुजारी,

यहाँतक कि अपने पुत्रोपम जामाता – किसीको भी यह आश्वासन नहीं दिया कि मृत्युके अन्तिम समयमें तुमपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा बरसेगी, और ये मेरे गुरुदेव राधाबाबा चाहे-अनचाहे, किसीके इष्ट भी श्रीकृष्ण हों या नहीं हों, उन्मुक्त हस्तसे श्रीकृष्णका दान कर रहे हैं। किसीने एक दिवस चाहे दुगुना-तिगुना पारिश्रमिक पाकर भी उनके उत्सवमें ढोलक बजा दी हो, चाहे कोई एक दिवस भी इनका सन्देश दरबान होनेके नाते किसी वांछित व्यक्तिको पहुँचा आया हो, कोई इनके कृपापात्र श्रद्धावान् सेवक का भले ही, दूरका भी रिश्तेदार हो, किसीने जीवनमें एक दिन भी इनसे सद्भावसहित कभी वार्ता भी करली हो, ये तो उसे मृत्युकी सोलहवीं साँसमें श्रीकृष्णदर्शनका दुर्लभतम वरदान उन्मुक्त कण्ठसे देते जा रहे हैं।

सचमुच ही जैसे नवजलधर विचार नहीं करता उच्च-नीचका, मलिन-पवित्रका, बस, जो भी उसकी छाया तले मात्र एक बार भी आ जाय सबको समान भावसे शीतल जलधाराका दान करता है, इसी प्रकार मेरे गुरुदेव जो भी उनके एक बार भी सम्पर्कमें आ गया, चाहे वह विषयी हो, पापी हो, स्वार्थी हो, अज्ञानी हो, कुमार्गगामी , अनाचारी हो, दैवी सम्पदासे सर्वथा हीन हो, वे तो हेतुरहित, बिना अधिकार-पात्रता देखे, मृत्युके अन्तिम समय सबको भवतापको समूल नाश कर देने वाले श्रीकृष्णके दर्शनका अमोघ वरदान देते चले जा रहे हैं। धन्य ! धन्य ! परम धन्य हो गुरुदेव ! जैसे महाउदार इनके आराध्य, इष्ट हैं, वैसे ही महाउदार ये उनके भक्त, उनके प्रेमी हैं। इनके प्राणप्रियतम ब्रजेन्द्रनन्दनने कब देखा है उच्च-नीचको, उज्ज्वल-तमोमय भावोंकी ओर, समान भावसे सबपर जैसे उन्होंने बरसायी है अपनी लीला-सुधाकी – करुणामृतकी मधुरतम धाराको। बालघातिनी पूतनाको मातृगति, त्रिवक्रा कंसदासीको प्रथम परिणीता पत्नीका पद, महानिर्दय अघासुर, बकासुर तृणावर्तादि असुरोंको – सभीको अनादि अनन्त संसरणके अवश्यंभावी अन्तका दान, समान कृपावर्षणके ही तो निदर्शन हैं। इससे पूर्व मत्स्य-कूर्म आदि रूपोंमें प्रभुकी कृपाका ऐसा अयाचित दान कहाँ किसे मिला था ? इसी प्रकार श्रीपोद्दार महाराज रूप महापुरुष द्वारा यह कृपावितरण यदि उनके शिष्य श्रीराधाबाबा द्वारा कराया जा रहा है, तो भी इसमें आश्चर्य क्या है ? श्रीराधा-बाबा श्रीपोद्दार महाराजके ही तो अंग-अवयव हैं। यदि हाथ दान करते हैं तो भी व्यक्तिको ही दानी कहा जायगा। यदि मुख आशीर्वाद देगा, तो भी

आशीर्वाद तो व्यक्तिके द्वारा ही दिया माना जायेगा। श्रीराधाबाबा और पोद्दार महाराज कोई पृथक् व्यक्तित्व तो थे नहीं। एक भागवती कृपारूप अवयवी (इकाई)के ही तो दो अंग-अवयव हैं। सच्ची आँखसे कोई देख पावे तो उसे तो यही दृष्टिगोचर होगा कि दोनों प्रकृतिपिण्ड मात्र एक नवजलधर श्यामल रूपके ही पूर्ण निजस्व हैं। इनमें यदि कुछ भी सार है, सर्वस्व है तो वह नवजलधर श्यामंल श्रीकृष्ण ही तो हैं। इस चिन्मयी अलौकिक अनोखी श्याम छटासे ही तो इनका अणु-अणु, अंग-अंग सिक्त है। सचमुच इनके रूपमें यदि किसीके प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त की जानी है तो यही कहा जायगा – हे नवजलधर श्यामल अंगकान्तिवाले प्रभो ! आपकी कृपा एवं दयाका बलिहारी है।

कृपासिन्धुकी उर्मियोंमें उद्दाम नर्तन

पू.गुरुदेवने जबसे काष्ठमौनकी उद्घोषणा की थी, मैं अपनेको सर्वथा असहाय एवं मणिहारा फणिनीके तुल्य विनष्ट अनुभव कर रहा था। पू.गुरुदेव भगवत्प्राप्त सिद्ध पुरुष हैं, वे बृषभानुदुहिता राधानुजा, श्रीदाम-भगिनी हैं, उन्हें पराशक्ति महाभट्टारिका भगवती त्रिपुरा सिद्ध हैं, मेरे चित्तमें उनके इस महिमा-समन्वित माहात्म्यकी यावज्जीवन कभी स्मृति ही नहीं हुई। अब तो संन्यासी होनेके उपरान्त उन्हें पू.गुरुदेव करके भले ही सम्बोधित कर लूँ, किन्तु सच्ची बात यही है उस निश्छल कैशोर एवं युवावस्थामें उन्हें माता-पिता एवं सच्चे मित्रके अतिरिक्त कभी कुछ भी जानने-समझनेका अवकाश ही नहीं मिला था। वे मेरे सर्वस्व हैं, उनका कलेवर ही मात्र मेरा धन है, बस, उस सर्वाधिक अनमोल धनको वत्सल नेत्रोंसे देखते-परखते जीवन व्यतीत हो जाये, वे अपने कृपा-प्रसाद स्वरूप जो कुछ भी रूखी-सूखी भिक्षा दे दें, उससे किसी भी प्रकार गृहस्थकी गाड़ी खिंच जाय; उनके पारावार-विहीन वात्सल्यसागरकी उर्मियोंमें अवगाहन करता रहूँ, बस यही भाव मुझमें निरन्तर प्रवाहित होता रहता था। अब तो मेरी एकमेव उसी प्रेमनिधिसे मुझे वंचित हो जाना होगा, यह वेदना मेरे हृदयके लिये असह्य हो गयी थी। "मेरे बाबा भी अब मुझे सर्वथा भूल जावेंगे, उनके बिना मुझे जीवित रहना होगा "– इस चिन्ताका भार मस्तिष्क वहन ही नहीं कर पा रहा था। पू.गुरुदेव के अतिरिक्त उन दिनों मेरी

तो कोई साध ही नहीं थी, मेरा सौहार्द यदि उन दिनों किसीके भी प्रति था, तो गुरुदेवको लेकर ही था। वे ही काष्ठमौन लेकर जीते ही शवतुल्य हो जावेंगे, उन्हें पूर्ण स्पन्दनहीन, निमीलित नेत्र, शून्य काष्ठवत् निश्चेष्ट देखकर मैं कैसे जी पाऊँगा, मेरे हृदयकी पीड़ा यथावत् मैं व्यक्त कर सकूँ, आज भी मेरे पास वाणी नहीं है। नितान्त आर्त्त हुआ 'बाबा-बाबा' कहकर रोता रहूँ, बरसते नेत्र ही मेरे उस भावकी किंचित् अभिव्यक्ति भले कर पावें।

इस अवस्थामें मैंने अपनेको समग्र आर्थिक दायित्वोंसे मुक्त ही कर लिया था। पू.गुरुदेवका द्वारपाल बना उनके सम्मुख ही कुछ दूरीपर बैठा, मैं उन्हें टुक-टुक निहारता रहता था। मेरे सम्मुख ही प्रतिदिन मिलनेवाले व्यक्तियोंकी सूची बनायी जाती। लोगोंको यथासमय आनेके लिये सूचनार्थ चिट्ठियाँ लिखायी जातीं। मैं बाहरसे आये अतिथियोंको उनके निवाससे बुलाकर प्रस्तुत करता था। मैं प्रतिदिन सोचता आज तो इन मिलनेवालोंकी सूचीमें मेरा नाम भी आवेगा। दो शब्द मुझसे भी पू.गुरुदेव बोलेंगे, मेरी भी भविष्य जीवनकी कोई राह वे संकेतित करेंगे। किन्तु मेरी आशा सदैव दुराशामें ही परिणत होती रही। इस प्रकार चार माह व्यतीत हो गये। अब तो क्षण-क्षण मिलनेवालोंमें विभाजित हो गया था। अब तो गुरुदेवके पास रात्रिमें मात्र तीन घण्टे शयनके अतिरिक्त सब समय मिलनेवालोंका निर्धारित नियत था। मेरे लिये उनके पास एक क्षण भी नहीं था। अथाह वेदनासे मेरे अश्रु उस दिवस थम ही नहीं रहे थे। बरबस मैं अपनेको रोक नहीं पाया। अर्ध निशामें जब पू.गुरुदेव शयन करने जा रहे थे, मैं उनकी शय्यासे कुछ दूर रखे लालटेनके पास प्रेतकी तरह खड़ा ही रहा। सोते-सोते उनकी मुझपर दृष्टि पड़ी। वे बोले 'भैया ! अब तू भी जाकर सो जा।" उनके इतना कहते ही मैं उनके चरणोंमें लिपट गया। मेरे गद्गद कण्ठसे इतनी हिचकियाँ निकल रही थीं कि मैं मुखसे दो शब्द भी कहने में असमर्थ था।

फिर भी किसी प्रकार अपनी व्यथाको सुनानेकी चेष्टा करता इतना ही बोल पाया –"कैसे निष्ठुर हैं आप ? सर्वथा अनाश्रित मुझे आप अनाथवत् छोड़े जा रहे हैं, और पाँच मिनटका समय भी नहीं दे रहे हैं !" ये शब्द भी किसी प्रकार मेरी हिचकियोंमेंसे किसी प्रकार मेरे मुखसे निस्सृत हुए। पू. गुरुदेव जैसे जाग गये। उनकी कुटियामें लगे लीचीके वृक्षोंपर उनकी दृष्टि चली गई । वे अतिशय वात्सल्यभरे स्वरमें बोल उठे "भैया ! तू तो सोच रहा

है कि बाबा सोने जा रहे हैं, परन्तुजैसी तमोगुणी निद्रा तुझे आती है, वैसी नींद तो मुझे नवम्बर १९३६ ई.से ही कभी नहीं आयी है। देख, मेरा देह तो अवश्य इस मछहरीके भीतर घुसकर शयन-नाट्य करेगा, किन्तु मैं तो अभी भी नन्दभवनमें ही हूँ और वहीं श्रीकृष्णकी लीलापात्र बनी कृष्णजननी यशोदाके पास ही अभिनव सुन्दरी एक रमणीके रूपमें खड़ी हूँ। देख, मेरे सामने आज भी न तेरी इस मलिन देहकी स्मृति है, न ही मेरे इस चकलाधर-बेलनधर (अपने पूर्वाश्रमके चक्रधर नामको पू.गुरुदेव उन दिनों इसी प्रकार बोला करते थे)देहकी कोई रूपरेखा मेरे सामने है। यह गोरखपुर शहर, श्रीपोद्दार महाराजका देह सभी तो पूर्णतया विलुप्त हैं। यह देह तो भैया, एक यंत्र मात्र है, जो वहाँकी किसी गोपी द्वारा ग्रहीत है। आश्विन पूर्णिमातक तो यह यथावत् उस गोपी अथवा योगमायाशक्ति द्वारा संचालित रहेगा, आगे इसका क्या परिणाम होगा, अभी मुझे कुछ पता नहीं। हाँ, तो भैया, देख, श्रीकृष्ण मेरे सामने ठीक इस समय ऊखलसे बँधे हैं। तुझे यह मेरी निवास कुटी दिख रही हैं, किन्तु मेरे नेत्रोंमें इस समय यह कुटी पूर्णतया नन्दभवन है। ये .लीचीके पेड़ हैं। इनके स्थानपर यहाँ विशाल यमल अर्जुन वृक्ष हैं। देख, मेरे नेत्रोंमें नेत्र मिला– श्रीमद्भागवतकार कहते हैं –

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने।।
(श्रीमद्भा.१०।६।१८।)

पुत्रको बाँधनेके प्रयासमें ब्रजेश्वरी नन्दरानीके समस्त अंग-प्रत्यंगोंसे प्रस्वेदकी धारा बह रही है। वेणी तो कबकी ही स्खलित हो चुकी है, मालती मालासे मैयाने जो अपने केशोंको अवरुद्ध कर रखा था, अब तो वही माला भी टूट गयी है। ग्रथित मालती कुसुम देखो, यत्र-तत्र कैसे बिखरे हैं। ये सभी पुष्प पूर्णतया चिन्मय हैं। जननीका यह परिश्रम श्रीकृष्णके नेत्रोंमें भर गया है। और उन्होंने मातासे बँध जाना स्वीकार कर लिया है। देख जननीके जैसे उदर-बन्धनको श्रीकृष्णने स्वीकार कर लिया है, ठीक इसी प्रकार तेरे प्रेम-बंधनकी गाँठ भी मेरे स्वरूपमें लग गयी है। योगमायाशक्तिने इस गाँठको स्वीकार कर ली है। भैया ! देख, तनिक मेरे नेत्र अपने बनाले, और सामने होती लीला देख, "कज्जल मिश्रित अश्रु-प्रवाह श्रीकृष्णके कपोलोंको सिक्त कर रहा है। इन श्रीकृष्णके आकुल नेत्र बार-बार चारों ओर खड़ी आभीर सुन्दरियोंसे कुछ मूक

विनय, दया-याचना सी कर रहे हैं;कुन्तल राशि मुखचन्द्रपर बिखर गयी है। पर जब वे भैया, अपना बन्धन भी नहीं तुड़ा सकते, तो चाहे वे मुझे कितना ही काष्ठमौनी बना दें, तेरे प्रेमबन्धनसे कैसे मुक्त कर देंगे ?

अब, देख, तुझे आगे होती हुई लीला सुनाता हूँ। श्रीकृष्णको जननीने ऊखलमें बाँध दिया, यह समाचार पाकर श्रीकृष्णके सभी सखा दुर-छिपकर नन्दभवनमें बन्धनग्रस्त अपने प्राणप्यारेके पास पहुँच गये हैं। अपने प्रिय सखाको जननीके बंधनसे मुक्त करनेके लिये वे अतिशय व्याकुल हैं। अपनी विविध बालचेष्टाओंसे वे सभी श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति सौहार्द एवं सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। साथ ही उन्हें यह भय भी है कि जननी नहीं आ जाय। रह-रहकर एक उस प्रांगणकी ओर जाकर देख आता है कि मैया क्या कर रही है।

देख, एक शिशु धीरेसे श्रीकृष्णचन्द्रके पास आता है, और ऊखलमें बँधे श्याम सुकोमल अंगोंको हाथसे संस्पर्श करता है। देख, यह सखा पुनः-पुनः जननीके भयसे किस प्रकार पीछेकी ओर हट-हटकर सशंकित देखता जाता है। उसके मनमें एक युक्ति आयी है। वह श्रीकृष्णके कानमें कहता है —"भैया कनू ! यह गाँठ तो हम सब मिलकर भी खोल नहीं सकते। मैयाने यह गाँठ पहलेसे ही बहुत सावधानीपूर्वक लगायी है, यह गाँठ ऊखलके पिछवाड़े कसकर लगी है और यह ऊखल बहुत भारी है। हाँ, यह उपाय अवश्य है कि यदि यह ऊखल हम सब मिलकर ठेलते हुए इन अर्जुन वृक्षोंकी ओर ले चलें, और वृक्षके मध्यसे तू किसी प्रकार निकल जाय तो यह उखल वृक्षोंके मध्य बड़ा भारी होनेसे अटक जायगा। हम लोग मिलकर इसे टेढा भी कर देंगे। अब तू यदि उस पारसे डोरीको पूरे बलसे झटका दे दे, तो यह डोरी टूट जायगी। बस डोरी टूटी नहीं कि तू हमारे साथ भाग चलना।"

"और देख भैया, श्रीकृष्णकी कैसी ध्यानछवि मेरे नेत्रोंमें इस समय व्यक्त हो रही है। बालवेषधारी श्रीकृष्ण अपने दोनों घुटने एवं हाथ पृथ्वीपर टेके हुए हैं। उनके चारों ओर उनकी सखामण्डली उन्हें घेरे है। शिशु अपनी फेंटें कसे हैं। सखाओंमें जिन्हें किंचित् भी बलका अभिमान है, वे ऊखलमें धक्का लगा रहे हैं। बाल्यलीलाविहारी श्रीकृष्णचन्द्र अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे खींच रहे हैं। प्रियतम श्रीकृष्णके अरुण अधरोंपर उनके सुचिक्कण

अरुणाभ कपोलोंपर श्रमके सूचक चिह्न स्पष्ट अंकित हो जाते हैं। ऊखल भी धीरे-धीरे ही सरक रहा है।"

"इस लीलाका अर्थ समझले भैया ! मैं तुझसे क्या बात करूँ ? एक दिन यदि तू रोकर – कुछ कह-सुनकर मेरा समय लेकर संतुष्ट भी होगया, तो वह तेरा सन्तोष क्या अर्थ रखेगा ? मैं उन्हीं लोगोंसे बात करता हूँ, उन्हें ही अधिकतम समय दे रहा हूँ, जो मुझसे अभी पूरे जुड़े नहीं हैं। वे किसी प्रकार मुझसे अपना आत्मीय सम्बन्ध प्रगाढ करलें, उनसे बात करनेका, उन्हें अधिक समय देनेका मेरा इतना ही उद्देश्य है। अथवा मैं उन लोगोंको अधिक समय दे रहा हूँ जो पोद्दार महाराजको किसी-न-किसी पारिवारिक उलझनमें डाल सकते हैं। श्रीपोद्दार महाराजका मेरेसे ऐसा अटूट आत्मीय सम्बन्ध है कि मेरे काष्ठमौन कालमें ये लोग उन्हें किसी परिस्थितिजन्य कठिनाईमें नहीं डाल दें – इसकी आशंका मैं जिन-जिन व्यक्तियोंसे कर रहा हूँ, किसी प्रकार समझा-बुझाकर उन्हें उससे निवृत्त करनेके लिये मेरा अधिकांश समय जा रहा है। भैया ! तू तो मुझसे अखण्ड जुड़ा ही है। अकेले तुझको ही नहीं, मुझे तो तुझसे सम्बद्ध जो प्राणी अटके हैं, उन्हें भी खींचते-ढोते इन अर्जुन वृक्षोंकी तरह समूल उत्पाटित करना ही है। अतः अब बोल ! तुझे ऊखलवत् खींचूँ या तुझसे गप्पें लगाकर थोड़ा-सा जो सीमित समय शेष है, उसे निरर्थक व्यतीत कर दूँ । अभी भी तूने मेरा वह अनमोल समय बातोंमें समाप्त कर दिया, जिसमें मुझे श्रीकृष्ण न जाने क्या-क्या पारमार्थिक निर्देश देने वाले थे। हमारी दोनोंकी गोष्ठी दिनभर इन रजोगुणी लोगोंके मध्य तो हो नहीं पाती, यही मध्य रात्रिके पश्चात् कुछ समय मिल जाता है, जब लोग समझते हैं, बाबा सो रहे हैं, और हम दोनों अपने हृदयकी कुछ अपनत्व भरी बातें कर पाते हैं। अब वह समय भी तूने मेरे प्रति अविश्वास प्रकट करके बर्बाद कर दिया। तुझे यह मेरा समय खर्चकर मानसिक संतोष मात्र ही तो होगा। जो तथ्य है, जो वहन करना है, वह तो मुझे ही ढोना है। अतः विश्वास कर और सो जा। जो हो रहा है , वह सब तेरे लिये अशेष मंगलकर है।" अब मेरे पास पू.गुरुदेवको उत्तर देनेको कुछ भी तो शेष नहीं था। मैं चुपचाप निम्नमुख किये उन्हें सुलाकर चला आया।

दूसरे या तीसरे दिनकी घटना कह रहा हूँ। श्रीरामनिवासजी ढंढारिया पू.गुरुदेवके अतिशय भावुक प्रेमीजनोंमेंसे एक थे। वे कलकत्तेसे पू. गुरुदेवसे

मिलने आये थे। आजका पूरा दिन ही कलकत्तेके भक्तों – भाई रामनिवासजी ढंढारिया, गजानन्दजी सरावगी, बाई इन्दु (गजानन्दजीकी पत्नी),बाई रमा (उनके छोटे भाईकी पत्नी)को दिया गया था। गजानन्दजीकी माता पू.गुरुदेवके मातृवर्गमें प्रमुख थीं । उसके वात्सल्यभावकी प्रगाढता तो अकल्पनीय थी।

श्रीरामनिवासजी पू.गुरुदेवके चरणोंमें लिपटे अनवरत दो घण्टेसे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं । मैं उनके पास ही खड़ा हूँ। वे बार-बार पू. गुरुदेवसे एक ही प्रश्न कर रहे हैं – 'आप क्यों काष्ठमौन ले रहे हैं ? अन्ततः श्रीकृष्ण आपको क्यों हम लोगोंसे विलगकर ऐसा घोर उग्र तप करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं ? हम लोग सौ-दो सौ जन्म लेकर अपना कर्म-प्रारब्ध भोगेंगे। कर्म हमने किये हैं, उनका प्रारब्धभोग हम लोग जन्मेंगे, मरेंगे, भोगेंगे। अनादिकालसे यही सब तो करते आये हैं ! आप क्यों हम सबके कारण जीवित रहतेहुए शववत् हों ?'

पू.गुरुदेवके अधरोंमें मन्द मुसकान है। उनकी दृष्टि केन्द्रित है भाई रामनिवासके अश्रुसिक्त मुखपर। श्रीरामनिवासजी उत्कण्ठायुक्त हुए बार-बार अपने ललाटको पू.गुरुदेवके चरणतलोंसे रगड़ रहे हैं।

इधर श्रीगजानन्द सरावगीकी पत्नी इन्दुके अश्रु थम ही नहीं रहे। वह और रमा दोनों मूक वाणीमें भाई रामनिवासके प्रीति-हठका अनुमोदन कर रही है। इन दोनोंके आँचल बहते अश्रुओंसे सिक्त हैं।

मैं दूर खड़ा इन सभीकी प्रेमदशाको देख रहा हूँ। मुझे पू.गुरुदेव द्वारा बतायी विगत रात्रिकी सब बातें स्मृत हैं। किन्तु मैं किस मुखसे उन्हें समझाऊँ ? मेरी बातका रामनिवासजीके सम्मुख महत्व भी तो कुछ नहीं है ! मैं तो मन-ही-मन पू.गुरुदेवके प्राणपति प्राणाराध्य श्रीकृष्णकी वन्दना करने लगता हूँ –

"स्तवनीय श्रीकृष्णचन्द्र ! तुम्हें नमस्कार है। विश्वमें एक मात्र तुम्हीं वन्दनीय हो, नाथ ! अहा ! नवजलधरकान्तिवाले प्रभु तुम्हें नमस्कार है। स्थिर सौदामिनी सदृश पीताम्बरधारीके लिये मेरे अनन्त प्रणाम हैं। वन्य पत्र-पुष्प-रचित मालाधारीके लिये मेरी वन्दना है। गुञ्जासे रचित कर्णभूषणसे , चूड़ाके मयूरपिच्छसे परिशोभित मुखवाले श्रीकृष्ण ! इस चक्रधर स्वामीरूप अपने यंत्रके मुखसे दो शब्द भाई रामनिवासके सन्तोषके लिये उच्चारण कर दो ! कज्जलमिश्रित अश्रुप्रवाह जिनके कपोलोंको सिक्त कर रहा है, जिनके आकुल

नेत्र बारंबार आभीर सुन्दरियोंसे बन्धनमुक्त होनेके लिये कुछ मूक प्रार्थना, दयाकी याचना-सी कर रहे हैं, कुन्तलराशि जिनके मुखपर बिखर गयी है, वे अतिशय करुण अवस्थामें हम लोगोंके कर्म-प्रारब्ध रूप भारी ऊखलसे बँधे हैं, हे गैरिक वस्त्रधारी राधाबाबा स्वामी रूप प्रभु ! आपको अनन्त नमस्कार हैं। लीलाविहारिन् ! दामोदर ! हे परम कल्याणस्वरूप ! हे विश्वमंगल-विधायक, हे गोपते ! आप अनन्त वन्दनीय हैं।"

मैं प्रार्थना कर ही रहा था। अचानक पू.गुरुदेव बोल उठे –" भैया रामनिवास ! तुझ अन्धेको – नेत्रहीनको सब कुछ विपरीत दिख रहा है। तू समझ रहा है कि तेरी ही तरह यह पंचभूतका पुतला साधुबाबा कोई व्रत, तप करनेको काष्ठमौन ले रहा है। किन्तु भैया, यह सर्वथा सत्य नहीं है। इस पंचभूतके खोखलेमें निबद्ध चक्रधर बाबा रूप साधु तो कबका ही मर चुका है। उसे चाहे मृत मानले, अथवा श्रीकृष्णसिन्धुमें डूबा समझ ले। दोनों बातें एक ही सत्यको प्रकट कर रही हैं। हाँ, यह सत्य है कि मरनेवाला पुनः जन्म ले लेता है और यहाँ ऐसा हुआ है कि इसकी तो मृत्युकी भी सदा-सदाके लिये मृत्यु हो चुकी है । अब यदि तू ऐसा समझता है कि श्रीकृष्ण क्यों काष्ठमौन ले रहे हैं ? तो यह उनकी अनन्त कृपामयी लीला है। उनसे आजतक कोई क्यों एवं किसलिये पूछ ही नहीं पाया है। वे अनन्त लीलामय क्यों पूतनाका कराल विषपान करते हैं, वे क्यों बकासुरके द्वारा निगले जाते हैं , वे क्यों ाासुरके पेटमें प्रवेश करते हैं , वे क्यों कालिय-हृदमें कूदते हैं – आजतक किसीको इन प्रश्नोंका उनसे पूछनेका साहस नहीं हुआ है।

जिस प्रकार तू बिलख-बिलखकर रो रहा है, ठीक इससे भी अनन्त गुनी वेदना लेकर उस दिवस वन-विहंगम आर्त्तनाद कर उठे थे। तरु-वल्लरियाँतक प्रकम्पित होकर काँप उठी थीं, वन्य मृग, कपिदल सभी तो मर्मभेदी रवमें रुदन कर उठे थे; उस दिवस बलरामजी एवं सभी गोपशिशुओंकी वेदनाका तो यहाँ कोई अनुमान ही नहीं कर सकता है, जब श्रीकृष्णने बकासुरके उदरमें प्रवेश किया था। यहाँ मेरे काष्ठमौन लेनेपर तो कोई भी चेतनाशून्य होनेवाला नहीं है, चेतनाशून्य होना तो बहुत दूरकी बात है, मेरी मृत्यु भी यदि हो जाय तो भी तुम सभी पाप, चोरी, भोगवासनाका त्याग भी करने वाले नहीं हो। मैं यह नहीं कहता कि तुम्हें दुःख नहीं हो रहा, किन्तु तुम्हारा दुःख मात्र दो क्षणका भावुक विचारप्रवाह मात्र है। उसमें तनिकसा भी स्थायित्व नहीं है। मेरे

काष्ठमौन लेनेसे एकको भी चिरस्थायी दुःख नहीं होने वाला। किन्तु श्रीकृष्णको इस बगुले द्वारा निगले जानेपर तो सभी गोपालकोंके, गायोंके, वनचरोंके शरीर ही निष्प्राण हो गये थे। किन्तु इन सबको प्राणहीनतातकका कष्ट देकर श्रीकृष्ण क्यों बकासुरके द्वारा निगले गये ? तुझे पता है मेरे भीतर कौन तुझसे बोल रहा है ? मेरे इस सत्यको यदि कोई भी ठीक अनुमोदित कर सकता है तो वे एक अकेले श्रीपोद्दार महाराज हैं। मेरे रोम-रोमको अनुप्राणित वह शक्ति कर रही है जिसकी एक आंशिक अभिव्यक्तिके लोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड त्रसरेणु (धूलिकण)की तरह जन्म लेते हैं और विलीन होते रहते हैं; वे जगत्सृष्टाके भी सृष्टा हैं। तब क्या उनसे तू पूछनेका साहस कर सकता है कि बकके मुखमें वे परमस्नेही अपने सखाओंको प्राणान्तक कष्ट पहुँचाकर क्यों समा गये ? क्या उन लीलामयने अपनी प्राणोपम यशोदामैयाको प्राणान्तक कष्ट नहीं दिया था, जब तृणावर्त द्वारा वे उड़ा लिये गये थे ? तो पूछ उनसे कि उन्होंने अपनी ऐसी वात्सल्यमयी माताको प्राणान्तक कष्ट देकर तृणावर्त लीला क्यों की थी। क्यों उन्होंने पूतनाका कालकूट विषपान किया ? पूतनाको मातृगति तो वे सहज संकल्प करके भी दे सकते थे ! फिर वे क्यों अघासुरके पेटमें समाये ? उनकी सर्वज्ञताने तो अधासुरकी दुरभिसन्धिको देख ही लिया था। श्रीकृष्णचन्द्र सर्वान्तर्यामी स्वरूपमें तो नित्य ही स्थित हैं ही। जब सर्वभूत-हृत्स्थित श्रीकृष्णने सब कुछ जान लिया था, कालका व्यवधान जब वहाँ है ही नहीं, तो परस्पर भ्रमपूर्ण आलाप करते अपने सखाओंको जो प्राकृत अघासुर अजगरको वृन्दावनकी शोभा मान रहे थे, उन्हें उनकी बुद्धिवृत्तिमें यह प्रेरणा देकर कि यह अधासुर अजगर है, उन्हें पहले ही उसके मुखमें प्रविष्ट होनेसे रोक सकते थे। उन अपने सखाओंकी समस्त इन्द्रियवृत्तियोंको विषकी ज्वालामें धू-धूकर जलानेमें उन्होंने कौनसा सदय व्यवहार किया था ? पहले अपने निजजनोंको इस प्रकार विषज्वालामें दग्ध कर मार डालना फिर उन्हें संजीवित करने स्वयं उस मृत्युकी जठराग्निमें आहुति बन स्वाहा होना, कौन सी तुककी बात है ? परन्तु ऐसा क्यों किया, क्या कोई उन प्रभुसे पूछ सकता है ?

भैया ! मेरे प्राणवल्लभ प्राणाधार ज़ीवनसर्वस्व श्रीकृष्णचन्द्रकी कृपा-सिन्धुकी उर्मियाँ इसी प्रकार प्रवाहित होती हैं। उनकी गति सपाट है ही नहीं। वे तो नित्य कभी ज्वार बनकर उमड़ती-उफनती हैं, कभी भाटा बनकर

अपसर्पित हो, दूर-सुदूर पीछे चली जाती हैं, तटको निर्जल पंकवत् बना देती हैं, फिर कभी वक्रगति लेती हैं, अनन्त पारावारविहीन कृपा-सिन्धु मेरे प्रियतमका यही स्वभाव है। वे स्वयं अघासुरके पेटमें चले जाते हैं। देवोंके हाहाकारसे अन्तरिक्ष पूर्ण हो उठता है। अमर मण्डल चीत्कार कर उठता है। ऋषि-मुनि ही नहीं, सत्यलोक एवं शिवलोकतक आर्तनाद भर उठता है। तो क्या अपने भक्तोंका यह चीत्कार, हाहाकार, विलाप, आर्तनाद श्रीकृष्णचन्द्रके कर्णरन्ध्रोंमें पहुँचता नहीं है ? क्या वे सुनते नहीं, बहरे हैं ? वे सब सुनते हैं, किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा है। भयानक विलाप, रुदन, हाहाकार, चीत्कारमें शीतल, शान्त, अक्षुण्ण बने रहना, घोर विष-ज्वालामें भी नित्य, अव्यय, सर्वथा क्षय रहित रहना उनका नित्य शाश्वत स्वभाव है भाई ! क्षण-क्षणमें हर्ष-ध्वनिको हाहाकारमें, और हाहाकारको हर्षध्वनिमें बदलते रहना उनका लीलाक्रम है।

भैया ! मैं इसे नित्य प्रत्यक्ष स्पष्ट जानता हूँ कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्णकी लीला चाहे कितनी ही हाहाकारमयी, दुःखभरी हो, उनके पास ऐसी विलक्षण कृपामृतवर्षिणी दृष्टि है कि वे बस, उससे किसी घोर पापी-से-पापीको भी एक बार स्पर्शमात्र करलें, बस वहाँ कल्याण-ही-कल्याण, मंगल-ही-मंगल प्रवाहित हो जाता है। और सारा विष, अमंगल, पाप, अनाचार, ज्वाला-ताप, नारकीय विधान, अघ महामरकत श्यामल श्रीअंगोंमें विलीन-समाहित हो जाता है। बस, भाई रामनिवास, यह मेरा काष्ठमौन उसी महामरकत श्यामल श्रीअंगोंमें तुम सबके अमंगलको समूल समाहित कर देनेकी मात्र एक भूमिका है। भाई ! खूब प्रसन्न होओ, चतुर्दिक् मंगल-ही-मंगल है, कृपा-ही-कृपा, आनन्द-ही-आनन्द है, भाई !

अब भाई रामनिवासके पास रोनेको शेष रहा ही क्या था ? यह सब पू.गुरुदेवकी वार्ता दूरसे सुनता मैं गा उठता हूँ –

हौं वारी, नान्हे पाइनिकी दौरि दिखावहु चाल ।
छाँडि देउ तुम लाल ! अटपटी यह गति मंद मराल ।।

———oo———

संप्लावन ही संप्लावन

अन्ततः वह दिवस आ ही गया, जिस दिवस पू. गुरुदेवको काष्ठमौन लेना था। अब तो पू.गुरुदेवके रससागरके सम्प्लावनमें मात्र कतिपय घण्टे ही शेष हैं। ऐसे अनेक लोग हैं जिन्हें पू.गुरुदेवने आश्वासन दिया था कि "तुझे भैया, पर्याप्त समय दूँगा कि तू तृप्त हो जायगा। मैं किसीको असंतुष्ट रखकर मौन नहीं लेने वाला।" उन सभीके साथ अनचाहा संयोग ऐसा बना है कि इन लोगोंको पू.गुरुदेवके द्वारा एक-दो मिनटका भी समय नहीं मिल पाया है। श्रीशिवनाथजी दुबेकी पत्नी महीनोंसे धानापुरसे गोरखपुर आकर बैठी है, प्रत्येक दिन जब दुबेजी उसकी स्मृति पू.गुरुदेवको कराते हैं, उन्हें यही उत्तर मिला है – "दुबेजी, मेरे सत्यपर विश्वास करिये, मैं आपकी पत्नीको कृतकृत्य करके ही काष्ठमौन लूँगा, मुझे उसे पर्याप्त समय देना है। श्रीदुबेजी आज भी प्रातः पू.गुरुदेवके पास पहुँचे हैं, और उन्हें पूर्ववत् वही उत्तर मिला है। वे अब भी आश्वस्त हैं कि उन्हें संभव है आज पू.गुरुदेव अवश्य समय देंगे। इसी प्रकार श्रीहरिद्वारीमलजी टीबड़ेवाल, डा.ए.सी.साहा, आदि पडरौनाग्रामके पू. गुरुदेवके पुराने श्रद्धालु भक्त हैं, इन्हें भी यही आश्वासन मिला था कि मैं आपको पर्याप्त समय दूँगा। किन्तु ये दोनों लोग बहुत ही उत्सुकतासे प्रतीक्षा करते-करते चतुर्दशीके दिवस तो अधीर ही हो उठे। उस दिन भी उन्हें यही उत्तर मिला था कि बात अवश्य होगी। किन्तु पूर्णिमा आ गयी और पूर्णिमाका भी अपरान्ह काल आ गया। पू.गुरुदेव किसीको भी कोई समय नहीं दे पाये। जब भिक्षा करके पूर्णिमाको लगभग सायं पू.गुरुदेव बाहर निकले तो श्रीशिवनाथजी दुबेने पुनः उनसे अपनी पत्नीके बारेमें पूछा। पू.गुरुदेवने उनसे कहा– 'मैं आपकी पत्नीको प्रत्येक दिवस पूरा-पूरा समय दे चुका हूँ, अब मेरे पास कोई समय नहीं है।' श्रीशिवनाथजी दुबे पू.गुरुदेवकी उक्तिसे हतप्रभ हैं। उन्होंने कहा – 'बाबा ! प्रत्येक दिवस मैं आपको स्मृति अवश्य दिलाता था, परन्तु आपने उसे समय नहीं दिया।' किन्तु पू.गुरुदेवकी यही रट रही – 'मैं उसे इतना समय दे चुका हूँ, जितना किसीको भी मैंने नहीं दिया। मैं उससे बहुत अच्छी प्रकार पर्याप्त कालतक बात कर चुका।' अब श्रीदुबेजी क्या बोलें ? वे निराश-दुखी होकर लौट गये हैं। उनका यही समाधान है कि दिन-रात लोगोंसे बोलते, रात-रात भर जागनेसे पू.गुरुदेवका मस्तिष्क विकृत हो गया

है। उनकी स्मृति ही नष्ट होगयी है। यही दशा श्रीहरिद्वारीलालजीकी है! परन्तु उनपरं पू.गुरुदेवकी ऐसी कृपा है कि उनके सम्मुख पू.गुरुदेवने स्थिति स्पष्ट कर दी है। पू.गुंरुदेवने उनसे कह दिया कि मैंने आप दोनोंको श्रीकृष्णसे जुड़े मनसे स्मरण कर लिया है। भगवान् श्रीकृष्णके यहाँका एक क्षण इस संसारके कालमानसे तो अनन्त गुना बड़ा होता ही है। अब यदि भगवदीय एक क्षणकी अवधिमें भी यदि किसीका पू.गुरुदेवने स्मरण कर लिया तो उससे घण्टोंकी अवधिकी वार्त्ता हो ही गयी है। दूसरे, जो परमार्थवस्तु देहगत बातचीतसे किसीको मिल ही नहीं सकती, वह अनमोल परमार्थ वस्तु श्रीकृष्णके साक्ष्यमें पू.गुरुदेवके द्वारा यदि दे दी गयी है, तो वह दान लौकिक बातके समाधानसे तो निश्चय ही बढ़कर बन ही गया है।

किन्तु शिवनाथजी दुबे इन मात्र बातोंसे समाधान नहीं कर पा रहे थे। अस्तु, संख्यामें ऐसे शताधिक लोग थे जिन्हें पू.गुरुदेव समय नहीं दे पाये।

क्रमशः काष्ठमौनव्रत ग्रहण करनेकी बेला समीप आती चली जा रही थी। पर्याप्त मात्रामें रासपूर्णिमाके प्रसादके लिये खीर बनी थी। भोग लगाकर सभी भक्तोंमें वह खीर वितरित की जा रही थी। लोग प्रसादके रूपमें खीर प्रसाद ले रहे थे, किन्तु पू.गुरुदेवके जीवनव्यापी बिछोहकी परिकल्पनासे विरह भावनाओंकी विकलतामें वह खीर बेस्वादी हो उठी थी। मुझे तो लगता है , वे दिन और रातें अब कभी नहीं आने वालीं, जब पू.गुरुदेवसे आध्यात्म एवं प्रीति जगत्की गूढ़-से-गूढ़ बातें करते-करते समयका ज्ञान ही नहीं रहता था। मनुष्य एक-दो घण्टेके सत्संगमें ही नीरसता अनुभव करने लगता है, किन्तु पू. गुरुदेवके सान्निध्यमें तो न जाने कैसा आकर्षण होता था, अनवरत बहत्तर-बहत्तर घण्टे हम लोग उनसे परमार्थ जगत्की गूढ़-से-गूढ़ तत्व-रहस्यकी बातें सुनते रहते थे और न थकान होती थी और न ही नीरसता होती थी। आज एकत्रित इन हजारों व्यक्तियोंमें मुझे तो एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं दिखा था जिसका हृदय भीतर-ही-भीतर चीत्कार नहीं कर उठा हो।

अब तो वह बल्लियों एवं टीनसे बना पण्डाल भी नहीं रहा, जहाँ राधाष्टमी महोत्सव मनाया ज़ाता था एवं जिस पण्डालमें पू.गुरुदेवने मध्य रात्रिके समय काष्ठमौन लिया था। रात्रिमें दस बजेसे ही श्रमी भक्तगण पंडालमें आकर बैठने लगे थे। हजारों लोग बैठे थे। सभीकी आँखोंमें पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबा ही भरे थे। वे प्यारभरी आँखें, वे सरस प्रेरणाभरी बातें अब स्वप्न

हो जावेंगी, इसके अनुमान मात्रसे ही सभीके अन्तरमें हाहाकार मचा हुआ था। परन्तु अपनी व्यथा कौन किसको कहे, एवं क्या कहे ? कौन ऐसा था जो भीतर- ही-भीतर इस दारुण व्यथासे टूट नहीं गया हो ।

पू.गुरुदेव एक ऐसा असिधाराव्रत स्वीकार करने जा रहे हैं, जिससे भक्तिभावना भी महिमान्वित हो उठे, इस गरिमासे जो पू.गुरुदेवको अपना मानते थे, उनका हृदय परमानन्दपूर्ण गौरवभावसे भावित हो उठता था, परन्तु उस समय तो उस गौरवभावको आच्छादित किये हुए थी एक ऐसी अदम्य तीखी वेदनाभरी टीस, एक ऐसी कसक जिसका कहीं निराकरण संभव ही नहीं था। ऐसा निर्धारित हो गया था कि ठीक बारह बजते ही मध्यरात्रिमें पू. गुरुदेव मौनव्रती हो जावेंगे। पू.गुरुदेवने अन्तिम मिलनेका समय पू.पोद्दार महाराजको दिया था। इसके पूर्व श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला (श्रीपोद्दार महाराजके जामाता) अ.सौ. सावित्रीबाई (श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री) अ.सौ. माताजी(श्रीपोद्दार महाराजकी पत्नी) आदि इन सबको तो पर्याप्त समय वार्ताके लिये दे ही दिया गया था।

पू.गुरुदेव एवं श्रीपोद्दार महाराजकी सर्वथा एकान्तमें कुछ देर अवश्य वार्ता हुई। इसका विषय क्या था, यह तो वे ही जानें, किन्तु बाहर खड़े लोगोंने जिनमें लेखक भी एक था, यह अवश्य देखा कि पू.पोद्दार महाराज कुटियासे बाहर निकलते समय रूमालसे अपने अश्रु पौंछ रहे थे। श्रीपोद्दार महाराज पू. गुरुदेवको साथ-साथ लेकर लगभग ग्यारह बजे कुटीसे निकले। पू.गुरुदेव थोड़ी ही दूर जा पाये होंगे कि मैंने दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये। "बाबा ! मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करें" – मैं फफक-फफककर रो रहा था। पू.पोद्दार महाराजने मुझे उनके चरणोंसे उठाया। अचानक पू.गुरुदेवने मेरा हाथ श्रीपोद्दार महाराजके हाथमें पकड़ाते हुए कहा – " भाईजी ! मेरे मौन लेनेसे यह अपनेको सर्वथा अनाश्रित, अनाथ अनुभव कर रहा है, इसे आपको सँभला रहा हूँ।" मैंने उसी समय पोद्दार महाराजको प्रणाम किया। बस, स्नेहभरी आँखोंसे एक अतिशय प्यारी दृष्टि डालते हुए पू.गुरुदेव आगे अग्रसर हो गये थे।

पंडालमें अनेक काष्ठ चौकियाँ लगाकर मंच बनाया गया था। उसीपर पू.गुरुदेव एवं पू.पोद्दार महाराज विराजित हो गये थे। यद्यपि उस समय पू. गुरुदेव एवं पोद्दार महाराजके निकट बैठे लोग भारतके अत्यधिक समृद्ध

लोगोंमेंसे थे, किन्तु सभी अतिशय दैन्यभावसे समाहित थे। जिन आँखोंमें धनका मद सदा ही छाया रहता था, वे भी आज अपने नासाछिद्रोंमें व्यथा भरे दीर्घ निश्वास ले रहे थे। क्या प्रभाव था, मेरे पू.गुरुदेवका कि आज भक्तिरसकी आर्द्रता सभीको स्निग्ध, विनम्र बनाये थी। डालमिया, बाजोरिया, गोयनका आदि वैभवशाली परिवारके लोगोंमें देवविग्रहतुल्य सात्विकता दृष्टिगोचर हो रही थी। सर्वत्र यही दिख रहा था कि सभी आज पू.गुरुदेवके पादपद्मोंका पावन स्पर्श पाकर परम कृतार्थताका अनुभव कर रहे हैं । गीताप्रेसके प्रमुख पदाधिकारी, गोरखपुरके भी साहबगंजके व्यापारी, सभी तो इस समय अंजलि बाँधे इस सुदुर्लभ अवसरका लाभ ले रहे थे। पंडाल खचाखच भर गया था। पू.गुरुदेवकी वरदायी दृष्टि आबालवृद्ध एक-एक व्यक्तिपर पड़ती और सरकती जा रही थी। पू.गुरुदेव जैसे अपने आराध्य प्राणपति श्रीकृष्णसे कह रहे थे – हे विश्वविधाता ! इस स्थावर जंगम सम्पूर्ण परिदृष्यमान जगत्की रचना तुमने ही तो की है। तुम्हीं सोचो, स्वामिन् ! गुणोंके भेदसे यह विस्तार, नानाविध स्वभाव, देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति, मातृशक्ति, पितृशक्ति, वंश-परंपरानुगत वासना आकृति – इनसे विशिष्ट यह विविध वैचित्र्यमय विश्व सभी मेरे प्राणपति ! तुममें ही तो सृष्ट है, और तुममें, तुमसे ही निर्मित जाति, स्वभावसे ये जैसे हैं, सभी तुम्हारी मायासे ही नितान्त मोहित हैं। भला बताओ, प्राणपति, तुम्हारी कृपाके बिना तुम्हारी ही दुस्त्यज मायाको इनके द्वारा मात्र कहनेभरके सत्संगसे पार कर लेना क्या संभव है, भगवन् ?

हे जगन्नियन्ता ! मायाकृत बन्धनमें तथा मायापाशसे मुक्तिदानमें तुम्हीं तो मुख्य हेतु हो। अब तुम स्वेच्छासे , अथवा तुममें पूर्णतया आप्लावित होते मेरी इस अन्तिम तुम्हारे ही द्वारा सृजित कृपाप्रेरणासे इन सबके प्रति निग्रह नहीं, अनुग्रहवान् हो जाओ। प्राणपति ! इनके कर्मानुसार यदि तुम्हारे न्याय-विधानके रक्षार्थ यदि निग्रह अवश्यंभावी ही हो तो वह करुणामय ! मेरे देहपर डाल देना, इन्हें तो अपने जीवन-पथमें तुम्हारी परम कल्याणमयी कृपा-ही-कृपाका सुदर्शन हो, बस प्रभो ! मेरी इस अन्तिम इच्छाको पूर्ण कर देना । देव ! दयानिधान !

इधर 'विदा' होनेवाले पू.गुरुदेवके मुखपर सभीकी दृष्टि गड़ी हुई थी। लोग रह-रहकर देख लेते थे, पू.पोद्दार महाराजको भी। किन्तु पू.पोद्दार महाराज तो कल भी सुलभ होंगे ही। यह संन्यासी वेषमें विराजित साधु राधा- बाबा तो

कल बात करनेको सुलभ नहीं होगा, अब कभी भी सुलभ नहीं होगा, अतः सभीकी चकोरवत् टकटकी लगी थी, पू.गुरुदेवके मुखमंडलपर उभरती-मिटती भाव-रेखाओंपर। उस समय सभी अपनी आँखोंसे पू.पोद्दार महाराजके पार्श्वमें विराजित पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाको पी जाना चाहते थे। विदाईका अवसर तो आ ही गया था। इस अवसरपर पू.गुरुदेव श्रीराधाबाबाने जो कुछ कहा– उसका यथाशक्य लिखागया सार रूप इस प्रकार है –

" जीवनमें कोई बिरला अभागा प्राणी ही मरते समय झूठ बोलता है। मेरा अनुभव है, वह किसी विवशता या दबावसे ऐसा करता है। मैं मरने जा रहा हूँ।

जो कछु लिखि राखी नँदनन्दन मेटि सकै ना कोय ।'

बनमें धूमता भौंरा चम्पापर नहीं बैठता है। क्या उसमें सौन्दर्य नहीं, और क्या इसमें रसकी वासना नहीं ? चम्पा खूब सुन्दर है और भौंरा रसका लोभी है, पर ईश्वरेच्छा बलवान है । मैं स्नेहकी वन्दना करने आया हूँ।

काष्ठमौन बड़ी चीज नहीं है, यह संन्यासियोंका आचार है और अवश्य करना चाहिये। संन्यासकी मुझमें कोई वस्तु नहीं है। मनमें लगा कि शेष समयका ऐसा ही उपयोग हो। यह यतियोंका आचार है। काष्ठमौन गंगातटपर ही धारण करनेका नियम है। उत्तम वस्तु तो यह है कि शरीरपातके लिये चल पड़े गंगाके मूल स्रोतकी ओर, गंगाके प्रवाहमें जल पीये, भूखमें कोई पूछे तो हाथ फैला दे। खाने लायक हो तो खा ले, नहीं तो गिरा दे। वस्त्र गिर गया हो तो अपने आप न बाँधे, दूसरा कोई बाँध दे तो बाँध दे ।

मेरा काष्ठमौन 'अधूरा' है, क्योंकि मेरी सुख-सुविधाकी सारी व्यवस्था श्रीभाईजी कर रहे हैं, भिक्षा यहाँ ले रहा हूँ। श्रीभाईजीका मेरे प्रति स्नेह है। उसका मैं गहराईके साथ निरन्तर अनुभव करता हूँ। मैं श्रीभाईजीसे मिलने गया, जाते ही श्रीभाईजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अधिक नहीं कहूँगा। वे इसी स्थानपर हम सभीके सामने विराजित हैं। श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ, और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, गुलाबका यह पौधा तो कण्टकरहित है। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधेमें है।

काष्ठमौनमें न किसीकी ओर नजर उठाकर देखना है, न बोलना है, न पढ़ना है , न संकेत करना या लिखना है।' पर काष्ठमौनका अर्थ यह भी है –राधेश्याम मेरी सेवा करता है, यह कुएँपर पानी भर रहा हो, पैर फिसल गया हो और यह कुएँमें गिर पड़ा हो तो उस समय मैं मौन नहीं रहूँगा, जोरसे चिल्लाऊँगा कि राधेश्याम कुएँमें गिर पड़ा और साथ-ही-साथ उसको बचानेके लिये कुएँमें कूद पड़ूँगा। यदि उसके प्राण बच गये तो ठीक है, नहीं तो मेरा और उसका, दोनोंका जीवन भगवानके चरणोंमे समर्पित हो जायेगा।

आगे चलकर मेरी मानसिक अवस्था क्या होगी, मैं नहीं जानता। बोलनेका प्रश्न श्रीभाईजीके साथ हो सकता है। अट्ठारह महीनेके पहले ही यह निर्णय हो गया था कि इस तिथिको, आश्विन पूर्णिमाको मौन हो जाऊँगा। श्रीभाईजी इतने बड़े सन्त – इनको सन्त ही मानता हूँ – अन्तकालतक मेरी सँभाल करेंगे। जिस समय श्रीभाईजीको किसी प्रश्नको लेकर परेशानीका अनुभव हो, उस समय बोलकर प्रकाश डाल देना चाहिये, मेरी इतनी-सी चेष्टा हो सकती है। सावित्रीकी माँने पुत्रकी तरह मुझे भिक्षा करायी है। जब भिक्षाके लिये जाऊँ तो उनकी ओर देखूँगा। देखनेका प्रश्न केवल श्रीभाईजी और माँजीके लिये है।

जो मंगलमयता चिताकी ज्वालामें है, वही प्रसूतिगृहके मंगल प्रदीपमें है। मृत्यु और जीवन भगवान्‌के राज्यके दो परदे हैं। यदि श्रीभाईजीका शरीरान्त हो रहा हो या उनका शरीर शान्त हो गया हो तो सूचना पाते ही आऊँगा। भक्तका हृदय करुणासे भरा होता है। जब मैं अभी मिलने गया तो श्रीभाईजी जोर-जोरसे रोने लगे ।

विश्वातीत भगवानकी उपासना कीजिये। मेरी राधा विलक्षण है। वास्तवमें जिसके मनमें तनिक-सा भी कामविकार है, वे हमारी राधाकी उपासनाके अधिकारी नहीं हैं। चाहे वे पुरुष हों या स्त्री हों।

अब आप लोग जो हमें प्यार दे रहे हैं, वह राधाकिशोरी ही इतने रूपोंमें झाँक रही है। अपनी जानमें भगवानको एक क्षण भी भूलिये मत। भगवान थे, हैं और रहेंगे। देखनेके लिये शुद्ध आँख चाहिये। हे राधाकिशोरी! हे कृष्ण ! आशीर्वाद चाहता हूँ –.

देहु दया करि दान न भूलौं केलि कौं।
भगवत रसिक तमाल बिलोकौं बेलि कौं।।

नरक स्वर्ग अपवर्ग आस नहिं त्रास है ।
जहँ राखौं तहँ रहौं मानि सुखरास है।।
दुख सुख भुगतै देह नहीं कछु संक है।
निंदा अस्तुति करौ राव कै रंक है।।
परमारथ ब्यवहार बनौ कै ना बनौ ।
अंजन ह्वै मम नयन 'रसिक भगवत' सनौ।।

बस, राधाकृष्णको ही निरन्तर देखता रहूँ। अंजनके समान वे दोनों नयनमें विराजित रहें।''

पू.गुरुदेवके बोलनेके पश्चात् श्रीपोद्दार महाराजने दो शब्द कहने प्रारंभ किये।

'स्वामीजीका काष्ठमौन होने जा रहा है। इनके साथ जिनका बाह्य सम्बन्ध था, वह लोकमें टूट रहा है। इसका मुझको भी दुःख हुआ है, पर परमार्थका सम्बन्ध तो अटूट है।'

'असली सम्बन्ध तो श्रीराधारानीको लेकर है, वह सम्पर्क कभी नहीं टूट सकता, सदा बना रहेगा। डरनेकी बात नहीं है। मेरा इनका क्या सम्बन्ध है, सो तो भगवान ही जानते हैं, मैं नहीं जानता, ये भी शायद नहीं जानते हैं।'

'मैं इनका यतिरूप इतना ऊँचा देखना चाहता हूँ कि वह औरोंके लिये इस समयके जगत्के आदर्श हो। इन्हें आदर्श यतिधर्मके निर्वाहकके रूपमें देखनेकी मेरी उत्सुकता है। मैंने मौनकी बात जाननेपर बाह्यरूपसे सम्मति नहीं दी, पर मानसिक रूपसे समर्थन किया।'

'इनका जीवन राधारानीमय हो। इनके जीवनकी धारा संसारको विशुद्ध प्रेम-सुधा-रससे प्लावित कर दे। भविष्यकी बातका पता नहीं है, पर यदि इनमें दिव्य उन्माद-विक्षिप्तता आये, जो चैतन्य महाप्रभुके अन्तिम जीवनमें देखी गयी थी, उनकी गम्भीरा लीलामें, तो मैं उसका हृदयसे स्वागत करता हूँ। रसकी धारा .....।'

श्रीपोद्दार महाराज बोल ही रहे थे, इतनेमें ही किसीने सूचना दी कि बारह बज गये और पू.गुरुदेवने जोर से कहा – 'मैं यहीं मौन लेता हूँ।'

इतना कहकर पू.गुरुदेव मंचपर खड़े हो गये। खड़े होकर पू.गुरुदेवने दो या तीन बार राधा-राधा-राधा कहा और फिर तत्क्षण ही नितान्त अन्तर्मुख हो

गये। श्रीपोद्दार महाराजने सूचना दी कि पू.गुरुदेव मौन हो गये हैं।

ज्योंही श्रीपोद्दार महाराजने सूचना दी कि बाबा मौन हो गये हैं, उसी समय अपरिसीम वेदनाकी एक ऐसी लहर आत्मीय जनोंमें उठी कि वे अपनी आर्त चीत्कारको रोक ही नहीं सके। अ.सौ.बहन इन्दु सरावगीकी तो दशा लगातार तीन-चार दिवसतक विक्षिप्त रही। वे बार-बार मूर्च्छाग्रस्त हो जाती थी। उसकी विरह-वेदनाकी ज्वालामें मूंर्च्छा स्वयं ही जलने लगती थी और उसे छोड़कर दूर हट जाती थी। यही कहा जा सकता है कि क्षणभरके लिये एक तुमुल आर्तनाद सर्वत्र गूँज उठा और फिर एक भयावह नीरवताने सर्वत्र गीतावाटिकाको घेर लिया।

व्यक्ति-व्यक्ति कुण्ठित मनसे हतप्रभ हुआ फटी आँखोंसे पू.गुरुदेवको देख रहा था। विजड़ित अधर, स्तब्ध मति, और हाहाकारभरे हृदयसे लोगोंने देखा पू.गुरुदेवको पोद्दार महाराजने अतिशय शान्तिपूर्वक धीरेसे मंचपरसे नीचे उतारा। और श्रीपोद्दार महाराज पू.गुरुदेवके गलेमें बाँह डालकर धीरे-धीरे उन्हें उनकी कुटियाकी ओर ले गये। चलते समय पू.गुरुदेवके शरीरसे उनकी गैरिक चादर भूमिपर गिर पड़ी। पू.गुरुदेव उसी समय अपने शरीरसे इतने अतीत हो गये थे कि चादर कब सरकी एवं कब गिरी, इसका उन्हें भान ही कहाँ था ? भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल श्रीपोद्दार महाराजके साथ चल रहे थे, उन्हींने वह चादर उठा ली। उन्होंने उस चादरको यावज्जीवन अपनी पूजामें सम्हालकर रखी। वह चादर उनके जीवनकी निधि ही बन गयी थी।

———oo———

चित्रसूची

पृष्ठसंख्या

1. स्वर्गद्वार नीलाचल (पुरी)में महाभावाविष्ट श्रीराधाबाबा *(कवर-मुखपृष्ठपर)*

2. षोडशगीतमन्दिर, बीकानेरमें विराजित श्रीराधामाधव *(इनरपेस्टर प्रारम्भमें)*

3. आत्मसमर्पणतत्त्वके जीवन्त विग्रह – श्रीपोद्दार महाराज पृष्ठ 1

4. रासनृत्यनिरत श्रीराधामाधव 45

5. आठों पहर सरसते रहते तुम मन-सरवरमें रसवान 100

6. दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा, दोउ अति, पंकज दोउ 126

7. यशोदानन्दन पीतवसन माधव मुरलीधर जय हे ! 231

8. कृपावतार श्रीनाथजी 263

9. समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी 346

10. स्वर्गद्वार नीलाचल (पुरी)में महाभावाविष्ट श्रीराधाबाबा 375

11. गोवर्धन परिक्रमामें श्रीराधाबाबा *(पेस्टर अन्तमें)*

12. सौंप दिये मन प्राण तुम्हींको *(कवर अन्तिम पृष्ठपर)*